"श्री गोपीजन वल्लभाय नमः"

रस निकुञ्ज

श्री वृन्दावनेश्वर रसिकराय शिरोमणि

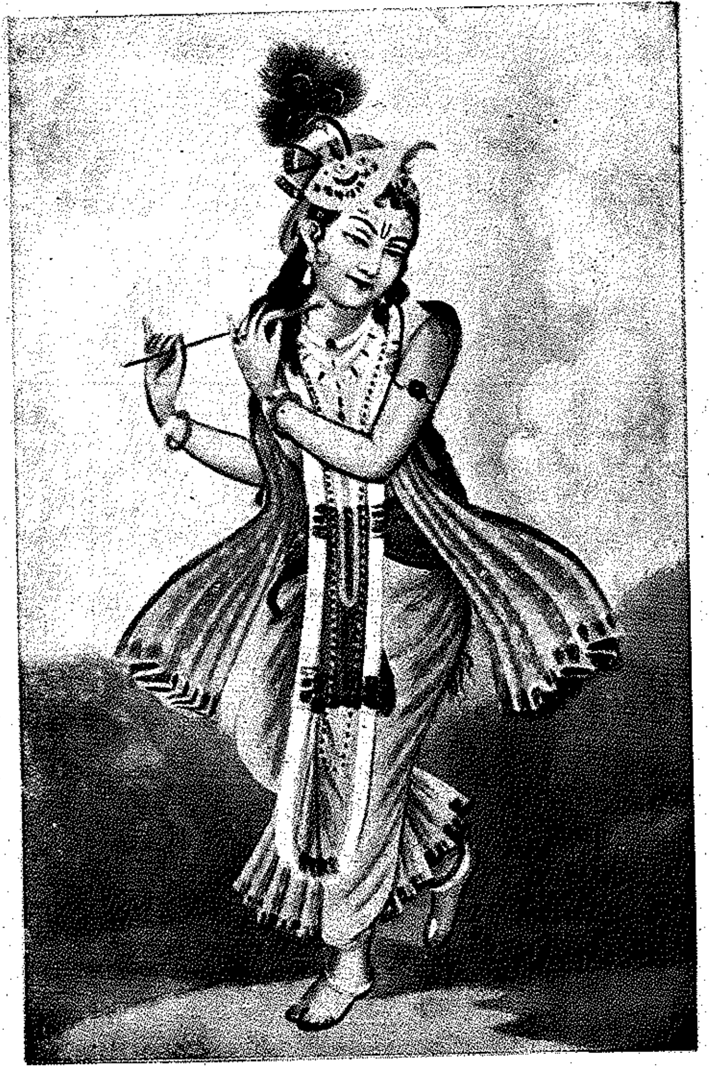

वामबाहु कृतवामकपोलो वल्गितभ्रु रधरार्पितवेणुम् ।
कोमलांग लिभिराश्रित मार्ग गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥
व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जा : ।
काममार्गणसमर्पितचित्ता. कश्मलं ययुरपस्मृतनोव्यः ॥

हे गोपियों ! बांये कन्धे पर बांया कपोल रखकर चंचल भौंह वाले मुकुन्द भगवान् वेणु को अपने अधर पर रख, जिस समय उसके स्वरों के छिद्रों पर कोमल अंगुलियों को फिरा कर बजाते हैं, उस समय, विमान में बैठी हुई सिद्ध लोगों की स्त्रियां अपने पतियों के पास होते हुए भी, उस गान को सुनकर, विस्मय युक्त हो, कामदेव के बाण से परवश होकर, उस बेणुनाद के भाव को जानकर, लज्जा के साथ मोह को प्राप्त हुई है और उनका नीवी बंधन छूट जाने का भी उनको भान नहीं रहा है।

'युगल गीत'
श्री मद् भागवत

SURENDRA JAMNADAS SHAH
E/503/504, PUSHP HERITAGE,
Dahanukarwadi, Near Mahavir Ngr., Kandivli (W),
Mumbai - 400 067. Tel. : 2863 2396, 98332 72383

॥ श्री हरिः ॥

॥ श्री कृष्णाय नमः ॥

॥ श्री गोपीजन वल्लभाय नमः ॥

॥ श्री वाक्पति चरण कमलेभ्यो नमः ॥

श्री सुबोधिनी तृतीय ग्रंथमाला

❀ चतुर्थ कुसुम ❀

❀ रस निकुञ्ज ❀

गोलोक वर्णन, द्वादश निकुञ्ज की भावना, शृङ्गार रस मण्डन
'रस' और 'विरह' मञ्जरी एवं मधुराष्टकं
हिन्दी अनुवाद सहित

प्रथमावृत्ति–१०००
अक्षय तृतिया
वैशाख शुक्ला–३
वि० स० २०४४
तदनुसार शुक्रवार
१ मई, १९८७

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रकाशक :
श्री सुबोधिनी प्रकाशन मण्डल (रजि.) जोधपुर
मानधना भवन, चोपासनी मार्ग,
जोधपुर-३४२००३

सादर भेंट
संस्था सदस्य
महानुभाव

॥ श्री हरिः ॥

श्री सुबोधिनी प्रकाशन मण्डल (पञ्जिकृत)

जोधपुर

उद्देश्य:-जगद् गुरु श्री मद्वल्लभाचार्य चरण द्वारा प्रतिपादित शुद्धाद्वैत दर्शन (पुष्टि मार्गीय) संस्कृत एवं अन्य भाषाओं के ग्रन्थों का राष्ट्र भाषा (देव नागरी) में अनुवाद करवा कर प्रकाशन करना। संगीत कला एवं चित्रकला के उपलब्ध साहित्य प्रचार को प्रोत्साहित करना।

❀ तृतीय ग्रन्थ माला ❀

संस्था के सदस्य महानुभाव—

विशिष्ट सहायक–रु. ५०००, या इससे अधिक की चल व अचल सम्पत्ति भेंट कर्त्ता।

सहायक सदस्य–रु. १०००) से ४९९९) तक की चल व अचल सम्पत्ति भेंट कर्त्ता।

सामान्य सदस्य–रु. ३५०) से रु. ९९९) तक भेंट कर्त्ता

प्रथम श्रेणी–रु. ५०१) चार सौ रुपयों की लागत मात्र के ग्रन्थ भेंट

द्वितीय श्रेणी–रु. ३५१) दो सौ पचास रुपयों की लागत मात्र ग्रन्थ भेंट।

संस्था के मूल संस्थापक–सद्गत् नन्दलाल जी मानधना	रु ५०००)
सद्गत् सौभाग्यवती देवी जी मानधना	रु. ५०००)
संस्था के अर्थ सहायक महानुभाव–प भ. कृष्णदास जी डी दलाल	रु १५०००)
सर्व श्री हरिलाल हरि वल्लभदास धर्मादा ट्रस्ट	रु. १००००)
प.भ. सेठ साकरलाल जी वाला भाई एवं सेठ नवनीतलाल जी साकरलालजी	रु. ७०००)

॥ श्री हरिः ॥

श्री सुबोधिनी प्रकाशन तृतीय ग्रंथमाला

रस निकुञ्ज

❀ विषय सूची ❀

मुख पत्र
संस्था के उद्देश्य एवं विशिष्ट सदस्य
संस्था के संरक्षक महानुभाव एवं सेवा भावी भगवदीय
दो शब्द—पूज्य पाद गोस्वामी व्रजभूषणलालजी महाराज (अध्यक्ष महोदय) पृष्ठ संख्या
विनम्र निवेदन—नन्ददास मन्त्री
१ श्री मद्वल्लभाचार्य श्री कृष्ण के वदनावतार अतः साक्षात् पूर्ण-पुरुषोत्तम हैं १
श्रीमद्वल्लभाचार्य के दार्शनिक आचार की परम्परा
२ श्री गोपीनाथ (पद्यानी) १२
३ गोलोक का वर्णन ब्रह्म वैवर्त्त पुराणान्तरगत, १
४ द्वादश निकुञ्ज की भावना ३८
५ शृङ्गाररसमण्डन—श्रीमद्विठ्ठलेश प्रभु चरण ९१
६ दस उल्लास—श्री हरिरायजी विरचित २२५
७ नव विज्ञप्ति—श्रीमद्विठ्ठलेश प्रभु चरण २३२
८ श्री कृष्ण रस—प.भा. श्री गोपेश शरणजी एम.ए, एम.एड. भरतपुर २८१
९ रसमञ्जरी—रसिक भक्त कवि श्री नन्ददासजी (अष्ट सखा) २८९
१० विरह मञ्जरी—रसिक भक्त कवि श्री नन्ददासजी (अष्ट सखा) २९९
११ इश्क चिमन—भक्तवर श्री नागरीदासजी (कृष्णगढ़ नरेश) ३१२
१२ मधुराष्टक—श्रीमद्वल्लभाचार्य चरण ३१६

चित्र सूची

श्री महाप्रभु श्रीमद्वल्लभाचार्य चरण, १
श्रीमद्वल्लभाधीशजी का स्वरूप १२
श्री गोवर्धननाथजी एवं श्रीमद्वल्लभाधीश १
श्रीमद्वल्लभाचार्य महा प्रभुजी का एवं गोवर्धननाथजी का मिलन २२९
श्रीमद्विठ्ठलेश प्रभु चरण २३१
श्री यमुनाजी का मुकट काछनी शृङ्गार का रहस्य ३४६

॥ श्रीहरिः ॥

संस्था के संरक्षक महानुभाव

पूज्यपाद	तिलकायत गोस्वामि श्री गोविन्दलालजी महाराज	नाथद्वारा
,,	गोस्वामी श्री ब्रजरत्नलालजी महाराज	सूरत
,,	,, श्री रणछोड़ाचार्य जी महाराज	कोटा
,,	,, श्री घनश्यामलाल जी महाराज	कामवन
,,	,, श्री गोविन्दराय जी महाराज	पोरबन्दर
,,	,, श्री व्रजराय जी महाराज	राजनगर
,,	,, श्री श्याम मनोहर जी महाराज	किशनगढ़, बम्बई
,,	,, श्री ब्रजभूषणलाल जी महाराज (अध्यक्ष महोदय)	चौपासनी (जोधपुर) जामनगर

तृतीय ग्रन्यमाला की आर्थिक सेवा कर्त्ता कतिपय निम्न महानुभावों के सादर जय श्री कृष्ण

प.भ.	कृष्णदासजी डी. दलाल	पूना	रु. ५००१)
,,	गोवर्धन भाई कृष्णलाल जी	कड़ी	रु. १५०१)
,,	विठ्ठलदास जी काराणी	बम्बई	रु. ११०१)
,,	हीरालाल जी अग्रवाल	वाराणसी	रु. ११०१)
,,	राधाकृष्णदास जी अग्रवाल	,,	रु. ११०१)
,,	गिरधारीलाल जी एवं बंधु विठ्ठलदास जी, नागरीदास जी	,,	रु. ११०१)
,,	गोपाल कृष्णदास जी अग्रवाल	,,	रु. ११०१)
,,	गायत्री देवी जी श्यामदास जी मूंधड़ा	नई दिल्ली	रु. १००१)

अखड भूमण्डलाचार्य चक्र चूड़ामणि श्रीमद्वल्लभाचार्य वर्य

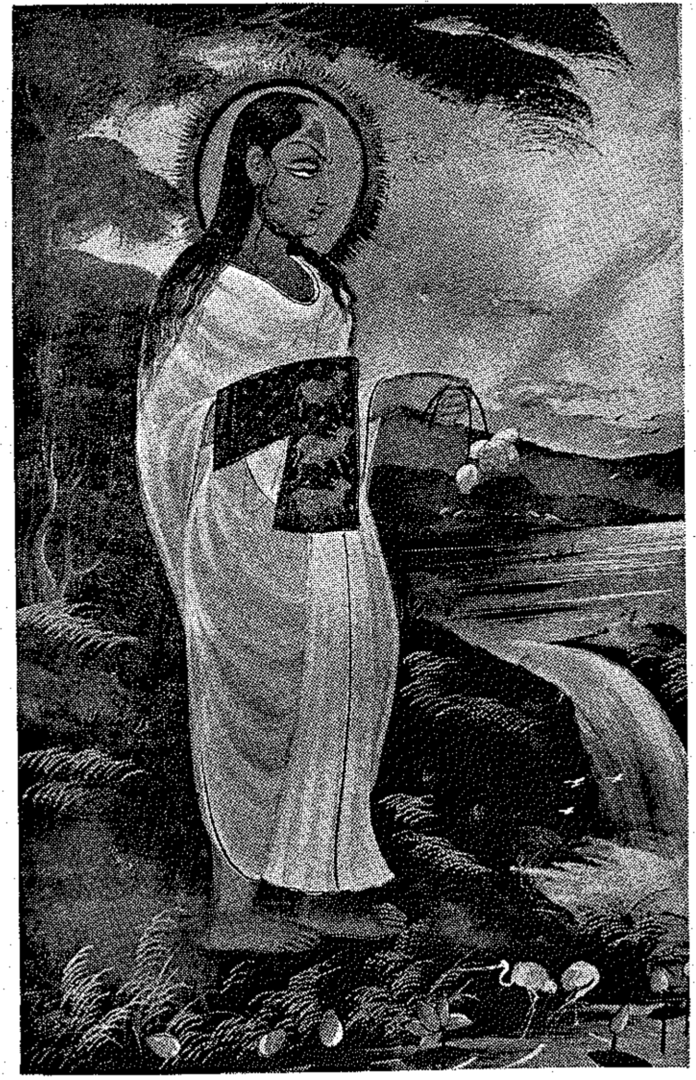

श्री भागवत अमृत दधि मथ के श्रीवल्लभ सर्वोतम ।
कर आवरण दूर निज जनके हाथ दिये पुरुषोतम ॥
सेवा साज श्रृंगार सुभग(राग)रस श्रीवल्लभ प्रकटायो ।
वृन्दावन निकुंज की लीला हरिजीवन स्वाद चखायो ॥

॥ श्री हरिः ॥

प्रार्थना

सुदक्षं संस्तुत्ये मद-मथन-नृत्ये-फणिपतेः ।
समादिग्धं स्निग्धं पशुपयुवतीनां कुचमदैः ॥
स्वकीयान् गोवत्साननुचरितुमुत्कण्ठितमहो ।
प्रभोः पद्मासद्मावतु मुदितपद्माङ्घ्रियुगलम् ॥
(लेखक के अप्रकाशित 'कृष्ण-विलसित-रहस्यम्'
संस्कृत महाकाव्य से ।)

शत-यज्ञों के घनीभूत हे सजग पुण्य ! तुमको वंदन ।
और, 'रसो-वै'-वदनाम्बुज की, मूर्त-सुरभि ! तुमको वंदन ॥
रास-गोप-वधु-भाव-सुपूरित-रस-विग्रह ! तुमको वंदन ।
सहज-सुभग ! हे भूमि-भाग्य ! हे महोदार ! तुमको वंदन ॥

शुद्ध ब्रह्म का रूप दिखाया, हटा आवरण माया का ।
विरुद्ध धर्मों का प्रश्रय जो, उद्गम आतप, छाया का ॥
अग्नि और उसके स्फुलिंग-सम, ब्रह्म-जीव का नाता है ।
जड़ चेतन में, स्वयं ब्रह्म ही, अविकृत परिणति पाता है ॥

अपनी असीमता को समेटकर, वह 'आनंद' महासागर ।
आज, 'परम आनंद' बन गया 'श्रीवल्लभ' विग्रह पाकर ॥
त्रिभुवन-वल्लभ-श्रीवल्लभ की, एक विलक्षण गाथा है ।
जहां स्वयं 'प्रभु' बनकर भी 'विभु,' विरुद्ध 'महाप्रभु' पाता है ॥
(लेखक के एक अप्रकाशित 'अग्नि-विस्फुलिंग
हिन्दी महाकाव्य से ।)

'कविरत्न' आर. कलाधर भट्ट
M. A., LL. B.

॥ श्री हरिः ॥

परिचय

पुष्टि मार्ग के निष्णात् विद्वान् एवं कविरत्न आर. कलाधर भट्ट महोदय के पूर्वजों ने सात पीढी से जैपुर महाराजा के राजवैद्य पद को समलंकृत किया है। आपने बाल्यावस्था में गुरुकुल कांगड़ी में संस्कृत विद्या का अध्ययन कर जयपुर नगर में विद्याध्ययन कर अहमदाबाद में एलएल., बी. की परीक्षा उच्च श्रेणी में उत्तीर्ण की। ऋगवेद आपको कण्ठस्थ है। हिन्दू लॉ के प्रोफेसर अहमदाबाद में नियुक्त हुवे। स्वामीनारायण सम्प्रदाय के एक मुकद्मे की फीस रु. १०,००० जो विजय प्राप्त करने पर उनके अनुयायी दे रहे थे उसके स्थान पर सवा रुपया मात्र ग्रहण कर उनको अपनी उदारता से आश्चर्यचकित कर दिया। कुछ समय तक बम्बई में शेयर मारकेट के सदस्य रूप में कार्य कर अपनी कुशाग्र बुद्धि स्नेहपूर्ण बरताव से अनेक कम्पनियों के डाइरेक्टर पद प्राप्त किये। आयुर्वेद के उच्च कोटि के वैद्याचार्य हैं। पुनर्वसु आयुर्वेदिक कॉलेज बंबई में कई वर्षों तक आयुर्वेद के व्याख्याता पद से निष्काम सेवाएं अर्पण करते आ रहे हैं। हिन्दी व संस्कृत की उत्तमोत्तम कविता आप करके विद्वद् समाज को मोहित करते हैं जिसका यत्किंचित् परिचय 'प्रार्थना' से पाठक प्राप्त कर सकते हैं। "श्रीमद् वल्लभाचार्य की दार्शनिक आचार की परम्परा" की रचना से आपने गागर में सागर भर देने वाली उक्ति को चरितार्थ किया है उस ग्रंथ का अंग्रेजी में अनुवाद अमेरिका में कराया गया जो विश्व के पुस्तकालयों में भेजा गया। यमुनाष्टकम् वेणुगीतम् आदि आपकी अनेक रचानाऐं हैं। आप द्वारा निर्मित आयुर्वेद की औषधियों का विक्रय ऊंची मात्रा में विदेशों में होता है। सौभाग्यवश आपकी धर्म पत्नी श्रीमति चन्द्रकान्ता देवी एम. ए. 'संस्कृत' एवं पुष्टिमार्ग की उच्चकोटि की विदुषी हैं और पतिदेव को साहित्य कार्य में सहयोग देती हैं। भट्ट साहब ने तन, मन और धन से नाथद्वारा प्रकरण का समापन करने में योगदान दिया जो उनका उपकार वैष्णव समाज के लिए चिर स्मरणीय है। नाथद्वारा टेंपल बोर्ड के आप सदस्य हैं। अनेक गुण सम्पन्न होते हुए भी आप दैन्ययुक्त हैं परन्तु स्थानाभाव के कारण यह सूक्ष्म परिचय ही दिया जा रहा है।

◆

॥ श्री हरिः ॥

दो शब्द

अखण्ड भूमण्डलाचार्य चक्र चूड़ामणि जगद्गुरु श्रीमद्वल्लभाचार्य चरण महाप्रभु सनातन धर्म के अन्तिम आचार्य है जिन्होंने सोलहवीं शताब्दी में प्रकट होकर मायावाद का खण्डन कर ब्रह्मवाद को स्थापित कर यवन साम्राज्य से संतप्त हिन्दू जाति को भगवदाश्रय का पाठ सिखाकर चिन्ताओं से मुक्त किया। श्रीमान् शंकराचार्यजी ने वेद, भगवद्गीता व्यास सूत्र इन शास्त्रों को मुख्य प्रमाणिक रूप से स्वीकार किया है जिसे प्रस्थान त्रयी कहते हैं, किन्तु श्रीमद्वल्लभाचार्य चरण ने श्रीमद्भागवत को भी प्रमाणिक रूप में स्वीकार किया है जैसा कि निम्न श्लोक से स्पष्ट होता है कि—

वेदाः श्रीकृष्ण वाक्यानि व्यास सूत्राणि चैव हि ।
समाधि भाषा व्यासस्य प्रमाण तच्चतुष्टयम् ॥

१–वेद (अथ वाद सहित समग्र वेद) २–गीता (कृष्ण के वचन) ३–व्यास सूत्र, ४–भागवत (में समाधि भाषा) ये चारों शास्त्र प्रमाण हैं।

श्री महाप्रभुजी ने श्रीमद्भागवत को प्रस्थानों में स्थान देकर एक महत्त्वपूर्ण त्रुटि की पूर्ति की है। क्योंकि श्रीमद्भागवत वेदों का भाष्य रूप होने से अन्तिम निर्णायक (निर्णय करने वाला) शास्त्र है। अतः आचार्य श्री ने आज्ञा दी है कि ये चारों शास्त्र परस्पर उपकारक हैं। यदि वेदों के अर्थ में शंका होती हो तो गीता से उसका निवारण किया जा सकता है और गीताजी के अर्थ विषय में सन्देह हो जाय तो उसका निवारण व्यास सूत्रों से करना चाहिये एवं यदि व्यास सूत्रों के अर्थ में कोई संशय प्राप्त हो तो उस संशय को भागवत द्वारा मिलाया जा सकता है। इस प्रकार इन चारों शास्त्रों के परस्पर सहयोग में स्थिर हो वही सत्य सिद्धान्त है।

श्रीमद्भागवत की सुबोधिनी संस्कृत टीका केवल १, २. ३. १० और ११वें स्कन्ध के पाँचवें अध्याय के श्लोक २ तक ही उपलब्ध हैं जिसका उन्हीं स्कन्धों के भागवतार्थ प्रकरण के हिन्दी अनुवाद सहित का दो ग्रन्थमालाओं की २० पुस्तकों में समापन हुआ। तत्पश्चात् २ वर्षों पूर्व तृतीय ग्रन्थमाला के तीन कुसुमों (१) कीर्तन पुष्प वाटिका (२) श्रीमद्भागवत रसामृत सिन्धु खण्ड–१ तथा (३ खण्ड–२ का प्रकाशन हुआ। प्रस्तुत ग्रन्थ 'रस निकुञ्ज' चतुर्थ कुसुम है। अन्य रसमयी सामग्री के साथ इसमें श्रीमद्विठ्ठलेश प्रभु चरण विरचित शृंगार रस मण्डन भी है। प्रबन्धक समिति की बैठक में इस ग्रन्थ के विषय में यह चर्चा हुई कि किन्ही महानुभाव का यह सुझाव है कि इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद न छपाया जावे। परन्तु विचार विनिमय के पश्चात् इसका मुद्रण कराना ही समीचीन प्रतीत हुआ। क्योंकि यह निर्विवाद है कि अपनी सम्प्रदाय का ऐसा सर्वाङ्ग सुन्दर और सर्वोत्कृष्ट साहित्य मूर्ख विषयाक्रान्त लोगों के लिए नहीं है इस प्रकार के साहित्य के अवलोकन में अधिकार परम लक्ष्य है। अतः इस विषय में स्वयं श्रीमद्प्रभुचरण की निम्न आज्ञा विद्यमान है—

प्रार्थये रसिकाः स्वैरं पश्यन्त्वेतदमहर्निशम् ।
एतद्रसानाभिज्ञास्तु माद्राक्षीदपि वैष्णवाः ॥

अर्थात् हे रसिकों! साम्प्रदायिक साहित्य में आप लोग स्वच्छन्दता से विहार करो किन्तु एक प्रार्थना है–जो भगवान् की कृपा रस से सिंचित न हो, जो लौकिक विषयों से निवृत्त न हुए हों ऐसे माला तिलक धारी अहंमन्य वैष्णव ये उपरोक्त प्रकार (भगवद्रस साहित्य) का अवलोकन न कर।

अतः रसिक शिरोमणि नन्द नन्दन एवं वाक्पति श्री वल्लभाधीश को सदैन्य प्रार्थना है कि पाठकों को वे सद्बुद्धि प्रदान करें जिससे वे प्रसंगों को बाँच कर भगवन्मय होकर कृतार्थ हो जावें।

—गो० व्रजभूषणलाल

॥ श्री हरि ॥

विनम्र निवेदन

श्रीमद्वल्लभाचार्य चरण महाप्रभुजी की कृपा से श्री सुबोधिनीजी (संस्कृत टीका) जो प्रथम, द्वितीय, तृतीय, दशम एवं एकादश स्कन्ध के प्रथम चार पूर्ण अध्यायों तथा पाँचवें अध्याय के दूसरे श्लोक तक उपलब्ध है उसके सरल सुबोध हिन्दी अनुवाद का २० पुस्तकों में समापन है। श्रीमद्भागवत का चार प्रकार का अनुवाद तत्त्वार्थ दीप निबन्ध के भागवतार्थ प्रकरण में और तीन प्रकार का अर्थ श्री सुबोधिनीजी में है। ये सातों ही प्रकार का अर्थ तथा प्रत्येक पुस्तक के आशय की भूमिका, लगभग सब ही अध्यायों के अन्त में उस अध्याय के विवरण का पद, प्रत्येक पुस्तक का सचित्र होना इस संस्था के प्रकाशन की विशेषता है।

तृतीय ग्रन्थमाला का प्रकाशन दो वर्षों पूर्व ही प्रारम्भ हो चुका था, प्रथम कुसुम - कीर्तन पुष्पवाटिका का वैष्णव महानुभावों ने सहर्ष हृदय पटल से स्वागत किया और स्थान-स्थान से पुस्तक की माँग आ रही है। परन्तु संस्था पुस्तक का विक्रय नहीं करती है। कम से कम आठ पुस्तक गुच्छ का जो सदस्यता शुल्क संस्था को प्रदान करें उन्हें भेंट रूप में वे पुस्तकें देने का नियम आरम्भ से ही है, अतः एक पुस्तक मूल्य पर देने की असमर्थता प्रकट करनी पड़ती है।

श्री सुबोधिनी प्रकाशन मण्डल की स्थापना १ नवम्बर १९६१ के शुभ दिन पूज्यपाद श्रीमद्गोस्वामी श्री व्रजभूषणलालजी महाराज के वरद् हस्त से जोधपुर नगर में हुई थी। रजत जयन्ती के अवसर पर इस नगर में सदस्य संख्या अधिक न होने के कारण कोई महासभा का आयोजन न रखकर व्यापक प्रचार व लाभप्रद कार्य सम्पादन ही रक्खा गया है। संस्था की प्रथम ग्रन्थमाला दशम स्कन्ध के १३ प्रकरण की १२ पुस्तक रत्न उपलब्ध न होने के कारण दशम स्कन्ध के मुख्य प्रसङ्गों का प्रकाशन करवाकर दशम स्कन्ध की कमी किसी सीमा तक पूरी हो। अतः वेणु गीत चीर हरण लीला तामस फल प्रकरण (रास पंचाध्यायी एवं युगलगीत) राजस प्रमेय प्रकरण के दो अध्याय भक्तवर उद्धवजी का व्रज गमन एव व्रज सीमन्तनियों से सम्भाषण 'भ्रमर गीत) इस प्रकार ११ अध्यायों की दो पुस्तकें श्रीमद्भागवत रसामृत सिन्धु भाग प्रथम व द्वितीय प्रकाशित कराये गये जो तृतीय ग्रन्थमाला के कुसुम दो एवं तीन है और रजत जयन्ती प्रकाशन ग्रन्थ भी वे ही हैं।

चतुर्थ कुसुम - 'रस निकुञ्ज' प्रस्तुत ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में पुष्टिमार्ग - स्नेह मार्ग, अनुग्रह मार्ग रस मार्ग के रसमय कुछ ग्रन्थों का समावेश है। इस ग्रन्थ का प्रारम्भ 'श्रीमद्वल्लभाचार्य श्रीकृष्ण के वदनावतार अतः साक्षात पूर्ण पुरुषोत्तम हैं" के लेख से तथा समापन श्रीमद्वल्लभाचार्य चरण विरचित श्री मधुराष्टक से होता है। मध्य में "श्री गोपीनाथ पद्यानि" जो 'शुद्धाद्वैत दर्शन रसाब्धि' ग्रन्थ से प्राप्त हुआ है तदन्तर गोलोक का वर्णन, द्वादश निकुञ्ज की भावना, श्रृंगार रस मण्डन एवं नव विज्ञप्ति श्रीमद्विठ्ठलेश प्रभुचरण एवं दश उल्लास पू०पा० गोस्वामी श्रीहरिराय महाप्रभु विरचित हैं। 'श्रीकृष्ण रस' के लेखक प०भ० गोपेशशरणजी शर्मा एम०ए० एम०एड० भरतपुर हैं, अष्ट सखा भक्त रसिक कवि नन्ददासजी विरचित रस मञ्जरी एवं विरह मञ्जरी, भक्तवर नागरीदासजी (किशनगढ़ नरेश) विरचित इश्क चिमन (प्रेम वाटिका) उर्दू भाषा की पदावली है। इनका संग्रह निम्न प्रकार से किया गया है—

(१) गोपीनाथ पद्यानी—पूज्यपाद गोस्वामी अनन्त श्री विभूषित कल्याणरायजी महाराज द्वितीय पीठाधीश्वर नाथद्वारा ने इस दास को निज अहेतुकी कृपा प्रतीक लगभग तीन वर्षों पूर्व "शुद्धाद्वैत दर्शन रसाब्धि' की एक पुस्तक प्रदान की जिसके लिये तो श्रीमानों को साष्टाङ्गदण्डवत प्रणाम ही है। इस ग्रन्थ का कणिका प्रसाद सबको प्राप्त हो अतः गोपीनाथ पद्यानि जिसका हिन्दी अनुवाद प०भ० त्रिपाठी नारायणजी शास्त्री नाथद्वारा वालों का है, उनको इस संस्था की निष्काम (निःशुल्क) साहित्यिक सेवा करते हुए २५ वर्ष हो गये हैं जिसके उपलक्ष में अध्यक्ष महोदय ने आशीर्वादात्मक प्रशंसा पत्र आपको प्रेषित किया है। क्योंकि अनुवाद कार्य के पारितोषिक स्वीकार करने के लिये आपको निवेदन किया तब आपका उत्तर आया कि न मुझे नाम चाहिये, न दाम चाहिये। काम बतावें जिससे मेरी विद्या का भगवत्सेवा में विनियोग हो।

(२) श्रीमान् कविरत्न आर० कलाधर भट्ट, एम०ए०एल०एल०बी० की आलेखित श्रीमद्वल्लभाचार्य के दार्शनिक आचार की परम्परा ग्रन्थ से 'प्रार्थना' एवं 'श्रीमद्वल्लभाचार्य श्रीकृष्ण के वदनावतार हैं अतः साक्षात पूर्ण पुरुषोत्तम हैं' लेख प्राप्त हुए हैं। आपके कर्तृत्व एवं व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय 'प्रार्थना' के अनन्तर है।

श्री द्वादश निकुञ्ज की भावना - इसकी हस्तलिखित प्रति जो गोकुल में कई वर्षों पूर्व लिखी गई थी वह प०भ० श्रीमती चन्द्रकान्ता देवीजी आर० भट्ट एम०ए० वल्लभ वेदान्त-छात्रा, पारला, बम्बई श्रीमान् कविरत्न आर० कलाधरजी की धर्मपत्नी महोदया हैं उनके पास थी। उनसे इसकी प्रतिलिपि बनाने के लिए मांगी गई। उनने उत्तर दिया कि मेरे निवास स्थान पर बैठकर प्रतिलिपि बना लेवें। तब उन्हें निवेदन किया गया कि मुझ गुरु भाई का विश्वास करें। इसकी प्रतिलिपि तैयार करने के बाद पुस्तक लौटा दी जावेगी तदनुसार पुस्तक लौटा दी गई। 'श्रीकृष्ण रस'–लेखक प०भ० गोपेशशरणजी शर्मा एम.ए०एम०एड० भरतपुर ने इस लेख के साथ 'श्रृंगार रस' के विविध अंगों की परिभाषा परिचय हेतु विवरण भेजा है जिससे सामान्य पाठक महोदय काव्य रस को समझ सके। विषय प्रतिपादन बहुत ही सुन्दर प्रकार से कर "गागर में सागर" भर देने वाली उक्ति को चरितार्थ करने में सफल हुए हैं। आप लेखक ही नहीं अपितु कवि भी हैं। कविता में इनकी छाप 'आतुर' है। भगवद्रस के लिये अन्य भक्त लालायित ही रहते हैं परन्तु निरन्तर उस भाव का स्मरण रहने के कारण आप 'आतुर' स्थाई रूप से हो गये हैं। आपने केवल तनुजा सेवा ही नहीं की है, संस्था की रु० २००२) की वित्तजा सेवा से हृदयस्थ उदारता भी प्रकट की है जिसके लिए संस्था आपका आभार स्वीकार करते हुए आपको सादर धन्यवाद निवेदन करती है। आपसे श्रुत आतुरता के प्रतीक दोहे की ओर दृष्टिपात कीजियेगा।

अन भावन नयरे बसें, मन भावन परदेस।
इन देखे उन दरस बिन, दो दुःख रहत हमेस॥

इश्क चिमन - भक्तवर नागरीदासजी (किशनगढ़ नरेश) के विषय में सुनते हैं कि 'अष्ट सखा नवें नागरीदास, दसवें दयाराम भाई' अष्ट सखा के बाद नागरीदासजी की पद रचना का अपना विशिष्ट स्थान है। भक्तराज वृन्दावन पर इतने आसक्त हैं कि वहाँ के जीव-जन्तु, पशु-पक्षियों तक की प्रशंसा के पद रचे हैं। यथा—

धन धन वृन्दावन के जन्त । छोटे-मोटे कहां लग वरनों तिनकी जात अनन्त ।
उपजत खपत यहां ही सब अधिकारी होने हैं अन्त । नागरीदास सकल बड़भागी जे इह रेणा बसंत ॥

पद रचना हिन्दी नागरी, व्रजभाषा, उर्दू, पंजाबी गुजराती भाषा की है। इश्क चिमन (प्रेमोद्यान या प्रेमवाटिका) में उर्दु, फारसी, अरबी भाषा के शब्द भी हैं, जिसमें ४५ दोहे हैं। पाण्डुलिपि में ४७ दोहे हैं जिसका चित्र पृष्ठ ३१६ के सामने हैं। जिसमें हृदयस्थ स्थाई भाव का एक दोहा निम्न है—

उस ही की सुन सिफ्त कुँ, किसी जुबां में होय ।
कादर नादर हुस्न का, कृष्ण कहाया सोय ॥❀

यह सामग्री श्रीमान् डॉ फैयाज अली खाँ, एम ए. (हिन्दी, अंग्रेजी,) पी एच डी. (हिन्दी) ने अपने निबन्ध ग्रन्थ - नागरीदास ग्रन्थावली से सहर्ष प्रेषित को है तदर्थ उनका सादर धन्यवाद है। ग्रन्थ का समापन "श्री मधुराष्टक" ग्रन्थ से हुआ है जिसमें प्रस्तावना एवं मधुराष्टक का 'माधुर्य", दो लेख गुजराती का यथामति हिन्दी अनुवाद किया है, त्रुटियों के लिये क्षमा याचना है। श्री मधुराष्टक का माधुर्य - यह लेख नि. लीं. पूज्यपाद गोस्वामी श्री व्रजनाथ लालजी महाराज ने पुष्टिमार्गीय युवक परिषद् के मानद मन्त्री प.भ गिरधरलालजी ज. शाह द्वारा प्रार्थना करने पर सन् १९३२ में आलेखन किया है - आप श्री लेख में आज्ञा करते है कि मधुराष्टक की छह टीकाएँ हैं। श्री मधुराष्टक के माधुर्य नाम से स्पष्ट है कि श्रीमद्विठ्ठलेश प्रभु चरण की ललित विवृत्ति ने तो इस माधुर्य को विशेष माधुर्य पूर्ण बना दिया है। आप श्री की विवृत्ति की शैली महाकवि बाण की कादम्बरी के समान मननीय और रमणीय है। इसी विवृत्ति के आशय को गो० घनश्यामजी महाराज की टिप्पणी के आधार पर यह लेख लिखा गया है।

तत्त्वदीप निबन्ध के सम्पूर्ण भागवतार्थ प्रकरण का प्रकाशन कराकर श्रीमद्भागवत सम्बन्धी सर्व साहित्य का समापन करने के लिये उसका मुद्रण कार्य किया जा रहा है, उसके साथ-साथ भगवत्सेवा प्रणालिका, वार्ता साहित्य दर्पण और षोडश ग्रन्थ के नवरत्न एवं निरोध लक्षण की सब टीकाओं के हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन होगा।

गत २५ वर्षों में जिन संस्थाओं एवं महानुभावों ने पुष्टिमार्गीय साहित्य का प्रकाशन किया है उनसे ग्रन्थ लेकर उनको प्रोत्साहित करने के लिये रु. १०,००० की सेवा संस्था द्वारा हुई है।

आशा है इस सम्पूर्ण ग्रन्थ से भगवद्धर्मिक भक्तजनों को स्वल्प सन्तोष होने पर ही इस सामान्य प्रयास की सफलता होगी। सादर धन्यवाद सहित प्रणाम,

भवदीय कृपाभिलाषी
नन्ददास (रामचन्द्र)
मन्त्री

❀ कादर (सर्वसमर्थ), नादर (अनोखा), हुस्न (प्रेम)

॥ श्री हरिः ॥

श्रीमद् वल्लभाचार्य श्रीकृष्ण के वदनावतार अतः साक्षात् पूर्ण-पुरुषोत्तम हैं

अपने अपने सम्प्रदाय के प्रवर्तक-आचार्य को, उस के अनुयायी, भगवान् के विभूति-अंश से अवतीर्ण मानते हैं। जैसे श्रीरामानुजाचार्य आदि को शेषादि का अवतार कहते हैं। इस मान्यता को निरी साम्प्रदायिक किंवा धार्मिक कहकर, इसकी प्रायः उपेक्षा की जाती है। वस्तुतः, ज्ञान, बल एवं क्रिया भगवान् की स्वाभाविक-परा-शक्तियां हैं-अतः, लोकोत्तर प्रतिभा, बल एवं आचरण से युक्त व्यक्ति, भगवान् की शक्ति विशेष से समन्वित होता है। लोकोत्तरता अर्थात् विभूतित्व, भगवद्-शक्तित्व ही है-(यद् तद् विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव च.-गी.)। श्रीमद् शंकराचार्य आदि आचार्य, लोकोत्तर-प्रतिभा आदि से युक्त अत एव भगवान् के विभूति-स्वरूप थे-यह निर्विवाद है।

पुष्टि-मार्ग में आचार्यश्री पुरुषोत्तम माने जाते हैं :—

श्रीमद् वल्लभाचार्य, भगवान् की विभूति के अवतार नहीं-किंतु स्वयं भगवान् के वदनावतार हैं, अर्थात् साक्षात् भगवान् ही माने गये हैं। पुष्टि-मार्ग के रस-तत्व की निगूढता को यथावत् हृदयंगम करने के लिये यह मान्यता कि 'श्रीमद् वल्लभाचार्य साक्षात् पूर्ण-पुरुषोत्तम हैं -'नितांत आवश्यक है, इसी मान्यता में पुष्टि-मार्ग का अस्तित्व है। अन्य-मार्ग में 'गुरु' जीव माना जाता है-और सेवा ईश्वर की। पुष्टि मार्ग में गुरु साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम है-और सेवा भी पूर्ण-पुरुषोत्तम की। सेवा के अन्तर्तम-रमणीय स्वरूप की झांकी कराने के आग्रह से, आचार्यश्री को अपना अंतरंग-परिचय देना ही पड़ा-कहीं स्पष्ट शैली में, कहीं अपनी आचार्योचित दार्शनिक-भाषा के सहज गम्य संकेतों में। सहज-गम्य-संकेत, अन्त में सर्व-गम्य-सत्य स्वरूप में प्रकाशित हो ही गये। श्री विठ्ठलेश्वर ने, एक विवृतिकार के नाते, आचार्यश्री का वाणी को स्पष्ट समझाते हुये कहा-कि आचार्यश्री श्रीकृष्ण के 'आस्य' मुख हैं-'श्रीकृष्णास्यो महाप्रभुः'।

आचार्यश्री वैश्वानर हैं :—

आचार्यश्री ने स्वयं अपना परिचय देते हुये, अपने आपको 'वैश्वानर' माना है। वह 'वाक्-पति' हैं। उन्हें 'मानुष-तनु' धारण कर के भूतल पर यथार्थ भक्ति-तत्व के प्रचार और विस्तार करने की विशेष आज्ञा मिली है। भूतल पर अवतीर्ण होने के प्रयोजन को स्पष्ट करते हुये-आचार्यश्री ने अपना परिचय इस तरह दिया है-"अर्थं तस्य विवेचितुं न हि विभुर्वैश्वानरात् वाक्पतेरन्यस्तत्र विधाय मानुषतनुं मां व्यासवत् श्रीपतिः। दत्वाऽज्ञां च कृपावलोकनपटुर्यस्मादतोऽहं

मुदा-गूढार्थं प्रकटीकरोमि बहुधा व्यासस्य विष्णोः प्रियम्'' ।। भागवत के अर्थ का विवेचन 'वैश्वानर' किंवा 'वाक्-पति' के अतिरिक्त अन्य कोई भी करने में समर्थ नहीं-यह विचारकर, इस कार्य के सम्पादनार्थ, भगवान् श्रीपति ने मुझे मानव-शरीर धारण करके अवतीर्ण होने की आज्ञा दी है''-इत्यादि। 'वैश्वानर' अग्नि का पर्याय है। अग्नि ही वाणी रूप से मुख में स्थित है-(अग्निर्वाग् भूत्वा मुखं प्राविशत् ।) भागवत पर अपनी सुबोधनी के उपरोक्त मंगलाचरण श्लोक में आचार्यश्री ने स्वयं को 'वैश्वानर' तथा 'वाक्-पति' दोनों ही बताया है। यद्यपि 'वैश्वानर' अग्नि का ही पर्याय है, तथापि आपश्री ने अपने 'तत्वार्थ-दीपनिबन्ध' पर स्वरचित 'प्रकाश' के मंगल-श्लोक में स्वयं के लिये 'अग्नि' शब्द का ही सीधा और स्पष्ट प्रयोग किया है–'अग्निश्चकार तत्त्वार्थदीपं भागवते महत्' अर्थात् अग्नि ने भागवत-पर 'तत्वार्थदीप' नाम से विस्तृत निबन्ध की रचनाकी। श्रीमद्भागवत ने 'अग्नि' को भगवान् श्रीकृष्ण का साक्षात् मुख माना है-अग्निर्मुखं ते' भा.। इस श्लोक का अर्थ सुबोधिनी ने इस तरह किया है-यह जो अग्नि है-वह भगवान् का मुख है- योऽग्नि स ते मुखम्, सुबो.। श्रीमद् आचार्य स्वयं अग्नि होने के कारण भगवान् श्रीकृष्ण के साक्षात् मुख ही हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण का मुख ही स्वतंत्र भक्ति है :—

पुष्टि संप्रदाय में दो प्रकार की भक्ति का निरूपण किया गया है एक श्रीकृष्ण के चरण कमल की, दूसरे, उनके मुख कमलकी। वस्तुतः, श्रीकृष्ण के मुख कमल की भक्ति ही पुष्टि भक्ति है-आचार्यश्री ने इसे ही 'स्वतंत्र-भक्ति' कहा है। भगवान् का मुखारविंद ही स्वतंत्र-भक्ति-मार्ग है जिसके स्थापक एवं प्रवक्ता स्वयं भगवान् हैं–''मुखारविंदमदि स्वतंत्र भक्ति-मार्गत्वेन निरूपयन् आह-''स मार्गो भगवता स्थाप्यते'' सुबो.। सुबोधिनी का यह वाक्य एक विलक्षण संकेत एवं साम्य लिये हुये हैं-वह इस तरह कि वस्तुतः भूतल पर स्वतंत्र-भक्ति के आद्य-संस्थापक एवं आद्य-प्रवक्ता श्रीमद् वल्लभाचार्य ही माने जाते हैं। इससे यह संकेत-स्पष्ट हो जाता है कि श्रीमद्-वल्लभाचार्य, भगवान्-श्रीकृष्ण के 'मुखारविंद' हैं। इसके अतिरिक्त, सुबोधिनी में, भगवान् के मुख को 'परमानन्द' रूप कहा गया है-भक्त्यात्मक एवं भक्तिरूप भी माना गया है। भगवान् के मुख को ही 'रस' कहा है। (मुखं हि परमानंदरूपं, मुखं हि भक्तयात्मकं; मुखस्य भक्तिरूप त्वात्; मुख एवं रसः-सुबो.) भगवान् के मुख के विषय में उसकी भक्तिसंबंधिता के अनुसंधान में, सुबोधिनी-गत इतने ही संग्रह वाक्य है। इन परिचयात्मक संकेत वाक्यों के अनुसार, श्रीमत्आचार्यचरण वस्तुतः 'परमानंद' है, 'रसः परः हैं, भक्तयात्मक एवं भक्ति-रूप है। श्री हरिराय महाप्रभु ने, आचार्यश्री के आत्म-वृत्त रूप इन उद्धरणों का इस तरह स्पष्टीकरण किया है-कि-करुणामय भगवान् श्रीकृष्णने, अपने मुख कमल की विरहात्मक भक्ति का दान करने के लिये, अपने ही भक्तयात्मक, परमानन्द-रस-मय मुख को, कृपापूर्वक, अग्नि-रूप श्रीमद् वल्लभाचार्य-स्वरूप से भूतल-पर-प्रकट किया (तदर्थं करुणः कृष्णो भावात्मा स्वास्यमुत्तमम्

भावाग्निरूपं जगति कृपयाविश्चकार सः ।। श्रीवल्लभाख्यानाचार्यान् विश्वोद्धारकृते यतः) अर्थात् भगवान् का मुख ही स्वतंत्र-भक्ति है-स्वतंत्र भक्ति ही मानव के अत्यंतिक क्षेम का संपादन कर सकती है-अतः 'सतां उद्धारार्थं,' भगवान् श्रीकृष्ण का मुख, श्रीमद्-वल्लभ-पद-वाच्य 'मानुष तनु' धारण करके अवतीर्ण हुआ।

श्रुति में वैश्वानर' को पुरुषोत्तम कहा गया है :—

तत्वार्थ-दीप- निबंध पर स्वरचित 'प्रकाश' के मंगलाचरण-श्लोक में आचार्यश्री ने अपने लिये अग्नि' शब्द का प्रयोग किया है-तथा भागवत ने 'अग्नि' को भगवान् का मुख माना है। किंतु भागवत पर स्वरचित सुबोधिनी के मगलाचरण में भी आचार्यश्रीने स्वयं को 'वैश्वानर' बताया है। यहां 'अग्नि' शब्द का प्रयोग न करके उसके पर्याय 'वैश्वानर' शब्द का ही प्रयोग किया है। अग्नि के अनेक-विध पर्याय शब्दों में से अपने लिये मुख्यतया केवल 'वैश्वानर' शब्द का ही प्रयोग एक निगूढ अभिप्राय रखता है। छांदोग्य उपनिषद् में 'वैश्वानर' के विषय में चर्चा की गई है। आत्मा रूप वैश्वानर के विषय में जिज्ञासा रखते हुये शिष्यने पूछा कि ''हमें बताईये यह वैश्वानर कौन है'' ? (आत्मानमेवेमं सप्रत्यध्येषि-तमेव नो ब्रूहि) इसके उत्तर में यह कहा गया कि यह 'वैश्वानर' अंगुष्ठ जितने परिमाण वाला एवं परिमाण से भी अतीत सर्व व्यापक है। अर्थात् प्रदेशमात्रत्व एवं सर्व-व्यापकत्व इन परस्पर-विरुद्ध धर्मों से युक्त यह 'वैश्वानर' ही परमात्मा है यस्त्वेतमेवं प्रदेशमात्रमभि विमानमात्मानं वैश्वानरं उपास्ते'-क्योंकि परस्पर विरुद्धता ब्रह्म में ही संभवित हैं–'परस्परविरुद्धता ब्रह्मण्येव संभवति' विद्वन्मंडनम्। इससे यह सिद्ध होता है कि अग्नि का यह 'वैश्वानर' पर्याय 'परमात्मा' का निर्देशक हैं। आचार्यश्री जो साक्षात् पूर्ण पुरुषोत्तम माने जाते हैं-वह इसलिए कि प्रथम तो आपश्रीने स्वयं को वैश्वानर कहा है, दूसरे आपश्री ही साक्षात्-भगवान् का मुख माने गये हैं, तीसरे पुष्टि-मार्ग के प्रथम-प्रवर्तक भी आपश्री ही हैं-'आदौ पुष्टिमार्ग-प्रवर्तनाय स्वयं भगवानवतीर्णः-सुबो.।

स्वयं भगवान् ने, श्रीमद्-वल्लभाचार्य को, भागवत के निगूढ-भक्ति तत्व को प्रकाशित करने के लिये, 'मानुष-तनु' धारण करके, भूतल पर अवतीर्ण होने का आदेश दिया था। अनर्थ की निवृत्ति, भगवान् श्रीकृष्ण की भक्ति -द्वारा ही हो सकती है। इस मंगल-संदेश को लेकर आचार्यश्री अवतीर्ण हुये। अवतीर्ण अवस्थामें भी आचार्यश्री का स्वयं भगवान् से अवश्य कई बार मिलाप हुआ होगा, इनमें से एक ही बार के मिलाप का उल्लेख आचार्यश्री ने किया है। यह मिलाप श्रावण शुक्ला एकादशी के दिवस, मध्य रात्रि में हुआ था। यह वह पावन दिवस है जब आचार्यश्री को, स्वयं भगवान् ने, जीवों का ब्रह्म से संबंध कराने का आदेश दिया था। आचार्यश्री ने इस घटनाका यथावत् वर्णन अपने 'सिद्धांत रहस्य' ग्रंथ में किया है ''श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि। साक्षात् भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते''। पुष्टि सप्रदाय, इस घटना

से, वस्तुत: सदा के लिये, मंगलमय, निष्पाप एवं रसमय बना रहेगा। यह एक नितांत सत्य घटना है, जिसको मानव मात्र पर अत्यन्त अनुग्रह करके इस महानुभाव ने अक्षरश: आलेखित करदी है। अवतारवाद को न मानने वाले नास्तिक समाज को, आचार्यश्री का यह निर्भय आत्मवृत्तांत, एक रहस्योद्घाटन करने वाली, अप्रकट्य स्पष्ट चुनौती है। अपनी अवतीर्ण अवस्था में, आचार्यश्री का भगवान् से साक्षात् संपर्क तो रहा ही, भगवान् से उन्हें अमुक विशेष आज्ञायें भी मिलती रहीं। इसका उल्लेख आचार्यश्री ने अपने 'अंत:करण प्रबोध' ग्रन्थ में किया है। आचार्यश्री के स्वरूपके विषय में, उन्ही के पुत्र श्री विठ्ठलेश्वर ने जो कहा है कि 'वस्तुत: कृष्ण एवं' वह वस्तुत: सत्य प्रतीत होता है। वैसे तो प्रत्येक सभ्य पुत्र का, पिता के प्रति प्राय: भगवद्भाव रहता है उसी तरह प्रत्येक शिष्य, अपने गुरु को नारायण मानता है, किन्तु वह गुरु अथवा पिता वस्तुत: नारायण या भगवान् नहीं होता यहां तो वस्तुत: कृष्ण को ही 'वस्तुत: कृष्ण:' कहा गया हैं।

इस तरह, स्वयं आचार्यश्री की वाणी से. एवं पुष्टि भक्ति के दृष्टि कोण से भी इतना अवश्य सिद्ध हो जाता है कि आचार्यश्री, श्रीकृष्ण संबधी, अलौकिक तत्व है। 'साक्षात भगवता प्रोक्तम्' आचार्यश्री की यह वाणी वास्तवमें लोकोत्तर है क्योंकि एक ऐतिहासिक महापुरुष का 'भगवान् से साक्षात्कार' करने के विषय में यह प्रथम एवं एक ही कथन है।

श्रीमद् वल्लभाचार्य ही स्व-पुत्र श्रीविठ्ठलेश्वर रुपमें पुन: प्रकटे :—

संप्रदाय की 'निजी वार्ता' के अनुसार, आचार्यश्री को, गृहस्थ-धर्म में प्रवेश करके, वंश–विस्तार द्वारा, स्वोद्भावित सेवामार्ग के प्रचार, प्रसार, एवं उसकी भूतल पर अव्याहत स्थिति के लिये, स्वयं पंढरपुर के प्रभु विठ्ठल ने आदेश दिया था। 'फेरिजब पंढरपुर आये श्रीविठ्ठलनाथकही मन भाये। करि विवाह बहुरूप दिखाओ मेरे नाम सुवन को धराओ' तद्नुसार आचार्यश्री आये गृहस्थ धर्म को अङ्गीकार किया स्वयं श्रीविठ्ठलेश्वररूप से ही स्वयं-श्रीविठ्ठलेश्वर-प्रभु प्रकटे। यह सांप्रदायिक विश्वास एवम् श्रद्धा का विषय है। सम्प्रदायगत श्रद्धा एवम् भावना का समादर अवश्य होना चाहिये। श्रद्धा कभी प्रमाण का विषय नहीं होती–फिर भी सम्प्रदाय में प्रचलित मान्यता के लिये अमुक हेतु अवश्य होते हैं। सम्प्रदाय की यह श्रद्धा, कि स्वयम् श्रीमद्वल्लभाचार्य ही अपने पुत्ररूप में पुन: प्रकट हुये,–स्वयम् श्रुति से, एवम् आचार्यश्री की वाणी से सिद्ध है। श्रुति एवम् आचार्यश्री की वाणी 'स्वत:' प्रमाण है–और आचार्यश्री ने 'आप्त' प्रमाण को ही प्रमाण–कोटि में परिगणित किया है। श्रुति के अनुसार पिता हीं पुत्ररूप से प्रकट होता है 'आत्मा वै पुत्रनामासि' इस श्रुति वाक्य को, आचार्यश्री ने यह सिद्ध करने के लिये कि 'पिता ही पुत्ररूप में जन्म लेता है,' भागवत पर अपनी सुबोधिनी में (प्र. स्कं. सप्तम–अध्याय श्लोक ४५–) उद्धृत किया है एवम् इसी संदर्भ में आप श्री स्पष्ट कहते है कि 'पुत्ररूपेण भर्ता जीवतीति पुत्रवतीनां न सहगमनम्' पुत्ररूप में पति जीवित रहता है अत: पुत्रवती स्त्री को सती होने का विधान नहीं है।

पुष्टि-संप्रदाय का गंभीरता पूर्वक अध्ययन करने से प्रतीत होगा कि आचार्यश्री इस मार्ग के संस्थापक किंवा प्रवर्तक हैं-'समार्गो भगवता एव स्थाप्यते;' पुष्टिमार्ग प्रवर्तनाय'-इत्यादि। इसका प्रचार एवं विस्तार उनके पुत्र श्रीविठ्ठलेश्वर ने किया। 'पुष्टि-मार्ग की स्थापना' रूप कार्य को, 'प्रचार कार्य' में गतिमान रखने के लिये-स्वयं-आचार्यश्री-श्रीविठ्ठलेश्वर स्वरूप से प्रकट हुये। आचार्यश्री के अपूर्ण कार्य को, इन्होंने ही पूर्ण किया। ब्रह्म-सूत्र पर, आचार्यश्री के असमाप्त अणु-भाष्य की 'इतिश्री'–श्रीविठ्ठलेश्वर ने ही की। आचार्यश्री की सूत्रात्मक वाणी का-इन्होने ही स्पष्टीकरण किया। श्रीमद्वल्लभाचार्य 'वाक् पति' हैं-यदि श्रीविठ्ठलेश्वर न होते-तो आचार्यश्री की वाणी के अलौकिक-सौंदर्य से विद्वान वंचित रहजाते। श्रीमद्वल्लाचार्योपदिष्ट सेवा के प्रकार-का प्रचार एवं विस्तार भी आपश्री द्वारा ही-संपूर्ण संपादित हुआ। इस-दृष्टिकोण से, श्रीविठ्ठलेश्वर कृत, अपने पूज्य-पिताश्री के नाम का यह निर्वचन, कितना मार्मिक है ! 'भुविभक्तिप्रचारैककृतेस्वान्वयकृत्' अर्थात् भूतलपर भक्ति के प्रचार के-लिये ही-अपने पुत्रादिवंशजों में अपना अन्वय करने वाले अर्थात् "अपने ही-पुत्र-प्रपौत्रादिक वंशज-स्वरूपों से पुन: पुन: प्रकट होनेवाले"।

ब्रह्म-सूत्रपर भाष्यकार के नाते श्रीविठ्ठलेश्वर स्वयं आचार्य हैं। आचार्यश्री के संपूर्ण वायङ्मय-पर-श्रीविठ्ठलेश्वर ने उत्तमोत्तम, विवृतियां-लेख आदि रचे हैं-इतना हो नहीं-विद्वन्मण्डन जैसे लोकोत्तर-प्रतिभा-समन्वित-मौलिक ग्रंथ भी आपश्री ने लिखे हैं। इनके अध्ययन से, श्रीमत्प्रभु-चरण वस्तुत: 'वाक्पति' श्रीमद्-वल्लभाचार्य ही है-यह स्वत: स्पष्ट हो जाता है। श्रुति के इस मत्रका कि 'आत्मावै पुत्रनामासि पिता हो पुत्र है-एवं आचार्यश्री की इस वाणी का कि 'पुत्र रूपेण भर्ता जीवति'–पुत्र रूपसे पति जीवित रहता है-एवं सर्वोत्तम स्तोत्र के इस पद का 'भुवि-भक्तिप्रचारैककृते स्वान्वय-कृत् पिता', भूतल पर भक्ति प्रचार के लिये ही अपना अन्वय करनेवाले-इन सभी उद्धरणों का, स्पष्टीकरण, चौरासी वैष्णवन की वार्ता ग्रंथ में इस तरह मिलता है "तब आचार्यजी महाप्रभु दामोदरदास सों कहे 'जो जैसे तू मोंको जानत है तैसे इनको (श्रीविठ्ठलेश्वर को) स्वरूप जानियो।"

'अष्ट छाप' को दृष्टि में आचायश्री तथा श्रीविठ्ठलेश्वर :—

इस संप्रदायके सुप्रसिद्ध 'अष्ट-छाप' मंडली के प्रथम चार महाकवि,श्रीमद् वल्लभाचार्य के, एवं शेष चार श्रीविठ्ठलेश्वर के परम सेवक थे। पुष्टिसंप्रदाय के पांच मूल तत्वों में से एक 'अष्ट-छाप' भो है। श्रोनाथजी तथा श्रीविठ्ठलेश्वर-की तरह यह 'अष्ट-छाप' महा अलौलिक माने जाते हैं। व्रज-भाषा के साक्षात् प्राण-भूत ये आठ सन्त, भारत की भावनात्मक अभिन्नता के सजीव प्रतीक हैं। श्रीमद् वल्लभाचार्योपदिष्ट-स्नेहात्मक-सेवा मार्ग के परमोज्ज्वल-आकाश-दीप-ये अष्ट-सखा,

लोकोत्तर काव्य-शक्ति से समन्वित, एवं संगीत-कला के मानों साक्षात् अधिष्ठाता देव थे। इन्होने अपनी वीणाभिनन्दित स्वर-माधुरी में भगवान् की संपूर्ण-लीलाओंका प्रत्यक्षता-पूर्वक परम-रसमय संकीर्तन किया है। आचार्यश्री के अनन्य-सेवक महाकवि-श्रीसूरदास कहते हैं कि इस कलि काल में आचार्यश्री के श्री-चरणों के बिना, फलसिद्धि का, और कोई साधन ही नहीं। श्रीनाथजी और आचार्यजी में द्विविध बुद्धि-रखना, इस कृपा-मार्ग में फल का बाधक है। 'भरोसो दृढ इन चरनन केरो। श्रीवल्लभ नख-चंद्र-छटा बिनु सब जग मांझि अंधेरो। साधन और नहीं या कलि में जासों होय निबेरो। सूरदास कँह द्विविध आंधरो बिना मोल को चेरो।'' परम दीनता पूर्वक, वह अपने गुरु श्रीमद् आचार्य की शरण याचना करते हुये कहते हैं "श्रीवल्लभ ! अबकी बेर उबारो। सब पतितन में विख्यात पतित हों, पावन नाम तिहारो। 'सूर' अधम को कहुं ठौर नहीं बिन इक सरन तिहारो।'' एक परम सानुभाव महाकवि के आचार्यश्री के प्रति यह उद्गार हैं।

महाकवि परमानन्ददास ने आचार्यश्री के स्वरूप के विषय में जो कहा है-वह भी समझने-लायक है। आप कहते हैं "और मोको श्रीआचार्यजी आपु कृपा करिके श्रीकृष्णजी के स्वरूप सो दर्शन दियो है। 'परमानंद दास को ठाकुर जे वल्लभ ते श्याम''। 'वल्लभ' और 'श्याम' अभिन्न हैं। महाकवि श्री कृष्णदास की वाणी भी, आचार्य श्री द्वारा, उन्ही के पति की शरण-याचना करती हुई, अपने को कृतार्थ मानती है। 'तब तें श्याम सरन हों पायो। जब ते भेट भई श्रीवल्लभ निज-पति नाम सुनायो।' अष्ट-छाप के सानुभाव सन्तों की वाणी से यह नितांत-सिद्ध हो जाता है कि आचार्यश्री साक्षात् भगवान् हैं। इसी स्वरूप से, उनके पुत्र श्रीविठ्ठलेश्वर का भी, इस मंडली ने संकीर्तन किया है। श्रीमत्प्रभु-चरण के चरण स्पर्श करके, श्रीकृष्णदास असुर से सुर बने "असुर ते सुर भये, चरनन छोय''। महाकवि-छीतस्वामी, श्रीमत्प्रभु-चरण एवं श्रीगोवर्धनोद्धरण को नःसंदेह एक ही मानते हैं "छीतस्वामी गिरधरन श्रीविठ्ठल निगम एक करि गावे हो''। वल्लभाख्यान के रचयिता एवं श्रीमत्प्रभुचरण के प्रिय सेवक गुजरात के संत महाकवि श्रीगोपालदास ने आचार्यश्री को परब्रह्म-एवं उनके पुत्र को पुरुषोत्तम कहा हैं 'पूरण ब्रह्म श्रीलक्ष्मण-सुत, पुरुषोत्तम श्रीविट्ठलनाथ।''

कहने का तात्पर्य यह है कि श्रीमद् आचार्यचरण एवं श्रीमत्प्रभुचरण दोनों एक ही स्वरूप हैं। अतः यह जो सांप्रदायिक मान्यता है कि पिता-पुत्र दोनों ही स्वयं पूर्ण-पुरुषोत्तम हैं, उसका-मूल, आचार्य श्री एवं श्रीविट्ठलेश्वर की लोकोत्तर ज्ञान-शक्ति में, एवं उनकी लोकोत्तरचरित्ररूप क्रिया शक्ति में है। तदुपरांत स्वयं आचायश्री के आत्मवृत्त-रूप वचनों से भी इसे पुष्टि मिलने के कारण यह मान्यता, इस समाज की एक सजीव, सत्य, ऐतिह्य घटना बन गयी है। इसीलिये पंचम पीठान्वय प्रादुर्भूत गोस्वामी श्रीद्वारकेशजी ने अपने 'भाव-भावना' ग्रंथ में यह कहा है कि 'और

मार्ग में गुरुजीव है सेवा ईश्वरकी, या पुष्टि मार्ग में गुरु ही पूर्ण पुरुषोत्तम सेवा हू पूर्ण पुरुषोत्तम की। सेवोपयोगी पदार्थ हूं निर्दोष' (भा. भा. पृ. १०४)।

अविच्छिन्न गति:—

श्रीमत्प्रभुचरण के सात पुत्र थे। ज्येष्ठ गिरधरजी तथा गोविंदराय, श्रीबालकृष्ण, श्रीगोकुलनाथ, श्रीरघुनाथ, श्रीयदुनाथ, श्रीघनश्याम क्रमशः इनके अनुज थे। वेद में भगवान् के छह गुण कहे गये हैं। भगवान्, जिस तरह धर्मी हैं एवं षड्गुण उनके धर्म, उसी तरह यहां श्रीगिरधरजी षड्गुणोपेत माने गये है एवं उन के अनुज, भगवान् के ऐश्वर्य,-वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन एक, एक गुण के क्रमशः एक, एक स्वरूप हैं। यह सातों महानुभाव-वस्तुतः भगवान् ही हैं, तथापि ऐश्वर्यादि गुणों से संबंध रखने वाली, अपनी अपनी विशिष्ट कृति के अनुसार ये क्रमशः भगवान् के तत् तत् विशिष्ट धर्म के आविर्भूत स्वरूप माने जाते हैं।

आचार्य श्री ने अपने भक्ति योग को अर्थात् 'स्नेह-योग' को निरंतर कहा है अर्थात् यहां जन्म और मरण भी इस निरंतरता में व्यवधान उपस्थित नहीं कर सकते। यह 'स्नेह' अव्यवहित है, त्रिकालाबाधित है। सेव्य और सेवक की निरंतर स्थिति में ही इस सेवा किंवा स्नेह-मार्ग की निरंतरता का, सर्वदापने का अस्तित्व है। निरंतरता की इस दार्शनिक उद्भावना का इससे अधिक और कौनसा ज्वलंत, आचारात्मक किंवा प्रात्यक्षिक उदाहरण हो सकता है कि आज प्रायः पांच सौ वर्ष हुये श्रीवल्लभ कुल में स्नेह-सेवा की यह निरंतरता अद्यापि गतिमान है !!!

श्रीवल्लभाचार्य में सेव्य-श्रीकृष्ण का और सेवक-श्रीवल्लभ का कभी विप्र-योग नहीं है। श्रीमद् वल्लभाचार्य ने प्रतिज्ञा की है 'कृष्ण-सेवा सदा कार्या' अतः श्रीकृष्ण की सदा सेवा करते हुये रहने के लिये-श्रीमद्आचार्य ही स्व पुत्र श्रीविठ्ठलेश्वर एवं तत्पुत्र पौत्र प्रपौत्रादि अपने वंशजों के रूप में, अस्खलित गति से पुनः पुनः अवतीर्ण होकर भूतल पर आज भी ब्रह्म-संबंध-विधिद्वारा, स्वसेव्य को सेवाद्वारा. सेवामार्ग किंवा प्रेमलक्षणा भक्ति का प्रचार एवं विस्तार करते हुये अपने व्रत में तल्लीन हैं। महाकवि दयाराम, संप्रदाय की इसी श्रद्धा को अभिव्यक्त करते हुये कहते हैं "श्रीवल्लभ के वंश में सब ही वल्लभ-रूप''। यह भाव परम विलक्षण है जिसका स्पष्टीकरण कदापि युक्ति का विषय नहीं "अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्" आ. श्री.।

श्री वल्लभ कुल की अलौकिकता—

इस संप्रदाय में, 'वल्लभकुल' को 'महाअलौकिक अग्नि-कुल' कहा गया है। पुष्टिमार्ग के पांच अलौकिक मूलतत्वों में-'वल्लभ-कुल की परिगणना की गई है। भूतल पर तीन ही कुल अलौकिक माने गये हैं-रघुकुल, यदुकुल और वल्लभ-कुल। 'पृथ्वी पर तीन कुल श्रेष्ठ-प्रसिद्ध

है-त्रेता में दशरथजी के घर श्रीरामचंद्रजी तिनको 'रघु-कुल' द्वापरमें श्रीकृष्ण को यदुकुल, कलियुग में श्रीआचार्यजी को 'वल्लभकुल' ये सवतें श्रेष्ठ है, केवल भक्तोद्धारार्थ ही है, (श्रीहरि. महा. बड़े शिक्षा-पत्र) । श्रीविठ्ठलेश्वर स्वयं कहते हैं कि मेरे पूज्य पिता श्रीमद् आचार्य ने अपने संपूर्ण माहात्म्य को अपने कुल में सुचिररूप से स्थापित किया है । 'स्व-वंशे स्थापिताशेषस्वमाहात्म्यं' (सर्वो-स्तो.) । इतना ही नहीं, भूतल-पर-पुष्टि-मार्गीय-सेवा-प्रकार के विस्तार एवं प्रचार के लिये ही उन्होंने अपने वश का विस्तार किया है 'भुवि-भक्ति-प्रचारैककृते स्वान्वयकृत्' (सर्वो-स्तो.) श्री विठ्ठलेश्वर एवं श्री हरिराय महाप्रभु के इन उद्धरणों से वल्लभ-कुल की प्रयोजन-विशिष्टता का पता लग जाता है भक्तोद्धार एवं सेवा मार्ग की निरंतर स्थिति ही 'वल्लभ-कुल' है । श्री विठ्ठलेश्वर कहते हैं कि वल्लभ-कुल को कृष्ण ने आत्मसात् किया है—अतएव हमारा कुल निष्कलंक है । 'अस्मत् कुलं निष्कलंकं कृष्णेनात्मसात्कृतम्' (श्री. विठ्ठ.) श्रीमत्प्रभुचरण की यह उक्ति, इस कुल की विलक्षण-अलौकिकता का स्वयं परिचय तो देती ही है लेकिन इसके प्रवक्ता के हृदय की-तत् गत-आत्म-श्रद्धा की; एक लोकोत्तर दीप्ति से भी साक्षात्कार करा रही हैं । अपने कुल की लोकोत्तर उत्तमता का यथावत् परिचय देने वाला यह सहज-आत्मोद्वार है । श्रीवल्लभ-कुल ही नहीं संपूर्ण-वल्लभ-सप्रदाय, वल्लभ-वाङ्मय, इस स्पष्ट तेजोमय आत्म-कथन से सर्वदा समुद्भासित होता रहेगा । यह उक्ति वाल्मीकि-रामायण में सीता के इस कथन से कितना साम्य रखती है 'निष्पापानां कुले जाते मयि पापं न विद्यते' । किन्तु इस तरह कहने की सामर्थ्य, पृथ्वी की पुत्री अथवा अग्नि के पुत्र जैसों में ही पायी जाती है ।

आचार्यश्री का अभिप्राय :—

साक्षात् भगवान के वदनावतार, अग्नि-रूप आचार्य से संबंध रखने वाला क्या यह वल्लभ-कुल वल्लभ-रूप हैं ? किसी कुल में स्वयं भगवान् अवतीर्ण हो तो यह कोई नियम नहीं कि उस वंश को तद्रूपता प्राप्त हो ? इस प्रश्न का उत्तर, इसी प्रकार के प्रश्न के स्पष्टीकरण प्रसंग में आचार्यश्री ने इस तरह दिया है "स्वर्ण के सुमेरु-पर्वत पर अथवा रजत के कैलास पर्वत पर लगे हुये वृक्ष, यदि स्वर्ण रूप अथवा रजत-रूप नहीं देखे गये तो इससे क्या ? हम तो, उस मलयाचल को वंदन करते हैं, जिस पर लगे हुये चंदन वृक्ष के सहवास मात्र से. निंब-वृक्ष भी चंदन रूपता को प्राप्त करता है । इसी तरह यदुवंश में उत्पन्न सभी व्यक्तियों को उस वंश में भगवान् के अवतीर्ण होने के कारण, उनके सन्निधान से, भगवद्रूपता प्राप्त है । क्योंकि, देह के निरूपण में वंशकर्ता तथा पिता, यह दो पुरुष मुख्य माने जाते हैं । देह-निर्माण में इन दोनों का प्राधान्य है । वंश की महत्ता एवं मुख्यता में वंशकर्ता का महत्व तथा मुख्यत्व प्रधान है अर्थात् वंशकर्ता की मुख्यता एवं महत्ता से, वंश का संबंध है । उसकी महत्ता से वंश का महत्व प्रसिद्ध होता है । "यथा, वंदामहे मलयमेव"- इत्यादि मलयस्य यशः, 'एवं यदोरपि तद्वंश्यानां भगवत्सन्निधानेन भगवत्सारूप्यात् ।' वंशकर्ता पिता चैव मुख्यौ देहनिरुपकौ'-'तत्र वंशकर्तु-र्मुख्यत्वात् महत्वात् च तदीयत्वख्यापनेन तस्य कीर्तिर्भवतीति'-सुबो. । आचार्यश्री के इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वल्लभ-वंश, श्रीमद् वल्लभाचार्य की देह से एवं उनके माहात्म्य से संबंधित होने के कारण, श्रीमद्वल्लभाचार्य रूपता को प्राप्त किये हुये है। अतः, वल्लभ-वंश वल्लभरुप है । इसीलिये यह कुल अग्निकुल अथवा 'अलौकिक-कुल' माना जाता है पुष्टि-संप्रदाय का यही अग्नि-कुल 'गुरु' है ।

अपने 'भाव-भावना' ग्रंथ में द्वारकेशजी, 'संप्रदायका गुरु' वल्लभ कुलही है' इस आशय को स्पष्ट करते हुये कहते है 'तातें गुरुको प्रसन्न राखिये तहां मुख्य गुरु तो श्रीआचार्यजी-तथा श्रीगुसांईजी । ता पीछे इनको कुल 'गुरु' है । 'श्रीकृष्णज्ञानदो गुरु' या पदकरिके श्रीमहाप्रभुजी गुरु हैं । और श्रीगुसांईजी को शेष-माहात्म्य तथा अशेष-माहात्म्य यह दोऊ स्थापित किये हैं । यातें गुरु हें । 'श्री विठ्ठलेशे स्वमाहात्म्यस्थापकाय नमः' । और कुल में तो अस्मत्कुलं निष्कलकं कृष्णेनात्मसात्कृतं ' या वाक्यतें कुल हे सो गुरु हे । "यथा देहे तथा देवे यथा देवे तथा गुरौ-तस्यैते कथिताः ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः"—देह-सेवा, देव सेवा तथा गुरुसेवा नित्य करनी, यह तीनों सेवा' ।

सेव्य-स्वरूपोंका विभाजन :—

श्रीविठ्ठलेश्वर के निजि, श्रीनाथजी सहित आठ सेव्य-स्वरूप थे-जिनको आपश्री ने अपने जीवन-काल में क्रमशः श्रीगिरधर आदि अपने सातों पुत्रों में पधरादिये । रहे, श्रीनाथजी-श्रीनाथजी किसके पास रहें ? यह प्रश्न एवं पसंदगी श्रीमत् प्रभुचरण ने श्रीनाथजी के ऊपर ही छोड़ दी । श्रीनाथजी ने अपनी इच्छा से ज्येष्ठ-पुत्र श्रीगिरधरजी का हाथ पकड़ा । तब से, श्रीनाथजी की सेवा इन्ही के वंशज करते आये हैं । वर्तमान तिलकायत इसी वंशके १३ वें वंशज है । श्रीनाथजी में एवं श्रीमद्-आचार्य कुलके सभ्यों में एकरुपता है-इनमें भेद-भिन्न-बुद्धि रखने वाले वैष्णव का सर्वनाश होना कहा गया है-'तत्वं विदित्वा परमं यशोदोत्संगलालितं-श्रीमदाचार्यतत्पुत्रान् हित्वाऽस्मत्स्वामिनीरपि-तत्तुल्य-बुद्धयानाशः स्यात् सर्वथेति विनिश्चयः'—श्रीहरि—महाप्रभु ।

वल्लभ-कुल और श्रीभगवान् :—

आचार्यश्री का कुल श्रीनाथजी का अपना निजीकुल है श्रीमद् आचार्य, भगवद्—वदनावतार एवम् अलौकिक अग्नि-स्वरूप हैं-अतः उनके वंशज भगवान् के ही आत्मीय-सम्बन्धी माने जाते हैं । भगवान् से साक्षात्-देह संबंध रखने के कारण यह कुल, भगवद्कुल में परिगणित होता है यही अभिप्राय श्रीहरिराय महाप्रभुकी परमकारुणिक एवम् अपार्थिव वाणी में इस तरह अभिव्यक्त हुआ है—'निजाचार्यकुलं नाथ ! स्व-कुलत्वेन मन्यसे । अतोऽस्मान् तत् समुद्भुतान् दीनान् कथमुपेक्ष्यसे ?

नाथ ! त्वदाननात्मानं वयमग्निमलौकिकम्-सम्बन्धास्तु कथं दुष्टाः स्थिता इति विचारय । भावेन न वयम् नाथ ! भवदीयास्तु यद्यपि-तथापि देहसम्बन्धात् यतस्त्वद् वदनाग्निजाः' ।। 'हे नाथ ! यदि आप अपने आत्मीय-श्रीमद्आचार्य के कुलको स्वकुल मानते हैं-तो फिर उसी कुलमें उत्पन्न हम दीन जनों के प्रति आप की उपेक्षा क्यों ? आपके श्रीमुख से उत्पन्न अलौकिक अग्नि के ही वंशज हम लोग हैं-तो फिर हम सदोष रहे ही कहां ? माना कि 'भाव' से हम आपके नहीं तथापि आपसे हमारा देह सम्बन्ध अवश्य है क्योंकि हम आपही की 'वदनाग्नि' से उत्पन्न हुये हैं' । श्रीहरिराय-महाप्रभु की यह विज्ञापना कितनी अद्‌भुत है !!! श्रीवल्लभकुल के विषय में आचार्यश्री एवम् श्रीमत्प्रभुचरण के अभिप्राय का यह एक भावनामय परमोज्ज्वल चित्रण है ।

आचार्यश्री की एवम् उनके कुल की श्रीनाथजी से आत्मीयता :—

श्रीवल्लभ सम्प्रदाय, सेवा-मार्ग कहलाता है । इसी सेवा-मार्ग की स्थापना करने के लिये एवम् स्वाचरण-द्वारा उमके क्रियात्मक स्वरूप का उपदेश देने के लिये ही साक्षात पूर्ण पुरुषोत्तम ही सेव्य और सेवक इन दोनों रूपसे प्रकट हुये 'परि स्वामी सेवक भाव प्रकट करनार्थ आप दोउ-रूप धारे लीला करत है-(४ वै. वा पृ. ६) श्रीनाथजी रूप में सेव्य तथा श्रीमद् आचार्य रूप में सेवक बने । अपनी ही सेवा, अपने से ही करने के लिये, 'आपुन सेवा करने आपु तें'-वही 'प्रथित' पुरुषोत्तम सेव्य और सेवक दोनों स्वरुप से प्रकट हुये, मानो एक ही तेजः पुंज दो किरणों में विभक्त हो गया-'रूप बेऊ एकतें भिन्न थई विस्तरे-लीलाकरे-भजन सारे-' कवि-गोपालदास । इसी हेतु से श्रीमद् आचार्यने-परब्रह्म रुप से स्वीय परिचय देते हुये भी-अपने आपको 'कृष्ण' का 'दास' भी कहा है-'इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य' इत्यादि । इसी तरह भगवान् श्रीकृष्ण परब्रह्म होते हुये भी-अपने आपको भक्त पराधीन मानते हैं 'अहं-भक्तपराधीनः, । वस्तुतः स्नेह की चरम-स्थिति में यह सभी संभव है । तदुपरांत, सेव्य एवं सेवकत्व यह दोनों विरुद्ध धर्म परब्रह्म में ही संभवित कहे गये है-'परस्परविरुद्ध ब्रह्मण्येव संभवति,-वि. मं. । परब्रह्म विरुद्ध धर्मों का समाश्रय कहा गया है । अतः आचार्य श्री 'दास' होते हुये भी 'भगवान्' है-भगवान्, भगवान् होते हुये भी दास-पराधीन हैं । सेव्य और सेवक के पारस्परिक-धर्म की चरितार्थता में ही वल्लभ-कुलका अस्तित्व है । सेव्य और सेवक का धर्म ही सेवा-मार्ग है । सेवा-मार्ग का उपदेश उसका विस्तार ही वल्लभ-कुल की इतिकर्तव्यता है ।

श्रीनाथजी वल्लभ-कुल के कुल देवता हैं :—

सम्प्रदाय की मान्यता है कि जिस दिवस आचार्यश्री का चम्पारण्य में प्राकट्य हुआ उसी दिवस युगपद् श्रीनाथजी के मुख-कमल का भी-श्रीगोवर्धन के शिखर पर, आविर्भाव हुआ । इस मान्यता

का एक कारण यह भी है कि आचार्यश्री भगवान् के साक्षात् मुखके अवतार हैं, एवम् दूसरा यह कि वही एक परब्रह्म, सेव्य और सेवकरूप में, सेवा मार्ग के क्रियात्मक स्वरूप का दिग्दर्शन करने के लिये, युगपद् आचार्यश्री एवम् श्रीनाथजी के स्वरूप से अवतीर्ण हुये । श्रीनाथजी को, आचार्यश्री ने ही स्वयं गिरिराज पर पधारकर प्रकट किये एवं उनकी वहां स्थापना करके उनकी सेवा भी उसी समय से प्रारम्भ करदी । अतः वल्लभकुल के मुख्य सेव्य-स्वरुप श्रीनाथजी हैं । श्रीनाथजी आचार्यश्री के सर्वस्व हैं-यही अभिप्राय आपश्री ने, जिस समय श्रीनाथजी को आपश्री ने प्रकट किये उस समय, वहां उपस्थित अपने सेवक समुदाय के समक्ष अभिव्यक्त किया था 'पाछे आपने सदुपांडेसों तथा मानक चंदपांडेसों और अन्योर में जो सेवक भये हते तिन सबन सों कहीं 'जो मेरो यह सर्वस्व हैं' (नि. वा पृ. २३.) चौरासी वैष्णव वार्ता प्रसंग में सर्वत्र यही उद्‌गार हैं 'और आचार्यश्री को सर्वस्व-धन श्रीनाथजी है' । इसी तरह की सुदृढ एवं सहज मान्यता दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता ग्रन्थ में भी स्थल स्थल पर उपलब्ध होती है । 'ताते श्रीकृष्णावतार सब अवतारन में हमारो सर्वस्व है, सेव्य है' । यही उद्‌गार स्वयं आचार्यश्री के श्रीभागवत पर सुबोधिनी के मंगल श्लोक में भी उपलब्ध है 'वन्दे श्रीकृष्णदेवं यः स नो भूतिहेतुः' यहां 'भूति' का अर्थ 'सर्वस्व धन' ही है । 'कृष्णावतार पतिः' कृष्णावतार हमारा 'पति' है । सन्त कवि कृष्णदास ने श्रीनाथजी को आचार्यश्री को आचार्यश्री का 'पति' कहा है । 'जब तें भेट भई श्रीवल्लभ निज पति नाम बतायो' । श्रीनाथजी वल्लभ कुलके 'कुल-देवता' 'कुल पति' हैं इसी भावना को अपने 'विद्वन्मन्डन'-ग्रन्थ के उपसंहार श्लोक में श्रीमत्प्रभु-चरण ने अभिव्यक्त की है 'एतेनाऽस्मत्कुल पति श्रीगोपीजनवल्लभः-प्रीतोऽस्त्वस्मासु तेनैव पूर्णता किमिहापरैः । श्रीहरिराय जी महाप्रभु ने श्रीनाथजी पर 'सहस्री-भावना' काव्य रचा है । इसका निबन्धन श्रीनाथजी की सेवा-भावना के तत्वानुसंधान में किया गया है । इस ग्रन्थ के उपसंहार श्लोक में श्रीनाथजी को 'कुल-देवता' कहकर नमस्कार किया गया है-'यद्यप्यनुचितं भावोहृद्‌गतोऽयं प्रकाशितः । कृतं तथापि श्रीनाथः कुलदेव प्रसीदतु' । यद्यपि, श्रीनाथजी वल्लभ-कुल के कुल-देवता, कुलपति अवश्य है- तथापि इनकी सेवा का प्रधान अधिकार श्रीविठ्ठलेश्वर के ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरधरजी को ही श्रीनाथजी की इच्छानुसार दिया गया है और सेवा का यह अधिकार आज तक उन्हीं के ज्येष्ठ वंशजो में तद्वत् स्थिर है । वल्लभ कुलके अन्य वंशज श्रीनाथजी की अमुक सेवा अथवा चरण स्पर्श इन्ही की आज्ञा लेकर कर सकते हैं, अन्यथा नहीं । उसी तरह, श्रीनाथजी के अतिरिक्त अन्य सातों स्वरूप, जो आचार्यश्री से स्वयम् सेव्य होने के कारण श्रीनाथजी की तरह ही निधिस्वरूप कहलाते हैं और जिनका विभाजन श्रीविठ्ठलेश्वर ने अपने सातों पुत्रों में कर दिया था, जिस जिस पुत्र के दाय भाग में आये उस उसके वंशज ही उस निधि स्वरूप की सेवा कर सकते हैं, अन्य नहीं ।

श्री गोपीनाथ (पद्यानि)

॥ श्री कृष्णाय नमः ॥

गोपिकावद् विप्रयोगे कालक्षेपाय सर्वथा ।
कृष्णमूर्ति प्रियांकृत्वा भजेत्तत्तत्स्व-भावतः[1] ॥१॥

सेवा के अवसर में कालक्षेप के लिये सब प्रकारसे वियोग में गोपिकाओं की तरह श्रीकृष्ण स्वरूप (श्री ठाकुरजी) को प्रिय करके उन-उन भाव से भजना चाहिये ।

भावात्म विप्रयोगेऽपि न स्थातुं शक्यते यतः ।
अतः स्वहृद्गतैः भावैः भूषयेत्त मनोमयम् ॥२॥

क्योंकि–भावात्मक विप्रयोग में भी रहना कठिन होता है, अतः अपने हृदय में उत्पन्न होने वाले विविध भावों से उन मनोमय भगवान् को भूषित करना चाहिये ।

शब्दार्थ योर्नित्यता वद् भक्तिरात्यन्तिकी हरौ ।
उदेति श्रीवल्लभेति नामोच्चारण मात्रतः ॥३॥

शब्द और अर्थ का जैसा नित्य सम्बन्ध है अर्थात्—शब्द के बोलते ही अर्थ का ज्ञान सुलभ हो जाता है, ठीक उसी तरह "श्रीवल्लभ" इस नाम के उच्चारण मात्र से ही-हरि में आत्यन्तिक भक्ति का उदय हो जाता है ।

स्वार्थ प्रकट सेवाख्य मार्गे श्रीवल्लभ प्रभोः ।
अङ्गीकृतस्य में भोज्यं स्वास्ये कुरु हुताशन ॥४॥

अपने ही लिये प्रकट इस सेवामार्ग (भक्ति मार्ग) में आचार्य चरण श्री वल्लभ प्रभु के द्वारा अंगीकृत मेरी इस अर्पित सामग्री को आप श्री (यज्ञ भोक्ता भगवान्) अंगीकार करें ।

सौन्दर्य निज हृदगतं प्रकटितं स्त्रीगूढ भावात्मकं,
पुरुपंच पुनस्तदन्तर गतं प्रावीविशत् स्वप्रिये ।
संश्लिष्टा वुभयोर्बभौ रसमयः कृष्णोहि तत्साक्षिकं रूपं,
तत्त्रितयात्मकं परमभिध्येयं सदा वल्लभम् ॥५॥

तदीय भक्तों के लिये अपने हृदयगत सौन्दर्य को जिसमें स्त्रीभाव गूढ है, और प्रकट पुंभाव है,–उसे प्रकट किया । इसी प्रकार श्री स्वामिनीजी में पुंभाव जो गूढ है, और स्त्रीभाव जो प्रकट

---

[1] भजेत्तत्तभ्दावतः ।

॥ श्री हरिः ॥

श्रीमद्वल्लभाचार्य चरण का त्रितयात्मक स्वरूप

सौन्दर्यं निजहृदगतं प्रकटितं स्त्री गूढ भावात्मकं,
पुंरूपञ्च पुनस्तदन्तरगतं प्रावीविशत् स्वप्रिये ।
संश्लिष्टावुभयोर्बभौ रसमयः कृष्णोहि तत्साक्षिकम् रूपं,
तत्त्रितयात्मकं परमभिध्येयं सदा वल्लभम् ॥

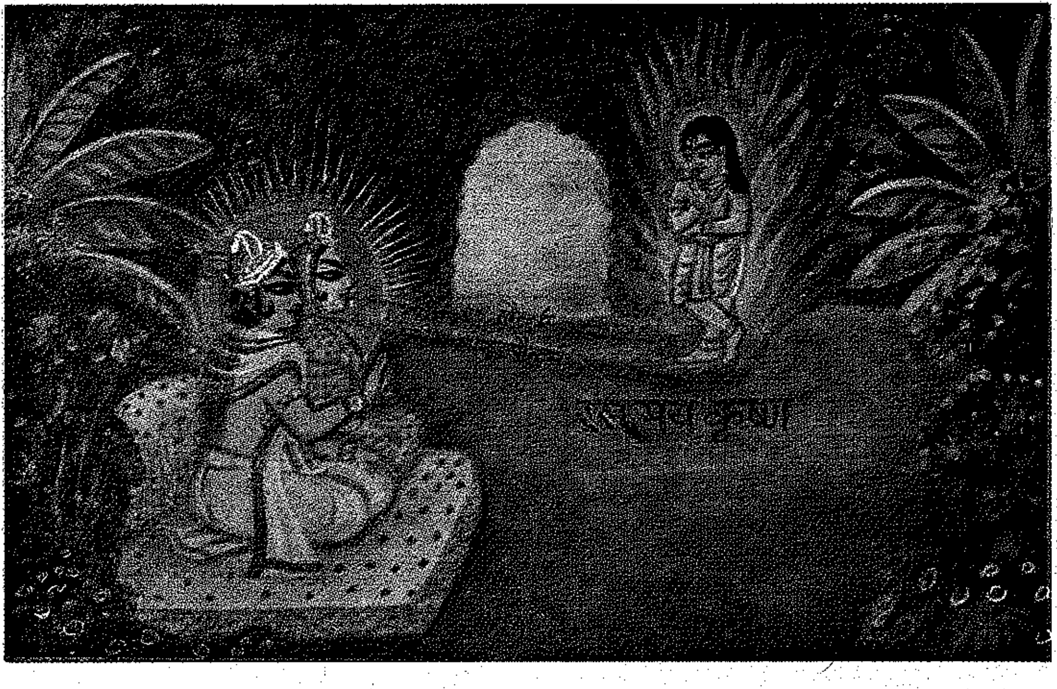

तदीय भक्तों के लिये अपने हृदयगत सौंदर्य को जिसमें स्त्रीय भाव गूढ है और प्रकट पुंभाव है, उसे प्रकट किया । इसी प्रकार श्री स्वामिनीजी में पुंभाव जो गूढ है और स्त्रीभाव जो प्रकट है उसे भी प्रकट किया ही । किन्तु प्रिया और प्रियतम में संयोग समय—दोनों भाव यदि स्थायी रूप से रहते हैं–तो रसाभास हो जाता है अतः प्रभु ने अपने स्त्रीभाव को एवं स्वामिनीजी ने अपने पुंभाव को अपने प्रिय श्री वल्लभ में प्रविष्ट कराया । इसलिये संश्लिष्ट मिले हुए उन दोनों ही रूप से श्री वल्लभाचार्य रसमय श्रीकृष्ण ही हैं । तथा प्रिया प्रीतम के उन रूपों के साक्षी रूप भी आप ही हैं एतदर्थ उस त्रितियात्मक रूप श्री वल्लभाचार्य का–सर्वतो भाव से स्मरण करना चाहिये ।

है-उसे भी प्रकट किया ही। किन्तु प्रिया और प्रियतम में संयोग समय-ये दोनों भाव यदि स्थायी रूप से रहते हैं-तो रसाभाव हो जाता है। अतः प्रभु नें अपनें स्त्रीभाव को एवं श्रीस्वामिनीजी ने अपने पुंभाव को अपने प्रिय श्रीवल्लभ में प्रविष्ट कराया। इसलिये संश्लिष्ट (मिले हुये) उन दोनों ही रूप से श्रीवल्लभाचार्य, रसमय श्रीकृष्ण ही हैं। तथा प्रिया, प्रीतम के उन रूपों के साक्षी रूप भी आप ही हैं। एतदर्थ-उस त्रितयात्मक रूप श्रीवल्लभाचार्य का-, सर्वतो भाव से स्मरण करना चाहिये।

पयः पत्रादि मात्रेण पूजितो यः पर पदम्।
प्रागेव दिशति प्रीतः स कृष्णः शरणं मम ।।६।।

जो श्रीकृष्ण केवल जल और तुलसी पत्र से पूजित होने मात्र से ही शरण ग्रहण से पूर्व भी प्रसन्न होकर परम पद का दान करते हैं—वे श्रीकृष्ण मेरे रक्षक हैं।

स्नेहात्मगन्ध तैलेन प्रियागन्धाति चारूणा।
अभ्यक्तो मङ्गलस्नानं कुरु गोकुल नायक ।। ७ ।।

श्रीस्वामिनीजी के श्री अंग से अत्यन्त सुन्दर स्नेहात्मक इस सुगन्धो तैल से (फुलेल से) अभ्यङ्ग करके हे गोकुलनाथ आप मंगल स्थान करें।

दिवात्वद्वनगमन स्मरणात्ताप भावतः।
प्रिया स्पर्शोष्ण नीरेण स्नातो भव व्रजाधिप ।। ८ ।।

प्रातः उपवन में गोचारण हेतु प्रस्थान करने के कारण, आपके स्मरण से होने वाले ताप से श्री स्वामिनीजी का अंग अत्यन्त हो संतप्त होरहा है, उस स्पर्श से उष्ण हुये इस जल से हे व्रजाधिप! आप स्नान करलें।

स्नानार्द्रता निवृत्यर्थं प्रोञ्छिताङ्गे विभोमम्।
दूरी कुरुष्व गोपीश कृपया लौकिकार्द्रताम् ।। ९ ।।

हे गोपीनाथ! स्नान के गीलेपन को मिटाने के लिए, आपके श्रीअंग को (अंगवस्त्र) से पोछने की इस सेवा का लाभ मुझे मिल ही रहा है। कृपाकर-आप मेरी लौकिक आर्द्रता (आसक्ति) को दूर करें।

प्रियाङ्ग सङ्ग सम्बन्धिगन्ध सबन्धतो भवेत्।
कदाचित्कस्य चिभ्दावोद्यतः स्नानं समाचर ।। १० ।।

आपश्री के श्रीअंग में प्रिया के अंग संग के कारण जो सुगन्ध आ रही है, उसके कारण कदाचित् किसी का भाव (अनुराग) हो जाय, इसलिये आप स्नान करलें।

भावात्मक तया कॢप्त स्वोत्तरीयात्मकासने ।
सिंहासने गोकुलेश कृपयोपविश—प्रभो ॥ ११ ॥

भावात्मक रूप से बिछाये गये श्रीस्वामिनीजी के अपने उत्तरीयात्म आसन वाले सिंहासन पर हे गोकुलेश ! कृपा करके विराजिये ।

उदेति सवितानाथ प्रिययासह जागृहि ।
अङ्गीकुरुष्व मत्सेवां स्वकीयत्वेन मां वृणु ॥ १२ ॥

हे गोकुलेश ! सूर्य उदय हो रहा है, आप श्रीप्रियाजी के साथ जागिये—और मेरी अर्थात् इस दास को सेवा को अंगीकार कर मुझे स्वकीय रूप से आपश्री स्वीकार करिये ।

प्रसीद पूजितो भक्त्या तुलस्याः प्रियगन्धया ।
निः किञ्चनाधीश नान्यत्कर्तुं शक्नोमि सर्वथा[2] ॥ १३ ॥

सुन्दर गन्ध युक्त तुलसी से इस सेवक ने भक्तिपूर्वक आपकी (राज की) सेवा की है। मैं निष्किचन हूँ, और आप हैं निष्किचनों के स्वामी । इससे अधिक करने में सर्वथा समर्थ नहीं हूँ ।

मुखाब्ज मकरन्दाप्ति लोभेन रस भावतः ।
पर्युपासित चित्तानि व्रजरत्नानि तानि मे ॥ १४ ॥

आपके मुखारविन्द के मकरन्द प्राप्ति के लोभ से, अनुराग भाव से, अर्थात् सब प्रकार से चित्त में भावनात्मक स्मरण करने वाले व्रजरत्न मेरे लिये रत्न रूप हों ।

कुसुमान्तर्पितानीश प्रसीदमयि सन्ततम् ।
कृपासंहृष्ट दृग्वृष्ट्या तदङ्गीकृति शोभिनः ॥ १५ ॥

हे ईश ! दास ने आपके लिये जो पुष्प अर्पित किये हैं-उन्हें आप कृपा युक्त प्रसन्न दृष्टि से अंगीकार करके उन पुष्पों से निरन्तर शोभित होते हुये-दास पर प्रसन्न (प्रमुदित) रहें ।

स्वरूप रस दानार्थ निष्पीड्य ब्रह्म विद्यया ।
यदुच्छिष्टं में ददासि कृतार्थोऽस्मि ततः प्रभो ॥ १६ ॥

अपने स्वरूप रस दान के लिये निचोड़ रूप ब्रह्मविद्या से जो भी अवशिष्ट है–उसे मुझे प्रदान कर रहे हैं, उसी से हे प्रभो-कृतार्थ हूँ ।

प्रिया संकेत कुञ्जीय वृक्षमूलेषु पल्लवैः ।
कृतेषु भावतल्पेषु क्रीडन्गोचारणं कुरु ॥ १७ ॥

---

[2] नान्यथा ।

श्री प्रियाजी (श्री स्वामिनीजी) के लिये जहां संकेत किया था उन्हीं कुँज के वृक्षों के नीचे पत्रों से विनिर्मित भावशय्याओं पर क्रीडा करते हुये गोचारण करें यही भावना है ।

प्रिया नखात्मकादर्शे विलोक्य वदनाम्बुजम् ।
व्रजाधीश प्रमुदितः कृपया मां विलोकय ॥ १८ ॥

श्री प्रियाजी (श्री स्वामिनीजी) के नख रूपी दर्पण (आरसी) में अपने मुखारविन्द को देखकर अति प्रसन्न होते हुये हे व्रजाधीश ! आप मेरी ओर कृपा दृष्टि करें ।

भावात्मकास्मद् हृदय पर्यङ्के शेष रूपके ।
रमस्व राधया कृष्ण शयनो रस भावतः ॥ १९ ॥

भावात्मक हमारे शेष रूप हृदय पर्यंक पर रसभाव से शयन करते हुये, हे श्रीकृष्ण ! आपश्री राधा के साथ रमण करें ।

यथा स्वान्तस्थ बालानाँ कृतार्थत्वाय सर्वदा ।
स्वोच्छिष्टं कृपया दत्तं हरे देहि तथैव में ॥ २० ॥

पूतना वध के समय–पूतना के अन्तस्थ बालकों को आपने अपने अन्दर ले लिये थे, उन अन्तस्थ बालकों को कृतार्थ करने हेतु कृपाकर अपने उच्छिष्ट का दान करते हैं । उसी तरह मेरे ऊपर भी कृपाकर–आपश्री अपने अधरामृत का दान करें ।

ताम्बूल चर्वितमिव मुख्योच्छिष्टं व्रजाधिप ।
गृहणामि कृपया दत्तमस्तु मे फलितं तथा ॥ २१ ॥

हे व्रजाधिप ! आप कृपया चर्वित ताम्बूल की तरह मुख्य उच्छिष्ट इस दास को दें—, उसे ग्रहण करता हूँ—उसी से मेरा मनोरथ सफल होगा ।

त्वाज्ञप्त स्वयागात्माऽन्न कूटस्य समर्पणात् ।
गोवर्द्धनाचलाधीश प्रसीद सततं मयि ॥ २२ ॥

हे गोवर्द्धनाधीश (प्रभु) आपकी आज्ञा से आपके यज्ञ स्वरूप अन्नकूट के समर्पण से मेरे अर्थात् इस सेवक के ऊपर आपश्री निरन्तर प्रसन्न रहें,—यही हृदयाभाव है ।

यथेन्द्र याग भङ्गस्य स्वयागस्य च कारणात् ।
नन्दादीनामनन्यत्वं कृतं मयि तथा कुरु ॥ २३ ॥

जिस प्रकार अन्नकूट रूपी अपने यज्ञ के कारण, इन्द्रयाग को भंग किया था । इसलिये—नन्द आदि की आपने अनन्यता की थी-उसी प्रकार मुझे भी कृपाकर अनन्य (सेवक) बनाइये ।

समुल्लसित कुंकुमच्छुरित पुष्पमालां यदा—
ददासि हसिता सती सखि कृपा कटाक्षैर्मुदा ।
समीक्षसि यदा वदिष्यसि मुदा तदाहं तदात्मता-
मपि हि मुक्ति तो प्यधिकतुच्छ मुक्ति ब्रुवे ॥ २४ ॥

हे सखि ! जिस समय आप हसती हुई, केसर लसित सुन्दर (सुगन्धित) पुष्पों की माला मुझे देती हो, और कृपायुक्त कटाक्ष से जब निहारती हो, तब और जब आप मुझसे वार्तालाप करोगी, उस समय मैं तदाम्ता को मुक्ति से भी अधिक तुच्छ मुक्ति कहूंगा ।

यदा सखि रति श्रुति प्रथितबन्धरीत्या रमन्त्यति
श्रमजशीकरं स्मरसि मां समीक्ष्य प्रियं ।।
तदा व्यजन वीजनार्थमपि चेन्मे पुण्यगम् ।
सुरेश सदनं न वा भवतु मोक्ष एष स्फुटम् ॥ २५ ॥

हे सखो! रसशास्त्र में श्रुत जो प्रसिद्ध बन्ध की रीति है तदनुसार रमण करती हुई अत्यन्त श्रम के कारण उत्पन्न ऐसे स्वेद बिन्दुओं को मुझमें प्रिय देखकर जब याद करतो हो—तब आपके उन श्रम बिन्दुओं को पंखे को हवा से दूर करने का यदि मेरा (पुण्य-सौभाग्य) हो तो मुझे स्वर्ग की इच्छा नहीं होती । वह तो मेरे लिये स्पष्ट रूप से मोक्ष ही है ।

न मे कस्य पीप्सा त्रिजगति वरीवर्त्यति परं—
त्विदं त्वेकं तिष्ठत्यति मम मनस्यालि सततम् ॥
चिर प्रार्थ्य यत्स्वं व्रजपति सुतस्तत्प्रियतमा ।
मुदा राधा चोभौ मत्कृत (ममकृत) निकुंजेषु रमणम् ॥ २६ ॥

हे सखि ! मुझे तीनों लोकों में किसी बात की कोई इच्छा नहीं हैं— किन्तु — मन में एक इच्छा सदा बनी रहती है, कि चिरकाल से चाहने योग्य ऐसे नन्दसुत की तुम प्रियतमा होओ अतः आप राधा और आपके प्रियतम माधव निजदास द्वारा निर्मित निकुंजों में रमण करें-बस यही मनोभिलाषा है ।

इति श्रीगोपीनाथ प्रभुचरणानां पद्यानि ।

त्रिपाठी श्री नारायणजी शास्त्री
विद्या विभागाध्यक्ष –
श्री नाथद्वारा

श्री हरि :

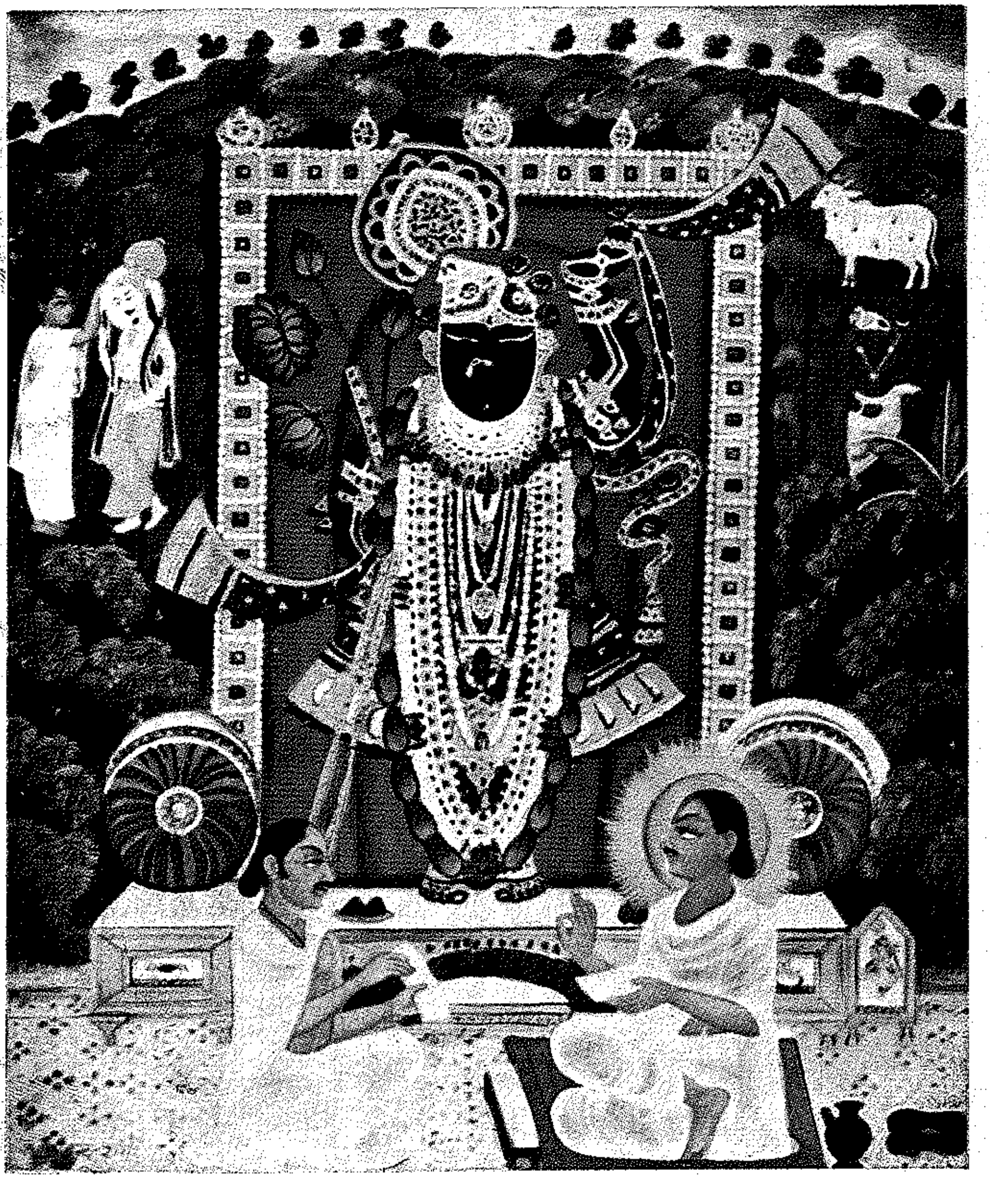

श्री नाथजी के सन्मुख महाप्रभु श्री मद्वल्लभाचार्यजी का श्री सुबोधिनीजी आलेखन

नमामि हृदये शेषे लीला क्षीराब्धि शायिनम् ।
लक्ष्मी सहस्र लीलाभिः सेव्यमानं कला निधिम् ॥

मेरे हृदय भाग शेष पर स्थित लीला रूप क्षीर सागर में जो प्रभु शयन करते हैं एवं जिन प्रभु की अनन्त लक्ष्मिएँ स्वरूप तथा अनेक प्रकार के कटाक्षादि लीलाओं से सेवा कर रही हैं, उन कलानिधि (पूर्ण पुरुषोत्तम प्रभु) को मैं नमस्कार करता हूं ।

(मंगलाचरण-दशम स्कन्ध)

श्री मद्वल्लाभाचार्य चरण

॥ श्री हरिः ॥

॥ श्री कृष्णाय नमः ॥ ॥ श्री गोपीजन वल्लभायनमः ॥
॥ श्रीमदाचार्याय नमः ॥ श्रीगुसांईजी परमदयालवे नमः ॥

रस-निकुञ्ज

ब्रह्म वैवर्त्त पुराणान्तरगत

※ गोलोक का वर्णन ※

पृथ्वीका देवताओंके साथ ब्रह्मलोकमें जाकर अपनी व्यथा-कथा सुनाना, ब्रह्माजी का उन सबके साथ कैलाशगमन, कैलाश से ब्रह्मा, शिव तथा धर्मका वैकुण्ठमें जाकर श्रीहरिकी आज्ञासे गोलोकमें जाना और वहाँ विरजातट, शतश्रृङ्गपर्वत, रासमण्डल एवं वृन्दावन आदिके प्रदेशोंका अवलोकन करना, गोलोकका विस्तृत वर्णन

नारदजी ने पूछा—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ नारायण ! किसकी प्रार्थना से और किस कारण जगदीश्वर श्रीकृष्णने इस भूतल पर अवतार लिया था ?

श्रीनारायण ने कहा—प्राचीन काल की बात है । वाराह कल्प में पृथ्वी असुरों के अधिक भार से आक्रान्त हो गयी थी; अतः शोक से अत्यन्त पीड़ित हो वह ब्रह्माजी की शरण में गयी । उसके साथ असुरों द्वारा सताये गये देवता भी थे, जिनका चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो रहा था । पृथ्वी उन देवताओं के साथ ब्रह्माजी की दुर्गम सभा में गयी । वहाँ उसने देखा, देवेश्वर ब्रह्मा ब्रह्मतेज से जाज्वल्यमान हो रहे हैं तथा बड़े-बड़े ऋषि, मुनीन्द्र व

सिद्धेन्द्रगण सानन्द उनकी सेवामें उपस्थित हैं। ब्रह्माजी 'कृष्ण' इस दो अक्षर के परब्रह्मस्वरूप मन्त्र का जप कर रहे थे। उनके नेत्र भक्तिजनित आनन्द के आँसुओं से भरे थे तथा सम्पूर्ण अङ्गों में रोमाञ्च हो आया था। मुने ! देवताओं सहित पृथ्वी ने भक्ति भाव से चतुरानन को प्रणाम किया और दैत्यों के भार आदि का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। आँसू भरे नेत्रों और पुलकित शरीर से वह ब्रह्माजी की स्तुति तथा रोदन करने लगी।

तब जगद्धाता ब्रह्मा ने उनसे पूछा—भद्रे ! तुम क्यों स्तुति करती और रोती हो ? बताओ, किस उद्देश्यसे तुम्हारा आगमन हुआ ? विश्वास करो, तुम्हारा भला होगा। कल्याणि ! सुस्थिर हो जाओ, मेरे रहते तुम्हें क्या भय है ?

इस प्रकार पृथ्वी को आश्वासन देकर ब्रह्माजी ने देवताओं से आनन्दपूर्वक पूछा—'देवगण ! किस लिये तुम्हारा मेरे समीप आगमन हुआ है ?'

ब्रह्माजी की यह बात सुनकर देवता लोग उन प्रजापति से बोले—प्रभो ! पृथ्वी दैत्यों के भार से दबी हुई है तथा हम भी उनके कारण संकट में पड़ गये हैं। दैत्यों ने हमें ग्रस लिया। आप ही जगत् के स्रष्टा हैं, शीघ्र ही हमारा उद्धार कीजिये। ब्रह्मन् ! आप ही इस पृथ्वी की गति हैं; इसे शान्ति प्रदान करें। पितामह ! यह पृथ्वी जिस भार से पीड़ित है, उसीसे हम भी दुःखी हैं, अतः आप उस भारका हरण कीजिये।'

देवताओं की बात सुनकर जगत्स्रष्टा ब्रह्मा ने पृथ्वी से पूछा— 'बेटी ! तुम भय छोड़कर मेरे पास सुखपूर्वक रहो। पद्मलोचने ! बताओ, किनका ऐसा भार आ गया है, जिसे सहन करने में तुम असमर्थ हो गयी हो। भद्रे ! मैं उस भार को दूर करूँगा। निश्चय ही तुम्हारा भला होगा। ब्रह्माजी का यह वचन सुनकर पृथ्वी के मुखपर और नेत्रों में प्रसन्नता छा गयी। वह जिस-जिस कारण से इस तरह पीड़ित थी, अपनी पीड़ा की उस कथा को कहने लगी—'तात ! सुनिये, मैं अपने मन की व्यथा बता रही हूं। विश्वासी बन्धु-बान्धव के सिवा दूसरे किसी को मैं यह बात नहीं बता सकती; क्योंकि स्त्री-जाति अबला होती है। अपने सगे बन्धु, पिता, पति और पुत्र सदा उसकी रक्षा करते हैं; परन्तु दूसरे लोग निश्चय ही उसकी निन्दा करने लगते हैं। जगत्पिता आपने मेरी सृष्टि की है; अतः आप से अपने मन की बात कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है। मैं जिनके भार से पीड़ित हूं, उनका परिचय देती हूं, सुनिये।

'जो श्रीकृष्ण भक्ति से हीन हैं और जो श्रीकृष्ण-भक्त की निन्दा करते हैं, उन महापातकी मनुष्यों का भार वहन करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूं। जो अपने धर्म के आचरण से शून्य तथा नित्य कर्म से रहित हैं, जिनकी वेदों में श्रद्धा नहीं है; उनके भार से मैं पीड़ित हूं। जो पिता, माता, गुरु, स्त्री, पुत्र तथा पोष्यवर्ग का पालन-पोषण नहीं करते हैं; उनका भार वहन करने में मैं असमर्थ हूं। पिताजी ! जो मिथ्यावादी हैं, जिनमें दया और सत्य का अभाव है तथा जो गुरुजनों और देवताओं की निन्दा करते हैं; उनके भार से मुझे बड़ी पीड़ा होती है। जो मित्रद्रोही, कृतघ्न, झूठी गवाही देने वाले, विश्वासघाती तथा धरोहर हड़पने वाले हैं; उनके भार से भी मैं पीड़ित रहती हूं। कल्याणमय सूक्तों, साम-मन्त्रों तथा एक मात्र मङ्गलकारी श्रीहरिके नामों का विक्रय करते हैं; उनके भारसे मुझे बड़ा कष्ट होता है। जो जीवघाती, गुरुद्रोहि, ग्रामपुरोहित, लोभी, मुर्दा जलानेवाले तथा ब्राह्मण होकर शूद्रान्न भोजन करने वाले हैं; उनके भारसे मुझे बड़ा कष्ट होता है। जो मूढ पूजा, यज्ञ, उपवास-व्रत और नियम को तोड़ने वाले हैं; उनके भारसे भी मुझे बड़ी पीड़ा होती है। जो पापी सदा गौ, ब्राह्मण, देवता, वैष्णव, श्रीहरि, हरिकथा और हरिभक्ति से द्वेष करते हैं; उनके भारसे मैं पीड़ित रहती हूं। विधे ! शङ्खचूड़के भारसे जिस तरह मैं पीड़ित थी, उससे भी अधिक दैत्यों के भारसे पीड़ित हूं। प्रभो ! यह सब कष्ट मैंने कह सुनाया। यही मुझ अनाथ का निवेदन है। यदि आपसे मैं सनाथ हूं तो आप मेरे कष्ट के निवारण का उपाय कीजिये।'

यों कहकर वसुधा बार-बार रोने लगी। उसका रोदन सुनकर कृपानिधान ब्रह्माने उससे कहा—'वसुधे ! तुम्हारे ऊपर जो दस्युभूत राजाओं का भार आ गया है, मैं किसी उपाय से अवश्य ही उसे हटाऊँगा।'

पृथ्वी को इस प्रकार आश्वासन देकर देवताओं सहित जगद्धाता ब्रह्मा भगवान् शंकर के निवास स्थान कैलास पर्वत पर गये। वहाँ पहुंचकर विधाता ने कैलास के रमणीय आश्रम तथा भगवान् शंकर को देखा। वे गङ्गाजी के तट पर अक्षयवट के नीचे बैठे हुए थे। उन्होंने व्याघ्रचर्म पहन रक्खा था। दक्षकन्या की हड्डियों के आभूषण से वे विभूषित थे। उन्होंने हाथों में त्रिशूल और पट्टिश धारण कर रक्खे थे। उनके पांच मुख और प्रत्येक मुख में तीन-तीन नेत्र थे। अनेकानेक सिद्धों ने उन्हें घेर रक्खा था। वे योगीन्द्र गण से सेवित थे और कौतूहल पूर्वक गन्धर्वों का संगीत सुन रहे थे। साथ ही अपनी ओर देखती हुई पार्वतीकी ओर प्रेमपूर्वक तिरछी नजर से देख लेते थे। अपने पाँच मुखों

द्वारा श्रीहरि के एकमात्र मङ्गल नाम का जप करते थे। गङ्गाजी में उत्पन्न कमलों के बीजों की मालासे जप करते समय उनके शरीर में रोमाञ्च हो आता था। इसी समय ब्रह्माजी पृथ्वी तथा नतमस्तक देव समूहों के साथ महादेवजी के सामने जा खड़े हुए। जगद्गुरु को आया देख भगवान् शंकर शीघ्र ही भक्तिभाव से उठकर खड़े हो गये। उन्होंने प्रेमपूर्वक मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। तत्पश्चात् सब देवताओं ने तथा पृथ्वी ने भी भक्ति-भावसे चन्द्रशेखर शिवको प्रणाम किया और शिव ने उन सबको आशीर्वाद दिया। प्रजापति ब्रह्माने पार्वतीनाथ शिवसे सारा वृत्तान्त कहा। वह सब सुनकर भक्तवत्सल शंकर ने तुरन्त ही मुँह नीचा कर लिया। भक्तों पर कष्ट आया सुनकर पार्वती और परमेश्वर शिव को बड़ा दुःख हुआ। तदन्तर ब्रह्मा और शिव ने देव समूहों तथा वसुधाको यत्नपूर्वक सान्त्वना देकर घर को लौटा दिया। फिर वे दोनों देवेश्वर तुरन्त धर्म के घर आये और उनके साथ विचार-विमर्श करके वे तीनों श्रीहरि के धाम को चल दिये। भगवान् के उस परम धामका नाम वैकुण्ठ है। वह जरा और मृत्यु को दूर भगाने वाला है। ब्रह्माण्ड से ऊपर उसकी स्थिति है। वह उत्तम लोक मानो वायु के आधार पर स्थित है। (वास्तव में वह चिन्मय लोक श्रीहरि से भिन्न न होने के कारण अपने आपमें ही स्थित है। उसका दूसरा कोई आधार नहीं है।) उस सनातन धाम की स्थिति ब्रह्मलोक से एक करोड़ योजन ऊपर है। दिव्य रत्नों द्वारा निर्मित विचित्र वैकुण्ठ धाम का वर्णन कर पाना कवियों के लिये असम्भव है। पद्मराग और नीलमणि के बने हुए राजमार्ग उस धाम की शोभा बढाते हैं। मनके समान तीव्र गति से जानेवाले वे ब्रह्मा, शिव और धर्म सब-के-सब उस मनोहर वैकुण्ठ धाम में जा पहुंचे। श्रीहरिके अन्तःपुर में पहुंच कर उन सबने वहाँ उनके दर्शन किये। वे श्रीहरि दिव्य रत्नमय अलङ्कारों से विभूषित हो रत्न सिंहासन पर बैठे थे। रत्नों के बाजूबन्द, कंगन और नूपुर उनके हाथ-पैरों की शोभा बढ़ाते थे। दिव्य रत्नों के बने हुए दो कुण्डल उनके दोनों गालों पर झलमला रहे थे। उन्होंने पीताम्बर पहन रक्खा था तथा आजानुलम्बिनी वनमाला उनके अग्र भाग को विभूषित कर रही थी। सरस्वती के प्राण वल्लभ श्रीहरि शांत भाव से बैठे थे। लक्ष्मीजी उनके चरणारविन्दों की सेवा कर रही थीं। करोड़ों कन्दर्पों की लावण्य लीला से वे प्रकाशित हो रहे थे। उनके चार भुजाएँ थीं और मुख पर मन्द मुस्कान की छटा छा रही थी। सुनन्द, नन्द और कुमुद आदि पार्षद उनकी सेवा में जुटे थे। उनका सम्पूर्ण अङ्ग चन्दन से चर्चित था तथा उनका मस्तक रत्नमय मुकुट से जगमगा रहा था। वे परमानन्द स्वरूप भगवान् भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये व्याकुल दिखायी देते थे। मुने! ब्रह्मा आदि देवश्वरों ने भक्ति भाव से उनके चरणों में प्रणाम किया और श्रद्धापूर्वक मस्तक झुकाकर बड़ी भक्ति के साथ उनकी स्तुति की। उस समय वे परमानन्द के भार से दबे हुए थे। उनके अङ्गों में रोमांच हो आया था।

ब्रह्माजी बोले—मैं शान्त, सर्वेश्वर तथा अच्युत उन कमलाकान्त को प्रमाम करता हूं, जिनकी हम तीनों विभिन्न कलाएँ हैं तथा समस्त देवता जिनकी कला को भी अंशकला से उत्पन्न हुए हैं। निरञ्जन! मनु, मुनीन्द्र, मानव तथा चराचर प्राणी आपसे ही आपके कलाकी अंशकला द्वारा प्रकट हुए है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—आप अविनाशी तथा अधिकारी है। योगीजन आप में रमण करते हैं। आप अव्यक्त ईश्वर हैं। आपका आदि नहीं है; परन्तु आप सबके आदि हैं। आपका स्वरूप आनन्दमय है। आप सर्वरूप हैं। अणिमा आदि सिद्धियों के कारण तथा सबके कारण हैं। सिद्धि के ज्ञाता, दाता और सिद्धिरूप हैं। आपको स्तुति कराने में कौन समर्थ है?

धर्म बोले—जिस वस्तु का वेद में निरूपण किया गया है, उसी का विद्वान् लोग वर्णन कर सकते हैं। जिनको वेद में ही अनिवर्चनीय कहा गया है, उनके स्वरूप का निरूपण कौन कर सकता है? जिसके लिये जिस वस्तु की सम्भावना की जाती है, वह गुणरूप होती है। वही उसका स्तवन है। जो निरजन (निर्मल) तथा गुणों से पृथक्—निर्गुण हैं; उन परमात्मा की मैं क्या स्तुति करूँ?

महामुने! ब्रह्मा आदिका किया हुआ यह स्तोत्र जो छः श्लोकों में वर्णित है, पढ़कर मनुष्य दुर्गम संकट से मुक्त होता और मनोवाञ्छित फल को पाता है।

❀ ब्रह्मोवाच ❀

नमामि कमलाकान्तं शान्तं सर्वेशमच्युतम्। वयं यस्य कलाभेदाः कलांशकलया सुराः॥
मनवश्च मुनीन्द्राश्च मानुषाश्च चराचराः। कलाकलांशकलया भूतास्त्वत्तो निरञ्जन॥

❀ शंकर उचाव ❀

त्वामक्षरमक्षरं वा राममव्यक्तमीश्वरम्। अनादिमादिमानन्दरूपिणं सर्वरूपिणम्॥
अणिमादिकसिद्धीनां कारणं सर्वकारणम्। सिद्धिशं सिद्धिशं सिद्धिरूपं कः स्तोतुमीश्वरः॥

❀ धर्म उचाव ❀

वेदे निरूपितं वस्तु वर्णनीयं विचक्षणैः । वेदेऽनिर्वचनीयं यत्तन्निर्वक्तुं च कः क्षमः ।।
यस्य सम्भावनीयं यद् गुणरूपं निरंजनम् । तदतिरिक्तं स्तवनं किमहं स्तौमि निर्गुणम् ।।
ब्रह्मादीनामिदं स्तोत्रं षट्श्लोकोक्तं महामुने । पठित्वा मुच्यते दुर्गाद्वाञ्छितं च लभेनरः ।।
(श्री कृष्ण जन्म खण्ड ४।६२–६८)

देवताओं की स्तुति सुनकर साक्षात् श्रीहरिने उनसे कहा–तुम सब लोग गोलोक को जाओ । पीछे से मैं भी लक्ष्मी के साथ आऊँगा । श्वेत द्वीप निवासी वे नर और नारायण मुनि तथा सरस्वती देवी–ये गोलोक में जायँगे । अनन्त शेषनाग, मेरी माया, कार्तिकेय, गणेश तथा वेदमाता सावित्री ये सब पीछे से निश्चल ही वहां जायँगे । वहाँ मैं गोपियों तथा राधा के साथ द्विभुज श्रीकृष्णरूप से निवास करता हूँ । यहां सुनन्द आदि पार्षदों तथा लक्ष्मी के साथ रहता हूँ । नारायण, श्रीकृष्ण तथा श्वेतद्वीप निवासी विष्णु मैं ही हूँ । ब्रह्मा आदि अन्य सम्पूर्ण देवता मेरी ही कलाएँ हैं । देव, असुर और मनुष्य आदि प्राणी मेरी कलाकी कलाकी अंशकलासे उत्पन्न हुए हैं । तुम लोग गोलोक को जाओ । वहाँ तुम्हारे अभीष्ट कार्यकी सिद्धि होगी । फिर हम लोग भी सबकी इष्टसिद्धि के लिये वहाँ आ जायँगे ।

इतना कह कर श्रीहरि उस सभामें चुप हो गये । तब उन सब देवताओं ने उन्हें प्रणाम किया और वहाँ से अद्भुत गोलोक की यात्रा की । वह उत्कृष्ट एवं विचित्र परम धाम जरा एवं मृत्यु को हर लेने वाला है । वह अगम्य लोक बैकुण्ठ से पचास करोड़ योजन ऊपर है । और भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा से निर्मित है । उसका कोई बाह्य आधार नहीं है । श्रीकृष्ण ही वायु रूप से उसे धारण करते हैं । वे ब्रह्मा आदि देवता उस अनिवर्चनीय लोक की ओर जाने के लिये उन्मुख हो चल दिये । उन सबकी गति मन के समान तीव्र थी । अतः वे सब-के-सब विरजा के तट पर जा पहुँचे । सरिता के तट का दर्शन करके उन देवताओं को बड़ा आश्चर्य हुआ । विरजा नदी का वह तट-प्रान्त शुद्ध स्फटिकमणि के समान उज्जवल, अत्यन्त विस्तृत और मनोहर था, मोती-माणिक्य तथा उत्कृष्ट मणिरत्नों की खानों से सुशोभित था । काले, उज्जवल, हरे तथा लाल रत्नों की श्रेणियों से उद्भासित होता था । उस तट पर कहीं तो मूँगों के अकुर प्रकट हुए हैं, जो अत्यन्त मनोहर दिखाई देते हैं । कहीं बहुमूल्य उत्तम रत्नों की अनेक खानें उसकी शोभा बढ़ाती हैं । कहीं श्रेष्ठ निधियों के आकर उपलब्ध होते हैं, जिनसे वहाँ की छटा आश्चर्य में डाल देती है । यह दृश्य विधाता के भी दृष्टि-पथ में आने वाला नहीं है । मुने ! विरजा के किनारे कहीं तो पद्मराग और इन्द्रनील मणियों की खानें हैं, कहीं मरकतमणि की खानें श्रेणी बद्ध दिखायी देती हैं, कहीं स्यमन्तकमणि की तथा कहीं स्वर्ण मुद्राओं की खानें शोभा पाती हैं । कहीं बहुमूल्य पीले रंग की मणि श्रेणियों के आकर विरजातट को अलंकृत करते हैं । कहीं रत्नों के, कहीं कौस्तुभमणि के और कहीं अनिवर्चनीय मणियों के उत्तम आकार हैं । विरजा के उस तट-प्रान्त में कहीं-कहीं उत्तम रमणीय विहार स्थल उपलब्ध होते हैं ।

उस परम आश्चर्यजनक तट को देखकर वे देवेश्वर नदी के उस पार गये । वहाँ जाने पर उन्हें पर्वतों में श्रेष्ठ शतशृंग दिखायी दिया, जो अपनी शोभा से मन को मोहे लेता था । दिव्य पारिजात वृक्षों की वनमालाएँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं । वह पर्वत कल्प वृक्षों तथा कामधेनुओं द्वारा सब ओर से घिरा था । उसकी ऊँचाई एक करोड़ योजन थी और लम्बाई दस करोड़ योजन । उसके ऊपर की चौरस भूमि पचास करोड़ योजन विस्तृत थी । वह पर्वत चहारदिवारी की भाँति गोलोक के चारों ओर फैला हुवा था । उसीके शिखर पर उत्तम गोलाकार रास मण्डल है, जिसका विस्तार दस योजन है । वह रासमण्डल सुगन्धित पुष्पों से भरे हुए सहस्रों उद्यानों से सुशोभित है और उन उद्यानों में भ्रमर-समूह छाये रहते हैं । सुन्दर रत्नों और द्रव्यों से सम्पन्न अगणित क्रीड़ा भवन तथा कोटि सहस्र रत्नमण्डप उसकी शोभा बढ़ाते हैं । रत्नमयी सीढ़ियों, श्रेष्ठ रत्ननिर्मित कलशों तथा इन्द्र नीलमणि के शोभाशाली खम्भों से उस मण्डल की शोभा और बढ़ गयी है । उन खम्भो में सिन्दूर के समान रंगवाली मणियाँ सब ओर जड़ी गयी हैं । तथा बीच-बीच में लगे हुए मनोहर इन्द्रनील नामक रत्नों से वे मण्डित हैं । रत्नमय परकोटों में जटित भाँति-भाँति के मणिरत्न उस रास मण्डल की श्रीवृद्धि करते हैं । उसमें चारों दिशाओं की ओर चार दरवाजे हैं, जिनमें सुन्दर किवाड़ लगे हुए हैं । उन दरवाजों पर रस्सियों में गुँथे हुए आम्रपल्लव बन्दनवार के रूप में शोभा दे रहे हैं । वहाँ दोनों ओर झुंड-के-झुंड केले के खम्भे आरोपित हुए हैं । श्वेतधान्य, पल्लव समूह, फल तथा दूर्वादल आदि मङ्गल द्रव्य उस मण्डल की शोभा बढ़ाते हैं । चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम-युक्त जलका वहाँ सब ओर छिड़काव हुआ है ।

मुने ! रत्नमय अलंकारों तथा रत्नों की मालाओं से अलंकृत करोड़ों गोपकिशोरियों के समूह से रासमण्डल घिरा हुआ है । वे गोप कुमारियाँ रत्नों के बने हुए कंगन, बाजूबंद

और नूपुरों से विभूषित हैं। रत्न निर्मित युगल कुण्डल उनके गण्डस्थल की शोभा बढाते हैं। उनके हाथों की अंगुलियाँ रत्नों की बनी हुई अँगूठियों से विभूषित हो बड़ी सुन्दर दिखायी देती हैं। रत्नमय पाशकसमूहों (बिछुओं) से उनके पैरों की अंगुलियाँ उद्भासित होती हैं। वे गोपकिशोरियाँ रत्नमय आभूषणों से विभूषित हैं। उनके मस्तक उत्तम रत्नमय मुकुटों से जगमगा रहे हैं। नासिका के मध्य भाग में गजमुक्ता की बुलाकें बडी शोभा दे रही हैं। उनके भाल देश में सिन्दूर की बेंदी लगी हुई है। साथ ही आभूषण पहनने के स्थानों में दिव्य आभूषण धारण करने के कारण उनकी दिव्य प्रभा और भी उद्दीप्त हो उठती है। उनकी अङ्गकान्ति मनोहर चम्पाके समान जान पड़ती है। वे सब-की-सब चन्दन-द्रव से चर्चित है। उनके अङ्गो पर पीले रंग की रेशमी साड़ी शोभा देती है। बिम्ब फल के समान अरुण अधर उनकी मनोहरता बढा रहे हैं। शरत्काल की पूर्णिमा के चन्द्रमाओं की चटकीली चाँदनी जैसी प्रभा से सेवित मुख उनके उद्दीप्त सौन्दर्य को और भी उज्जवल बना रहे हैं। उनके नेत्र शरत्काल के प्रफुल्ल कमलों की शोभा को छीने लेते हैं। उनमें कस्तूरी-पत्रिका से युक्त काजलकी रेखा शोभा वृद्धि कर रही है। उनके केशपाश प्रफुल्लित मालती पुष्प की मालाओं से सुशोभित हैं, जिन पर मधु-लोलुप भ्रमरों के समूह मण्डरा रहे हैं। उनकी मनोहर मन्दगति गजराज के गर्व का गंजन करने वाली है। बाँकी भौंहों के साथ मन्द मुस्कान की शोभा से वे मन को मोह लेती हैं। पके हुए अनार के दानों की भाँति चमकीली दन्तपंक्ति उनके मुख की शोभा को बढा देती है। पक्षिराज गरुड़ की चोंच की शोभा से सम्पन्न उन्नत नासिका से वे सब-की-सब विभूषित हैं। गजराज के युगल गण्ड स्थल की भाँति उन्नत उरोजों के भार से झुकी-सी जान पड़ती है। उनका हृदय श्रीकृष्णविषयक अनुराग के देवता कन्दर्प के बाण प्रहार से जर्जर हुआ रहता है। वे दर्पणों में पूर्ण चन्द्रमा के समान अपसे मनोहर मुख के सौन्दर्य को देखने के लिये उत्सुक रहती हैं। श्रीराधिका के चरणारविन्दों की सेवा में निरन्तर सलग्न रहने का सौभाग्य सुलभ हो, यही उनका मनोरथ है। ऐसी गोप किशोरियों से भरा-पूरा वह रास मण्डल श्रीराधिका की आज्ञा से सुन्दरियों के समुदाय द्वारा रक्षित है—असंख्य सुन्दिरियाँ उसकी रक्षा में नियुक्त रहती हैं।

श्वेत, रक्त एवं लोहित वर्णवाले कमलों से व्याप्त एवं सुशोभित लाखों क्रीड़ा-सरोवर रास मण्डल को सब ओर से घेरे हुए हैं, जिनमें असख्य भ्रमरों के समुदाय गुँजते रहते हैं। सहस्रों पुष्पित उद्यान तथा फूलों की शय्याओं से संयुक्त असंख्य कुञ्ज-कुटीर रास मण्डली की सीमामें यत्र-तत्र शोभा पा रहे हैं। उन कुटीरों में भोगोपयोगी द्रव्य, कर्पूर, ताम्बूल, वस्त्र,, रत्नमय प्रदीप, श्वैत चँवर, दर्पण तथा विचित्र पुष्पमालाएँ सब ओर सजाकर रक्खी गयी हैं। इन समस्त उपकरणों से रासमण्डल की शोभा बहुत बढ गयी है। उस रासमण्डल को देखकर जब वे पर्वत की सीमासे बाहर हुए तो उन्हें विलक्षण, रमणीय और सुन्दर वृन्दावन के दर्शन हुए। वृन्दावन राधा-माधव को बहुत प्रिय है। वह उन्हीं दोनों का क्रीडास्थल है। उसमें कल्प वृक्षों के समूह शोभा पाते हैं। विरजा-तीरके नीरसे भीगे हुए मन्द समीर उस वन के वृक्षों को शनैः-शनैः आन्दोलित करते रहते हैं। कस्तूरी-युक्त पल्लवों का स्पर्श करके चलने वाली मन्द वायुका सम्पर्क पाकर वह सारा वन सुगन्धित बना रहता है। वहाँ के वृक्षों में नये नये पल्लव निकले रहते हैं। वहाँ सर्वत्र कोकिलों की काकली सुनायी देती है। वह वनप्रान्त कहीं तो केलिकदम्बों के समूह से कमनीय और कहीं मन्दार, चन्दन, चम्पा तथा अन्यान्य सुगन्धित पुष्पों की सुगंध से सुवासित देखा जाता है। आम, नारंगी, कटहल, ताड़, नारियल, जामुन, बेर, खजूर, सुपारी, आमड़ा, नीबू, केले, बेल और अनार आदि मनोहर वृक्ष-समूहों तथा सुपक्व फलों से लदे हुए दूसरे दूसरे वृक्षों द्वारा उस वृन्दावन की अपूर्व शोभा हो रही है। प्रियाल, शाल, पीपल, नीम, सेमल, इमली तथा अन्य वृक्षों के शोभाशाली समुदाय उस वन में सब ओर सदा भरे रहते हैं। कल्पवृक्षों के समूह उस वन की शोभा बढ़ाते हैं। मल्लिका (मोतिया या बेला), मालती, कुन्द, केतकी, माधवी लता और जुही इत्यादि लताओं के समूह वहाँ सब ओर फैले हैं। मुने! वहाँ रत्नमय दीपों से प्रकाशित तथा धूप की गंध से सुवासित असख्य कुंज-कुटीर उस वन में शोभा पाते हैं। उनके भीतर शृङ्गारोपयोगी द्रव्य संगृहित हैं। सुगंधित वायु उन्हें सुवासित करती रहती है। वहाँ चंदन का छिड़काव हुआ है। उन कुटीरों के भीतर फूलों की शय्याएँ बिछी हैं, जो पुष्पमालाओं की जाली से सुशोभित हैं। मधु-लोलुप मधुपों के मधुर गुंजारवसे वृंदावन मुखरित रहता है। रत्नमय अलंकारों की शोभा से सम्पन्न गोपाङ्गनाओं के समूह से वह वन आवेष्टित है। करोड़ों गोपियाँ श्रीराधा की आज्ञा से उसकी रक्षा करती हैं। उस वन के भीतर सुन्दर-सुन्दर और मनोहर बत्तीस कानन हैं। वे सभी उत्तम एवं निर्जन स्थान हैं। मुने! वृंदावन सुपक्व, मधुर एवं स्वादिष्ट फलों से सम्पन्न तथा गोष्ठों और गौओं के समूहों से परिपूर्ण है। वहाँ सहस्रों पुष्पोद्यान सदा खिले और सुगंध से भरे रहते हैं, उनमें मधुलोभी भ्रमरों के समुदाय मधुर गुंजन करते फिरते हैं।

श्रीकृष्ण के तुल्य रूपवाले तथा उत्तम रत्न हार से विभूषित पचास करोड़ गोपों के विविध विलासों से विलसित रमणीय वृंदावन को देखते हुए वे देवेश्वरगण गोलोकधाम

में जा पहुँचे, जो चारों ओर से गोलाकार तथा कोटि योजन विस्तृत है। वह सब ओर से रत्नमय परकोटों द्वारा घिरा हुआ है। मुने! उसमें चार दरवाजे हैं। उन दरवाजों पर द्वारपाल के रूप में विराजमान गोप-समूह उनकी रक्षा करते हैं। श्रीकृष्णकी सेवामें लगे रहने वाले गोपों के आश्रम भी रत्नों से जटित तथा नाना प्रकार के भोगों से सम्पन्न हैं। उन आश्रमों की संख्या भी पचास करोड़ है। इनके सिवा भक्त गोप-समूहों के सौ करोड़ आश्रम है, जिनका निर्माण पूर्वोक्त आश्रमों से भी अधिक सुंदर है। वे सब के सब उत्तम रत्नों से गठित हैं। उनसे भी अधिक विलक्षण तथा बहुमूल्य रत्नों द्वारा रचित आश्रम पार्षदों के हैं, जिनकी संख्या दस करोड़ है। पार्षदों में भी जो प्रमुख लोग हैं, वे श्रीकृष्ण के समान रूप धारण करके रहते हैं। उनके लिये उत्तम रत्नों से निर्मित एक करोड़ आश्रम हैं। राधिका जी में विशुद्ध भक्ति रखने वाली गोपाङ्गनाओं के बत्तीस करोड़ दिव्य एवं श्रेष्ठ आश्रम हैं, जिनकी रचना उत्तम श्रेणी के रत्नों द्वारा हुई है। उनकी जो किंकरियाँ हैं, उनके लिये भी मणिरत्न आदि के द्वारा बड़े सुंदर और मनोहर भवन बनाये गये हैं, जिनकी संख्या दस करोड़ है। ये सभी दिव्य आश्रम और भवन वृंदावन की शोभा का विस्तार करते हैं।

सैकड़ों जन्मों की तपस्याओं से पवित्र हुए जो भक्तजन भारत वर्ष की भूमि पर श्रीहरि की भक्ति में तत्पर रहते हैं, वे कर्मों के शांत कर देने वाले हैं—उनके कर्मबंधन नष्ट हो जाते हैं। मुने! जो सोते, जागते हर समय अपने मन को श्रीहरि ही ध्यान में लगाये रहते हैं। तथा दिन-रात 'राधा-कृष्ण', 'श्रीकृष्ण' इत्यादि नामों को जप किया करते हैं; उन श्रीकृष्ण-भक्तों के लिये भी वहाँ गोलोक में बड़े मनोहर निवास स्थान बने हुए हैं। उत्तम मणि रत्नों द्वारा निर्मित वे भव्य भवन भाँति-भाँति के भोगों से सम्पन्न हैं। पुष्प-शय्या, पुष्प माला तथा श्वेत चामरसे सुशोभित हैं। रत्नमय दर्पणों की शोभा से पूर्ण हैं। उनमें इन्द्रनील मणियाँ जड़ी गयी हैं। उन भवनों के शिखरों पर बहुमूल्य रत्नमय कलश समूह शोभा देते हैं। उनकी दीवारों पर महीन वस्त्रों के आवरण पड़े हुए हैं। ऐसे भवनों की संख्या भी सौ करोड़ है।

उस अद्भुत धाम का दर्शन करके वे देवता बड़ी प्रसन्नता के साथ जब कुछ दूर और आगे गये, तब वहाँ उन्हें रमणीय अक्षयवट दिखायी दिया। मुने! उस वृक्ष का विस्तार पाँच योजन और ऊँचाई दस योजन है। उसमें सहस्त्रों तने और असंख्य शाखाएँ शोभा पाती हैं। वह वृक्ष लाल लाल पके फलों से व्याप्त है। रत्नमयी वेदिकाएँ उसकी शोभा बढ़ाती हैं। उस वृक्ष के नीचे बहुत से गोप शिशु दृष्टिगोचर हुए, जिनका रूप श्रीकृष्ण के ही समान था। वे सब के सब पीत वस्त्र धारी और मनोहर थे तथा खेल कूद में लगे हुए थे। उनके सारे अङ्ग चंदन से चर्चित थे और वे सभी रत्नमय आभूषणों से विभूषित थे। देवेश्वरों ने वहाँ उन सबके दर्शन किये। वे सभी श्रीहरि के श्रेष्ठ पार्षद थे।

मुने! वहाँ से थोड़ी दूर पर उन्हें एक मनोहर राजमार्ग दिखायी दिया, जिसके दोनों पार्श्व में लाल मणियों से अद्भुत रचना की गयी थी। इन्द्रनील, पद्मराग, हीरे और सुवर्ण की बनी हुई वेदियाँ उस राजमार्ग के उभय पार्श्व को सुशोभित कर रही थीं। दोनों ओर रत्नमय विश्राम-मण्डप शोभा पाते थे। उस मार्ग पर चंदन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम के द्रव्य से मिश्रित जल का छिड़काव किया गया था। पल्लव, ताजा, फल, पुष्प, दुर्वा तथा सूक्ष्म सूत्र में गुँथे हुए चंदन-पल्लवों की बंदनवार से युक्त सहस्त्रों कदली-स्तम्भों के समूह उस राजमार्ग के तट प्रांत की शोभा बढ़ाते थे। उन सब पर कुंकुम-केसर छिड़के गये थे। जगह-जगह उत्तम रत्नों के बने हुए मङ्गलघट स्थापित थे, उनमें फल और शाखाओं सहित पल्लव शोभा पाते थे। सिंदूर, कुंकुम, गंध और चंदन से उनकी अर्चना की गयी थी। पुष्पमालाओं से विभूषित हुए वे मङ्गलकलश उभयपार्श्व में उस राजमार्ग की शोभा वृद्धि करते थे। क्रीडा में तत्पर हुई झुंड-की झुंड गोपिकाएँ इस मार्ग को घेरे खड़ी थीं।

उपर्युक्त मनोरम प्रदेश चंदन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम के द्रव से चर्चित थे। बहुमूल्य रत्नों से वहाँ मणिमय सोपानों का निर्माण किया गया था। कुल मिलाकर सोलह द्वार थे, जो अग्निशुद्ध रमणीय चिन्मय वस्त्रों, श्वेत चामरों, दर्पणों, रत्नमयी शय्याओं तथा विचित्र पुष्पमालाओं से शोभायमान थे। बहुत से द्वार पाल उन प्रदेशों की रक्षा करते थे। उनके चारों ओर खाईयाँ थीं और लाल रंग के परकोटों से वे घिरे हुए थे। इन मनोरम प्रदेशों का दर्शन करके देवता वहाँ से आगे बढ़ने को उद्यत हुए। वे जल्दी-जल्दी कुछ दूर तक गये। तब वहां उन्हें रासेश्वरी श्रीराधा का आश्रम दिखायी दिया। नारद! देवताओं की आदिदेवी गोपी, शिरोमणि श्रीकृष्ण प्राणाधिका राधिका का वह निवास स्थान बड़ा ही सुन्दर बनाया गया था। रमणीय द्रव्यों के कारण उसकी मनोहरता बहुत बढ़ गयी थी। वहाँ का सब कुछ सबके लिये अनिवर्चनीय था। बड़े से बड़े विद्वान् भी उस स्थान का सम्यक् वर्णन नहीं कर सके हैं। वह मनोहर आश्रम गोलाकार बना है तथा उसका विस्तार बारह कोस का हैं। उसमें सौ मन्दिर बने हुए हैं। वह

अद्भुत आश्रम दिव्य रत्नों के तेज से जगमगाता रहता है । बहुमूल्य रत्नों के सार समूह से उसकी रचना हुई है । वह दुर्लङ्घ्य एवं गहरी खाईयों से सुशोभित है । कल्प वृक्ष उस आश्रम को सब ओर से घेरे हुए हैं । उसके भीतर सैकड़ों पुष्पोद्यान शोभा पाते हैं । बहुमूल्य रत्नों द्वारा निर्मित परकोटों से वह आश्रम मण्डल घिरा हुआ है । उसमें सात दरवाजे हैं, जो सभी उत्तम रत्नों की बनी हुई वेदिकाओं से युक्त हैं । उन दरवाजों में विचित्र रत्न जड़े गये हैं और नाना प्रकार के चित्र बने हैं । क्रमशः बने हुए इन सातों द्वारों को पार करने पर वह आश्रम सोलह द्वारों से युक्त है । देवताओं ने देखा–उसकी चारदीवारी सहस्त्र धनुष ऊँची है । उत्तम रत्नों के बने हुए अत्यन्त मनोहर छोटे छोटे कलशों के समुदाय अपने तेज से उस परकोटे को उद्भासित कर रहे हैं । उसे देखकर देवताओं को बड़ा विस्मय हुआ । वे उसकी परिक्रमा करते हुए बड़ी प्रसन्नता के साथ कुछ दूर और आगे गये । सामने चलते हुए इतने आगे बढ़ गये कि वह आश्रम उनसे पीछे हो गया । मुने ! तदन्तर उन्होंने गोपों और गोपिकाओं के उत्तम आश्रम देखे, जिनमें बहुमूल्य रत्न जड़े हुए हैं । उनकी संख्या सौ करोड़ है । इस प्रकार सब ओर गोपों और गोपिकाओं के सम्पूर्ण आश्रम को तथा अन्य नये नये रमणीय स्थलों को देखते-देखते उन देवेश्वरों ने समस्त गोलोक का निरीक्षण किया । वह सब देखकर उनके शरीर में रोमांच हो आया । तदन्तर फिर वही गोलाकार रम्य वृंदावन, शतशृंग पर्वत तथा उसके बाहर विरजा नदी दिखायी दी । विरजा नदी के बाद देवताओं ने सब कुछ सूना ही देखा । वह वह अद्भुत गोलोक उत्तम रत्नों से निर्मित तथा वायु के आधार पर स्थित था । श्रीराधिका की आज्ञा का अनुसरण करते हुए परमेश्वर श्रीकृष्ण की इच्छा से उसका निर्माण हुआ है । वह केवल मङ्गल का धाम है और सहस्त्रों सरोवरों से सुशोभित है ।

मुने ! देवताओं ने वहाँ अत्यन्त मनोहर नृत्य तथा सुन्दर ताल से युक्त रमणीय संगीत देखा, जहाँ श्रीराधा-कृष्ण के गुणों का अनुवाद हो रहा था । उस अमृतोपम गीता को सुनते ही वे देवता मूर्छित हो गये । फिर क्षणभर में सचेत हो मन ही मन श्रीकृष्ण का चिंतन करते हुए उन्होंने स्थान स्थान पर परम आश्चर्य मनोहर दृश्य देखे । नाना प्रकार के वेश धारण किये समस्त गोपिकाएँ उनके दृष्टि पथ में आयीं । कोई अपने हाथों से मृदंग बजा रही थीं तो किन्हीं के हाथों से वीणा-वादन हो रहा था । किन्हीं के हाथों में चँवर थे तो किन्हीं के करताल । किन्हीं के हाथों में यन्त्रवाद्य शोभा पा रहे थे । कितनी ही रत्न-मय नूपुरों की झनकार फैला रही थी । बहुतों की रत्नमयी कांची बज रही थी, जिसमें क्षुद्रघंटिकाओं के शब्द गूंज रहे थे । किन्हीं के माथे पर जल से भरे घड़े

थे, भाँति-भाँति के नृत्य के प्रदर्शन का मनोरथ लिये खड़ी थीं । नारद ! कुछ दूर और आगे जाने पर उन्होंने बहुत से आश्रम देखे, जो राधिका की प्रधान सखियों के आवास-स्थान थे । वे रूप, गुण, वेष, यौवन, सौभाग्य और अवस्था में एक दूसरी के सामन थीं । श्रीराधाकी समवयस्का सखियाँ तैंतीस गोपियाँ हैं, जिनकी वेषभूषा अनिवर्चनीय है । उनके नाम सुनो । सुशीला, शशिकला, यमुना, माधवी, रति, कदम्बमाला, कुन्ती, जाह्नवी, स्वयंप्रभा, चन्द्रमुखी, पद्ममुखी, सावित्री, सुधामुखी, शुभा, पद्मा, पारिजाता, गौरी, सर्वमङ्गला, कालिका, कमला, दुर्गा, भारती, सरस्वती, गङ्गा, अम्बिका, मधुमति, चम्पा, अपर्णा, सुन्दरी, कृष्णप्रिया, सती, नन्दिनी और नन्दना–ये सब की सब समान रूपवाली हैं । इनके शुभ्र आश्रम रत्नों और धातुओं से चित्रित हैं । नाना प्रकार के चित्रों से चित्रित होने के कारण वे अत्यन्त मनोहर प्रतीत होते हैं । उनके शिखर बहुमूल्य रत्नमय कलश समूहों से जाज्वल्यमान है । उत्तम रत्नों द्वारा उनकी रचना हुई है । गोलोक ब्रह्माण्ड से बाहर और ऊपर है । उससे ऊपर दूसरा कोई लोक नहीं है । ऊपर सब कुछ शून्य ही है । वहीं तक सृष्टि की अन्तिम सीमा है । सात रसातलों से नीचे जल और अन्धकार है, जो अगम्य और अदृश्य है ।

(अध्याय ४)

श्रीराधा के विशाल भवन एवं अन्तःपुर की शोभा का वर्णन, ब्रह्मा आदि को दिव्य तेजःपुन्ज के दर्शन तथा उनके द्वारा उन तेजोमय परमेश्वर की स्तुति

भगवान् नारायण कहते हैं–सम्पूर्ण गोलोक का दर्शन करके उन तीनों देवताओं के मन में बड़ा हर्ष हुआ । वे फिर श्रीराधा के प्रधान द्वारपार आये । उस द्वार का निर्माण उत्तम रत्नों और मणियों से हुआ था । वहाँ दो वेदिकाएँ थीं । हल्दी के रंग की उत्तम मणि से, जिनमें हीरे का भी सम्मिश्रण था, बनाये गये श्रेष्ठ रत्न मणि निर्मित किवाड़ उस द्वार की शोभा बढ़ाते थे । देवताओं ने देखा, उस द्वार पर रक्षा के लिये परम उत्तम वीरभानु की नियुक्ति हुई है । वे रत्नों के बने हुए सिंहासन पर बैठे हैं, पीताम्बर पहने हैं तथा रत्नमय आभूषणों से विभूषित है । उनके मस्तक पर रत्नमय मुकुट उद्भासित हो रहा है । विचित्र चित्रों से अलंकृत उस अद्भुत एवं विचित्र द्वार की रक्षा करते हुए द्वारपाल वीरभानु के पास जा देवताओं ने प्रसन्नतापूर्वक अपना सारा अभिप्राय निवेदन

किया । तब द्वारपाल ने निःशंक होकर उन देवेश्वरों से कहा—'देवगण ! मैं इस समय आज्ञा लिये बिना आप लोगों को भीतर नहीं जाने दूंगा' ।

मुने ! यह कहकर द्वारपाल ने श्रीकृष्ण के स्थान पर सेवकों को भेजा और उनकी आज्ञा पाकर देवताओं को अन्दर जाने की अनुमति दी । उससे पूछ कर वे तीनों देवता दूसरे उत्तम द्वार पर गये, जो पहले से अधिक विचित्र, सुन्दर और मनोहर था । नारद ! उस द्वार पर नियुक्त हुए चन्द्रभानु नामक पारपाल दिखायी दिये, जिनकी अवस्था किशोर थी । शरीर की कान्ति सुन्दर एवं श्याम थी । वे सोने का बेंत हाथ में लिये रत्नमय आभूषणों से विभूषित हो रत्नमय सिंहासन पर विराजमान थे । पाँच लाख गोपों का समूह उनकी शोभा बढ़ा रहा था । उनसे पूछकर देवता लोग तीसरे उत्तम द्वार पर गये, जो दूसरे से भी अधिक सुन्दर, विचित्र तथा मणियों के तेज से प्रकाशित था । नारद ! वहाँ द्वार की रक्षा में नियुक्त सूर्यभानु नामक द्वारपाल दिखायी दिये जो दो भुजाओं से युक्त, मुरलीधारी, किशोर, श्याम एवं सुन्दर थे । उनके दोनों गालोंपर दो मणिमय कुण्डल झलमला रहे थे । रत्नकुण्डलधारी सूर्यभानु श्रीराधा और श्रीकृष्ण के परम प्रिय एवं श्रेष्ठ सेवक थे । वे सम्राट की भाँति नौ लाख गोपों से घिरे रहते थे । उनसे पूछकर देवतालोग चौथे द्वारपर गये, जो उन सभी द्वारों से विलक्षण, रमणीय तथा मणियों की दिव्य दीप्ति से उद्दीप्त दिखायी देता था । अद्भुत एवं विचित्र रत्न समूह से जटित होने के कारण उस द्वार की मनोहरता और बढ़ गयी थी । उसकी रक्षा के लिये व्रजराज वसुभानु नियुक्त थे । देवता लोग उनसे मिले । वे किशोर अवस्था के सुन्दर एवं श्रेष्ठ पुरुष थे । हाथ में मणिमय दण्ड लिये हुए थे । रमणीय आभूषणों से विभूषित हो रत्न सिंहासन पर बैठे थे । पके बिम्बफल के समान लाल ओष्ठ और मन्द मन्द मुस्कान से वे अत्यन्त मनोहर दिखायी देते थे ।

देवतालोग उनसे पूछकर पाँचवें द्वार पर गये । वह हीरे की दीवारों पर अङ्कित विचित्र चित्रों से अत्यन्त प्रकाशमान दिखायी देता था । वहाँ देवभानु नामक द्वारपाल मिले, जो रत्नमय आभूषण धारण करके मनोहर सिंहासन पर आसीन थे । उनके मस्तक पर मोरपंख का मुकुट शोभा दे रहा था और वे रत्नों के हार से अलंकृत थे । कदम्बों के पुष्प से सुशोभित उत्तम रत्नमय कुण्डलोंसे प्रकाशित तथा चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुम के द्रव्य से चर्चित थे । सम्राटों के समान दस लाख प्रजा उनके साथ थी । हाथ में बेंत धारण करने वाले द्वारपाल देवभानु से पूछकर देवतालोग प्रसन्नतापूर्वक आगे बढे ।

सामने छठा द्वार था । उसकी विलक्षण शोभा थी । चित्रों की श्रेणियों से वह द्वार उद्भासित हो रहा था । उनकी दोनों दीवारें वज्रमणि (हीरे) की बनी थीं और फूलों की मालाओं से सजायी गयी थीं । उस द्वारपर व्रजराज शक्रभानु नियुक्त थे । देवता लोग उनसे मिले । वे नाना प्रकार के अलंकारों की शोभा से सम्पन्न थे । उनके साथ दस लाख प्रजाएँ थीं । चन्दन पल्लव से युक्त उनके कपोल कुण्डलों की प्रभा से उद्भासित थे । उनसे आज्ञा लेकर देवता लोग तुरंत ही सातवें द्वार पर जा पहुँचे । उसमें नाना प्रकार के चित्र अङ्कित थे । वह पिछले छहों द्वारों से अत्यन्त विलक्षण था । वहाँ द्वारपाल के पद पर श्रीहरि के परम प्रिय रत्नभानु नियुक्त थे, जिनका सारा अङ्ग चन्दन से अभिषित था । वे पुष्पों की माला से विभूषित थे । मणि-रत्ननिर्मित मनोहर एवं रमणीय भूषण उनकी शोभा बढ़ाते थे । बारह लाख गोप आज्ञा के अधीन रहकर राजाधिराज की भाँति उनकी शोभा बढाते थे । उनका मुखारविन्द प्रसन्नता से खिला था । वे रत्नमय सिंहासन पर विराजमान थे । उनके हाथ में बेंतकी छड़ी शोभा पाती थी ।

वे तीनों देवेश्वर उनसे बातचीत करके प्रसन्नतापूर्वक आठवें द्वार पर गये । वह पूर्वोक्त सातों द्वारों से विलक्षण एवं विचित्र शोभाशाली था । वहाँ उन्होंने सुपार्श्व नामक मनोहर द्वारपाल को देखा, जो मन्द मुस्कराहट के साथ बड़े सुन्दर दिखायी देते थे । वे भालदेश में धारित चन्दन के तिलक से अत्यन्त उद्भासित दिखायी देते थे । उनके ओठ बन्धुजीव पुष्प (दुपहरिया) के समान लाल थे । रत्नों के कुण्डल उनके गण्डस्थल को अलंकृत किये हुए थे । वे समस्त अलकारों की शोभा से सम्पन्न थे । रत्नमय दण्ड धारण करते थे और उनके साथ बारह लाख गोप थे । वहां से अनुमति मिलने पर वे देवता शीघ्र ही नवें अभीष्ट द्वार पर गये । वहाँ हीरे आदि उत्तम रत्नों की चार वेदियाँ बनी थीं । वह द्वार अपूर्व चित्रों से सज्जित तथा मालाओं की जाली से विभूषित था । वहाँ सुन्दर आकारवाले सुबल नामक द्वारपाल दृष्टिगोचर हुए, जो भाँति भाँति के आभूषणों से भूषित, भूषण के योग्य तथा मनोहर थे । उनके साथ बारह लाख व्रजवासी थे । दण्डधारी सुबल से पूछ कर देवताओं ने तत्काल दूसरे द्वार को प्रस्थान किया । उस विलक्षण दसवें द्वार को देखकर देवताओं को बड़ा विस्मय हुआ । मुने ! वहाँ का सब कुछ अनिवर्चनीय, अदृष्ट और अश्रुत था—वैसा दृश्य कभी देखने और सुनने में भी नहीं आया था । वहाँ सुन्दर सुदामा नामक गोप द्वारपाल के पद पर प्रतिष्ठित थे । सुदामा का रूप श्रीकृष्ण के समान ही मनोहर तथा अवर्णनीय था । उनके साथ बीस लाख गोपों का समूह रहता था । दण्डधारी सुदामा का दर्शनमात्र करके देवता लोग दूसरे द्वारपर चले गये ।

वह ग्यारहवाँ द्वार अत्यन्त विचित्र और अद्‌भुत था। वहाँ सुन्दर चित्र अङ्कित थे। वहाँ के द्वारपाल व्रजराज श्रीदामा थे, जिन्हें राधिकाजी अपने पुत्र के समान मानती थीं। वे पिताम्बर से विभूषित थे, बहुमूल्य रत्नों द्वारा रचिस रम्य सिंहासन पर आसीन थे और अमूल्य रत्नाभरण उनकी शोभा बढ़ाते थे। उनका रूप बड़ा ही मनोहर था। चंदन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुंम से उनका शृङ्गार हुआ था। वे अपने कपोलों के योग्य कानों में उत्तम रत्नमय कुण्डल धारण करके प्रकाशित हो रहे थे। श्रेष्ठ रत्नों द्वारा रचित विचित्र मुकुट उनके मस्तक की शोभा बढा रहा था। प्रफुल्ल मालती-पुष्प की मालाओं से उनके सारे अङ्ग विभूषित थे। करोड़ों गोपों से घिरे होने के कारण राजाधिराज से भी अधिक उनकी शोभा होती थी। उनकी अनुमति ले देवता लोग प्रसन्नतापूर्वक बारहवें द्वार पर गये, जहाँ बहुमूल्य रत्नों की बनी हुई बहुत सी वेदिकाएँ प्रकाशित हो रही थीं। वह विचित्र द्वार सबके लिये दुर्लभ,अदृश्य और अश्रुत था। वज्रमयी भीतों पर अङ्कित चित्रों के कारण उस द्वार की सुन्दरता और मनोहरता बहुत बढ़ गयी थी। देवताओं ने देखा बारहवें द्वार की रक्षा में सुन्दरी गोपाङ्गनाएँ नियुक्त हुई है। वे सब की सब रूप-यौवन से सम्पन्न, रत्नाभरणों से विभूषित, पीताम्बर धारिणी तथा बँधे हुए केश-कलाप के भारसे सुशोभित थीं। उनके सारे अङ्ग सुस्निग्ध मालती को मालाओं से अलंकृत थे। रत्नों के बने हुए कंगन, बाजूबंद तथा नूपुर उन-उन अङ्गों की शोभा बढाते थे। उनके दोनों कपोल दिव्य रत्नमय कुण्डलों से उद्भासित हो रहे थे। वे चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुंम के द्रव्य से अपना शृङ्गार किये हुए थीं। वहाँ सौ कोटि गोपियों में एक श्रेष्ठ गोपी थी, जो श्रीहरि को भी परम प्रिय थी। उन करोड़ों गोपिकाओं को देख कर देवताओं को बड़ा विस्मय हुआ। मुने! उन सब गोपियों से अनुमति ले वे देवता प्रसन्नतापूर्वक दूसरे द्वार पर गये। इस तरह क्रमशः तीन द्वारों पर उन्होंने देखा—श्रेष्ठ और अत्यन्त मनोहर गोपाङ्गनाएँ उनकी रक्षा कर रही हैं। वे सुन्दरियों में भी सुन्दरी, रमणीया, धन्या, मान्या और शोभा-शालिनी हैं। सब की सब सौभाग्य में बढ़ी-चढ़ी तथा श्रीराधिका की प्रिया हैं। सुरम्य भूषणों से भूषित हुई उन गोप सुन्दरियों के अङ्गों में नूतन यौवन का अंकुर प्रकट हुआ है।

इस प्रकार के तीनों द्वार स्वप्न कालिक अनुभव के समान अद्‌भुत, अश्रुत, अदृष्टपूर्व, अतिरमणीय और विद्वानों के द्वारा भी अवर्णनीय थे। उन सबको देखकर और उन-उन गोपाङ्गनाओं से बातचीत करके आश्चर्यचकित हुए वे तीनों देवेश्वर सोलहवें मनोहर द्वार पर गये, जो श्रीराधिका के अन्तःपुर का द्वार था। वह सब द्वारों में प्रधान तथा केवल गोपाङ्गनागणों द्वारा ही रक्षणीय था। श्रीराधा की जो तैंतीस समवयस्का सखियाँ थीं, वे ही इस द्वार का संरक्षण करती थीं। उन सबकी वेश-भूषा अवर्णनीय थी। वे नाना प्रकार के सद्‌गुणों से युक्त, रूप-यौवन से सम्पन्न तथा रत्नमय अलंकारों से विभूषित थीं। रत्न निर्मित कङ्कण, केयूर तथा नूपुर धारण किये हुए थीं। उनके कटिप्रदेश श्रेष्ठ रत्नों की बनी हुई क्षुद्र घण्टिकाओं से अलंकृत थे। रत्ननिर्मित युगल कुण्डलों से उनके गण्ड स्थलों की बड़ी शोभा हो रही थी। प्रफुल्ल मालती की मालाओं से उनके वक्षःस्थल का मध्य भाग उद्भासित हो रहा था। उनके मुखचन्द्र शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमाओं की प्रभाको छीने लेते थे। पारिजात के पुष्पों की मालाओं से उनके सुरम्य केशपाश आवेष्टित थे। वे भाँति भाँति के सुन्दर आभूषणों से विभूषित थीं। पके बिम्बफल के समान उनके लाल-लाल ओठ थे। मुखारविन्दों पर मन्द मुस्कान को छटा छा रही थी। पके अनार के दानों की भाँति दन्तपंक्तियाँ उनकी शोभा बढा रही थीं। मनोहर चम्पा के समान गौरवर्ण वाली उन गोपकिशोरियों के कटिभाग अत्यन्त कृश थे। उनकी नासिकाओं में गज मुक्ता की बुलाकें शोभा दे रही थीं। वे नासिकाएँ पक्षिराज गरुड़ की सुन्दर चोंच की शोभा धारण करती थीं। उनका चित्त नित्य मुकुन्द के चरणारविन्दों में लगा था। द्वार पर खड़े हुए निमेष रहित देवताओं ने उन सबको देखा। वह द्वार श्रेष्ठ मणि रत्नों की वेदिकाओं से सुशोभित था। इन्द्रनीलमणि कै बहुत से खम्भे उसकी शोभा बढा रहे थे। उनके बीच-बीच में सिन्दूरी रंग की लाल मणियाँ जड़ी थीं। उस द्वार को परिजात पुष्पों की मालाओं से सजाया गया था। उन्हें छूकर बहने वाली वायु वहाँ सर्वत्र सुगंध फैला रही थी। राधिका के उस परम आश्चर्यमय अन्तःपुर के द्वार का अवलोकन करके देवताओं के मन में श्रीकृष्ण चरणारविन्द के दर्शन की उत्कण्ठा जाग उठी। उन्होंने उन सखियों से पूछ कर शीघ्र ही द्वार के भीतर प्रवेश किया। उनके शरीर में रोमांच हो आया था। भक्ति के उद्रेक से उनकी आँखें भर आयी थीं। उनके मुख और कंधे कुछ कुछ झुक गये थे।

अब देवताओं ने श्री राधिका के उस श्रेष्ठ अन्तःपुरको अत्यन्त निकट से देखा। समस्त मन्दिरों के मध्य भाग में एक मनोहर चतुःशाला थी, जिसकी रचना बहुमूल्य रत्नों के सार भाग से की गयी थी। भाँति भाँति के हीरक जटित मणिमय स्तम्भ उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। पारिजात पुष्पों की मालाओं को झालरों से उसे सजाया गया था। मोती, माणिक्य, श्वेत चँवर, दर्पण तथा बहुमूल्य रत्नों के सारतत्व से बने हुए कलश उस चतुःशाला को विभूषित कर रहे थे। रेशमी सूत में गुंथे हुए चन्दन पल्लवों की बन्दनवार

से विभूषित मणिमय स्तम्भ समूह उसके प्राङ्गण को रमणीय बना रहे थे । चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा कुंकुम के द्रव का वहाँ छिड़काव हुआ था । श्वेत धान्य, श्वेत पुष्प, मूँगा, फल, अक्षत, दूर्वादल और लाजा आदि के निर्मञ्छन (निछावर) से उसकी अपूर्व शोभा हो रही थी । फल, रत्न, रत्न कलश, सिन्दूर, कुंकुम और पारिजात की मालाओं से उसको सजाया गया था । फूलों की सुगंध से सुवासित वायु उस स्थान को सब ओर से सौरभयुक्त बना रही थी । जो सर्वथा अनिर्वचनीय, अनिरूपित और ब्रह्माण्डमात्र में दुर्लभ द्रव्य एवं वस्तुएँ थीं, उन्हीं से उस भव्य भवन को विभूषित किया गया था । वहाँ अत्यन्त सुन्दर रत्नमयी शय्या बिछी थी, जिस पर महीन एवं कोमल वस्त्रों का बिछावन था । नारद ! करोड़ों रत्नमय कलश तथा रत्ननिर्मित पात्र वहाँ सजाकर रक्खे गये थे, जो बहुमूल्य होने के साथ ही बहुत सुन्दर थे । उनसे उस चतुःशालाकी बड़ी शोभा हो रही थी । नाना प्रकार के वाद्यों की मधुर ध्वनि वहाँ गूँज रही थी । वीणा आदि के स्वर यन्त्रों के साथ गोपियों का सुमधुर गीत सुनायी पड़ता था । मृदंग तथा अन्यान्य वाद्यों की ध्वनि से वह स्थान बड़ा मोहक जान पड़ता था । श्रीकृष्ण-तुल्य रूप, रंग और वेश-भूषा वाले गोप समूहों से घिरे हुए उस अन्तःपुरको झुण्ड-की-झुण्ड गोपाङ्गनाएँ, जो श्रीराधाकी सखियाँ थीं, सुशोभित कर रही थीं । श्रीराधा और श्रीकृष्ण के गुणगान सम्बन्धी पदों का संगीत वहाँ सब ओर सुनायी पड़ता था । ऐसे अन्तःपुर को देखकर वे देवता विस्मय से विमुग्ध हो उठे । उन्होंने वहाँ मधुर गीत सुना और उत्तम नृत्य देखा । वे सब देवता वहाँ स्थिर भाव से खड़े हो गये । उन सबका चित्त ध्यान में एकतान हो रहा था । उन देवेश्वरों को वहाँ रमणीय रत्नसिंहासन दिखायी दिया, जो सौ धनुष के बराबर विस्तृत था । वह सब ओर से मण्डलाकार दिखायी देता था । श्रेष्ठ रत्नों के बने हुए छोटे-छोटे कलश-समूह उसमें जुड़े हुए थे । विचित्र पुतलियों, फूलों तथा चित्रमय काननों से उसकी बड़ी शोभा हो रही थी । ब्रह्मन् ! वहाँ उनको एक अत्यन्त अद्भुत और आश्चर्यमय तेजःपुञ्ज दिखायी दिया, जो करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान था । वह दिव्य ज्योति से जाज्वल्यमान हो रहा था । ऊपर चारों ओर सात ताड़की दूरी में उसका प्रकाश फैला हुआ था । सबके तेज को छीन लेने वाला वह प्रकाश पुंज सम्पूर्ण आश्रमको व्याप्त करके देदीप्यमान था । वह सर्वत्र व्यापक, सबका बीज तथा सबके नेत्रों को अवरुद्ध कर देने वाला था । उस तेजःस्वरूप को देख कर वे देवता ध्यानमग्न हो गये तथा भक्ति भाव से मस्तक एवं कंधे झुकाकर बड़ी श्रद्धा के साथ उसको प्रणाम करने लगे । उस समय परमानन्दकी प्राप्ति उनके नेत्रों में आँसू भर आये थे और सारे अङ्ग

पुलकित हो गये थे । वे ऐसे जान पड़ते थे मानों उनके अभिष्ट मनोरथ पूर्ण हो गये हों । उन तेजःस्वरूप परमेश्वर को नमस्कार करके वे तीनों देवेश्वर उठ कर खड़े हो गये और उन्हीं का ध्यान करते हुए उस तेज के सामने गये । ध्यान करते करते जगत्स्रष्टा ब्रह्मा के दोनों हाथ जुड़ गये । नारद ! उन्होंने शिव को दाहिने और धर्म को बायें कर लिया तथा वे भक्ति के उद्रेकसे चित्त को ध्यानमग्न करके उन परात्पर, गुणातीत परमात्मा जगदीश्वर श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे ।

ब्रह्माजी बोले—जो वर, वरेण्य, वरद, वरदायकों के कारण तथा सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति के हेतु हैं; उन तेजःस्वरूप परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ । जो मंगलकारी, मंगल के योग्य, मंगलरूप, मंगलदायक तथा समस्त मंगलों के आधार हैं; उन तेजोमय परमात्मा को मैं प्रणाम करता हूं । जो सर्वत्र विद्यमान, निर्लिप्त, आत्मास्वरूप, परात्पर, निरीह और अवितर्क्य हैं; उन तेजःस्वरूप परमेश्वर को नमस्कार है । जो सगुण, निर्गुण, सनातन, ब्रह्म, ज्योतिःस्वरूप, साकार एवं निराकार हैं; उन तेजोरूप परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूं । प्रभो ! आप अनिवर्चनीय, व्यक्त, अव्यक्त, अद्वितीय, स्वेच्छामय तथा सर्व रूप हैं । आप तेजःस्वरूप परमेश्वर को मैं नमस्कार करता हूं । तीनों गुणों का विभाग करने के लिये आप तीन रूप धारण करते हैं; परन्तु हैं तीनों गुणों से अतीत । समस्त देवता आपकी कला से प्रकट हुए हैं । आप श्रुतियों की पहुंच से भी परे हैं; फिर आपको देवता कैसे जान सकते हैं ? आप सबके आधार, सर्वस्वरूप, सबके आदि कारण, स्वयं कारण रहित, सबका संहार करने वाले तथा अन्तरहित हैं । आप तेजःस्वरूप परमात्मा को नमस्कार है । जो सगुण रूप है, वही लक्ष्य होता है और विद्वान पुरुष उसीका वर्णन कर सकते हैं । परन्तु आपका रूप अलक्ष्य है; अतः मैं उसका वर्णन कैसे कर सकता हूं ? आप तेजो रूप परमात्मा को मेरा प्रणाम है । आप निराकार हो कर भी दिव्य आकार धारण करते हैं । इन्द्रियातीत होकर भी इन्द्रियुक्त होते हैं । आप सबके साक्षी हैं; परन्तु आपका साक्षी कोई नहीं है । आप तेजोमय परमेश्वर को मेरा नमस्कार है । आपके पैर नहीं है तो भी आप चलने की योग्यता रखते हैं । नेत्रहीन होकर भी सबको देखते हैं । हाथ और मुख से रहित होकर भी भोजन करते हैं । आप तेजोमय परमात्मा को मेरा नमस्कार है । वेद में जिस वस्तु का निरूपण है, विद्वान पुरुष उसी का वर्णन कर सकते हैं । जिसका वेद में भी निरूपण नहीं हो सका है, आपके उस तेजोमय स्वरूप को मैं नमस्कार करता हूं ।

जो सर्वेश्वर है, किन्तु जिसका ईश्वर कोई नहीं है; जो सबका आदि है, परन्तु स्वयं आदि से रहित है तथा जो सबका आत्मा है, किन्तु जिसका आत्मा दूसरा कोई नहीं है; आपके उस तेजोमय स्वरूप को मैं नमस्कार करता हूं । मैं स्वयं जगत् का स्रष्टा और वेदों का प्राकट्य करने वाला हूं । धर्मदेव जगत् के पालक हैं तथा महादेवजी संहारकारी हैं; तथापि हम में से कोई भी आपके उस तेजोमय स्वरूप का स्तवन करने में समर्थ नहीं है । आप की सेवा के प्रभाव से वे धर्मदेव अपने रक्षक की रक्षा करते हैं । आपकी ही आज्ञा से आपके द्वारा निश्चित किये हुए समय पर महादेवजी जगत् का संहार करते हैं । आपके चरणारविन्दों की सेवा से ही सामर्थ्य पाकर मैं प्राणियों के प्रारब्ध या भाग्य की लिपिका लेखक तथा कर्म करने वालों के फल का दाता बना हुआ हूं । प्रभो ! हम तीनों आपके भक्त हैं और आप हमारे स्वामी हैं । ब्रह्माण्ड में बिम्बसदृश हम विषयी हो रहे हैं । ब्रह्माण्ड अनन्त हैं और उनमें हम जैसे सेवक कितने ही हैं । जैसे रेणु तथा उनके परमाणुओं की गणना नहीं हो सकती, उसी प्रकार ब्रह्माण्डों और उनमें रहने वाले ब्रह्मा आदि की गणना असम्भव है । आप सबके उत्पादक परमेश्वर हैं । आपकी स्तुति करने में कौन समर्थ है ? जिन महाविष्णु के एक-एक रोम कूप में एक-एक ब्रह्माण्ड है, वे भी आपके ही सोलहवें अंश हैं । समस्त योगीजन आपके इस मनोवांछित ज्योतिर्मय स्वरूप का ध्यान करते हैं । परंतु जो आपके भक्त हैं, वे आपकी दास्ता में अनुरक्त रहकर सदा आपके चरण कमलों की सेवा करते हैं । परमेश्वर ! आपका जो परम सुन्दर और कमनीय किशोर रूप है, जो मन्त्रोक्त ध्यान के अनुरूप है, आप उसीका हमें दर्शन कराइये । जिसकी अङ्गकान्ति नूतन जलधर के समान श्याम है, जो पीताम्बरधारी तथा परम सुन्दर है, जिसके दो भुजाएँ, हाथ में मुरली और मुखपर मन्द मन्द मुस्कान है, जो अत्यन्त मनोहर है, माथे पर मोरपख का मुकुट धारण करता है, मालती के पुष्प समूहों से जिसका शृङ्गार किया गया है, जो चंदन अगुरु, कस्तूरी और केसर के अङ्गराग से चर्चित है, अमूल्य रत्नों के सारतत्व से निर्मित आभूषणों से विभूषित है, बहुमूल्य रत्नों के बने हुए किरीट मुकुट जिसके मस्तक को उद्भाषित कर रहे हैं, जिसका मुखचंद्र शरत्काल के प्रफुल्ल कमलों की शोभा को चुराये लेता है, जो पके बिम्बफल के समान लाल ओठों से सुशोभित है, परिपक्व अनार के बीज की भांति चमकीली दन्त-पङ्क्ति जिसके मुख की मनोरमता को बढ़ाती है, जो रास-रस के लिये उत्सुक हो केलि-कदम्ब के नीचे खड़ा है, गोपियों के मुखों को ओर देखता है तथा श्रीराधा के वक्षःस्थल पर विराजित है; आपके उसी केलि-रसोत्सुक रूप को देखने की हम सबकी इच्छा है ऐसा कह कर विश्वविधाता ब्रह्मा उन्हें बारंबार प्रणाम करने लगे । धर्म और शंकर ने भी इसी स्तोत्र से उनका स्तवन किया तथा नेत्रों में आँसू भरकर बारंबार वन्दना की ।

वरं वरेण्यं वरदं वरदानां च कारणम् । कारणं सर्वभूतानां तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।
मङ्गल्यं मङ्गलार्हं च मङ्गलं मङ्गलप्रदम् । समस्त मङ्गलाधारं तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।
स्थितं सर्वत्र निर्लिप्तमात्मरूपं परात्परम् । निरीहमवितर्क्यं च तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।
सगुणँ निर्गुणं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम् । साकारं च निराकारं तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।
त्वमनिर्वचनीयं च व्यक्तमव्यक्तमेककम् । स्वेच्छामयं सर्वरूपं तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।
गुणत्रयविभागाय रूपत्रयधरं परम् । कलया ते सुराः सर्वे किं जानन्ति श्रुतेः परम् ।।
सर्वाधारं सर्वरूपं सर्वबीजबीजकम् । सर्वान्तकमनन्तं च तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।
लक्ष्यं यद् गुणरूपं च वर्णनीयं विचक्षणैः । किं वर्णयाम्यलक्ष्यं ते तेजोरूपं नमाम्यहम् ।
अशरीरं विग्रहवदिन्द्रियवदतीन्द्रियम् । यदसाक्षि सर्वसाक्षि तेजो रूपं नमाम्यहम् ।।
गमनार्हमपादं यदचक्षुः सर्वदर्शनम् । हस्तास्यहीनं यद् भोक्तुं तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।
वेदे निरूपितं वस्तु सन्तः शक्ताश्च वर्णितुम् । वेदेऽनिरूपितं यत्तत्तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।
सर्वेशं यदनीशं यत् सर्वादि यदनादि यत् । सर्वात्मकमनात्मं यत्तेजोरूपं नमाम्यहम् ।।
अहं विधाता जगतां वेदानां जनकः स्वयम् । पाता धर्मो हरो हर्त्ता स्तोतुं शक्तो न कोऽपि यत्।।
सेवया तव धर्मोऽयं रक्षितारं च रक्षति । तवाज्ञया च संहर्ता त्वया काले निरूपिते ।।
निषेकलिपिकर्ताहं त्वत्पादाम्भोजसेवया । कर्मिणां फलदाता च त्वं भक्तानां च नः प्रभुः ।।
ब्रह्माण्डे विम्बसदृशा भूत्वा विषयिणों वयम् । एवं कतिविधाः सन्ति तेष्वनन्तेषु सेवकाः ।।
यथा न सख्या रेणूनां तथा तेषामणीयसाम् । सर्वेषां जनकश्चेशो यस्त्वां स्तोतुं च कःक्षमः ।।
एकैकलोमविवरे ब्रह्माण्डमेकमेककम् । यस्यैव महतो विष्णोः षोडशांशस्तवैव सः ।।
ध्यायन्ति योगिनः सर्वे तवैतद्रूपमीप्सितम् । त्वद् भक्ता दास्यनिरताःसेवन्ते चरणाम्बुजम् ।।
किशोरं सुन्दरतरं यद्रूप कमनीयकम् । मन्त्रध्यानानुरूपं च दर्शयास्माकमीश्वर ।।
नवीनजलदश्यामं पीताम्बरधरं परम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं सुमनोहरम् ।।
मयूरपुच्छचूडं च मालतीजालमण्डितम् । चन्दनागुरुकस्तूरी कुंकुमद्रवचर्चितम् ।।
अमूल्यरत्नसाराणां भूषणैश्च विभूषितम् । अमूल्यरत्नरचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलम् ।।
शरत्प्रफुल्लकमलप्रभामोषणास्य चन्द्रकम् । पक्वबिम्बसमानेन ह्यधरौष्ठेन राजितम् ।।
पक्वदाडिम्बवीजाभदन्तपंक्ति मनोरमम् । केलिकदम्बमूले च स्थितं रासरसोत्सुकम् ।।
गोपीवक्त्राणि पश्यन्तं राधावक्षःस्थलस्थितम् । एवं वांछास्ति रूपं ते द्रष्टुं केलिरसोत्सुकम् ।।

इत्येवमुक्त्वा विश्वसृट् प्रणनाम पुनःपुनः । एवं स्तोत्रेण तुष्टाव धर्मोऽपि शंकरःस्वयम् ।।
ननाम भूयो भूयश्च साश्रुपूर्णविलोचनः ।।
(श्रीकृष्ण जन्म खण्ड ५/९४-१२०)

मुने ! उन त्रिदशेश्वरों ने खड़े-खड़े पुनः स्तवन किया । वे सब के सब वहाँ भगवान् श्रीकृष्ण के तेज से व्याप्त हो रहे थे । धर्म, शिव और ब्रह्माजी के द्वारा किये गये इन स्तवराज को जो प्रतिदिन श्रीहरिके पूजाकाल में भक्तिपूर्वक पढ़ता है, वह उनकी अत्यन्त दुर्लभ और दृढ़ भक्ति प्राप्त कर लेता है । देवता, असुर और मुनीन्द्रों को श्रीहरिका दास्य दुर्लभ है; परन्तु इस स्तोत्र का पाठ करने वाला उसे पा लेता है । साथ ही अणिमा आदि सिद्धियों तथा सालोक्य आदि चार प्रकार की मुक्तियों को प्राप्त कर लेता है । इस लोक में भी वह भगवान् विष्णु के समान ही विख्यात एवं पूजित होता है; इसमें संशय नहीं है । निश्चय ही उसे वाक्यसिद्धि और मन्त्रसिद्धि भी सुलभ हो जाती है । वह सम्पूर्ण सौभाग्य और आरोग्य लाभ करता है । उसके यश से सारा जगत् पूर्ण हो जाता है । वह इस लोक में पुत्र, विद्या, कविता, स्थिर लक्ष्मी, साध्वी सुशीला पतिव्रता पत्नी, सुस्थिर संतान तथा चिरकालस्थायिनी कीर्ति प्राप्त कर लेता है और अन्त में उसे श्रीकृष्ण के निकट स्थान प्राप्त होता है । (अध्याय ५)

देवताओं द्वारा तेजःपुञ्ज में श्री कृष्ण और राधा के दर्शन तथा स्तवन, श्रीकृष्ण द्वारा देवताओं का स्वागत तथा उन्हें आश्वासन-दान, भगवद् भक्त के महत्व का वर्णन, श्रीराधा सहित गोप-गोपियों को व्रज में अवतीर्ण होने के लिये श्रीहरिका आदेश, सरस्वती और लक्ष्मी सहित वैकुण्ठवासी नारायण का तथा क्षीरशायी विष्णु का शुभागमन, नारायण और विष्णु का श्रीकृष्ण के स्वरू में लीन होना,संकर्षण तथा पुत्रों सहित पार्वती का आगमन देवताओं और देवियों को पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करने के लिये प्रभु का आदेश, किस देवता का कहाँ और किस रूप में जन्म होगा--इसका विवरण, श्रीराधाकी चिंता तथा श्रीकृष्ण का उन्हें सांत्वना देते हुए अपनी और उनकी

एकता का प्रतिपादन करना, फिर श्रीहरिकी आज्ञासे राधा और गोप-गोपियों का नंद-गोकुल में गमन

श्रीनारायण कहते है-**मुने** ! उस तेजःपुञ्ज के सामने ध्यान और स्तुति करके खड़े हुए देवताओं ने उस तेजोराशि के मध्य भाग में एक कमनीय शरीर को देखा, जो सजल जलधर के समान श्याम कान्ति से युक्त एवं परम मनोहर था । उसके मुख पर मन्द मुस्कान की छटा छा रही थी । उसका रूप परमानन्दजनक तथा त्रिलोकी के चित्त को मोह लेनेवाला था । उसके दोनों गालों पर मकराकार कुण्डल जगमगा रहे थे । उत्तम रत्नों के बने हुए नूपुरों से उसके चरणारविन्दों की बड़ी शोभा हो रही थी । अग्निशुद्ध दिव्य पीताम्बर से उस श्रीविग्रह की अपूर्व शोभा हो रही थो । वह ऐसा जान पड़ता था, मानो स्वेच्छा और कौतूहलवश श्रेष्ठ मणियों और रत्नों के सारतत्व से रचा गया हो । मनोरंजन की सामग्री मुरली से संलग्न बिम्ब सदृश अरुण अधरों के कारण उसके मुख की मनोहरता बढ़ गयी थी । वह शुभ दृष्टि से देखता और भक्तों पर अनुग्रह के लिये कातर जान पड़ता था । उत्तम रत्नों की गुटिका से युक्त किवाड़-जैसा विशाल वक्षःस्थल प्रकाशित हो रहा था । कौस्तुभमणि के कारण बढे हुए तेज से वह देदीप्यमान दिखायी देता था ।

उसी तेजःपुञ्ज में देवताओं ने मनोहर अङ्गवाली श्रीराधा को भी देखा । वे मन्द मुस्कराहट के साथ अपनी ओर देखते हुए प्रियतम को तिरछी चितवन से निहार रही थीं । मोतियों की पांत को तिरस्कृत करनेवाली दन्तावली उनके मुख की शोभा बढा रही थी । उनका प्रसन्न मुखारविन्द मन्द हास्य की छटा से सुशोभित था । नेत्र शरत्काल के प्रफुल्ल कमलों की छबि को लज्जित कर रहे थे । शरत्पूर्णिमा के चन्द्रमा की आभा को निन्दित वरने वाले मुख के कारण वे बड़ी मनोहारिणी जान पड़ती थीं । दुपहरिया के फूल की शोभा को चुराने वाले उनके लाल-लाल अधर और ओष्ठ बड़े मनोहर थे तथा वे बहुत सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए थीं । उनके युगल चरणारविन्दों में झनकारते हुए मंजीर शोभा दे रहे थे । नखों की पंक्ति श्रेष्ठ मणिरत्नों की प्रभा को छीन लेती थीं । कुंकुम की आभा को तिरस्कृत कर देने वाले चरणतल के स्वाभाविक राग से वे सुशोभित थीं । बहुमूल्य रत्नों के सारतत्व से बने हुए पाशकों की

श्रेणी उन्हें विभूषित कर रही थीं । अग्निशुद्ध द्रव्य वस्त्र धारण करके वे अत्यन्त उद्भासित हो रही थीं । श्रेष्ठ महामणियों के सारतत्व से बनी हुई काञ्ची से उनका मध्यभाग अलंकृत था । उत्तम रत्नों के हार, बाजूबन्द और कंगन से वे विभूषित थीं । उत्तम रत्नों के द्वारा रचित कुण्डलों से उनके कपोल उद्दीप्त हो रहे थे । कानों में श्रेष्ठ मणियों के कर्णभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे । पक्षिराज गरुड़ की चोंच के समान नुकीली नासिका में गजमुक्ता की बुलाकें शोभा दे रही थी । उनके घुंघराले बालों की वेणी में मालती की माला लपेटी हुई थी । वक्षःस्थल में अनेक कौस्तुभमणियों की प्रभा फैली हुई थी । पारिजात के फूलों की माला धारण करने से उनकी रूप राशि परम उज्ज्वल जान पड़ती थी। उनके हाथ की अंगुलियाँ रत्नों की अंगुठियों से विभूषित थीं । दिव्य शङ्ख के बने हुए विचित्र रागविभूषित रमणीय भूषण उन्हें विभूषित कर रहे थे। वे शङ्खभूषण महीन रेशमी डोरे में गुथे हुए थे । उत्तम रत्नों के सारतत्व की बनी हुई गुटिका को लाल डोरे में गूंथकर उसके द्वारा उन्होंने अपने आपको सज्जित किया था । तपाये हुए सुवर्ण के समान अङ्गकान्ति को सुन्दर वस्त्र से आच्छादित करके वे बड़ी शोभा पा रही थीं । उनका शरीर अत्यन्त मनोहर था। नितम्बदेश और श्रोणिभाग के सौन्दर्य से वे और भी सुन्दरी दिखायी देती थीं । वे समस्त आभूषणों से विभूषित थीं और समस्त आभूषण उनके सौन्दर्य से विभूषित थे । उन श्रेष्ठ परमेश्वर और सुन्दरी परमेश्वरी का दर्शन करके सब देवताओं को बड़ा आश्चर्य हुआ । उनके सम्पूर्ण मनोरथ पूरे हो गये थे । अतः उन सब देवताओं ने पुनः भगवान् की स्तुति आरम्भ की ।

❀ ब्रह्मोवाच ❀

तव चरणसरोजे मन्मनश्चञ्चरीको भ्रमतु सततमीश प्रेमभक्त्या सरोजे ।
भवनमरणरोगात् पाहि शान्त्यौषधेन सुदृढसुपरिपक्वां देहि भक्तिं च दास्यम् ।।

ब्रह्माजी बोले–परमेश्वर ! मेरा चित्तरूपी चञ्चरीक (भ्रमर) आपके चरणारविन्द में निरन्तर प्रेम-भक्तिपूर्वक भ्रमण करता रहे । शांतिरूपी औषध देकर मेरी जन्म-मरण के रोग से रक्षा कीजिये तथा मुझे सुदृढ एवं अत्यन्त परिपक्व भक्ति और दास्यभाव दीजिये ।

❀ शंकर उवाच ❀

भवजलनिधिमग्नश्चित्तमीनो मदीयो भ्रमति सततमस्मिन् घोरसंसारकूपे ।
विषयमतिविनिन्द्यं सृष्टिसंहाररूपमपनय तव भक्तिं देहि पादारविन्दे ।।

भगवान् शंकर ने कहा–प्रभो ! भवसागर में डूबा हुआ मेरा चित्तरूपी मत्स्य सदा ही इस घोर संसाररूपी कूप में चक्कर लगाता रहता है । सृष्टि और संहार यही इसका अत्यन्त निन्दनीय विषय है । आप इस विषय को दूर कीजिये और अपने चरणारविन्दों की भक्ति दीजिये ।

❀ धर्म उवाच ❀

तव निजजनसार्द्धं संगमो मे मदीश ! भवतु विषयबन्धच्छेदने तीक्ष्ण खड्गः ।
तव चरणसरोजे स्थानदानैकहेतुर्जनुषि भक्तिं देहि पादारविन्दे ।।

धर्म बोले- मेरे ईश्वर ! आपके आत्मीयजनों (भक्तों) के साथ मेरा सदा समागम होता रहे, जो विषयरूपी बन्धन को काटने के लिये तीखी तलवार का काम देता है तथा आपके चरणारविन्दों में स्थान दिलाने का एक मात्र हेतु है । आप जन्म-जन्म में मुझे अपने चरणारविन्दों की भक्ति प्रदान कीजिये ।

भगवान् नारायण कहते हैं–इस प्रकार स्तुति करके पूर्णमनोरथ हुए वे तीनों देवता कामनाओं की पूर्ति करने वाले श्रीराधावल्लभ के सामने खड़े हो गये । देवताओं की यह स्तुति सुनकर कृपानिधान श्रीकृष्ण के मुखारविन्द पर मन्द मुस्कान खिल उठी । वे उनसे हितकर एवं सत्य वचन बोले ।

श्रीकृष्ण ने कहा–तुम सब लोग इस समय मेरे धाम में पधारे हो । यहाँ तुम्हारा स्वागत है, स्वागत है । शिव के आश्रय में रहने वाले लोगों का तो कुशल पूछना उचित नहीं है । यहाँ आकर तुम निश्चिंत हो जाओ । मेरे रहते तुम्हें क्या चिन्ता है ? मैं समस्त जीवों के भीतर विराजमान हूँ; परन्तु स्तुति से ही प्रत्यक्ष होता हूं । तुम्हारा जो अभिप्राय है, वह सब मैं निश्चित रूप से जानता हूं । देवताओं ! शुभ, अशुभ जो भी कर्म है, वह समय पर ही होगा । बड़ा और छोटा सब कार्य काल से ही सम्पन्न होता है । वृक्ष अपने-अपने समय पर ही सदा फूलते और फलते हैं । समय पर ही उनके फल पकते हैं । और समय पर ही कच्चे फलों से युक्त होते हैं । सुख:दुख:, सम्पत्ति-विपत्ति, शोक-चिन्ता तथा शुभ-अशुभ–सब अपने-अपने कर्म का फल हैं और सभी समय पर ही उपस्थित होते हैं । तीनों लोकों में न तो कोई किसी का प्रिय है और न अप्रिय ही है । समय आने पर कार्यवश सभी लोग अप्रिय अथवा प्रिय होते हैं । तुम लोगों ने देखा है, पृथ्वी पर बहुत से राजा और मनु हुए और वे सभी अपने-अपने कर्मों के फल के परिपाक से काल के

अधीन हो गये । तुम लोगों का यहाँ गोलोक में जो एक क्षण व्यतीत हुआ है, उतने में ही पृथ्वी पर सात मन्वन्तर बीत गये । सात इन्द्र समाप्त हो गये । इस समय आठवें इन्द्र चल रहे हैं । इस प्रकार मेरा कालचक्र दिन-रात भ्रमण करता रहता है । इन्द्र, मनु तथा राजा सभी लोग काल के वशीभूत हो गये । उनकी कीर्ति, पृथ्वी, पुण्य और पाप की कथा मात्र शेष रह गयी है । इस समय भी भूमिपर बहुत से राजा दुष्ट और भगवन्निन्दक हैं । उनके बल और पराक्रम महान् हैं । परन्तु समयानुसार वे सब के सब कालान्तक यम के ग्रास हो जायेंगे । यह काल इस समय भी मेरी आज्ञा से उपस्थित है । वायु मेरी आज्ञा मानकर ही निरन्तर बहती रहती है । मेरी आज्ञा से ही आग जलती और सूर्य तपते हैं । देवताओं ! मेरी आज्ञा से ही सब शरीर में रोग निवास करते हैं । समस्त प्राणियों में मृत्यु का संचार होता है तथा वे समस्त जलधर वर्षा करते हैं । मेरे शासन से ही ब्राह्मण ब्राह्मणत्व में, तपोधन तपस्या में, ब्रह्मर्षि ब्रह्म में और योगी योग में निष्ठा रखते हैं । वे सब के सब मेरे भय से भीत होकर ही स्वधर्म-कर्म के पालन में तत्पर हैं । जो मेरे भक्त हैं, वे सदा निःशङ्क रहते हैं; क्योंकि वे कर्म का निर्मूलन करने में समर्थ हैं ।

देवताओं ! मैं काल का भी काल हूं । विधाता का भी विधाता हूं । संहारकारीका भी संहारक तथा पालक का भी पालक परात्पर परमेश्वर हूँ । मेरी आज्ञा से ये शिव संहार करते हैं; इसलिये इनका नाम 'हर' है । तुम मेरे आदेश से सृष्टि के लिये उद्यत रहते हो; इसलिये 'विश्वस्रष्टा' कहलाते हो और धर्म देव रक्षा के कारण ही 'पालक' कहलाते हैं । ब्रह्मा से लेकर तृणपर्यन्त सबका ईश्वर मैं ही हूं । मैं ही कर्म फल का दाता तथा कर्मों का निर्मूलन करने वाला हूं । मैं जिनका संहार करना चाहूं, उनकी रक्षा कौन कर सकता है ? तथा मैं जिनका पालन करूं, उनको मारने वाला भी कोई नहीं है । मैं सबका सृजन, पालन और संहार करता हूं । परंतु मेरे भक्त नित्य देही हैं । उनके संहार में मैं भी समर्थ नहीं हूं । भक्त सदा मेरे पीछे चलते हैं और मेरे चरणों की आराधना में तत्पर रहते हैं; अतः मैं भी सदा भक्तों के निकट उनकी रक्षा के लिये मौजूद रहता हूं । ब्रह्माण्ड में सभी नष्ट होते और बारंबार जन्म लेते हैं; परंतु मेरे भक्तों का नाश नहीं होता है । वे सदा निःशङ्क और निरापद रहते हैं । इसीलिये समस्त विद्वान् पुरुष मेरे दास्य भाव की अभिलाषा रखते हैं; दूसरे किसी वर की नहीं । जो मुझ से दास्य भाव की याचना करते है, वे धन्य हैं । दूसरे सब के सब वंचित हैं । जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, भय और यमयातना–ये सारे कष्ट दूसरे-दूसरे कर्म-परायण लोगों को प्राप्त होते हैं; मेरे भक्तों को नहीं । मेरे भक्त पाप या पुण्य किसी भी कर्म में लिप्त नहीं होते हैं । मैं उनके कर्म भोगों का निश्चय ही नाश कर देता हूं । मैं भक्तों का प्राण हूं और भक्त भी मेरे लिये प्राणों के समान हैं । जो नित्य मेरा ध्यान करते हैं, उनको मैं दिन-रात स्मरण करता हूं ।

अहं प्राणाश्च भक्तानां भक्ताः प्राणा ममापि च ।
ध्यायन्ति ये च मां नित्यं तां स्मरामि दिवानिशम् ।।
(श्रीकृष्ण जन्म खण्ड ६/५४)

सोलह अरों से युक्त अत्यंत तीखा सुदर्शन नामक चक्र महान् तेजस्वी है । सम्पूर्ण जीवधारियों में जितना भी तेज है, वह सब उस चक्र के तेज के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं है । उस अभीष्ट चक्र को भक्तों के निकट उनकी रक्षा के लिये नियुक्त करके भी मुझे प्रतीति नहीं होती; इसलिये मैं स्वयं भी उनके पास जाता हूं । तुम सब देवता और प्राणाधिका लक्ष्मी भी मुझे भक्त से बढ़कर प्यारी नहीं है । देवेश्वरों ! भक्तों का भक्ति पूर्वक दिया हुआ जो द्रव्य है, उसको मैं बड़े प्रेम से ग्रहण करता हूं, परंतु अभक्तों की दी हुई कोई भी वस्तु मैं नहीं खाता । निश्चय ही उसे राजा बलि ही भोगते हैं । जो अपने स्त्री-पुत्र आदि स्वजनों को त्याग कर दिन-रात मुझे ही याद करते हैं, उनका स्मरण मैं भी तुम लोगों को त्यागकर अहर्निश किया करता हूं । जो लोग भक्तों, ब्राह्मणों तथा गौओं से द्वेष रखते हैं, यज्ञों और देवताओं की हिंसा करते हैं, वे शीघ्र ही उसी तरह नष्ट हो जाते हैं, जैसे प्रज्वलित अग्नि में तिनके । जब मैं उनका घातक बनकर उपस्थित होता हूं, तब कोई भी उनकी रक्षा नहीं कर पाता ।

स्त्रीपुत्रस्वजनांस्त्यक्त्वा ध्यायन्ति मामहर्निशम् ।
युष्मान् विहाय तान् नित्यं स्मराम्यहमहर्निशम् ।।
द्वेष्टा सदा में भक्तानां ब्राह्मणानां गवामपि । क्रतूनां देवतानां च हिंसाँ कुर्वन्ति निश्चितम् ।।
तदाचिरं ते नश्यन्ति यथा वह्नौ तृणानि च । न कोऽपि रक्षिता तेषां मयि हन्तर्युपस्थिते ।।
, (श्रीकृष्ण जन्म खण्ड ६/६१-६२)

देवताओ ! मैं पृथ्वी पर जाऊँगा । अब तुम लोग भी अपने स्थान को पधारो और शीघ्र ही अपने अंश रूप से भूतल पर अवतार लो ।

ऐसा कह कर जगदीश्वर श्रीकृष्ण ने गोपों और गोपियों को बुलाकर मधुर, सत्य एवं समयोचित बातें कहीं–'गोपों और गोपियों ! सुनो । तुम सब के सब नंदरायजी का

जो उत्कृष्ट व्रज है, वहाँ जाओ (उस व्रज में अवतार ग्रहण करो)। राधिके! तुम भी शीघ्र ही वृषभानु के घर पधारो। वृषभानु की प्यारी स्त्री बड़ी साध्वी है। उनका नाम कलावती है। वे सुबल की पुत्री हैं और लक्ष्मी के अंश से प्रकट हुई हैं। वास्तव में वे पितरों की मानसी कन्या हैं तथा नारियों में धन्या और मान्या समझी जाती हैं। पूर्वकाल में दुर्वासा के शाप से उनका व्रजमण्डल में गोप के घर में जनम हुआ है। तुम उन्हीं कलावती की पुत्री होकर जन्म ग्रहण करो। अब शीघ्र नन्दव्रज में जाओ। कमलानने! मैं बालकरूप से वहाँ आकर तुम्हें प्राप्त करूंगा। राधे! तुम मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी हो और मैं भी तुम्हें प्राणों से भी बढ़कर प्यारा हूं। हम दोनों का कुछ भी एक दूसरे से भिन्न नहीं है। हम सदैव एक रूप हैं।

मुने! यह सुनकर श्रीराधा प्रेमसे विह्वल होकर वहां रो पड़ी और अपने नेत्र-चकोरों द्वारा श्रीहरि के मुखचन्द्र की सौन्दर्य-सुधा का पान करने लगीं। 'गोपों और गोपियों! तुम भूतल पर श्रेष्ठ गोपों के शुभ घर-घर में जन्म लो।' श्रीकृष्ण की यह बात पूरी होते ही वहाँ सब लोगों ने देखा, एक उत्तम रथ (विमान) आ गया। वह श्रेष्ठ मणिरत्नों के सारतत्त्व तथा हीरक से विभूषित था। लाखों श्वेत चंवर तथा दर्पण उसकी शोभा बढा रहे थे। वह अग्निशुद्ध सूक्ष्म गेरुए वस्त्रों से सजाया गया था। श्रेष्ठ रत्नों के बने हुए सहस्रों कलश उसकी श्रीवृद्धि कर रहे थे। पारिजात पुष्पों के हारों से उस विमान को सुसज्जित किया गया था। सोने का बना हुआ वह सुन्दर विमान अनुपम तेज:पुंजमय दिखायी देता था। उससे सैकडों सूर्यों के समान प्रकाश फैल रहा था तथा उस विमान पर बहुत से श्रेष्ठ पार्षद बैठे हुए थे। उस विमान में एक श्यामसुन्दर कमनीय पुरुष दृष्टि गोचर हुए, जिनके चार हाथों में शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पा रहे थे। उन श्रेष्ठ पुरुष ने पीताम्बर पहन रखा था। उनके मस्तक पर किरीट, कानों में कुण्डल और वक्ष:स्थल पर वनमाला शोभा दे रही थी। उनके श्रीअङ्ग चंदन, अगुरु, कस्तूरी और केसर के अङ्गराग से अलंकृत थे। चार भुजाएँ और मुस्कराता हुआ मनोहर मुख देखने ही योग्य थे। भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये वे आकुल दिखायी देते थे। श्रेष्ठ मणिरत्नों के सारातिसार तत्व से बने हुए आभूषण उनके अङ्गों की शोभा बढा रहे थे। उनके वाम भाग में सुरम्य शरीर वाली शुक्ल वर्णा, मनोहरा, ज्ञानरूपा एवं विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती दिखायी दीं, जिनके हाथों में वेणु, वीणा और पुस्तक थीं। वे भी भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये कातर जान पड़ती थी। उन महानारायण के दाहिने भाग में शरत्काल के चंद्रमा कीसी प्रभा तथा तपाये हुए सुवर्ण की भांति कान्ति से प्रकाशमान परम मनोहरा और रमणीया देवी लक्ष्मी दृष्टि गोचर हुईं, जिनके मुखारविन्द पर मन्द मुस्कान खेल रही थीं। उनके सुन्दर कपोल उत्तम रत्नमय कुण्डलों से जगमगा रहे थे। बहुमूल्य रत्न, महामूल्यवान् वस्त्र उनके श्रीअङ्गों की शोभा बढ़ाते थे। अमूल्य रत्नों द्वारा निर्मित बाजूबंद और कंगन उनकी भुजाओं की वृद्धि कर रहे थे। श्रेष्ठ रत्नों के सारतत्व के बने हुए मञ्जीर अपनी मधुर झनकारें फैला रहे थे। पारिजात के फूलों की मालाओं से वक्ष:स्थल उज्ज्वल दिखायी देता था। उनकी वेणी प्रफुल्ल मालती की मालाओं से अलंकृत थी। सुन्दरी रमा का मनोहर मुख शरत्काल के चन्द्रमा की प्रभा को छीन लेता था। उनके भाल देश में कस्तूरी बिन्दु से युक्त सिन्दूर का तिलक शोभा दे रहा था। शरत्काल के प्रफुल्ल कमलों के समान नेत्रों में मनोहर काजल की रेखा शोभायमान थी। उनके हाथ में सहस्र दलों से संयुक्त लीलाकमल सुशोभित होता था। वे अपनी ओर देखने वाले नारायणदेव को तिरछी चितवन से निहार रही थीं। पत्नियों और पार्षदों के साथ शीघ्र ही विमान से उतर कर वे नारायण देव गोप-गोपियों से भरी हुई उस रमणीय सभा में जा पहुंचे। उन्हें देखते ही ब्रह्मा आदि देवता, गोप और गोपी सब के सब सानन्द उठकर खड़े हो गये। सबके हाथ जुड़े हुए थे। देवर्षिगण सामवेदोक्त स्तोत्र-द्वारा उनकी स्तुति करने लगे। उसकी स्तुति समाप्त होने पर नारायणदेव आगे जाकर श्रीकृष्ण विग्रह में विलीन हो गये। यह परम आश्चर्य की बात देखकर सबको बड़ा विस्मय हुआ।

इसी समय वहाँ एक दूसरा सुवर्णमय रथ आ पहुंचा। उससे जगत् का पालन करने वाले त्रिलोकीनाथ विष्णु स्वयं उतर कर उस सभा में आये। उनके चार भुजाएँ थीं। वनमाला से विभूषित पीताम्बरधारी सम्पूर्ण अलंकारों की शोभा से सम्पन्न तथा करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान श्रीमान् विष्णु बड़े मनोहर दिखायी देते थे। वे मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। मुने! उन्हें देखते ही सब लोग उठकर खड़े हो गये। सबने प्रणाम करके उनका स्तवन किया। तत्पश्चात् वे भी वहीं श्रीराधिकावल्लभ श्रीकृष्ण के शरीर में लीन हो गये। यह दूसरा महान् आश्चर्य देख कर उन सब को बड़ा विस्मय हुआ।

श्वेत द्वीप निवासी श्रीविष्णु के श्रीकृष्ण विग्रह में विलीन हो जाने के बाद वहाँ तुरत ही शुद्ध स्फटिक मणि के समान गौरवर्ण वाले संकर्षण नामक पुरुष पधारे। वे बड़ी उतावली में थे। उनके सहस्रों मस्तक थे तथा वे सौ सूर्यों के समान देदीप्यमान हो रहे थे। उनको आया देख सबने उन विष्णु स्वरूप संकर्षण का स्तवन किया। नारद! उन्होंने

भी वहाँ आकर मस्तक झुकाकर राधिकेश्वर को स्तुति की तथा सहस्रों मस्तकों द्वारा भक्ति भाव से उनको प्रणाम किया। तत्पश्चात् धर्म के पुत्र-स्वरूप हम दोनों भाई नर और नारायण वहाँ गये। मैं तो श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में लीन हो गया। किन्तु नर अर्जुन के रूप में दृष्टिगोचर हुआ। फिर ब्रह्मा, शिव, शेष और धर्म–ये चारों वहाँ एक स्थान पर खड़े हो गये।

इस बीच में देवताओं ने वहाँ दूसरा उत्तम रथ देखा, जो सुवर्ण के सारतत्व का बना हुआ था और नाना प्रकार रत्ननिर्मित उपकरणों से अलंकृत था। वह श्रेष्ठ मणियों के सारतत्व से संयुक्त, अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्र से सुसज्जित, श्वेत चँवर तथा दर्पणों से अलंकृत, सद्रत्न-सारनिर्मित कलश-समूह से विराजमान, पारिजात पुष्पों के मालाजाल से सुशोभित, सहस्र पहियों से युक्त, मन के समान तीव्रगामी और मनोहर था। ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न कालिक मार्तण्ड की प्रभा को तिरस्कृत करने वाला वह श्रेष्ठ विमान मोती, माणिक्य और हीरों के समूह से जाज्वल्यमान जान पड़ता था। उसमें विचित्र पुतलियों, पुष्प, सरोवरों और काननों से उसकी अद्भुत शोभा हो रही थी। मुने ! वह देवताओं और दानवों के रथों से बहुत बड़ा था। भगवान् शंकर की प्रसन्नता के लिये विश्वकर्मा ने यत्नपूर्वक उस दिव्य रथ का निर्माण किया था। वह पचास योजन ऊँचा और चार योजन विस्तृत था। रति शय्या से युक्त सैकड़ों प्रासाद उसकी शोभा बढाते थे। उस विमान में बैठी हुई मूल-प्रकृति ईश्वरी देवी दुर्गा को भी देवताओं ने देखा, जो रत्नमय अलंकारों से विभूषित थीं और अपनी दिव्य दीप्ति से तपाये हुए सुवर्ण के सार भाग की प्रभा का अपहरण कर रही थीं। उन अनुपम तेजःस्वरूपा देवी के सहस्रों भुजाएँ थीं और उनमें भाँति-भाँति के आयुद्ध शोभा पा रहे थे। उनके प्रसन्न मुखपर मन्द हास की छटा छा रही थी। वे भक्तों पर कृपा करने के लिये कातर दिखायी देती थी। उनके गण्डस्थल और कपोल उत्तम रत्नमय कुण्डलों से उद्भासित हो रहे थे। रत्नेन्द्रसार रचित तथा मधुर झनकार से युक्त मञ्जीरों के कारण उनके चरणों की अपूर्व शोभा हो रही थी। श्रेष्ठ मणिनिर्मित मेखला से मण्डित मध्यप्रदेश अत्यन्त मनोहर दिखायी देता था। हाथों में श्रेष्ट रत्न सार के बने हुए केयूर और कंकण शोभा दे रहे थे। मन्दार-पुष्पों की मालाओं से अलंकृत वक्षःस्थल अत्यन्त उज्ज्वल जान पड़ता था। शरत्काल के सुधाकर की आभा को तिरस्कृत करने वाले सुन्दर मुख से उनकी मनोहरता और बढ़ गयी थी। काजल की काली रेखा से युक्त नेत्र शरत्काल के प्रफुल्ल नील कमलों की शोभा को लज्जित कर रहे थे। चन्दन, अगुरु, तथा कस्तूरी द्वारा रचित चित्र पत्र के उनके भाल और कपोलों को विभूषित कर रहे थे। नूतन बन्धुजीव-पुष्प के समान आभा वाले लाल-लाल ओठ के कारण उनके मुखकी शोभा और भी बढ गयी थी। उनकी दन्तावली मोतियों की पाँत की प्रभा को लूटे लेती थी। प्रफुल्ल मालती की माला से अलंकृत वेणी धारण करने वाली वे देवी बड़ी ही सुन्दर थीं। गरुड़ की चोंच के समान नुकीली नासिका के अग्रभाग में लटकती हुई गजमुक्ता की बुलाक अपूर्व छटा बिखेर रही थी। अग्निशुद्ध एवं अत्यन्त दीप्तिमान वस्त्रों से वे उद्भासित हो रही थीं और दोनों पुत्रों के साथ सिंह की पीठ पर बैठी थीं। उस रथ से उतर कर पुत्रों सहित देवी ने शीघ्रतापूर्वक श्रीकृष्ण को प्रणाम किया। फिर वे एक श्रेष्ठ आसन पर बैठ गयीं। इसके बाद गणेश और कार्तिकेय ने परात्पर श्रीकृष्ण, शंकर, धर्म, संकर्षण तथा ब्रह्माजी को नमस्कार किया। उन दोनों देवेश्वरों को निकट आया देख वे सब देवता उठकर खड़े हो गये। उन्होंने आशीर्वाद दिया और दोनों को अपने पास बिठा लिया। देवता बड़ी प्रसन्नता के साथ श्री गणेश और कार्तिकेय के साथ उत्तम वार्तालाप करने लगे। उस समय देवता और देवी उस सभा में श्रीहरि के सामने बैठ गये। उन्हें देख बहु-संख्यक गोप और गोपियाँ आश्चर्य से चकित हो रही थीं। तदनन्तर श्रीकृष्ण के मुखारविन्द पर मुस्कराहट खेलने लगी। वे लक्ष्मी से बोले– 'सनातनि देवी ! तुम नाना रत्नों से सम्पन्न भीष्मक के राज-भवन में जाओ और वहाँ विदर्भ देश की महारानी के उदर से जन्म धारण करो। साध्वी देवी ! मैं स्वयं कुण्डिनपुर में जाकर तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा।'

वे रमा आदि देवियाँ पार्वती को देखकर शीघ्र हो उठ खड़ी हो गयीं। उन्होंने ईश्वरी को रमणीय रत्न-सिंहासन पर बिठाया। विप्रवर नारद ! पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती-ये तीनों देवियाँ परस्पर यथोचित कुशल-प्रश्न करके वहाँ एक आसन पर बैठीं। वे प्रेम-पूर्वक गोप-कन्याओं से वार्तालाप करने लगीं। कुछ गोपियाँ बड़ी प्रसन्नता के साथ उनके निकट बैठ गयी। इसी समय जगदीश्वर श्रीकृष्ण ने वहाँ पार्वती से कहा–'सृष्टि और संहार करनेवाली कल्याणमयी महामायास्वरूपिणी देवि ! शुभे ! तुम अंशरूप से नन्द के के व्रज में जाओ और वहां नन्द के घर यशोदा के गर्भ में जन्म धारण करो। मैं भूतल पर गाँव गाँव में तुम्हारी पूजा करवाऊँगा। समस्त भूमण्डल में, नगरों और वनों में मनुष्य वहाँ की अधिष्ठात्री देवी के रूप में भक्तिभाव से तुम्हारी पूजा करेंगे और आनन्द-पूर्वक नाना प्रकार के द्रव्य तथा दिव्य उपहार तुम्हें अर्पित करेंगे। शिवे ! तुम ज्यों ही भूतल का स्पर्श करोगी, त्यों ही मेरे पिता वसुदेव यशोदा के सूतिकागार में जाकर मुझे वहाँ स्थापित कर देंगे और तुम्हें लेकर चले जायँगे। कंसका साक्षात्कार होने मात्र से

तुम पुनः शिव के समीप चली आओगी और मैं भूतल का भार उतारकर अपने धाम में आ जाऊँगा ।

ऐसा कहकर श्रीकृष्ण तुरन्त ही छः मुख वाले स्कन्ध से बोले—वत्स सुरेश्वर ! तुम अंशरूप से भूतल पर जाओ और जाम्बवती के गर्भ से जन्म ग्रहण करो । सब देवता अपने अंश से पृथ्वी पर जायँ और जन्म लें । मैं निश्चय ही पृथ्वी का भार हरण करूँगा ।

नारद ! ऐसा कहकर राधिकानाथ श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठे । फिर देवता, देवियाँ, गोप और गोपियाँ भी बैठ गयीं । इसी बीच में ब्रह्माजी श्रीहरि के सामने उठकर खड़े हो गये और हाथ जोड़कर विनयपूर्वक उन जगदीश्वर से बोले ।

ब्रह्माजी ने कहा—प्रभो ! इस सेवक के निवेदन पर ध्यान दीजिये । महाभाग ! आज्ञा कीजिये कि भूतल पर किसके लिये कहाँ स्थान होगा । स्वामी ही सदा सेवकों का भरण पोषण और उद्धार करने वाला है । सेवक वही है जो सदा भक्तिभाव से प्रभु की आज्ञा का पालन करता है । कौन देवता किस रूप से अवतार लेंगे ? देवियाँ भी किस कला से अवतीर्ण होंगी ? भूतल पर कहाँ किसका निवास-स्थान होगा ? और वह किस नाम से ख्याति प्राप्त करेगा ?

ब्रह्माजी की यह बात सुनकर जगदीश्वर श्रीकृष्ण ने इस प्रकार उत्तर दिया ।

श्रीकृष्ण बोले—ब्रह्मन् ! जिसके लिये जहाँ स्थान होगा, वह विधिवत् बता रहा हूँ, सुनो । कामदेव रुक्मिणी के पुत्र होंगे तथा शम्बरासुर के घर में जो छायारूप से स्थित है, वह सती मायावती के नाम से प्रसिद्ध रति उनकी पत्नी होगी । तुम उन्हीं रुक्मिणी-नन्दन प्रद्युम्न के पुत्र होओगे और तुम्हारा नाम अनिरुद्ध होगा । भारती शोणितपुर में जाकर बाणासुर की पुत्री होगी । जगदीश्वर अनन्त देवकी के गर्भ से आकृष्ट हो रोहिणी के गर्भ से जन्म लेंगे । माया द्वारा उस गर्भ का संकर्षण होने से उसका नाम 'संकर्षण' होगा । सूर्यतनया यमुना गङ्गा के अंश के साथ भूतल पर कालिन्दी नामवाली पटरानी होंगी । तुलसी आधे अंश से राजकन्या लक्ष्मणा के रूप में अवतीर्ण होगी । वेदमाता सावित्री नग्नजित् की पुत्री सती सत्या के नाम से प्रसिद्ध होंगी । वसुधा सत्यभामा और देवी सरस्वती शैब्या होंगी । रोहिणी राजकन्या मित्रविन्दा होंगी । सूर्य पत्नी संज्ञा अपनी कला से जगद्गुरु की पत्नी रत्नमाला होंगी । स्वाहा एक अंश से सुशीला के रूप में अवतीर्ण होंगी । ये रुक्मिणी आदि नौ स्त्रियाँ हुई । इसके अतिरिक्त पार्वती अपने आधे अंश से जाम्बवती होंगी । ये दस पटरानियाँ बतायी गयी हैं ।

समस्त देवताओं के अंश भूतलपर जायँ । ब्रह्मन् ! वे राजकुमार होकर युद्ध में मेरे सहायक बनेंगे । कमलाकी कला से सोलह हजार राजकन्याएँ प्रकट होंगी, वे सब की सब मेरी रानियाँ बनेंगी । वे धर्मदेव अंशरूप से पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर होंगे । वायु के अंश से भीमसेन का और इन्द्र के अंश से साक्षात् अर्जुन का प्रादुरभाव होगा । अश्विनीकुमारों के अंश से नकुल और सहदेव प्रकट होंगे । सूर्य का अंश वीरवर कर्ण होगा और साक्षात् यमराज विदुर होंगे । कलिका अंश दुर्योधन, समुद्र का अंश शान्तनु, शंकर का अंश अश्वत्थामा और अग्नि का अंश द्रोण होगा । चन्द्रमा का अंश अभिमन्यु के रूप में प्रकट होगा । स्वयं वसु देवता भीष्म होंगे । कश्यप के अंश से वसुदेव और अदिति के अंश से देवकी होंगी । वसु के अंश से नन्द-गोप का प्रादुर्भाव होगा । वसु की पत्नी यशोदा होंगी । कमला के अंश से द्रोपदी होंगी, जिनका प्रादुर्भाव यज्ञ-कुण्ड से होगा । अग्नि के अंश से महाबली धृष्टद्युम्न का जन्म होगा । शतरूपा के अंश से सुभद्रा होंगी, जिनका जन्म देवकी के गर्भ से होगा । देवतालोग भारहारी होकर अपने अंश से पृथ्वी पर अवतीर्ण हों । इसी प्रकार देवपत्नियाँ भी अपनी कला से भूतल पर पधारें ।

नारद ! ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण चुप हो गये । वह सारा विवरण सुनकर प्रजापति ब्रह्मा वहाँ अपने स्थान पर जा बैठे । देवर्षे ! श्रीकृष्ण के वामभाग में वाग्देवी सरस्वती थीं । दाहिने भाग में लक्ष्मी थीं । अन्य सब देवता और पार्वतीदेवी सामने थीं । गोप और गोपियाँ भी उनके सम्मुख ही बैठी थीं । श्रीराधा श्यामसुन्दर के वक्षःस्थल में विराजमान थीं । इसी समय व्रजेश्वरी राधा अपने प्रियतम से बोलीं ।

राधिका ने कहा— नाथ ! मैं कुछ कहना चाहती हूं । प्रभो ! इस दासी की बात सुनो । मेरे प्राण चिन्ता से निरन्तर जल रहे हैं, चित्त चंचल हो रहा है । तुम्हारी ओर देखते समय मैं पल भर के लिए आँख बंद करने या पलक मारने में भी असमर्थ हो जाती हूँ । फिर प्राणनाथ ! तुम्हारे बिना भूतलपर अकेली कैसे जाऊँगी ? प्राणेश्वर! जीवन-बन्धो ! सच बताओ, वहाँ गोकुल में कितने काल के पश्चात् तुम्हारे साथ मेरा अवश्य मिलन होगा । तुम्हें देखे बिना एक निमेष भी मेरे लिये सौ युगों के समान प्रतीत होगा । वहाँ मैं किसे देखूँगी ? कहाँ जाऊँगी ? और कौन मेरी रक्षा करेगा ? प्राणेश ! तुम्हारे सिवा दूसरे किसी पिता, माता, भाई, बन्धु, बहिन अथवा पुत्र का मैं क्षणभर भी चिन्तन नहीं करती हूँ । मायापते ! यदि तुम भूतल पर मुझे भेजकर माया से आच्छन्न कर देना

चाहते हो, वैभव देकर भुलाना चाहते हो तो मेरे समक्ष सच्ची प्रतीज्ञा करो । मधुसूदन ! मेरा मनरूपी मधुप तुम्हारे मकरन्दयुक्त चरणारविन्द में ही नित्य-निरन्तर भ्रमण करता रहे । जहां जहां जिस योनि में भी मेरा यह जन्म हो, वहां-वहां तुम मुझे अपना स्मरण एवं मनोवांछित दास्य-भाव प्रदान करोगे । मैं भूतलपर कभी भी इसबात को न भूलूँ कि तुम मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण हो, मैं तुम्हारी प्रेयसी राधिका हूँ तथा हम दोनों का प्रेम-सौभाग्य शाश्वत है । प्रभो ! यह उत्तम वर मुझे अवश्य दो । जैसे शरीर छाया के साथ और प्राण शरीर के साथ रहते है, उसी प्रकार हम दोनों का जन्म एवं जीवन एक दूसरे के साथ बीते । विभो ! यह श्रेष्ठ वर मुझे दे दो । भगवान् ! भूतल पर पहुंच कर भी कहीं हम दोनों का पलभर के लिये भी वियोग न हो । यह वर मुझे दो हरे ! मेरे प्राणों से ही तुम्हारा शरीर निर्मित हुआ है–मेरे प्राण तुम्हारे श्रीअङ्गों से विलग नहीं हैं । मेरी इस धारणा का कौन निवारण कर सकता है ? मेरे शरीर से ही तुम्हारी मुरली बनी हैं और मेरे मन से ही तुम्हारे चरणों का निर्माण हुआ है । तात्पर्य यह कि मैं तुम्हारी मुरली को अपना शरीर मानती हूँ और मेरा मन तुम्हारे चरणों से कभी विलग नहीं होता है । संसार में कितने ही ऐसे स्त्री-पुरुष हैं, जो सामने एक-दूसरे की स्तुति करते हैं परन्तु कहीं भी अपने प्रियतम में निरन्तर आसक्त रहने वाली मुझ जैसी प्रेयसी नहीं है । तुम्हारे शरीर के आधे भाग से किसने मेरा निर्माण किया है ? हम दोनों में भेद है ही नहीं । अतः मेरा मन निरन्तर तुम्हीं में लगा रहता है । मेरी आत्मा, मेरा मन और मेरे प्राण जिस तरह तुम में स्थापित हैं, उसी तरह तुम्हारे मन, प्राण और आत्मा भी मुझ में ही स्थापित हैं । अतः विरह की बात कान में पड़ते ही आँखों का पलक गिरना बन्द हो गया है और हम दोनों आत्माओं के मन, प्राण निरन्तर दग्ध हो रहे हैं ।

श्रीकृष्ण बोले–देवि ! उत्तम आध्यात्मिक योग शोक का उच्छेद करने वाला होता है । अतः उसे बताता हूँ, सुनो । यह योग योगीन्द्रों के लिये भी दुर्लभ है । सुन्दरी ! देखो, सारा ब्रह्माण्ड आधार और आधेय के रूप में विभक्त है । इनमें भी आधार से पृथक आधेय की सत्ता संभव नहीं है । फल का आधार है फूल, फूल का आधार है पल्लव, पल्लव का आधार है तना या डाली तथा उसका भी आधार स्वयं वृक्ष है । वृक्ष का आधार अंकुर है, जो बीज की शक्ति से सम्पन्न होता है । उस अंकुर का आधार बीज है, बीज का आधार पृथ्वी है,पृथ्वी के आधार शेषनाग है । शेष के आधार कच्छप हैं, कच्छप का आधार वायु है और वायु का आधार मैं हूँ । मेरी आधार स्वरूपा तुम हो; क्योंकि मैं सदा तुमसे ही स्थित रहता हूँ । तुम शक्तियों का समूह और मूलप्रकृति ईश्वरी हो । शरीररूपिणी तथा त्रिगुणाधार-स्वरूपिणी भी तुम्हीं हो । मैं तुम्हारा आत्मा निरीह हूँ । तुम्हारा संयोग प्राप्त करके ही चेष्टावान् होता हूं । शरीर के बिना आत्मा कहाँ ? और आत्मा के बिना शरीर कहाँ ? देवि ! शरीर और आत्मा दोनों की प्रधानता है । बिना दो के संसार कैसे चल सकता ? राधे ! हम दोनों में कहीं भेद नहीं हैं; जहाँ आत्मा है, वहाँ शरीर है । वे दोनों एक दूसरे से अलग नहीं है ।

जैसे दूध में धवलता, अग्नि में दाहिका शक्ति, पृथ्वी में गन्ध और जल में शीतलता है, उसी तरह तुम में मेरी स्थिति है । धवलता और दुग्ध में, दाहिका शक्ति और अग्नि में, पृथ्वी और गन्ध में तथा जल और शीतलता में जैसे ऐक्य (भेदभाव) है, उसी तरह हम दोनों में भेद नहीं है । मेरे बिना तुम निर्जीव हो और तुम्हारे बिना मैं अदृश्य हूँ । सुन्दरि ! तुम्हारे बिना मैं संसार की सृष्टि नहीं कर सकता, यह निश्चिय बात है । ठीक उसी तरह, जैसे कुम्हार मिट्टी के बिना घड़ा नहीं बना सकता और सुनार सोने के बिना आभूषणों का निर्माण नहीं कर सकता । स्वयं आत्मा जैसे नित्य है, उसी प्रकार साक्षात् प्रकृति स्वरूपा तुम नित्य हो । तुममें सम्पूर्ण शक्तियों का समाहार संचित है । तुम सबकी आधारभूता और सनातनी हो ।

❋

यथा क्षीरे च धावल्यं दाहिका च हुताशने । भूमौ गंधो जले शैत्यं तथा त्वयि मम स्थितिः।।
धावल्यदुग्धयोरैक्यं दाहिकानलयोर्यथा । भूगन्धजलशैत्यानां नास्ति भेदास्तथाऽऽवयोः ।।
मया विना त्वँ निर्जीवा चादृश्योऽहं त्वया विना ।
त्वया विना भवं कर्तुं नालं सुन्दरि निश्चितम् ।।
विना मृदा घटं कर्तुं यथा नालं कुलालकः । विना स्वर्णं स्वर्णकारोऽलकारं कर्तुमक्षमः ।।
स्वयमात्मा यथा नित्यस्तथा त्वं प्रकृतिः स्वयम् । सर्वशक्तिसमायुक्ता सर्वाधारा सनातनी ।।
(श्रीकृष्ण जन्म खण्ड ६/२१४–२१८)

लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, ब्रह्मा, शिव, शेषनाग और धर्म–ये सब मेरे प्राणों के समान हैं; परतु तुम मुझे प्राणों से भी बढकर प्यारी हो । राधिके ! ये सब देवता और देवियाँ मेरे निकट हैं; परंतु तुम यदि इनसे अधिक न होती तो मेरे वक्षःस्थल में कैसे विराजमान हो सकती थीं ? सुशीले राधे ! आँसू बहाना छोड़ो । साथ ही इस निष्फल भ्रम का परित्याग करो । शङ्का छोड़कर निर्भीक भाव से वृषभानु के घर में पधारो । सुन्दरि ! नौ मास तक कलावती के पेट में स्थित गर्भ को माया द्वारा वायु से भरकर

रोके रहो। दसवाँ महिना आने पर तुम भूतल पर प्रकट हो जाना। अपने दिव्य रूप का परित्याग करके शिशु रूप धारण कर लेना। जब गर्भ से वायु के निकलने का समय हो तब कलावती के समीप पृथ्वी पर नग्न शिशु के रूप में गिरकर निश्चय ही रोना। साध्वि! तुम गोकुल में आयोनिजा रूप से प्रकट होओगी। मैं भी आयोनिज रूप से ही अपने आप को प्रकट करूँगा; क्योंकि हम दोनों का गर्भ में निवास होना संभव नहीं है। मेरे भूमि पर स्थित होते ही पिताजी मुझे गोकुल में पहुँचा देंगे। वास्तव में कंस के भय का बहाना लेकर मैं तुम्हारे लिये ही गोकुल में जाऊँगा। कल्याणि! तुम वहाँ यशोदा के मन्दिर में मुझ नन्दनन्दन को प्रतिदिन आनन्दपूर्वक देखोगी और हृदय से लगाओगी। राधिके! मेरे वरदान से तुम्हें समय पर मेरी स्मृति होगी और मैं तुम्हारे साथ वृन्दावन में नित्य स्वच्छन्द विहार करूँगा। सुशीला आदि जो तैंतीस तुम्हारी सखियाँ हैं, उनके तथा अन्यान्य बहुसंख्यक गोपियों के साथ तुम गोकुल को पधारो। असंख्य गोपियों को अपने अमृतोपम एवं परिमित वाणी द्वारा समझा बुझाकर आश्वासन दे गोलोक में ही रखकर तुम्हें गोकुल में जाना है। राधिके! मैं भी इन असंख्य गोपों को यहीं स्थापित करके पीछेसे वसुदेव के निवास स्थान मथुरापुरी में पदार्पण करूँगा। मेरे प्रिय-से-प्रिय गोप बहुत बड़ी संख्या में मेरे साथ क्रीड़ा के लिये व्रज में चलें और वहाँ गोपों के घर में जन्म लें।

नारद! यों कहकर श्रीकृष्ण चुप हो गये। देवता, देवियाँ, गोप और गोपियाँ वहीं ठहर गयीं। ब्रह्मा, शिव, धर्म, शेषनाग, पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती ने बड़ी प्रसन्नता के साथ परात्पर श्रीकृष्ण का स्तवन किया। उस समय उनके विरहज्वर से व्याकुल तथा प्रेम-विह्वल गोपों और गोपियों ने भी भक्तिभाव से वहाँ श्रीकृष्ण की स्तुति करके उनके चरणों में मस्तक झुकाया। विरह ज्वर से कातर हुई पूर्ण मनोरथा राधा ने भी अपने प्राणाधिक प्रियतम हृदय वल्लभ श्रीकृष्ण का भक्ति भाव से स्तवन किया। उस समय श्रीराधा के नेत्रों में आंसू भरे हुए थे। वे अत्यन्त दीन और भय से व्याकुल दिखायी देती थीं। उन्हें इस अवस्था में देख स्वयं श्रीहरि ने सान्त्वना देने के लिये यह सच्ची बात कही।

श्रीकृष्ण बोले–प्राणाधिके महादेवि! सुस्थिर होओ। भय का त्याग करो। जैसी तुम हो वैसा ही मैं हूं। मेरे रहते तुम्हें क्या चिन्ता है? श्रीदामा के शाप की सत्यता के लिये कुछ समय तक (बाह्यरूप में) मेरे साथ तुम्हारा वियोग रहेगा। तदनन्तर मैं मथुरा में आ जाऊँगा। वहाँ भूतल का भार उतारना, माता-पिता को बन्धन से छुड़ाना, माली, दर्जी और कुब्जा का उद्धार करना, कालयवन को मरवाकर मुचुकुन्द को मोक्ष देना, द्वारका का निर्माण, राजसूय-यज्ञ का दर्शन, सोलह हजार एक सौ दस राजकन्याओं के साथ विवाह करना, शत्रुओं का दमन, मित्रों का उपकार, वाराणसीपुरी का दहन, महादेवीजी को जृम्भणास्त्र से बाँधना, बाणासुर की भुजाओं को काटना, पारिजात का अपहरण, अन्यान्य कर्मों का सम्पादन, प्रभासतीर्थ की यात्रा में जाना, वहां मुनिमण्डली का दर्शन करना, व्रज के बन्धुजनों से वार्तालाप, पिता के यज्ञ का सम्पादन, वहीं शुभ बेला में पुनः तुम्हारे साथ मिलन तथा गोपियों का साक्षात्कार आदि कार्य मुझे करने हैं। फिर तुम्हें अध्यात्मज्ञान का उपदेश देकर वास्तव में तुम्हारे साथ नित्य मिलन का सौभाग्य प्राप्त करूँगा। इसके बाद मेरे साथ दिन-रात तुम्हारा संयोग बना रहेगा। कभी क्षणभर के लिये भी वियोग न होगा। इतना ही नहीं, वहाँ से तुम्हारे साथ मेरा पुनः व्रज में आगमन होगा। प्राणवल्लभे! वियोग काल में भी स्वप्न में तुम्हारे साथ मेरा सदैव मिलन होता रहेगा। तुमसे बिछुड़ कर द्वारका में जाने पर मेरे और मेरे नारायणांश के द्वारा उपर्युक्त कार्य सम्पादित होंगे। फिर वृन्दावन में तुम्हारे साथ मेरा निवास होगा। फिर माता-पिता तथा गोपियों के शोक का पूर्णतः निवारण होगा। भूतल का भार उतारकर तुम्हारे और गोपियों के साथ मेरा पुनः गोलोक में आगमन होगा। राधे! मेरे अंशभूत जो नित्य परमात्मा नारायण हैं, वे लक्ष्मी और सरस्वती के साथ वैकुण्ठ लोक को पधारेंगे। धर्म और मेरे अंशों का निवास स्थान श्वेत द्वीप में होगा। देवताओं और देवियों के अंश भी अक्षय धाम को पधारेंगे। फिर इसी गोलोक में तुम्हारे साथ मेरा निवास होगा। कान्ते! इस प्रकार समस्त भावी शुभाशुभ का वर्णन मैंने कर दिया। मेरे द्वारा जो निश्चय हो चुका है, उसका कौन निवारण कर सकता है?

तदन्तर श्रीहरि ने देवताओं और देवियों से समयोचित बात कही–देवताओ! अब तुम लोग भावी कार्य की सिद्धि के लिये अपने-अपने स्थान को जाओ। पार्वति! तुम अपने दोनों पुत्रों तथा स्वामी के साथ कैलास को जाओ। मैंने जो कार्य तुम्हारे जिम्मे लगाया है, वह सब यथा समय पूरा होगा। व्रजेश्वरि! राधे! गणेशजी को छोड़कर शेष छोटे-बड़े सभी देवताओं और देवियों का कला द्वारा भूतल पर अवतरण होगा।

तदनन्तर लक्ष्मी, सरस्वती तथा श्रीराधा सहित पुरुषोत्तम श्रीहरि को भक्तिभाव से प्रणाम करके सब देवता आनन्दपूर्वक अपने अपने स्थान को चले गये। श्रीहरि ने जिस कार्य का आयोजन किया था, उसे सफल बनाने के लिये वे व्यग्रतापूर्वक भूतल पर

पधारे; क्योंकि स्वामी का बताया हुआ स्थान देवताओं के लिये भी दुर्लभ था।

श्रीकृष्ण ने राधा से कहा—प्रिये ! तुम पूर्वनिश्चित, गोप-गोपियों के समुदाय के साथ के साथ वृषभानु के निवास-गृह को पधारो। मैं मथुरापुरी में वसुदेव के घर जाऊँगा। फिर कंस के भय का बहाना बनाकर गोकुल में तुम्हारे समीप आ जाऊँगा।

लाल कमल के समान नेत्रों वाली श्रीराधा श्रीकृष्ण को प्रणाम करके प्रेमविच्छेद के भय से कातर हो उनके सामने फूट-फूट कर रोने लगीं। वे ठहर-ठहर कर कभी कुछ दूर तक जातीं और जा-जाकर बार-बार लौट आती थीं। लौटकर पुनः श्रीहरिका मुँह निहारने लगती थीं। सती राधा शरत्काल की पूर्णिमा के चन्द्रमा की कान्तिसुधा से पूर्ण प्रभु के मुखचन्द्र की सौन्दर्य-माधुरी का अपने निमेष रहित नेत्र-चकोरों द्वारा पान करती थीं। तदनन्तर परमेश्वरी राधा प्रभु की सात बार परिक्रमा करके सात बार प्रणाम करने के अनन्तर पुनः श्रीहरि के सामने खड़ी हुई। इतने में ही करोड़ों गोप-गोपियों का समूह वहाँ आ पहुँचा। उन सबके साथ श्रीराधा ने पुनः श्रीकृष्ण को प्रणाम किया। तत्पश्चात् तैंतीस सखीस्वरूपा गोप किशोरियों और गोप-समूहों के साथ सुन्दरी राधा श्रीहरि को मस्तक झुकाकर भूतल के लिये प्रस्थित हुईं। वे सब-के-सब श्रीहरि के बताये हुए स्थान नन्द-गोकुल को गये। फिर राधा वृषभानु के घर में और गोपियाँ अन्यान्य गोपों के घरों में गयीं। गोप-गोपियों सहित श्रीराधा के भूतल पर चले जाने पर श्रीहरि भी शीघ्र ही वहाँ पहुंचने के लिये उत्सुक हुए। गोलोक के गोपों और गोपियों से बात करके उन्हें अपने-अपने कामों में लगाकर मनकी गति से चलने वाले जगदीश्वर श्रीहरि मथुरा में जा पहुँचे। पहले देवकी और वसुदेव के जो-जो पुत्र हुए, उन्हें कंस ने तत्काल मार डाला। इस तरह उनके छः पुत्रों को उसने काल के गाल में डाल दिया। देवकी का सातवां गर्भ शेषनाग का अंश था, जिसे योगमाया ने खींचकर गोकुल में निवास करने वाली रोहिणीजी के गर्भ में स्थापित कर दिया। फिर वह श्रीहरि की आज्ञा से चली गयी। (अध्याय ६)

* * *

श्री द्वादश निकुञ्ज की भावना से प्राप्त प्रसंग निम्न प्रकार से हैं:—

जो एक समय कृष्णदास अधिकारी ने श्री गुसांईजी को श्रीनाथजी के मन्दिर में आयवे को बरजेहते। जो तुम श्रीनाथजी के मन्दिर में मती आवो। श्रीनाथजी की सेवा को अधिकार श्रीआचार्यजी ने मोको सोंप्यो है। सो हों अधिकारी हों और श्रीआचार्यजी के पुत्र गोपीनाथजी हैं, सो टीकेत तो वे हैं, और श्रीगोपीनाथजी के पुत्र श्रीपुरुषोत्तमजी हैं, सो वे धनी हैं। सो श्रीनाथजी की सेवा सिंगार तो वे करेंगे, सो ताते मन्दिर में मती आओ। ऐसे कृष्णदास अधिकारी ने गुसांईजी कूं बरजे। तब श्रीगुसांईजी कृष्णदास कूं श्री आचार्यजी महाप्रभुन को सेवक और श्री नाथजी को अधिकारी जानके आज्ञा मानत भये। सो तब गुसांईजी मास ६ पर्यन्त श्रीनाथजी द्वारा पाँउ न धारे। तब पारासोली पधारे। तहां श्री आचार्यजी महाप्रभुन की बैठक के दर्शन किये पाछे बैठक के सनिधान बैठके श्रीभागवत को पारायण किए ता समय तहां दामोदरदास हरसानी आए, सो दंडवत करके बैठे। पाछे श्रीभागवत को पारायण सम्पूर्ण भयो, सो तब दामोदरदास हरसानी ते, श्री गुसांईजी ने कह्यो, जो दामोदरदास ! तुम श्री आचार्यजी महाप्रभुन को प्रागट्य और दैवी जीव लीला में ते बिछुड़े हते, इनको अंगीकार कैसे भयो, सो यह प्रसंग विस्तार करि के कहो। काहे ते, जो तुम्हारे हृदय में आचार्यजी महाप्रभुजी विराजत हैं सो यह प्रसंग आचार्यजी महाप्रभुन बिना कौन कहे तथा और को कैसे जानि पड़े। सो तब यह बात सुनि के दामोदरदास ने कही, जो सांची बात है। जो श्री आचार्यजी की लीला तो श्री आचार्यजी ही जाने और जीव की तो गम्य नाहिं जो श्री आचार्यजी की बात कहे। जो मो सों एक समय श्री आचार्यजी महाप्रभु आप अपने श्री मुख सों कहे हते, सो प्रसंग मैं तुमसों कहेत हों, सो आप सुनिये। जो एक समें, लीला में ये दैवी जीव, कछु प्राकृति अनुमाया को देखिके, इनने श्री ठाकुरजी की प्राकृत रमण की वासना कीनी सो इनके अन्तः करण की वासना श्री स्वामिनीजी ने जानो, सो ता समय श्री स्वामिनीजी ने इन भक्तन पे क्रोध कियो। सो तब अपनी एक सखी सों कह्यो जो ऐसे विषय वासना वारे जीवन को भूतल विषे डारि देउ। ऐसी तीन बार आज्ञा श्री स्वामिनीजी की भई। तब उन दैवी जीवन को भूतल में डारे दिये। सो निज धाम ते, दैवी जीवादिकन सों बिछुड़, सो ताको, अनेक अगणित कल्प भये सो वे जीव, निज धाम सों बिछुड़े सो मूल सदन (ब्रह्म सदन) आये। सो वेद की ऋचा भई। तहाँ ते ब्रह्मा के सरीर में प्रवेश भये। सो ता समे ब्रह्मा यज्ञ करत हते। ता समें ब्रह्मा महा काम आतुर भये। पाछे खलित भये। तब वह धातु एक दोना में लीनों, तब ब्रह्मा ने सब ऋषीन सों पूछी, जो यह पात्र कहा धरें, तब ऋषीन ने कही जो अग्नि में डार देवो,, तब ब्रह्मा ने अग्नि में डार दीनो। सो तहां ते, एक पुरुषाकार अगणित उत्पन्न भये तब ब्रह्मा के आगे ढाडे भये, तब ब्रह्मा सों कह्यो जो हमको कहा आज्ञा है। सो तब ब्रह्मा ने कह्यो जो तुम तप करो पाछे सृष्टि करो, तब ये तप को चलें, सो अग्नि द्वारा उत्पन्न भये ताते अग्निकुमार इनको नाम है,

सो अग्निकुमार सब ही तप को चले, तब मार्ग में नारदजी को समागम भयो, तब नारदजी ने अग्निकुमारन सों पूछ्यो जो, तुम कहां जात हो, तब अग्निकुमारन ने कह्यो जो हम तप को जात हैं हमको ब्रह्मा की आज्ञा है जो तुम तप करो और पाछे आय के सृष्टि करो। तब नारदजी ने उन अग्निकुमारन सों कह्यो जो तुम तप करके पाछे आओ मति सृष्टि करो मती और हों तुम को स्थल बताऊ तहां तुम जायके तप करो, जो विंद सरोवर के इहां एक आछि गुफा है तहाँ तुम जाइ के सब तप करो। पाछे नारदजी ने उनसों द्वादसाक्षर मंत्र को उपदेश कर्‍यो, पाछे नारदजी सों आज्ञा मांगि के बैठे सो अग्निकुमारन ने वा गुफा में जाय के तप कर्‍यो, तब तप करिके उनको ब्रह्म वदन भरि अंतर ज्ञान भयो, दर्शन भयो, तब उननें विचारी जो या पुरुष में तो अहंत्व है, याते यह भाव भलो नहीं, ता पाछे उनने स्त्री भाव सों भगवत् भजन तप कर्यो, तब थोड़े से दिन में उनकूं भगवत दर्शन भयो और आज्ञा भई जो तुम चिंता मती करो थोड़े से दिन में कृष्ण अवतार होयगो सो तब तुम्हारे सकल मनोरथ सिद्ध होयेंगे। जो प्रथम सारस्वत कल्प में श्रीकृष्णावतार भयो, उनके तीन-तीन स्वरूप भये। सत्व गुन करिके श्री द्वारका में सोरह हजार स्त्री श्री ठाकुरजी की भई, सो भौमासुर को मारके राजकन्या श्री ठाकुरजी की मूतिए कही सबको अंगीकार किए, और जो रजोगुण, करि के मथुरा में स्त्री भईं, सो एक एक गुण के तीन तीन भाव भए सो कंस को मारि के नेत्र द्वारा इन स्त्रीन को अंगीकार किए और कितनोक स्त्रीन को गुण द्वारा कुबिजादिकन को अंगीकार किए और तमोगुण करि के व्रज में जो स्त्री भईं, सो एक एक गुण के तीन तीन भाव भये। सात्वकी-सात्वकी, सात्वकी-राजसी और सात्विक तामसी। ऐसे राजसी-राजसी, राजसी-सात्विकी और राजसी-तामसी। ऐसे तामसी-तामसी, तामसी-सात्विकी और तामसी-राजसी। ऐसे एक एक गुण के तीन तीन भाव भये और निर्गुण प्रकार ते न्यारे भए। ऐसे दस प्रकार के भक्त भए, तामें चार प्रकार के भक्त व्रज में हैं, सात्वकी और राजसी भक्त व्रज में नहीं है। तामसी-तामसी, तामसी-सात्विकी तामसी-राजसी और निरगुण ऐसे चार प्रकार के भक्त व्रज में भए, तामें रास रमण समें जो भक्त अंतग्रह में हते उनने देह सम्बन्धी पति, तिन ने रोकी पाछे विरह ताप करिके सबसे पहले प्रभु जी में आय मिली सो तामसी-तामसी हती और तामसी-राजसी भक्त जो कात्यायनी देवी को व्रत करि आराधि के प्रभु को, नंदसुत, पति मांगे और गोप भारयान में दो भाव हैं: एक तो तामसी-सात्विक और दूसरे निरगुण भक्त, सो जब रासलीला में श्री ठाकुरजी सम्पूरण रात्रि करें, पाछे जब प्रातकाल भयो और जब थोरी सी रात्रि रही, जा 'समे' केती त्रीय

ऊंचे, देव स्त्री अंतरक्ष में परस्पर बातें कहते, जो हम हमारे पति संग ऐसो विलास करेंगे। सों देव स्त्रीन को श्री ठाकुरजी को दर्शन तो नाहीं वहां तो मंडलाकार आवत हैं, याते देव स्त्रीन को नाद द्वारा ज्ञान है, उन नूपुर को नाद सुनि के देव स्त्री प्राकृत जीव को रमन मन में बिचारे, सो प्राकृत धर्म तो श्री ठाकुरजी विषे तो नांही परि ता समय कितनेक भक्तन नें देव स्त्रीन के बचन सुनि के ऊंचे देखे, जो ये स्त्रीजन बोलत हैं और कितनेक भक्त श्री ठाकुरजी की ओर देखते हैं सो तिनको लेके श्री ठाकुरजी निज धाम पधारे और जिन भक्तन को देव-स्त्रीन के बचन सुनि के मोह भयो, सो तिनको श्रीठाकुरजी छोड़ि के निज धाम पधारे। सो उन भक्तन में द्वै भाव हते, एक तो प्रातःकाल भयो तब मन में विचारे जो अब तो श्री ठाकुरजी हमको छोड़ ही पधारे हैं और प्रातःकाल भयो, याते अब हम घर जाय, ऐसे विचारि के वे भक्त घर गए। पति देह सम्बन्धीन को भय मानी के, सो वे भक्त तामसी-सात्विकी जाननो। और कितनेक भक्तन ने श्री ठाकुरजी के विरहताप को क्लेश करिके वह देह छोडि के परित्याग कर्‍यो सो जिन भक्तन के विरह करिके देह छोड़ के परित्याग कर्‍यो सो तिनको निर्गुण भक्त जाननो। सो जो भगवदीय प्रात: काल उठि के घर गए सो श्रीठाकुरजी को यह बात नाही सुहाई, पाछे से ठाकुरजी केतेक दिन में श्री मथुराजी पधारे तबहूं केतेक भक्तन ने विरह ताप क्लेश करि के देह छोड़ी ता पाछे वे भक्त श्री ठाकुरजी सों जाय मिले। ता पाछे और भक्तन में संतोष करि के रहे, परि श्री ठाकुरजी को यह बात सुहाई नाहि, पाछे ठाकुरजी द्वारिका पधारे तब कितनेक भक्त रहे सो वे प्रभुजी ते विमुख भए सो तब उनको चेंटी ते लगाय कुंजर पर्यन्त चौरासी फेरा भए। ऐसे अगनित लक्ष चौरासी योनि गर्भवास भए परन्तु पार न आवे प्रभुजी को मिले नाहीं।

और लोकिक प्रथा मांही, प्रथा के आचरण करिके, आसुरी प्राय, देवी जीव भए, महा दूषित भए परि इनको तो माया के मोह करिके; वा सुधि, सब विसरी। माया ते त्रिविधा मोहित भए, सो वे या माया अविद्या के बस भए याते प्रभुजीको आश्रय तो सब ही छूट्यो। तब श्री नाथजीको विन जीवन की सुधी आई तब श्रीनाथजी ने इनके पूर्व संबंधी भक्तन को सुधी करवाई और जे सब दिखाए, तब वे निज धाम के भक्तन को, इनको विरह ताप भयो और महा दुखित भए तब श्री स्वामिनीजी इन भक्तन को दुखी उदास देखी आपु ही दुःखित होई के क्लेश करन लागे, सो तब उदास होइ के श्री स्वामिनीजी ने श्रीनाथजी सों विनती कीनी सो इन जीवन के लिए कछु बिचारि के उपाय करिए

तो ये बेगी ही आयके इन भक्तन सों मिले तब श्रीनाथजी ने कह्यो जो इन जीवन को वेगी ही मिलनो तो कठिन है काहे ते जो इनको प्रालब्ध संचार और क्रीयमान प प पुन्य अनित्य जन्म के अत्यन्त हैं सो वे कर्मानुसंधान सब ही छूटे, सो तो विन आसुरी जीवन को मोह छोड़नो कठिन है काहे ते जो ये आसुरी जीवन में रचि रह्ये हैं सो उन आसुरी जीवन को संग छोड़नो कठिन है और वे आसूरी जीव याके देह सबंधी हैं सो इनको छोड़ें नांही। इनको निखिल भगवत धर्म करन देत नाहीं है, याते ये तो यहा आवने कठिन है ता पाछे ऐसे कहि के श्री ठाकुरजी व श्री स्वामिनीजी भक्तन को क्लेश यूं देखि के, चिंतातुर भए और बड़े दुःखित भए, जो अब कौन उपाय करिए, पाछे, श्रीनाथजी को महा विरह ताप क्लेश भयो सो अत्यन्त ताप भयो सो श्रीमुख ते अग्नि की ज्वाला निकसी सो श्री स्वामिनीजी हूं के श्री मुख ते निकसी सो दोऊ ज्वाला एकत्र भई तब वा अग्नि ज्वाला में ते घनो सुन्दर स्वरूप प्रगट भयो तब वा सुन्दर स्वरूप ने श्रीनाथजी और श्री स्वामिनीजी सों प्रार्थना करी जो हमको कहा आज्ञा है, सो तब श्रीनाथजी ने कह्यो जो तुम भूतल पे पधारो और देवो जीव इहां ते बिछुरे हैं सो घने दिन भए हैं सो घने दिन भए हैं सो वे असुर प्रार्थ भए हैं और तेहुं निषिद्ध भए हैं सो उन जीवन कूं वेगही मिलावो। ऐसे वचन श्रीनाथजी ने श्री आचार्यजी सो कह्यो तब श्री आचार्यंजी महाप्रभुजी उन दैवी जीवन के उद्धारार्थ भूतल पर पधारे सो प्रथम तैलंग देश में पधारे, काकरवार नाम है। तैलङ्ग ब्राह्मण, नारायण भट्टजी रहते सो तिनने सोम यज्ञ करयो है और श्री ठाकुरजी की भक्ति दृढता सों करे हैं, मर्यादा मार्ग की रीत सों भजन करते सो श्रीठाकुरजी नारायण भट्ट ऊपर बहुत प्रसन्न भए तब श्री ठाकुरजी ने कह्यो जो तूं मांगी, हों तेरे उपर प्रसन्न हूं तूं मांगो। तब इन नारायण भट्ट ने कह्यो जो तुम प्रसन्न भए, इतने में ही हमारी सब कामना पूरण भई। अबतुम हमको हूं भक्ति दीजिए इतनी कृपा कीजिए। तब इनके वचन सुनि के श्री ठाकुरजी अत्यन्त प्रसन्न भए और कह्यो जो हमारे भक्त को प्रागट्य होयगो याते तुम कह्यो सो तुम्हारे सब ही मनोरथ सबहू पूर्ण होंगे और तुम्हारे वंश में प्रगट होऊंगो। ऐसे श्री ठाकुरजी के वचन सुनि के नारायण भट्ट घने प्रसन्न भए सो नारायण भट्ट सोमयागी तिनके पुत्र लक्ष्मण भट्ट सोमयागी, ताके पुत्र तीन, एक तो रामकृष्ण भट्ट एक श्री वल्लभाचार्यजी और तीसरे पुत्र केसोपुरीजी, सो केसोभट्टजी ने केतेक दिन पाछे सन्यास ग्रहण कियो सो केसोपुरी इनते सब कोहु कहते सो केसोपुरी सन्यास ग्रहण करिके पृथ्वी परिक्रमा फिरते। और रामकृष्ण भट्ट को तो आगे वंस नाही। सो श्री लक्ष्मण भट्टजी की स्त्री इलमागारुजी। सो इलमागारुजी के गर्भ में श्री वल्लभाचार्यजी अग्निताप-भावात्मक स्वरूप प्रगट भए सो श्री ठाकुरजी श्री स्वामिनीजी ने ताप भावात्मक स्वरूप सों कह्यो जो तुम भूतल पे पधारो और दैवी जीवन को उद्धार करिके वेगि ही हमको मिलो सो उपाय कीजिए सो श्री महाप्रभुजी श्री वल्लभाचार्यजी ने विचारयो जो इन जीवन को बोध करनो और ज्ञान उत्पन्न होय सो तो सेवक को काम है। काहे ते श्री आचार्यजी महाप्रभु आपने श्री मुख सो बोध करे और अपनी बड़ाई करे सो स्फूर्त होय नाहीं, सों ऐसो विचार के मोको आज्ञा दी, जो तुम भूतल में प्रगट होऊ ऐसे दामोदरदास ने श्री गुसांईजी सों कही।

सो याते श्री आचार्यजी के पांच बरस पहले दामोदरदास को प्रागट्य है। सो वा कांकरवार में एक कपूरचंद क्षत्री हरसांन क्षत्री रहतें। सो वा कपूरचंद क्षत्री के प्रोहित दानादक्ष लक्ष्मण भट्टजी हते। सों कपूरचंद क्षत्री के पांच पुत्र हते। सो तामें सबतें छोटे पुत्र सो दामोदरदास है। सो दामोदरदास की माता नास को प्राप्त भई। सों दामोदरदास की भावज ने स्तन पान कराय बड़े कीने हते। और दामोदरदास के पिता के घर में द्रव्य घनो हतो। सों एक समे माता इलमागारुजी को गर्भ हों। सों श्री आचार्यजी माता इलमागारुजी के गर्भ में पधारे। सो ऐसे समें साथ काशी जाइवे को निकर्यो। सों तब दामोदरदास के पिता कपूरचद ने आप मुख मुखिया होय के वा संग को ले चले सो संग के साथ लछमनभट्टजी कासी चले। सों माता इलमागारुजी साथ लीने, और कपूरचंद क्षत्री ने सब बेटान को घर राखे। सो दामोदरदास हूं घर राखे। भावज को इनें सोंपि के चलें। सो उनसों कपूरचंद क्षत्री नें कह्यो। जो या दामोदरदास कूं नीकी भांति सूं राखियो। यह बालक है और याकी माता नाही। याते तुम यतन सों राखियो। ऐसे कहि के उनको सोंपिके आप तो सब संग को आगे करिके तहां चले। सो कोस पांच ऊपर एक गाम है। सो वह गाम बड़ो हतो। सो तहां नदी ऊपर सब साथ उतर्यो। सबन के डेरा नदी ऊपर रहे। सो वहां कपूरचंद क्षत्री के डेरा के पास लक्ष्मणभट्टजी के डेरा भये। सो सब साथकेन ने रसोई करी सब सामग्री तत्पर करि श्रीठाकुरजी को भोग सर्पपि के भोजन किये। और लक्ष्मण भट्टजी हू सब सामग्री करिके भोग समर्पि के भोजन कीये और कपूरचंद क्षत्री और सब साथ वारे अपने अपने डेरान में सोये। सों इतने ही में सब साथ वारेन को और कपूरचंद क्षत्री को एक संग ज्वर आयो। सो सीत सूं सब धूजे कांपे। और पाछे अग्नि की ताप सरीर में भई सो ज्वर परावर्यो सो परस करयो न जाय महा ज्वर आयो। ता समें सबरे साथ के दशा सहस्त्र मनुष्य हते। सो सबन को ज्वर एक वेर आयो। साथ में कोई मनुष्य आछो नही रह्यो। सगरे ही दुःखित भए। सो ऐसे

आपस में चर्चा करें हते सों चर्चा करत प्रातकाल भयो । सों तब कपूरचंद क्षत्री संग में सो लक्ष्मणभट्टजी को बुलाइके सब समाचार पूछे है । सो कहो भट्टजी कैसे समाचार हैं । तब श्री लक्ष्मणभट्टजी ने कह्यो जो ज्वर ते मरे हैं । चार प्रहर रात महादुःख सों बीती है । घनो दुःख पायो है । तब कपूरचद क्षत्री ने लछमनभट्टजी सो कह्यो जो यह कहा कारन है सो सगरे साथ केंन कों एक ही वेर ज्वर आयो । सों तुम विचारो जो यह कहा कारन है । सो पहली ही मंजल में यह उपद्रव काहें सो भयो । तब लछमनभट्टजी ने कह्यो जो हमको तो या बात की कछु ठीक परत नांही । यह कहा प्रभु को कोप है । कछु प्रभुजी के कोप बिना ऐसो कार्य होय नाहीं, परि कछु समझ परे नांहि । ऐसे सोचत सकल साथ ज्वर सों चार प्रहर रात दिवस बीत्यो परि समझ कछु परत नांहि, सो सब साथ के लोगन ने दंत धावन हूं नांही कियो, ऐसे ज्वर सूं व्याकुल पड़े रहे पर महा चिंता कलेश में रहे । ऐसे करत रात्र गई तब सोच करन लागे जो भाई यह कहा कारन है जो एक ही वेर सब साथकेन को ज्वर आयो सों कछु मुहूर्त आछो नहीं संध्यो । कछु सकुन नाही वन्यो । याते अब कहा विचार हों कछु उपाय करिये । कदाचित घर को जाइ तो लोक विरुद्ध है । लौकिक हू महा कठिन है । लोर कहेंगे जो देखो भाई ऐसे ऐसे स्याने बहुत गये कहा और पीछे आये सो ये कछू बावरे दीसत है । और जो कदाचित हट करिके आगे जाइये तो न जाने और कहा विघ्न होय । तो कहा कीजे । सो ऐसे सोच करत फेर हू चतुर पहर रात्र बीत गई परि समझ काहू को न परी, सो रात्री को लछमनभट्टजी को स्वप्न भयो और स्वप्न द्वारा श्री ठाकुरजी को दर्शन भयो । तब श्री लछमनभट्टजी सों श्री ठाकुरजी नें कह्यो जो तुम ऐसो सोच काहे को करत हो, ये तो मेरी इच्छा से सगरे साथ को ज्वर आयो, और कदाचित तुम हठ करिके आगे जाओगे तो घनो उपद्रव होइगो याते मैं कहों सो उपाय करो तो ज्वर जाय । सो वा कपूरचंद क्षत्री को बेटा छोटो दामोदरदास है सो वाको तुम घर छोंडि आये हो सो भली नाही कीनी, ताते तुम दामोदरदास को संग लिवाइलावो । इहां ते एक दोय मनुष्य पठाओ सो दामोदरदास को घरते ले आवे । सो तुम और सब और कपूरचंद क्षत्री सब तासों पूछि के कारज करियो, वाको कह्यो उलंघियो मती । जैसे दामोदरदास आज्ञा करे तेसो करोगे और जा गेल दामोदरदास कहे ता गेल चलोगे तब तुम्हारे साथ केन को कुसल होयगो और चेन होयगो । और दामोदरदास की आज्ञा प्रमाण मानि के कारज करोगे तो तुम्हारो घनो आनन्द होयगो नातर महा अनित कष्ट पाओगे । कदाचित दामोदरदास की आज्ञा उलंघ के कारज करोगे तो कार्य सिद्ध न होई और कलेश हू घनो होयगो । याते दामोदरदास से पूछ के कार्य करियो । ऐसे भट्टजी को स्वप्न द्वारा आज्ञा भई । ता पाछे प्रात काल भयो तब लक्ष्मण भट्टजी उठि के वा कपूरचंद क्षत्री के डेरा में आये । तब कपूरचंद उठके ठाडो भयो और लछमण भट्ट को आदर करिके बेठारे । ता पाछे लछमण भट्टजी सों कपूरचंद क्षत्री ने पूछी जो कहो भट्टजी अब कहा उपाइ कीजे और कोन रीत सो यह विघ्न टरें । और लौकिक, अपकीर्ति न होइ, ऐसो उपाय कहिये । सो तब लछमन भट्टजी ने कह्यो । सों तुम सुनों आज रात को श्री ठाकुरजी को दर्सन भयो है आज्ञा भई है जो ए कपूरचंद क्षत्री को छोटो बेटा दामोदरदास को घर छोड़ आये हो याते ऐसो कलेश विघ्न होत है और सब को ज्वर आयो है, याते तुम कुसल विचारो तो दामोदरदास को घरते बुलावो और वाते पूछि के करो । वाकी आज्ञा प्रमान चलो । सो ऐसी मोको आज्ञा भई है । ऐसे लछमन भट्टजी ने वा कपूरचंदक्षत्री सों कही । सो तब ए वचन सुनिके कपूरचंदक्षत्री ने दोय मनुष्य वा नगर को पठाय दिये और मनुष्यन सों कह्यो जो तुम दामोदरदास को वेगिही घर ते बुलाय लाओ । तब वे मनुष्य घर को चले सो जाय पोहोंचे । तब वा कपूरचंद के बड़े बेटा सों मिले और कह्यो जो इन दामोदरदास को कपूरचंद ने बुलायो है सो इनको भेज देउ । और संग के सब सामाचार कहे । जो सब को ज्वर आयो और श्री लछमन भट्टजी को भगवद् आज्ञा भई है । तब कपूरचंद के बेटा ने विन मनुष्यन सों कह्यों जो भली भई तुम आये दामोदरदास को लेन आये नातर यह रहनो कठिन हतो, काहेते जो जब ते तुम गये सों तब ते यह रोवत ते रह्यो नाही । ऐसे चतुर प्रहर रात्र रोवत ही रह्यो है, सो कोउ रीत सों समझे नाही । ता पाछे वे मनुष्य दामोदरदास को वाहन पर बेठारि के ले चले सो केतो वेर में संग में जाय पोंहचे । पाछे अपने पिता सो मिले । पाछे लछमन भट्टजी सों मिले । तब लछमन भट्टजी ने कह्यो । संग के समाचार , ज्वर के समाचार दामोदरदास सों कहे और स्वप्न द्वारा आज्ञा भई सो वे कहे । पाछे बड़े पुत्र ने दामोदरदास रोवत है सो सब कपूरचंद सों कहे । सो अब ला तुम आज्ञा करो सो कीजे । काहेते जो भगवद् आज्ञा प्रमाण चालें । ताते तुम कहो सोई गेल चलिये । सोई रीत आचर कीजे । तब दामोदरदास ने कही जो मोहू को भगवद् दर्शन भयो है और आज्ञा भई है जो तुम प्रथम तो संग को ले के चंपारन्य माउ जाउं । वराडा की गेल लेउ । प्रथम तो चंपारन्य में जाय के उहां चोडा नदी है सो वा नदी में तीर्थ है सो वहां स्नान करो, जाते सगरे संग को कल्याण होय ता पाछे कासी जाइये नातर दुःख पाओगे ऐसे आज्ञा भई है । याते तुम सब संग को लेके वराडा की गेल चलो सो सूधे चंपारन्य को चलो । तब कपूरचंद क्षत्री ने लछमन भट्टजी सों और साथ वारे जैसे दामोदरदास ने कही तेही करचो । वरेड़ा की

गेलहोय के चंपारन्य को चले सो भगवद् इच्छा ते केतेक दिन में चंपारन्य में पोंहोचे,और इनके पहले देश के स्वामी प्रतिष्ठित दैवी जीव हेतु, तिनहू को स्वप्न द्वारा भगवद् आज्ञा भई जो तुम अपने भुवन स्थल छोड़ि के कोई शुद्ध तीर्थ में जायके सो एकान्त स्थल निर्विघ्न में जाय के निराश्रय होइ के श्री महाप्रभुजी को दृढ आश्रय करिके एकाग्र चित्त सों भजन करो । तुम्हारे उद्धार थोरे थोरे से दिन में होइगें । ऐसे देस देस के स्वामी और दैवी जीवन को ऐसे आज्ञा भई । तब दैवी जीव और सब स्वामी और रंक सब भेले भये । सो दक्षिण देस में स्वामी रामानंद स्वामी और कृष्ण स्वामी और परमानन्द स्वामी । और कृष्ण स्वामी और रंक सब ही आपुस में एक होय के परस्पर सब बात स्वप्न की कही । जो ऐसे ऐसे स्वप्न में भगवद् आज्ञा भई । पाछे सबरे अपने अपने स्थल छोडि के सब चले । और पश्चिम देस के स्वामी देवानन्द स्वामी और ब्रह्मानन्द स्वामी और रामानन्द स्वामी और अंगर स्वामी । ऐसे सब आपुस में विचार करिके चले । और उत्तर दिसा के स्वामी अग्नि स्वामी, सिष्णु स्वामी, जयानंद स्वामी, परमानंद स्वामी, सौभाग स्वामी, हरिवंस स्वामी, सरस्वती स्वामी, अर्जुन स्वामी और हरिवंस स्वामी । ऐसे उत्तराखंड के स्वामी सो सब भेले होय के आपुस में बिचार करिके चले । और पूर्व दिसा के स्वामी, रामचन्द्र स्वामी, हरिदत्त स्वामी, वल्लभ स्वामी, अंग स्वामी, नारायन स्वामी, माधोभट्ट स्वामी प्रेमभट्ट स्वामी, कृष्णभट्ट स्वामी, कृपाभट्ट स्वामी और बलदेव स्वामी । ऐसे पूर्व के स्वामी और रंक सब भेले होयके । परस्पर सब आपुस में भेले होय के विचार करिके अपने अपने स्थल छोड़ि के सब ही चले । सो मुखिया को नाम लिखे हैं । और अपार सब दैवी जीव अपने स्थल छोडि के चले सो सब ही देस के स्वामी । चार दिसा के स्वामी कासी में जाइके भेले भये । तब सब ही स्वामीन ने अपने अपने स्वप्न की वार्ता करन लागे जो हमको ऐसी भगवद् आज्ञा भई है, सो ऐसे सबन अपनी अपनी बात कही । सो सब स्वामी आपुस में बिचार करिके विचार्यो जो कहो भाई अब कहा कीजे । कौंन स्थल में जाइके भगवद् भजन कीजे । ऐसो निव्रत अस्थल कोनसो है । ए कासी तो शिवपुरी है तो इहां देह छोड़ें तो सिवपुर में जाय, ताते भगवद् भक्त वारे को अति निषिद्ध है, विरुद्ध है । ताते ऐसो निरुपाधि स्थल कोन सो है । ऐसे परम चिंता आपुस में करन लागे । तब उनमें मुखिया कृपा पात्र हते तिनको उहां स्वप्न द्वारा आज्ञा भई जो तुम सब कोऊ मिल के चंपारन्य जाउ । वराड देस में चंपारन्य है । तहां चोडानी है । सो उहां निर्भय एकांत स्थल है । तहां तुम सब कोउ जाय के बसो और मन को स्थिर करिके निरोध करिके भगवद् भजन करो । उहां तुमको हम दर्शन देयेंगे और तुम्हारो

उद्धार होइगो । ऐसे उन स्वामीन को भगवद् आज्ञा भई ही । तब सबरे उठिके आपुस में एकत्र होइके सब प्रति उनके मुखिया स्वामीन को स्वप्न आज्ञा भई सो सब कहे जो हमको ऐसे ऐसे आज्ञा भई है ताते सब कोउ चंपारन्य को चलो । इहां रहो मती । इहां विरुद्ध है । ता पाछे सब दैवी जीव चंपारन्य चले सो भगवद् इच्छा ते थोरे एक दिन में चंपारन्य में जाय पोंहचे, तब चंपारन्य थोडोक सी दूरि एक चौपड़ा गाम है सो उहां स्वामी मुखिया जाय के उन मुवासीन सों मिलके उनसों पूछ्यो जो तुम कहो तो हम विरक्त वैरागी वैष्णव इहां चम्पारन्य में बसें । तब उन मुवासीन के मुखिया ने कह्यो जो तुम इहां बस के खाओगे कहा । यह गाम तो निपट छोटो है और तुम तो घने मनुष्य हो । याते खाइवे को मिलेगो नाही । तब उन वैष्णव स्वामी ने कह्यो जो हम तो विरक्त हैं । जो हमकू तो खाइवे को लालच तो कछु नाही है । इन्द्रिन को पोषन स्वाद तो नाही है और देह को आधार करनो सो तो हम वन फल कन्द मूल फल खाइके जीव को निर्वाह करेंगे तब फेरि के मुवासीन ने मुखिया ते कह्यो जो तुम सुनो जा वन में व्याघ्र घने हैं, हस्ति सिंह घने हैं और बड़े बड़े सर्प घने हैं । जो अजगर है । सो वे खाइके दुःख देंयगे । तब उन स्वामीन ने कह्यो जो हम अग्नि वारे हैं यासों हमारे पास सिंघ हस्ती सर्प कोउ आवे नहीं । तब उन मुखिया मुवासीन ने कह्यो जो ऐसे हो तो तुम सुखेन रहो । पर हमने तो तुम सुं जताइ दीनी है । पाछे वे स्वामी विरक्त सब उहां चोडा नदी में स्नान करिके कुंस के आसन डारके एकाग्रह चित्त सो भगवद् भजन करन लागे । तब सूखे फल बीन के खाये और चौडा नदी को जल पीयें और रात्रदिना बैठे । ऐसे उनको आय बसे को मास एक भयो । ता पाछे दामोदरदास सब साथ को लेके लछमन भट्टजी को अपने पिता कपूरचंद और माता इलमागारूजी संग ले और स्त्री हू घनी ही,छोटे बालक हू घने हैं सो सब साथ चपारन्य आयो । सो तब सब वे स्वामी पहले आये है सो सब ही आयके दामोदरदास सों मिले । उन सब स्वामीन ने स्वप्न में जो आज्ञा भई, जो कपूरचंद क्षत्री को बेटा दामोदरदास सब साथ कासी को लेके इहां आवेंगे । उनकूं तुम मिलियो । दामोदरदास कहे तैसे तुम आचरण करियो । सो वे सब कोऊ इनको पेंडो देखते । जो भाई दामोदरदास कब आवेंगे । इतने में एहू आय पोंहचे । सो सब आइके दामोदरदास सूं मिले भेंटे । दंडोत करें । पाछे दामोदरदास के पिता कपूरचंद सों मिले पाछे उन स्वामी ने कह्यो । जोहम को कहा आज्ञा है । ऐसे दामोदरदास सों कह्यो । तब दामोदरदास ने उन प्रति कह्यो । जो तुम संसार की माया तज विघ्न में तें मनकादि के मन को निरोध करो और श्रीवल्लभजी देव को एकाग्रह भजन करो । सो जै दामोदरदास ने कह्यो तैसे ही सब कर्यो । और जो

कछु काज करे सो दामोदरदास को पूछ के करें। और कपूरचन्द के हूं दामोदरदास सो पूछ के करे। सो नित प्रति चोडा नदी में स्नान करिके माता इलंमागारूजी को दश करें। और माता इलंमागारूजी को गर्भ स्थित मास षट भये हैं। ता पाछे दामोदरद को श्रीआचार्यजी की आज्ञा भई है जो इन तुम्हारे पिता के संग में कितनेक जीव आसुरी हैं सो उन जीवन को तुम कासी जाइवे की आज्ञा देउ। पाछे उन आसुरी जीवन को ना लेके दामोदरदास ने उनकी मंडली न्यारी कीनी और उनकू आज्ञा दीनी, जो तुम तो अ कासी जाउ। काहेते जो हम तो कोइक दिन इहां रहेंगे। माता इलंमागारूजी को गर्भ है सो बालक जन्मे पाछे इहां ते आइ जाइगे। सो तहां कहां ताईं रहोगे। ऐसे कहिके उ आसुरी जीवन को कासी को विदा कीये। पाछे दैवी सृष्टि वारे सब मनुष्य भगवद् भज करन लागे। और चंपारन्य के जीव तामसी हते। व्याघ्र सिंघ और बडे बडे जीव सर्प भुजंग और अनेक जीव सब साथ वारे डरपते भय मन में राखते। सो नित्य प्रातःकाल वे सब तामसी जीव और जीवन के देखते मन में दुःखता लायके क्रूर दृष्टि देखिके और घालक तिन सो तामसी जीव कहियत है। और अनेक स्वार्थ के लिये आगिले को बुरो करत ना डरपत तिनसी तामसी कहियत है। सो तामसी जीव व पसू पक्षी सब आय के नदी के पार तें, सब कोऊ दैवी मनुष्यन तें देखि के दंडवत करे, सबन को दर्शन करे। और मान्य होय के सात्वकी होय के बैठे हैं। सो वा तामसी जीव पसू पक्षीन को स्वभाव विजय भयो है। सात्वकी भये। और ज्ञान भयो। सो श्री महाप्रभुजी के बल प्रताप ते भयो। और वष्णव के दर्शन सों भये सो तासों एह ऐसी बात है। सो एक मास श्री लछमन भट्टजी और सब साथ वारे उहां रहे। तहां ताईं नित्य प्रति सब जीव ऐसे करें। सो सबन को मन एकाग्रह भयो। निरोध भयो। पाछे एक दिना अकस्मात् रात्र को मात इलंमागारूजी के पेट में पीडा भई और अकस्मात् गर्भ श्रवित भयो। सो सप्त मास को गर्भ उत्पन्न भयो। सो रात्र घटिका अर्द्ध को समय भयो सो काल परम सोभायमान भयो। और वन और दिसा सब ही सोभित भई। अति प्रकास हुलास भयो। महा तेज प्रकास भयो। और पहले श्री लछमन भट्टजी और सब संग चैत्र मास में चंपारन्य आये सो ता समे तो सब वृक्ष की पतझड भई ही सो पहले तो डंडा से वृक्ष हते और वन हूं उदास सो हतो। सो इनके आगे पाछे सब ही पै वन प्रफुलित भयो। और फूल फल सो वृक्ष झूमि रहे हैं। सब ही वन प्रफुलित भयो। और जो वृक्ष की रीत नाही हती सो फल सब एका काल फलित भये। और रितु के सब फल पक्क ही भये। सो फल सब साथ के खाइ के महा अलौकिक स्वाद सिद्ध भयो। और निर्वाह करन लागे। सो फल घने घने सुन्दर भगवत् विनियोग लाइक सिद्ध भये। सो सब ही श्री महाप्रभुजी के प्रतापते सिद्ध भये। सो प्रागट्य समे हू अलौकिक शोभा भई और ऊपर ते पुष्पन की वृष्टि भई और देव देवतान की दुंदभी नाद भई और जय जय शब्द भयो। और घनो आनन्द भयो। और ता समे सबन को विवसता भई। सब ही विवस भये। निद्रावस भये। समाधि भई। समाधि में सब को भगवत् दर्सन भयो। और अनेक जन्म को ज्ञान भयो। और पुर्व संबंधीन को ज्ञान भयो। सो सब ही दैवी जीव विवस भये। ऐसे समे अकस्मात् गर्भ बाहिर होत ही गर्भ के मुख सो अग्नि की सी ज्वाला प्रगट भई सो वह ज्वाला अकस्मात् ब्यार सों चारयों दिसान में फेली, सो सब ही वन दग्ध भयो। और सब दैवी जीव पसू पक्षी सब ही दग्ध भये। सो सब ही जरिके एक महूर्त में भस्म होय गये। मनुष्य पक्षी वृक्ष सब जरि के भस्म भये। सो सबन को अलौकिक मोक्ष भई, निज धाम भगवत् लीला में प्राप्त भये। सो एक ही वेर सब को उधार भयो। सो अंगीकार भये। देखि के सबन को दावानल और चारि दिसा अग्नि की ज्वालाई महा सोचित भये। ता समे दामोदरदास ने लक्षमन भट्टजी सो कही जो तुम मन में डरपो मती तुम्हारे डेरा के पास कछु उपद्रव नांही है। पाछे इन एक लछमन भट्टजी को डेरा तंबू बच्यो। और तो सब अग्नि में जरि के भस्म होय गये पाछे वह गर्भ हू जड़ अचेत होय गयो, तब माता इलंमागारूजी महा सोचियत भई और रोवन लागी। सो दामोदरदास ने माता इलंमागारूजी को और लछमन भट्टजी को समझाय के समाधान करचो और कह्यो जो तु कछू काहू बात की चिंता मती करो जो तुम्हारे गर्भ पुत्र को कछू चिंता नाही। ऐसे विपरीत दीसत है तो कहा भयो, परंतु अब तो तुरंत यह गर्भ भूमि खोदि के इहांई धरो। तब लक्षमण भट्टजी ने कह्यो इलंमागारूजी ते कह्यो, जो य बात तो तुम्हारी साच मानवे में न आवे। काहेते जो तुम कहो हमारे गर्भ को कछू चिंता नाही है, सो तो ऐसे जाननो ही परे तुम हमारे समाधान के लिये ऐसे कहत हो। तब दामोदरदास फेरि के कह्यो जो तुम सर्वथा मेरी बात मिथ्या मति मानो तुम्हारे गर्भ है सो तो साक्षात् पूरण पुरुषोत्तम आये हैं परन्तु इनकी इच्छा लीला एही जाने। और काहू को गम्य नाही जो जाने परि हमको तो ये आज्ञा करत है याते हम जानत हैं। सो याते इनको इहा चंपारन्य में धरिके और तीर्थ यात्रा को गमन कीजे सो कासी जात्रा करिके श्री जगन्नाथजी के दर्सन करिके पाछे फिरके आपुन इहा आवेंगे तब या गर्भ को कौतिक तुम्हें दिखावेंगे। ऐसे कहिके समझाई के वह गर्भ एक छोकर को रूख दावानल में बच्यो हो सो वा रूख के नीचे खोदिके वा गर्भ को धरचो ता पाछे दामोदरदास ने आचार्यजी महाप्रभून सो वीनती कीनी। जो महाराजधिराज

जो कछू आपकी इच्छा से भयो सो तो अति उत्तम भयो। दैवी जीव सब एक ही बार निज धाम पोहोंचे सो तो अति आनंद भयो। सुभ भयो। परि लोक विरुद्ध भयो। सो जा ठाम मुवासी और हू कोऊ जीव देखेगो सो कहेगो जो देखो भाई इहां कोई ऐसे स्वामी सिद्ध आइके बसे सो अग्नि को उपद्रव भयो जो यह वन और पसू पक्षी सब ही अग्नि से जरि मरे, और वन सब जरि के भस्म भयो। ऐसे इहां के जीव सब निंदा करेंगे। तब श्री महाप्रभुजी ने दामोदरदास के ऐसे वचन सुनिके अपनी दृष्टि करिके वन सब प्रफुलित कर्‍यो। सो तब नव पल्लव पुष्प फलन करिके घनी सोभा करी। और प्रभून ने अपनी माया सो कही जो तुम इन मुवासी चार जीवन को ऐसो मोह करि के दिखावो जो जो स्वामी और संग आये हते सो सब ही पाछे फिरि के गये और इहा वन में पहले पसू पक्षी हते सो ता समय वे हू सदावत के से देखे। सो वा माया ने ऐसो मोह दिखायो। जो कोउ स्वामी संग के आये हते सो सब ही इन मुवासीन के मुखियान को भासी। ऐसो मोह माया ने उनको दिखाइवे मात्र कर्‍यो। और वन हू को देख के घने प्रसन्न भये। अति प्रफुलित देख्यो और पशु पक्षी सब यों के त्यों देखे। तब उन आपस में कही जो तुम देखो भाई इहां अग्नि को उपद्रव घनो घनो भयो और फेरि के वन नव पल्लव भयो। फल फूल सहित घनी शोभा भई। ऐसे कोईक महापुरुष इहा आइ बसे। जो जितनी कृपादृष्टी, सबन की सोभा घनी घनी भई। ता पाछे दामोदरदास ने लछमन भट्टजी सों कही जो अब तुम इहां ते चलो। सो अब इहां काम रहिवे को नाही। पाछे श्रीलछमन भट्टजी, माता इलंमागारूजी और दामोदरदास आदि तीन्यों जने चंपारन्य तें चले। सो उन मुवासी ते कहि के चले सो गयाव्रत गये। श्री बद्रीनाथजी के दर्शन करे पाछे मथुरा व्रिंदावन होइके व्रज की परिक्रमा करिके पाछे वाही चंपारन्य में आये। पाछे उहांई माता इलंमागारूजी को वे स्थल देखिके विरह ताप भयो, सो तब रोवन लागे। और दामोदरदास सों कह्यो, जो तुम मोंको गर्भ धर्‍यो सो अस्थल वन दिखावो और तुमने कहे हते जो तुम्हारे गर्भ को काहू बात की चिंता नहीं। सो यह तो सदा अचल है। सो तुम मोको दिखावो। सो तब दामोदरदास आगे भये और पाछे माता इलंमागारूजी और लछमन भट्टजी इनके पाछे चले सो थोरीकसी दूर जाइके दामोदरदास ने कह्यो जो यह छोकर को रूख दीसत है। तब आगे आके देखे तो अग्नि को कुण्ड है। सो चारि हाथ को चौडो है, और चार हाथ को लंबो हैं और तामें अग्नि की ज्वाला घनी निकसत है। और ताप घनो है। ऐसे विमल अग्नि है। और वा अग्नि में एक सुन्दर बालक बरस दिनको खेलत है सो बालक सर्वाभरण भूषित हैं और लावन्य घनो सुन्दर है। और दामोदरदास ने लछमन

भट्टजी ते और मात इलंमागारूजी को दिखाय के कह्यो जो यह बालक तुम्हारो गर्भ है सो तुम जायके लेउ। सो तब माता इलंमागारूजी और लछमन भट्टजी वा अग्नि की ज्वाला ते आगे जाइ न सके। ताप घनो है। ताके भय ते अलग ठाडे रहे। सो आगे जाइ न सके। तब दामोदरदास ने कह्यो जो तुम डरपो मती यह तो दूरि ताप दीसत है, परि समीप तो यह सीतल है। सो ऐसो घनो कह्यो। परि माता इलंमागारूजी और लछमन भट्टजी आगे न जाई। वा अग्नि के भय के मारे दूरि ठाडे भये हैं। तब दामोदरदास आप आगे जाय के बालक के चरण परस करे और वा अग्नि को अंगारा हाथ पर धर राख्यो और भट्टजी सो कह्यो जो तुम आगे आउ। तब श्री लछमन भट्टजी और इलंमागारूजी समीप आइके ठाडे भये परि कुंड में हाथ न धरे। अग्नि के भय ते। तब बालक ने श्री लछमन भट्टजी ते कह्यो जो तुम हमको गोदी में लेहु। तुम तो पिता हो और हम तुम्हारे पुत्र हैं याते प्रीत सो लेहु। ता पाछे वा दिन चंपारन्य ही में रहे, वहांई बसे, डेरा किये। पाछे अलौकिक उत्सव भयो। गीत बाजा नृत्य घने घने मनोरथ श्री लछमन भट्टजी के पूरे। देवन की दुंधभी नाद बजी और पुष्पन की वृष्टि भई, और अलौकिक भक्त सब ही आए और महासुख आनन्द भयो। उत्सव महामहोत्सव भयो। गीत बाजा नृत्य घने-घने मनोरथ श्री लछमन भट्टजी के भये, पूरे भये, सकल आसा पूरी भई। सो जैसे कृष्णावतार में श्री ठाकुरजी ने श्री नंदराय जी के सकल मनोरथ पूरण करे, और नव निधि और अष्टसिद्धि व्रज में घर घर में पूरण भई और अखण्ड भण्डार भरे तैसे यहां श्रीवल्लभाचार्यजी प्रगट होय के श्री लछमन भट्टजी के सकल मनोरथ पूरण करे। और अलौकिक सुख दीनो। सो ऐसी केतीक वार्ता है। और सुख को अनुभव काहू पे लिखवे में न आवे सो ऐसे अगणित आनंद भयो। श्री आचार्यजी आप प्रगट होयके श्री लछमन भट्टजी और माता इलंमागारूजी को सुख दीनो। सो प्रगट अग्नि कुण्ड ते पधारे, सो संवत् १५३५ (पन्द्रह सो पैंतीस) वैशाख वदि ११, एकादसी, गुरुवार के दिना घटिका ७। पल ४०। के समे पधारे हैं। ता पाछे सब उत्सव भये। सो वे मुवासीन ने देख्यो सुन्यो सो सब अचरज पाइ रहे। परि कछु समझ परी नांही। ता पाछे दिना चार उहां चंपारन्य में पधारे विराजे ता पाछे उहां कुडा काकरवार कुडा गाम है, थोरीकसी दूरी तहां चोड़ा नदी है और पाछे सुभगवती गाम है। सो तहां काकड कुडा में श्री आचार्यजी महा प्रभु, (और) दामोदरदास, श्री लछमन भट्ट जी और माता इलंमागारूजी ए सब चार जने काकर कुंड में गये पाछे वे चारन ने एक चोंतरा बांधि राख्यो, वा छोकर के नीचे बांधि राख्यो है और चंदन पुष्प चढावत है, सो सब कोउ मुवासी श्री वल्लभ देव

कहत है । और मुवासी लोग और आस पास के लोग सो महा मानता मानत है । श्री वल्लभ देवकी मानता मानत है सो दही दूध माखन मिश्री पतासा चढ़ावत है । सो ब्राह्मण वा देस को बैठ्यो रहत है सो वे पूजा मानता चढावत है । और मिठाई पान श्रीफल और मेवा चढावत है सो वो ब्राह्मण लेत हैं । और वह ब्राह्मण दिन में तो वहां बैठ्यो रहत है और रात्रि में वह अपने घर आवत है । सो अब ही अद्यापि मानता चली जात है, जो कोई मानता करे ताके मनोरथ पूरत है । श्री वल्लभ देब सबकी मानता पूरन करत है । सो यद्यपि उहां एक ब्राह्मण वेरागी बेठ्यो रहत है सो उहांते लेके खात है पाछे रात्रि को वहां गाम में आवत है । सो ऐसे ये बात दामोदरदास ने श्री गुसांइजी के आगे कही ता पाछे श्री आचार्यजो महाप्रभुजी आप पृथ्वी परिक्रमा कूं पधारे । ता समे दामोदरदास प्रथम पृथ्वी परिक्रमा में साथ हते सो अनेक जीव तामसीन को उद्धार चरण रेणु के समागते कीये । लीला में ते बिछुरे काल घने भये हैं । अनेक लक्ष योनि के जीव को फेरा भये है । सो अनगिनत फेरा फिरे तोहू पार पायो नहीं सो अनगिनत मनुष्य जन्म भयो सो धर्म, कर्म, दान हूं घने करे और भगवत् भजन हू घने करे, और तप हू घने करे और यज्ञ हू घने करे । मिश्रित भजन करे परि मोक्ष न भई । पार न परें । तो भगवत् भक्ति तो कहां ते मिले । सो उन दैवी जीवन की सिद्धि करन श्री आचार्यजी महाप्रभु ने करीके पृथ्वी परिक्रमा को नाम करिके उन दैवी जीवन के उद्धार विचारे सो जहां जहां पृथ्वी ऊपर दैवी जीव है सो पसू पक्षी, सर्प, सिंघ सहित और पर मांस के भक्षण करने वारे । और स्वात्व की देह वारे । जीवन को क्रूर दृष्टि देखन वारे, ऐसे दुष्ट हत्यारेन सों तामसी कहियत हैं सो ऐसे जीव पृथ्वी पर घने अनगिनत है सो उनकी सुद्धी श्री आचार्यजी महाप्रभून ने करिके जहां जहां वे संबंधी जीव हैं तहां तहां आप सुधि करिके पधारे और भूमि में चरण स्पर्स करिके पाछे फेरि के श्री पादुकाजी ऊपर चरण धरिके आगे पधारे । सो ऐसे दैवी जीवन को समाज होई सो तहां तहां ऐसे करें । सो वे चरण सम्बन्धी जो रेणु,ताके आश्रय दैवी जीव आयके अपनो शेष अवस्था पूरी करें । पाछे खान पान त्याग करिके चरण सम्बन्धी रेणुका को आश्रय करे । ऐसे करते भगवद् इच्छा ते करिके उनकी देह छूटी । पाछे निज धाम कुं जा देस में भगवत् लीला में ए जीव पोंहचे । सो ऐसे श्री आचार्यजी महाप्रभून को तीन वार पृथ्वी परिक्रमा को कछु विचार नाही हो सो एक वार पृथ्वी परिक्रमा को पधारे सो तब दामोदरदास हरसानी साथ है, और दूसरी वार फेर के अडेल ते पधारे तब कृष्णदास मेघन साथ हते और तीसरी वार पधारे तब प्रभुदास जालोटा क्षत्री साथ हते । सो श्री आचार्यजी महाप्रभु प्रथम तो ऐसी विचारी

जो दैवी जीव तामसी को उद्धार कैसे होय । ए तो पसू पक्षी अज्ञान है और क्रूर दृष्टि इन जीवन को जाति स्वभाव है सो इनके समीपे ठाडो न रह्यो जाय और इनको कैसे ज्ञान उपदेश कीयो जाई । सो तो जोग्यता नाही है । काहे ते जो मनुष्य योनि बिनां और काहू जोनि में ज्ञान नाही । एक जिभ्या और उपस्थ द्वे इन्द्रीन को सब प्रानी मात्र को है और मनुष्य को एकादश इन्द्रीन को ज्ञान है, सो याते सब योनि से मनुष्य योनि श्रेष्ठ है । और मनुष्य योनि में जो पंडित ज्ञाता है । चातुरिय है । पर सब पंडिताई और ज्ञान चतुराई सो प्रमान है जब प्रभुजी को जाने । परि श्री महाप्रभुजी को कैसे जाने । पहिचानिये और कैसे जानिये जो सब त्याग के प्रभुजी विषे प्रेम भाव ते अनन्यता आवे । सो अनन्यता आई कैसे जानिये जो अन्य कछु सुहाइ नाही । विष समान होय तब जानिये जो भगवद्भक्त जन स्फुरित भयो । और जाके हृदय में प्रभुजी विराजे । काहेते जो प्रभुजी हृदय में आये विना ऐसी दृढ आसक्ति कबहू न होय । ऐसे यहां वल्लभाचार्यजी के मार्ग को सिद्धान्त है । आज्ञा है । और अनेक प्रकार है । आचार, विचार, चतुराई, विवेक चारयो को ज्ञान करो । सुखेन अनेक जन्म पर्यंत करो । परि जा मार्ग को सिद्धांत जो पुरुषोत्तम प्राप्त सों एकाग्रह चितवन भक्ति बिन अनेक प्रकार के आचार विचार चतुराई विवेक सो नाहीं होत है. सो यामे कछू संदेह नाही है । सो याते श्री आचार्यजी महाप्रभून को महा चिंता उपजी और चिंता आतुरभये जो श्री नाथजी ने तो ऐसी आज्ञा दीनी है जो जो दैवी जीव सृष्टि के जीव लीला में ते बिछुरे है सो इन जीवन को तुम प्रगट होइ के जो इनको मन शुद्ध करिके मेरे आगे विनियोग करो जू । और वेग ही आइ पोहचे सो उपाय करिके वेगिही इन जीवन को ले आओ जू । सो श्री आचार्यजी महाप्रभु प्रगटत है । पृथ्वी परिक्रमा को विचारु अरु पधारे सो याही कारन दैवी जीव जहां जहां है तहां तहां पधारिके उन जीवन को देखि के परीक्षा कर तब ज्ञान दृष्टी सों उन जीवन को देखि के विचारे । जो इन जीवन की दिसा ऐसी भई है जो आसुर सृष्टि वारेन को छुवावे और बिगारे तो इनकी गति कैसी होय । तब श्री आचार्यजी महाप्रभु ऐसी जीवन की गती देखिके विस्मय मय भये । जो भाई दैवी सृष्टि के जीव तो है सो दोष निधान भये हैं याते इन जीवन को अंगीकार कैसेक होय । सो ऐसे चिंता आतुर भये । सो अत्यंत चिंता भई । तब प्रथम तो मधुवन विषे श्री ठाकुरजी की आज्ञा भई जो तुम चिंता आतुर काहे ते हो । सो तब श्री आचार्यजी महाप्रभून ने कह्यो । जो तुम दैवी जीव अंगीकार करवे की आज्ञा कही है सो जीव तो दोष निधान है और आप तो गुन निधान है सो याते या जीव को उद्धार कैसे होय । सो तो तुम सब

जीवन की दसा जानत हो जो तुमते कछू गोप्य नाहीं है । तब श्री ठाकुरजी ने कही जो तुम इन जीवन को उपदेस करिके सेवा करिके दैवी जीवन को वेदोक्त भक्ति मार्ग की रीत सों सेवा भजन कीर्तन को उपदेस करो । सो तब ए वचन श्री ठाकुरजी के सुनिके श्री आचार्यजी महाप्रभु आप चुप करि रहे परि मन में विचारी जो भाई ए कलिकाल के जीव है सो इनको कुसंग घनो है । इनको उपाय प्रबोध चले नाहीं । इन दोष अज्ञान इनको उत्तम रीत होनी कठिन है सो ऐसे विचार के बोले नाही । ता पाछे एक समें गंगासागर संगम विषे और श्री आचार्यजी पोढे हते सो ता समय हूं चिंता करन लागे जो भाई इन जीवन को कैसे करिहों । सो तब श्री ठाकुरजी आप तत्काल प्रगट होई के श्री आचार्यजी सो पूछ्यो जो तुम ऐसी चिंता काहे को करत हो सो तब श्री आचार्यजी ने कह्यो जो तुमने आज्ञा करी सो तो प्रमाण है, परि ये कलियुग के जीव है याते इनको कुसंग घनो है याते ऐसो बोध इनको स्फुरत नांही होत है तब श्री ठाकुरजी ने कह्यो जो तुम इनको उपदेश करिके पाछे भक्ति मार्ग की रीत को ज्ञान उपदेस करो सो ज्ञान मार्ग की रीत सो भजन करे । सो याते इनको कार्य होयगो । ऐसे कह्यो । सो श्री आचार्यजी आप सुनिके यह बात मन में, जो यह जीव तो कलिकाल के तम जो अंधकार रूपी जो देस है इनके इष्ट तों आच्छादन भये हैं सो ज्ञान कैसे होय । सो ऐसे विचारि के चुप करि रहे । ता पाछे केतेक दिन में श्री ठाकुरजी व्रज में पधारे । सो एक दिन श्री गोकुल गोविन्द घाट के ऊपर एक चोतरा हतो सो तहां श्री ठाकुरजी ने कह्यो, जो तुम चिंता मति करो, तुम इन जीवन को नाम देउ और ब्रह्मसम्बन्धी करवाओ, तुम जो दैवी सृष्टि के जीव को नाम देओगे सो ताको मन शुद्ध होयगो, और आत्मनिवेदन ब्रह्म संबंधी करवाओगे सो ताके सकल दोस निवृत्त होइंगे सो तब इनको ज्ञान उत्पन्न होयगो और ते खबर होयगी । सो याते तुम जीवन को ब्रह्मसंबंध अवश्य करवाओ । सो तुम ब्रह्मसंबंध करवाओगे ताको अंगीकार मैं करूंगो । तुम उनको ज्ञान उपदेस करिके दृढासक्ति भक्ति को बोध करिके दृढाश्रय होयके समर्पणादहं पर्व, इति वचनात् । याते पूर्व के दोस तो आत्म निवेदन करे ते और दृढ आश्रय कृष्णाश्रय होयके निःप्रपंच होइ तो पूर्व के दोष जाय और अब जो दोष करेंगे सो अब दोष मैं विचारूंगो नांही । सो ये मेरे वचन है । अन्यथा सर्व दोषाणां न निवृत्ति कथंचन । इति वचनात्,या वचन ते वैष्णव को अनन्य अवस्य राखे । और दोस नांही सब माया के वैभव की कामना त्याग करि सर्व त्याग अनन्य भावे । ऐसे वचन हैं याते वैष्णव को अन्याश्रय, देव, ग्रह, देवी, सुर, मनुष्य काहूको आश्रय नांही करे तो याको और दोस कछू नांही । लौकिकासक्ति और विषय वासना एही वैष्णव को दोष है ।

और दोष दैवी जीवन को नांही है । सो ऐसे श्री ठाकुरजी के वचन हैं । यह वैष्णव एकाग्रह राखेंगे तो यह जीव कहां लौ मौको छोड़ेंगे भूले परि हों इनको भूलूंगो नाहीं । ऐसे श्री आचार्यजी सों श्री ठाकुरजी ने वचन कहे । याते वैष्णव को प्रथम तो अन्याश्रय करनो ही नहीं । अन्याश्रय को त्याग करनो । याके पीछे सब विवेक आचार है । सो याते श्री आचार्यजी महाप्रभु ने अनेक ग्रंथ द्वारा अन्याश्रय वर्जित कर्यो है । श्री आचार्यजी महाप्रभुजी फिर यह बोध करे है जो जा वैष्णव को बडो भाव सर्वोपर दृढासक्ति को है । सो या समान लाभ नहीं है । लाभ तेषु दृढाभक्ति इतिवचनात् । याके लीये श्री आचार्यजी महाप्रभुजी घने वचन सों मनुष्य देह के दैवोजीवन को तो ऐसे बोध कराए सो ग्रंथ करिके उद्धार करे हैं । ता पाछे श्री आचार्यजी महाप्रभुजी फेरि के विचारे जो पसू पक्षी तामसो जीव घने घने हू हैं । याते इनको उद्धार कैसे करिके होई । इनको उद्धार कैसे करिके करें, इनको मन कैसे करिके फेरिये, और कैसे दृढ आश्रय होय सो ऐसे विचार करिके तामसो जीवन के उद्धार निमित्त आप श्री आचार्यजी महाप्रभु तीनवेर पृथ्वी परिक्रमा करी । जहां जहाँ दैवी जीव है सो तहां तहां सुधि पधार के चरण संबंधी रेणु करिके सो वा स्थल पर चरण परस करिके वा रेणु द्वारा उन तामसी जीवन को उद्धार कीयो । वाही रेणु द्वारा माया को अभाव कियो । अपनो पूर्व संबंध ज्ञान कीयो । और पुरुषोत्तम को ज्ञान कीयो । सो या वरदान ते जीव लो या तामसी जीवन वे चरण संबंधी जो रेणु ताके आश्रय जो दृढ करिके अपनो आयुष्य पूर्ण कीयो । काल व्यतीत कीये । ता पाछे अन्त समय उन जीवन को वा चरण सम्बन्धी रेणु द्वारा भगवद् दर्सन भयो । ता पाछे दर्सन को वियोग करिके उन जीवन को विरह ताप भयो । अत्यंत ताप कलेस भयो । याते सरीर में ते धुआँ उठ्यो । मुख द्वारा ज्वाला उठी सो उन जीवन को भगवद् विरह ताप रूपी अग्नि ज्वाला और ताप उनके सरीर में ते चली सो सरीर को ताप और चरण संबंधी रेणु को । सो दोनों ताप एकत्र भये । तब उन जीवन की देह छूटी और देह को संस्कार हूं वह दोनों ताप द्वारा भयो सो अग्नि प्रकट होयके उनकी देह को भस्मी करी । पाछे उन जीवन को चार दूत श्री आचार्यजी महाप्रभुन के आये और एक दूत आगे चल्यो सो मारग दिखावत जात और वाने कह्यो जो हूं पांउ उठाउ तहां और तूं पांव धरियो और एक दूत पीछे सावधानता सों राखे । तो कौऊ या जीव के अनेक जन्म संबंध रिण हैं । वार वार आइके लागे याते वह दूत कहे कि सावधान होइ के चलें, सो ऐसे वो चार दूत वाकू वेग सो लेके जाई । सो प्रथम तो थोरीकसी गेल में याके संबंध के आवत है पाछे माया की माइक सृष्टि असुर जीवन की हृदय मर्यादा जहां ते कछुक छूटवे की आवे

तहां आस पास दोउ बडी बडी कराड़ें है। वे कराड़ सत योजन लों आवत है। उन कराडन में घनी ओंडी खाई सी है। सो वे कराड की वैभव कछू अद्भुत मोह कारीक है। सो उत्तर देस की कराड में ते घनी सुन्दर स्त्री नव योवन सर्व वस्त्र अमूल्य आभरण भूषित सकल श्रंगार किये है। सुभगा घनी कामिनी जोवन वहां रहे और वैसे ही पुरुष नव योवन सुन्दर सब वैभव श्रंगार संयुक्त है। सो सिज्या उत्तमोतम वैभव है। संयुक्त वा सिज्या ऊपर आनंद वस्त्र मणिमय कामोक्त विषेकी काम शास्त्र युक्ति सब हि कहत है। और दक्षिण दिसा की ओर की ओर की खाई में खान पानादिक अनेक वैभव है। घने सुन्दर पाक चतुर विधि भोजन सिद्ध है सो मनोहर पाक है। घने ही जल है। घने सुगंध है। घने मधुर सप्त रस पदार्थ सूक पाक घनी घनी भांति के हैं। घने कोमल घृत कपूर सब सिद्ध है। और माईक कौतिक घने घने बाग हैं। अद्भुत अद्भुत कौतिक ख्याल सब सिद्ध है। और माईक मोह के जीव मनुष्य सब करत हैं। ऐसी दोय बडी बडी खाई कराडे हैं। ताके बीचमें चलिबे की गेल है। एक पाउ धरे उतनी लीक कढ के ऊपर होइके है। सो ऐसे सत योजन की गेल है। वा गेल पे दैवी जीव तामसी तथा मनुष्य मात्र श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के दृढ आश्रय, भक्ति द्वारे वैष्णव को श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के दूत भगवत् लीला संबंधी धाम है सो श्री आचार्यजी महाप्रभुजी की आज्ञा ते ले जात है। सो भगवत्माया की पुत्री अविद्यानाम के वैभव सब मोह मात्र है। वा ठोर श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के दूत एती सावधानी सो या वैष्णव को लेजात है, सो चार जने वा धाम में अति सावधान सों वारि और आस पास आसे चले जात है। जो ए मति कहूं इत उत देखे और इनको मन मति कहूँ अविद्या में आवे याते भगवत गुण गान वार्ता भगवत् ज्ञान संबंधी की अलौकिक करत है सो उन जीव अलौकिक वैष्णव को भगवत् लीला में मोहित करि के रसा वेष्ट करिके देखे हैं, सो भगवत् लीला की वार्ता के आवेस सो छके हुवे चले जात हैं। सो वे चार जने दूत इनको रसावेष्ट कर देत है, काहेते जो मति कहूं इत उत देख के अविद्या के मोह में मोहित होय। याते वे चार पारसद सावधानी सो वा स्थल पर या वैष्णव को लिये जात है। उन पारसदन को श्रीआचार्यजी महाप्रभून की आज्ञा है जो तुम दैवी जीव वैष्णव को निजधाम में ले जाउ। सो माया अविद्या की हृदय में वे कराडें की गेल घनि घनि सावधानी सो लेजाईयो। काहेते रंचक हूँ इन जीवन को वैभव देखि के मन डिगेगो तो इनको अकाज होयगो, भयो संबंध ए वृथा होइगो। ऐसे इन पारसदन को श्री आचार्यजी महाप्रभुजी की आज्ञा है। याते बहुत वा स्थल पर सावधान राखत है। वे अविद्या के वैभव में मोहित न होय याते इत उत देखन

ना पाये। ऐसे बोहत सावधानी राखत है। अथवा उन आसुर जीवन के मोह के वचन सुनो और इनके मोह में उन वैष्णव को मन भिगरे और मोह पावे तो श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के दूत छोड़ि देई। तब वे जीव अविद्या खाईन में गिर परे। और वे आसुर जीव जातिन में जाइ दरे। सो इहां अवतार लेई पाछे भयो संस्कार वृथा होय। फिर माया संबंधी अविद्या सृष्टि में जाइ परे। पाछे ना जाने जो अब अंगीकार होई। ऐसे समे में श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के प्रागट में और ऐसी प्रबलता रीत में इनको भयो संस्कार वृक्ष भयो। तो आगे अंगीकार होवो अति कठिन है। याते दैवी जीव को अति सावधान रहनो। इन दैवी जीव को अविद्या संबध वैभव को मोह है सो जो सो जो इनको जोखम है बड़ो भय है। याही ते श्री आचार्यजी महाप्रभुजी दैवी संबंधी जीवन के लिये घने घने ग्रंथ करि घने घने प्रकार सो माया मत को खडन किये हैं। जो मति कोऊ वैष्णव माईक मति के मोहिन सास्त्र सुनिके देखिके मोह पावे। याते अनेक ग्रंथ करि माईक ग्रन्थ खण्डन करचो है। जो मति वैष्णव को माईक ग्रन्थ मति कहूं बाधे। सो वैष्णव को माया मत ते तथा माया के वैभव कौतिक ते मन विराम न राखनो। ऐसे मान विरक्त होइ तो वा समें वैभव खाई में देखि के मन डिगे नाही। और जो कदाचित् माया के वैभव में मन लुब्ध होइ तो सर्वथा वा खाई में गिरत है। याते वैष्णव कुं प्रथम ते ही सावधान रहनो। यह संसार की माया विषय तृष्णा ते डरपत रहनो। दूरि रहनो सो याही कारण है। ता पाछे यह दैवी जीव अस्मिन मार्गी वैष्णव की देह छूटे। पाछे श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के चार दूत, सो वा खाई अविद्या के संबंधी वैभव जोवन की है सो वे सत योजन परियंत अति सावधानी सों लेजात है। वाको मन भगवत गुण गान कथा में तल्लीन मगन करि देत हैं सो लीला के आवेस में विवस्ता में, आवेस में आनन्द में चले जात है, और उनको कछु अविधा के मोह कछू बाधे नाहि। और अन्तः करण पूर्वक उनको देखे हूं नाही वे नाद सुने हू नाही। वे चरण सम्बन्धी जो रेणू ताके दृढाश्र करिके सब रीत को ज्ञान हूं होते है। याते उनको कछू बाधा नाही करे। वे अविद्या को वैभव कछु है नाही है और सुने हूं नाही। और वे चार जने पारसद वे हू वैष्णव भगवत् लीला में वार्ता के रस में विवस कर देत हैं। परि पूर्व देह सब स्थित में जो भगवत् आवेस आविरभाव सानुभावता होहि। साक्षाद् आद्धिदैविक स्वरूप को दर्शन होय। तो वा समे बाधा नाही करे। सुधि रहि ऐसे मनुष्य मात्र वैष्णव अस्मिन मार्गीन को अभ्यास होई। सब मार्ग रीत और श्री आचार्यजी महाप्रभु के लिये ग्रंथ को न होई ज्ञान होय। सब रीत प्रीत स्फुरत होय तो वाहू में कछु बाधा नाही करे और कदाचित् वे लौकिक

मार्ग मत प्रतिष्ठा लोभ मिश्रित प्रतिष्ठा वैष्णव धर्म आचरण करे तो तैसे ही होय । तब वा समे वे अविद्या संबंधी खाईन में वे वैभव देखिके सर्वथा गिरे । और वे दूत हूं छोडि के जाई और ऐसे दुराचारी वैष्णव को वे श्री आचार्य जी महाप्रभु जी के इत हू समीप नाही आमे । और श्री आचार्य जी महाप्रभु जी के सेवक मात्र जो अजहूं सरण मात्र उपदेस मात्र भयो होय और ये वैष्णव द्विध आचरण करे और अन्याश्रय करे और विभचार धर्म करे और भगवत् सेवा करे पर वा जीव वैष्णव को अंतकाल समे श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के पारसद तो वाको छूवे नही । परस नाही करे और विष्णु दूत हूं याके समीप न आवे और याके समीप यमदूत हू न आवे तब सर्वथा याकी प्रेत गति होय । याते वैष्णव को सर्वथा सावधानी सो रहनो और दैवी जीब को मन वे अविद्या को वैभव रूपा खाडे में डिगे नहीं । और देखे हूं नाही । ऐसे प्रथम ही दैवी जीव के मन में माया को अविद्या को वैभव अभाव होय और संसारी जीव तुच्छ करिके मान्यो होय और कोऊ प्रकार सो वाको मन डिगे नाही ऐसे धीरजवान वैष्णव को मन उहां ऊं डिगे नही । और भांति सो मोह अविद्या को मोह देखि के धीरज रहनो कठिन है याते वा स्थल में वाको धीरज रह्यो और मोहित नाही भयो तो ये काल एह माया को जीत्यो पार पर्यो । ता पाछे काहू विघन नाही है और वा स्थल पर श्रीआचार्य जी महाप्रभुजी के दूत हूं घनी घनी सावधानी सों या जीव वैष्णव लेजात है । सावधानी घनी घनी राखत है । उनको श्री आचार्यजी की आज्ञा है । तुम सावधानी सो इन दैवी जीवन को ले जैयो । अति सावधानी से इने राखियो । जो मति कोहू इनको मन डिगे । और भयो कार्य मति कहूं वृथा होय । याते अति सावधानी भगवतलीला की वार्ता में इनको मन रसावेष्ट करिके विवस्ता में ले जैयो । ऐसे उन दूतन को आज्ञा है । याते वे दूत उन वैष्णव जीवन को ऐसे सावधानी सों लेजात है । जो मति कहूं इनको मन डिगे नाही ऐसे वा स्थल में सत योजन की खाई या ऊपर होइके चले जाइ । वायु वेगि सो सावधानी सो वा जीव वैष्णव की बाह पकरिके चले जाय सो एक महूर्त में वे अविद्या की खाडी की पाल मेंड छोडि के आगे जात है । ता पाछे आगे फिर के ऐसी भय की गेल कोऊ नाहि है । अति निर्भय मार्ग है । सो वे अविद्या की हद खाई छोड़े पाछे इन जीव अस्मिन मार्ग दृढ आश्रय वारेन को ऐसी गेल मार्ग लेजात है जो जहां माया को लेस मात्र संसय नांही है । और वैकुंठ की सर्ग की देव लोक लेके श्रेष्ट है । सो वे गैल छोडि के लोकालोक पर्वत के पाछे होयके सिखर पें होइके चले जाय जहां कोऊ बात को भय नाही । सो ऐसे स्थल मार्ग में आनन्द में चले जाय, सो अपरंपार अनन्त जोजन जा मार्ग को पार नाही है यह स्वप्न में लोके छांडि के सत्य लोक में वैकुंठ छाडि के आगे जाइ के निकसे । ता पाछे लौकिक प्रमाण माया की हद छोडि के आगे व्यापी वैकुंठ है । सो जा ठौर पर भगवत माया वैष्णवी, महा मोह को स्वरूप, उहां ठाडी है सो उहां खिरकी है । सो वे खिरकी मूद के उहा वे आदि माया की चोकी है । वा खिरकी को पीठ देके माया ठाडी है सो काहू को जाइवे नाही देत । कोऊ कैसो हू मर्यादा मार्गी भक्त होहू पर उहां जाइ न सके । सब को मुक्त मार्गी भक्त अथवा देव ब्राह्मण ऋषी होय सो उनकी गति रमा वैकुंठ लोक सत्य लोक लों है । आगे सुर असुर मनुष्य की गति नाही । कोऊ जाइ सके नाही । और वा भगवद् माया के प्रताप ते अथवा मोह ते कोउ आइ सके नांही । वा माया के मूल ब्रह्म आदि देवक आदि ब्रह्म । जो आदि सृष्ट के आगे प्रथम वेही स्वरूप है, और महाप्रलय के समय एक वेही रहे । और दूसरी वस्तु सृष्टि सबही को नास होई । वा आदि ब्रह्म में सब लीन होई । और कोऊ ना रहे । देव और दानव, मनुष्य मात्र, पसू पक्षी, स्थावर और जंगम सब ही लीन होई नास होई । तब एक ही ब्रह्म रूप आपु ही अपनी सभा ते विराजत है सो ब्रह्म सरूप की माया को आज्ञा है जो तुम इन जीवन को सृष्टि को अपनी लीला आसुर मोह में मोहित करके इनको हमारे पर मोह मति आइवे देऊ । कदाचित कोई जोगेस्वर आइवे की इच्छा करे तो तू तेरे प्रताप बल सामर्थ ते मति आइवे देऊ । ऐसे माया को भगवद् आज्ञा है । याते वे काहूको जाइवे नाही देत है । भगवद् माया है सो वे माया श्री आचार्य जी महाप्रभुजी के दूत और श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के सेवक वैष्णवन को देखि के इनको प्रताप तेज देखि के वे भगवत् माया इनको देखिके डरपत हैं । मन में भय मानत है । जो मति श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के दूत कोपें । तो मोहु को इहांते उठाइ जरावे । याते ऐसो श्री आचार्यजी महाप्रभून को प्रताप बल मन में बिचार के वे दूत देखि के दूरि ते और भगवत् माया मन में डरपति है और थर थर कांपि के दूर होय । वे खिरकी छोडि दूर जाय ठाडी होत है । और वे दूत तथा वैष्णव श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के सेवक को दूरि ते प्रथम प्रणाम दंडवत करत है । हाथ जोड़ के बीनती करत है । तुम धन्य हो जो ऐसो दूरिते मेरो मोह है जो ताको जीत के पराजय करिके भगवत् सन्निधान जात हो ऐसे वैष्णव की स्तुति करत हो । जो तुम हू धन्य हो सो ऐसे जीवन को मेरे मोह ते लेजात हो और निरंतर श्री ठाकुरजी को दरसन करत हो । भगवत् लीला में इन जीवन को पोहोचावत हो । दिन में दस वेर दरसन करवावत हो । दैवी जीव हो । याते तुम समान कोऊ नाही है । ऐसे विनती भगवत् माया उन दूतन की सराहना करत है । ता पाछे मन में डरपि के दूरी ठाडी रहत

है। इनको देखि के थर थर कांपत है। मति कोहू कोप करिके देखे तो जराय के भस्म करें, प्रभुजी ते विमुख करें। याते वे आगें ही खिरको छोडि के दूरि ठाडी रहत है। पाछे वे दूत श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के सेवक वैष्णव को लेके खिरकी द्वारा माईक लोक छोडि के अलौकिक में जात है। पाछे उहांते थोरीक सी दूर व्यापी वैकुंठ को द्वार सो द्वार में वे प्रवेस करे। पाछे आगें ब्रह्म सदन की उपमा कहांलों कहिये। एक रसना ते वा स्थल की उपमा कही न जाय। ऐसे ऐसे अद्भुत रचना घनी घनी अलौकिक है। ध्यान में जोगेस्वर देखके मोहित होत है और छे नांही पावत है। मोह पावत है। सो श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के दूत ब्रह्म सदन अपार है। ता पाछे आगे भगवत् लीला संबंधी द्वादस कुंज है सो एक एक कुंज की अद्भुत लीला संबंधी रचना है। परम कौतिक है। जो महाप्रभुजी हू अपनी लीला देखि के मोह पावत है। तो तहाँ और की कहा चली है। जो जोगेस्वर बड़े ज्ञानी है और मुक्ति मार्ग को स्वप्न में हू अति दुर्ल्लभ है तहां नित्य कुंज प्रमाण लीला की हैं और नव कुंज परम लीला के रमण स्थल हैं।

ऐसो तहां है प्रथम पुष्प कुंज

ताके ठाकुरजी श्री मदनमोहनजी हैं। सो वा कुंज के द्वार जाइके दूत ठाडे रहिके उहां के द्वारपाल सखीन सों जाइके वीनती करिके कहत हैं जो तुम्हारे स्वामिनीजी सों जाइके खबर करो। और हमारी ओर ते विनती करो जू श्री आचार्यजी महाप्रभुजी को सेवक अमूको स्वामिनीजी को अमूक सेवा सम्बन्धी, अमूके शृंगार सम्बन्धी अमूकी सखी सोइ इतनो इतनो काल उहां ते बिछुरे भयो सो अपार अवतार चौरासी के फेरा भये सो आसुरी सृष्टि के जीव ते हूं निसिद्ध भये जीव की बुधि विपरीत भई हती सो श्री आचार्य जी महाप्रभुजी अनुग्रह करिके इनको सेवक करिके नाम निवेदन करिके भगवद्विनियोग करि पीछे इनकी देह छूटी। पाछे श्री आचार्यजी महाप्रभुजी की आज्ञा ते हम याकों अविद्या सों बचाइ के इहां लाये हैं। याते तुम अपने कुंजाधिपति सों, श्री नाथजी श्री स्वामिनीजी सों जाइके इन जीवन को वैष्णव की खबर करो। समाचार सब कहिके पाछे वे जैसे आज्ञा करे तैसे करो ता पाछे वे द्वारपाल सखी अपने श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी सो इन जीवन वैष्णव की सब बात समाचार जैसे उन (जीवन वैष्णव को) दूत कहे हैं सो सब निरूपण कीये। जो महाराज एक वैष्णव श्री आचार्यजी महाप्रभुजी को सेवक आयो है सोही द्वार ठाडो है। अमुके कुंज की अमुकी सखी है। सो अपराध सों भूतल में

गयो। पाछे श्री आचार्यजी महाप्रभुजी प्रगट होय के इनको अंगीकार करि नाम निवेदन करि के दृढ़ आश्रय करिके पाछे देह छूटे। पाछे श्री आचार्यजी महाप्रभुजी की आज्ञा ते इनको दूत इहां लाये हैं सो द्वार पर ठाडे हैं, याते आपकी आज्ञा होय तो इहां आमें। तब श्री नाथजी श्री स्वामिनीजी ने आज्ञा करिके कह्यो जो ऐसे भाग्यवान जीव को न रोकिये याके भाग्य की कहा कहिये। जो भूल मोह माया अविद्या रूपी विषय को सागर है, ताको तरवे को श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के मार्ग प्रगटवित् रूपी जो नाव तामें बैठि दृढाश्रय करि विस्वास राखि के जो संसार के आसुरी जीव हैं ताको आचरण और वचन को परित्याग करि अविस्वास करि सबन को जीत के पार उतरे हैं। अविद्या को जो मोह काम, क्रोध, मद, मत्सर, माया, ममता, अहंकार ऐसे अष्ट उपाधि कहें ताको जीत पराजय करि ऐसे दुष्ट उपाधि सहित अति उत्कष्ट जो कुसंग ता छोडि परित्याग करि, अभाव करि, जीत के इहां ले आये है, याते ऐसे भाग्यवान को ना रोकिये, याते उनको लावो जू। पाछे वे वैष्णव को सखी रूप सो इहां वे द्वारपाल सखी अपने संग लेके आवे है सो भाव रूपी पुष्प फल की छाब वा सखी को दोउ हाथ में देत हैं। तब वासों वे द्वारपाल सखी उनसो उपदेस करि सिखवत है जो तुम जाइके प्रथम तो श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी को दंडोत करियो, पाछे यह फल की छाब भोग धरियो, और पुष्प की छाब में ते सब भांति के आभरण लेके श्रृंगार करियो। ऐसे कहि कें पाछे वाकों श्रीनाथजी श्रीस्वामिनी जी सो जाय के दंडवत करत हैं, पाछे वे फल की छाब लेके श्री ठाकुरजी को भोग धरत हैं। सो फल अति मधुर अति सुगंध अति कोमल रसावेष्ट रस सों पूर छिलका गुठली कछु नाहि, अति स्वाद मनोहर, ऐसे घने घने प्रकार के फल घने घने स्वाद के हैं सो सब श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी को भोग धरत हैं। पाछे वे पुष्प की छाब लेके अनेक शृंगार है, और अनेक प्रकार के पुष्प अपार जाती के आदि सब भांति के अति सुगंधित कोमल अति उजल अति सुन्दर है, सो श्रीनाथजी श्री स्वामिनी जी को शृंगार सब करिके पाछे हाथ जोर के सब स्तुति करत है। ता पाछे श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी अपनो उतरण सिंगार पहराई पाछे प्रसादी फल याको देत है सो महाप्रसाद यह लेत हैं। ता पाछे श्री स्वामिनीजी अपनी सखी एक बुलाइके सो वासों आज्ञा करत है जो तुम या सखी श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के सेवक को अपने कुंज की लीला में कोतिक सब दिखामे। यह घने घने काल पाछे आये हों याते याको सबही विस्मृति भयी है यातें अपने कुंज के सब भक्त इनको मिलावो और सब कुंज को लीला वैभव दिखाई, ऐसे श्री स्वामिनीजी अपनी सखी सों कही, जो यह सखी अमुके जूथ संबंधी है। याको याके संबन्धीन को इहां ते

बुलाइ लाइ, सब कौतिक स्थल दिखाइ के पाछे जो इनको काहू भक्त से द्वेस उपजे और मन काहूसो ईर्षा हों तो याको पाछो भूतल विषे डार दें जो और कदाचित् भक्त विषे स्नेह आवे तो और उनको वचन दृढ विस्वास भक्ति आवे तो हमारे पास लाइयो। पाछे वे सखी याको हाथ पकरि के परम स्नेह सों लेजात है सो कुंज को अद्भुत लीला है। अद्भुत कौतिक है। अने सुमंदिर मनि जटित है। जहां रत्न जटित भूमि है। और स्फाटिक मणी की भीत है और हाटक द्वार है और चूरामणि के जटित है और नीलमणी की छाति है। ऐसे घने घने वैभव अदभुत हैं। जहां नव पल्लव वृक्ष हैं और सब वृक्ष फल फूल सों झूमि रहे है सो फल हू घने मनोहर हैं। अति मधुर अति कोमल अति सुगंधित हैं और रसाविष्ट है। सदा सदैव पक्व है। कबहू बिगरे नाही ऐसे ही पुष्प हूं विगरत नाही ऐसी उहां हू कछु वस्तु सामग्री है। वैभव प्रभृत सब है और भक्त सेज्या आसन सबही राजत है। अक्षेरा चित्त है जहां क्षय नाही। और कछु काहू को काहू बात को एक प्रभुजी विना भय नाही। कोई प्रकार के रोग को भय नाही। और जरा (बुढापो) नाही। सब ही आनन्द गुण मात्र गुण रूप हैं। गुणातीत हैं। ऐसे अनेक पक्षी सुभगा सुभ जाति है। उन पक्षीन को अलौकिक मधुर बानी है। ऐसे अनेक बंगला बाग में है। और अनेक कारंजा छूटत है, फुआरा कंचन के मणीजटित छूटत हैं, ऐसे परम कौतिक के बाग हैं, अनेक ख्याल कौतिक हैं। ऐसे भक्त अपने अपने मंदिर प्रति न्यारी न्यारी अनेक अगिणित सखी हैं। परम सुभगा परम सुन्दर हैं। अति मनोहर मोहित कामिन, नव योवन परम लावन्य जिनके सकल अंग हैं। और परम चतुर विशेस हैं। और जीवन केसरी दिव्य है। तेज के सुगंध के सरीर हैं। दुरगंध तो जहां कहूं लेस नाही है और वैसे ही दिव्य वस्त्र अनेक रंग के हैं। सब सखी कोमल सुभग वस्त्र पहरे हैं। आभरण मणी जटित दिव्य सुभग कंचन के मणी के रत्न फल के मुक्ता फल के। ऐसे नख सिख लों सोरह सिंगार कीये हैं। काजर तिलक तांबूल मांग सिंदूर सब भरे हैं सजे हैं। पुष्प पारजाति के वेणी में भरे हैं। और कंचन चौकी जरावली ता पर वे सखी बैठी है। तहां वैसी अनेक हैं। कमला सील परम विशेष सों सेवा में ठाडी है। तहा कोऊ उबटना सुगंध करि सुगंध ते लगावत है। कोउ सुगंध उष्णोदिक सों स्नान करावत है कोऊ चोटी वेनी करि पुष्प गूथत है। कोऊक वस्त्र आभरण सिंगार करत हैं। कोउक काजर तिलक करत है। कोऊ दर्पण दिखावत है, कोऊ पंखा करत है, कोऊ अति अष्ट गन्ध अरगजा अत्तर लगावत है। ऐसे अनेक वैभव है। और अनेक पाक साक सहस्त्राविध मनोहर है। सर्व रस पदारथ संयुक्त चतुर्विध भोजन सब नवीन है। कंचन रत्न जटित बेला में धरो हैं। और अनेक

दिव्य बाजंत्र घनो घनो प्रेरप्रित बाजा बाजत हैं। सो मंदिर प्रति द्वार द्वार कलस कंचन के धरे हैं। ऊपर दीप मणि के धरे हैं। और मुक्ता फल के तोरण बंधे हैं और ध्वजा पताका वे सब सजे हैं। ऐसे वैष्णव श्री आचार्यजी महाप्रभून के सेवक को वे सखी सब ठोर लेजात है। सब कुंज के भक्त सखी को मिलावत है। तब ते मन्दिर की अधिपति सखी सो इनको देखि के उठि ठाडी रहत है। पाछे या भूतल संबंधी भक्ति सों मिल भेटि के याको हाथ पकर के गादी तकिया पर बैठावत है। कहो जू तुम कोन कुंज के कोन स्वामिनीजी के यूथ की सखी हो। सो कोन अपराध से भूतल पर परे हते। पाछे कहा प्रकार बीते सो सब कहिये और कोन प्रकार सों यहां लो पाछे आये सो प्रकार सबही कहिये। पाछे वे श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के सेवक जो प्रकार भयो, और श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के सेवक भये और अंगीकार भयो सो सब ही कह्यो। और जो कछु जन्म कर्म धर्म सबही विस्तार करिके कह्यो और मार्ग में श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के दूत सावधानी सों लाए और अति आश्रय के बल सामर्थं के प्रताप ते सब ही भय ते बचे। और या अस्थल की प्राप्ति भई और तुम से कृपा पात्र भक्त के दर्सन भये। ऐसे सब बात सुनि के पाछे वैकुंठाधिपति सखी सों इन सखीन को सत्कार सन्मान सब करत हैं। इनकी तनुविषय की सेवा करत हैं। काहे ते जो श्री आचार्यजी महाप्रभुजी को सेवक संबंधि जानि के सन्मान करत है ता पाछे अपने अपने भवन को सुख वैभव सब इनको दिखावत है। पाछे श्री आचार्यजी महाप्रभुजी संबंधी सखीन सो उन सखीन सो विनती करे है। जो मो को और आगे कुंज की लीला वैभव देखिवे को मनोरथ है सो मोको दिखाइये जु। तब वे कुंजापति सखी इनके संग एक सखी देत है और वा सखी सों कहत जो तुम इन श्री आचार्यजी महाप्रभुजी की संबंधी सेवक सखी के संग जाउ और फल कुंज की द्वारपाल सखीन सो मिलाई सब बात समाचार कहि सोंपिके आइयो।

॥ इति पुष्प कुंज समाप्त ॥

अथ "फल कुञ्ज"

पाछे वा सखी के संग आगे फल कुंज को जात हैं। सो उहां के द्वारपाल सब सखीन सों बात यह पुष्प कुंज की सखी सब बात समाचार कहेत हैं और कहत हैं जो तुम अपने कुंजाधिपति श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी सों जाइ के कहो जू एक सखी श्री आचार्य जी महाप्रभुजी की सेवक सो इहां लो श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के दूत उहां पोहोंचाय सोंपि गये हैं। याते तुम जाइके इनके समाचार सब निरूपण करिके सब कहोगे और कहो जो

तुम्हारी आज्ञा होय तो यह सखी अपने दर्शन को आवेजू पाछे वे फल कुंज की द्वारपाल सखी अपने श्रीनाथ जी और स्वामिनीजी सों अपनो बात निरूपण करिके पाछे कहे जो आपकी आज्ञा होय तो आपके दर्शन को इहां आवे। तब श्रीनाथजी तथा श्री स्वामिनीजी ने कह्यो जो ऐसे भाग्यवान को सर्वथा न रोकिये। वा सखी को लाओ जू। तब वा सखी को वे द्वारपाल सखी अपने साथ इहां लावत हैं। सो वे द्वारपाल सखी एक पुष्प की छाब और अलौकिक फल की भाव रूपी छाब सो इनके हाथ में देत है। और इनते कहत हैं जो तुम जाइके श्रीनाथजी तथा श्री स्वामिनीजी सों दंडवत करिके पाछे पुष्प को सिंगार है सो श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी को शृंगार करियो। पाछे वे मन्दिर में जाइके दंडवत करिके वे पुष्प शृंगार करिके पाछे वे फल सब भोग धरत है। पाछे श्री स्वामिनीजी वे उतरणु को जो शृंगार वा सखी को देत है। और प्रसादी फल प्रसाद देत हैं। सो प्रसाद यह सखी खात है और प्रसादी शृंगार सो शृंगार करत हैं। ता पाछे श्री स्वामिनीजी अपनी एक सखी यह श्री आचार्यजी महाप्रभुजी की संबंधी सखी के साथ देत हैं। और वा सखी को आज्ञा करत है जो तुम या सखी के साथ जाइके अपनी कुंज की सखी और कुंज के सर्व मन्दिर और बाग और कुंज की सब सखीन सों मिलाई के। पाछे सब अपने कुंज की सखी को देखिके और उनको वैभव सुख देखि के या के मन में स्नेह आवे प्रीत उपजें तो इहां हमारे पास फेर के लाइयो। फेर कदाचित द्वेस उपजे तो भूतल पे डार दीजो। पाछे वे स्वामिनीजी की आज्ञावत् ता सखी को हाथ पकरि के सब ठोर लेजात है और कुंज की लीला सब दिखावत है। और सबन सो याको मिलावत है और सब बात समाचार श्री स्वामिनीजी ने कहे हैं सो कुंजाधिपति सखीन सों सब कहत हैं। पाछे मंदिर की मुखिया जो सखी सो इनको उठि के मिलत है। भेटत है पाछे ये सखी श्री आचार्यजी महाप्रभुजी संबंधी सखी को हाथ पकरिके अपने आसन गादी तकिया पर बैठारत है। पाछे अपने मदिर की सब सोभा वैभव दिखावत है। और बागल और पसु पक्षी अद्भुत सुन्दर लावन्य सो सब याको दिखावत है। ऐसे अपने मन्दिर की सब अद्भुत लीला वैभव सर्व दिखावत है। पाछे वे अलौकिक पक्षीन की मधुर वाणी सुनत है। अति आनन्द पावत हैं, वे पक्षी सुजात सुक, त्रक, मोर, कोकिला, सारस, ऐसे अनेक पक्षी सुभग व्याधि रहित, सो निरंतर भगवद् गुण गान गावत है, मानो उच्चार रात्री दिना करत हैं। सो उहां पसू पक्षी जाति हू मलसूत्र ना कछु देहाध्यास कछू नाही। और उहां की सखी को प्राकृत धर्म कछू नाहि देहाध्यास प्राकृत नाही वा कुंज भवन के जीव जाती को और भक्त को मल सूत्र नाहि। जहां जन्म मरण नाहीं। क्षय नाही। रोग कछू नाही। और जीव तामसी कोऊ नाही। परस्पर जीव में दुःखदाई कोऊ नाही। और वा कुंज सदन में निकुंज देस में द्वादश कुंज में कछू उपाधि नाही। उपाधि रहित स्थल है और दुष्ट जीव दुःखदाई कोऊ नांही। पक्षी हू दुःखदाई नाही। मच्छर नाही। माकण (खटमल) नाही, पिसूजवा गोंचडी, गोमोक्षी डास जूआं कछू नाही और सर्प जाति नाही। व्याघ्र, सिंघ, रीछ नाही। स्वान, मांजार, मूसा, अजा, खर यह कछु नाही। और पसू पक्षी जाति में काग, वगुवड, वानल, उल्लू, चील, सिकरा यह कछु नाही। सर्व सुख की रीत निधि है। ऐसे सुख के सब धाम देखिके अति प्रसन्न होत है। पाछे वे मन्दिर की अधिपति सखी सो वा वैष्णव की श्री आचार्यजी महाप्रभुजी की संबंधी सखो को सब वैभव बाग और मंदिर की रचना सब दिखाई पाछे हाथ पकरि के वा सखी को अपने उत्तमोत्तम आसन सिंघासन गादी तकिया पर बैठावत है, पाछे समाचार पूछत है। सो श्री आचार्यजी महाप्रभु के सेवक सखी समाचार अपनी बीती सब कहत है। पाछे वे मंदिर की अधिपति सखी सुनि के आश्चर्य पावत है और इनको बहुत कहत है जो तुम धन्य हो। तुम्हारी कीर्ति बडाई को कछु पार नाही। काहेते उत्कर्ष जो भगवद् माया ताकी पुत्री अविद्या। ताको कोतिक प्रपंच और कपट और छल। ऐसे कापट्य और छल के जो नट रूपी विषें जो ताको समुद्र विसम सो तुम पार उतर के इहा लों आए हो। याते तुम धन्य हो जू। ऐसी अविद्या को जीत के दृढ दृढता राखि के पूरण पुरुषोत्तम संबंधी में मिले आइके मिले हो जू। पाछे घने घने सनमान करिके मनोहर भोजन महाप्रसाद घने घने प्रकार के करावत है। पाछे सुगध बीडा प्रसाद देत है पाछे घने घने उंचे सुभग वस्त्राभरण पहरावत है, पाछे सब शृंगार करत है। पाछे पुष्प की माला आभरण पहरावत है। चोटी में पुष्प गुहत है। पाछे उहां ते विदा होइ के चलत है। तब वे मंदिर की सखी हाथ जोरिके मनुहार करिके विदा करत है। ता पाछे और मंदिर की सखी इन सखीन की खबरि सुनत है, जो अपने कुंज में एक भूतल संबधी श्री आचार्य जी महाप्रभु के सेवक इहां आये हैं सखी रूप सों, सो ऐसे समाचार सुनिके वे अपनी एक सखी इनको बुलाइवे को मनुष्य आवत है। पाछे इनसो वीनती करत है, जो हमारे मंदिराधिपति मुख्य नाइका तुम को बुलावत है। पाछे ये सखी वा सखी को संग लेके और मंदिर में पधरावत है। पाछे उहा हूं वाही रीत सों सन्मान करत है। लीला कोतिक ख्याल सबई दिखावत है। अपने मंदिर संबंधी सब बाजंत्र की सोभा दिखावत है पाछे सब बैठारि के सब समाचार पूछत है। यह सब समाचार पूछत है वो कहत है। पाछे मिष्ट सुन्दर महाप्रसाद मनोहर पाक चतुरविध भोजन करावत है। पाछे सुगंध बोड़ा देत है। पाछे सिंगार फेर वीनती करावत है। वस्त्र नवीन

पहरावत है। पुष्प माला पहरावत है पाछे अपने मंदिर के सुन्दर मधुर मेवा फल पाक गोद में देत है। पाछे हाथ जोरि के मनुहार करिके इनको विदा करत है। पाछे और मन्दिर की सखी बुलाइवे को सामे आवत है। तब वा सखी के संग और मन्दिर में जात है। पाछें मन्दिर की अधिपति सखी सो उठि के मिल भेटे पाछे इनको हाथ पकरिके उत्तमोत्तम आसन पर बैठावत है। अपने सदन की सोभा इनकू दिखावत है अनेक प्रकार के मनोहर महाप्रसाद इनको लिवावत है। सुगंध बीड़ा देत है। सुन्दर वस्त्र आभरण देत है। इनको समाचार सब पूछत है सो यह सब कहत है। अनेक पुष्प फल परम सुन्दर रुचिकर देत है। परम आनन्द सो और सखी को पधरावत है। और मन्दिर की सखी बुलाइवे को अपनी सखी बुलावत है। सो वे सखी आइ के लेजात है। उहा हूं आदर सनमान घने घने होत है। ऐसो मन्दिर मन्दिर प्रति सब सनमान करत है। सब मंदिर की सोभा रचना देखि के वैभव सब देखिके आदर सनमान सब सखी करि करि के पाछे और मन्दिर की बुलाइवे जात है। ऐसे सब मन्दिर की सखी मुखिया सों मिल सब भुवन बाग रचना देखि पाछे परम रुचकारी वाजंत्र विविध प्रकार के बाजा घने घने प्रकार के सुन्दर मनोहर रुचि सों वे बाजे बजत हैं सुनत हैं। ऐसे ही सब मन्दिर प्रति घने घने कोतिक एक ते एक सुन्दर घने घने प्रकार के सुभग मन्दिर है। और मन्दिर की अधिपति सोऊ घनी सुभग लावन्य गुण की सागर सील चतुर परम उदार है। ऐसे उहां जो वस्तु प्रभुजी और मन्दिर बाग पसू पक्षी वाजंत्र सुभ गान ऐसे जो देखे सो अद्भुत मनोहर है। सो सब देखि सब ठोर ते विदा होइके पाछे फिर के श्री स्वामिनीजी आज्ञाव्रत सखीन सो इनको सब कुंज की रचना दिखाई बाग बंगला वैभव दिखाइ के पाछे श्री अपने श्री स्वामिनीजी श्रीनाथजी अपने कुंज के ठाकुर पास ले आवत है। और कदाचित इनके मन में द्वेष ईरषा होय तो और उन सखीन को देखिके और उनके सब वैभव देखि के इनको मन विगरे मन में द्वेष आवे तो इन सखी को वे आज्ञाव्रत सखी पाछे भूतल विषे डार देउ। तब भयो संस्कार वृथा होइ जाई। याते प्रथम ही सावधानी सों रहनो और वैष्णवताई विषे मन राखनो। उनकी आज्ञा को विस्वास राखनो। वे वैष्णव कदाचित् रीस करे तो सिक्षा माननी। मन थिर राखनो। मन बिगाडनो नही। सरभरता होइ तो द्वेष नाही करनो। ऐसेई सदैव आन्यास होयके और सदा कीर्ति आवेस होय। तब उहां हूं वे गुणातीत भक्ति को देखि और उनको वैभव सब देखि के उनको मन बिगाड़े नांही। द्वेष न होय याते ऐसे गुणातीत में तो ये हूं गुणातीत भये चैये। तब तो इनसो उनसो संयोग होय और मन स्थिर होय। याते वैष्णव को सदैव अति सावधानी सों रहनो और डरपत

रहनो। निरभय नाही रहनो। पाछे जो भक्त सो स्नेह रहे और वात्सल्यता उपजे तो वे सखी आज्ञा व्रत सों इनको अपने श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी पास लेजात है। अपने श्री स्वामिनीजी सो सब समाचार कहत हैं। अपने कुंज की सोभा वैभव सब इनको दिखायो और सब सखी के मंदिर मन्दिर अधिपति सो सबइ को मिलाइ के सब मन्दिर की रचना कोतिक सब दिखाय के सब बाग को रचना दिखाइ के पाछे उन मन्दिर की अधिपति सखीन सों मिल भेटे। पाछे उन सखीन ने इनको अनेक प्रकार को समाधान करचो। आदर सनमान घनो घनो करचो। पाछे सब ठोरते अति प्रसन्नताई अति आनन्द सो प्रेम सो इहां फिरके लाईयो। पाछे श्री स्वामिनीजो अपनी सखी इनके साथ देके अपने निज मन्दिर की सोभा वैभव सब इनको दिखावत है। सो सब कुंज कुंज के मन्दिरन की सोभा सुख ते सतगुण सोभा अधिक है। सतगुण सबते अधिक है ऐसे जो देख्यो सो सब ही अद्भुत है। दिव्य अमोल है। रसावेष्ट रस रूप गुण निधान है। आनन्द सुख को सागर समूह है। जगतानन्द है। सदा सदैव नव पल्लव है और पुष्प फलन सहित झूमि झूमि भारते झुक रहे हैं। फल सदा सदैव पक्व है रस को पूर सावेष्ट है। अति मधुर है। अति कोमल है। अति सुगंध है। अति लावन्य है। अति मनोहर है। अति तेज है। ऐसे अनेक वृक्ष सोभायमान होय रहे जहां वृक्ष को फल फूल को कबहू नास नाही। पातझर कबहु नाही। ऐसे पसु पक्षी अद्भुत है। लावन्य सुन्दैर रूप की निध है। तेज है। ऐसे कारज सुभग सुन्दर छूटत है। जल की चादर घनी परे है। ऐसे बंगला झरोखा छाजा बारी अति लावन्य है। अनेक सोभा अपार है। पारावार नाही। जहां अगिनत आनन्द है। गिनती नांही है। सोभा को सागर समूह है। ऐसे ही भक्त सखी हूं अद्भुत सुभांग सुभग लावन्य रूप सरीर तेज है। अति तेजो मुख कांती है। वस्त्राभरण बहू जिनके अद्भुत हैं सोभित अति प्रकास तेज है। उन सखीन की लावन्यता और तेज रूप। वस्त्र की लावन्यता और आभरण को प्रकास। सब एकत्र है। तब जानिये जो रवि कांति मंदि होय। ऐसो प्रकास जानी परत है। जो कछू देखे सो अद्भुत है। ऐसे अनेक प्रकार के भोजन है। षट रस विजन चतुर्विध प्रकार के साक पाक सब अति उजल अति कोमल अति सुगंध अति मधुर अति स्वाद अति मनोहर सामग्री सब सिद्ध है सो सब श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी सब ही अंगीकार करि आरोगि के वे महाप्रसाद सब भांति को श्री आचार्यजी महाप्रभुजी संबंधी या सखी को परम प्रीत सों लिवावत है। अति सुगंध तांबूल बीडा महाप्रसाद हैं। ता पाछे अपने शृंगार आभूषण इन सखी को देत हैं। अपने श्री हस्त सों विनको शृंगार करत हैं, पहरावत है। पाछे प्रसादी सुगंध अरगजा अत्तर याके

अंग को लगावत है । ता पाछे वो जा परम रुचकारी दुंधभी, भेर, निसान, सहनाई, ताल, पखावज, वीणा, सारंगी, ढोलकी और मरुडं चंग ढफ से सदा सदैव वाजंत्र परम रुचकारी मधुर अनेक सदा बाजत है । सो यह देखि के श्रवण सों सुनिके आनन्दित लीन होय जात है आश्चर्य पावत है । ऐसे अनेक सखी मधुर सुर परस्पर परम रुचकारी राग समे के ताल बंधान सों भगवत् गुण गावत हैं । मन में मोद अति पावत है । और सब सामग्री अश्रित सज्या, आसन सिंघासन, चोकी, गादी, तकीया, उसीसा और सुफेदी वस्त्र आभरण, थार, वेला, डारी आदि सब ही साकार है । आनन्द मात्र करि पाद मुखोदुराद दीसत है । ऐसे सब भक्त हैं, सखी है सो गुणातीत है । न्यारे न्यारे गुण सबन के है सो ऐसे सब देखि के सखी आनन्द रूप होइ जात है । और विवास्ता होत है । पाछे वा श्री आचार्यजी महाप्रभुजी सम्बन्धी जो सखी तासों कुंज के अधिपति श्रीनाथजी श्री स्वामिनी जी पूछत है जो तुम्हारे कछू और मनोरथ है । तब यह सखी कही जो अब काहू बात को मनोरथ नाही है । और आगे कुंज के श्रीनाथजी अधिपति श्री स्वामिनीजी के सबन के दर्शन करिये । और कुंज के मन्दिर की रचना सोभा देखिये । और मन्दिर की अधिपति जो सखी तासों मिलिये भेटिये । ऐसे मनोरथ है जो काहेते । घने घने काल पाछे मोको या स्थल में संयोग भयो है । सो सब ही विसरन भयो हों । याते तुम्हारी कृपा दृष्टि सों अनुग्रह करिके दिखाऊं तो देखि नवे में आवें । ऐसे घनी घनी दीनता सो वे सखी वीनती करत हैं । तब श्री स्वामिनीजी परम कृपा करिके अपनी एक सखी सों श्री स्वामिनी समझाई के कहत हैं । जो तुम इन श्री आचार्यजी महाप्रभुजी सम्बन्धी सखी इनके संग जाउ ।।

।। इति फल कुंज समाप्त ।।

अथ रस कुञ्ज की रचना वैभव लिख्यते ।

और रस कुंज की गेल दिखाई और रस कुंज के द्वार जाय के उहां के जो द्वारपाल सब सखी इन सो सब बात इन सखी की विस्तार करिके कहियो जो उन द्वारपाल सखीन सों कहियो जो तुम जाइके अपने श्रीनाथजी तथा श्रीस्वामिनीजी सों इन सखी की बात समाचार निरूपण करो । पाछे वे आज्ञा करे तैसे करो । और श्रीनाथजी स्वामिनीजी जो आप आज्ञा करें सो तो इनको कृपा करिके बुलावें तो इनको लेजाइके दर्सन कराइयो । नाही आज्ञा करे तो इनकी आज्ञा प्रमाण करियो परि हमारी स्वामिनीजी ने तो इनको घनी घनी रीत सों आदर सनमान किये हैं । आप अपने कुंज की तथा निज मन्दिर की लीला वैभव दिखायो है । और मोको हमारी श्री स्वामिनीजी ने इनके साथ दीने है और तुम्हारी स्वामिनीजी सो कहवायो है । सो ये सखी श्री आचार्यजी की सेवक वैष्णव है । सो सब माया अविद्या को जीत के वाके मोह को जीत के इहां लो आये हैं । पाछे द्वारपाल सखी अपने श्रीनाथजी तथा स्वामिनीजी को दण्डोत करिके इनके सब समाचार कहे । जो फल कुंज की सखी आज्ञाव्रत ने जो कछू कहे हते सो सब सो सब समाचार अपनी श्री स्वामिनीजी सो सब निरूपण करत भये । सब बात विस्तार करिके कहत है । जो भूतल संबंधी एक श्री आचार्यजी की सेवक जो माया अविद्या के अनेक मोह जाल तजि दृढाश्रय करि भक्ति के प्रभाव ताके बल सों इहां लों आइ है । श्री आचार्यजी महाप्रभुजी के दूत पोहोचाय के पुष्प कुंज के द्वार पोहचाइ गये हैं । सो पुष्प कुंज की एक सखी है सो फल कुंज के द्वार पोहोचाय गई है । सो पुष्प कुंज के श्रीनाथजी श्रीस्वामिनीजी को दर्सन करि कुंज के वैभव देखि पाछे पुष्प कुंज की सखी एक साथ आइके फल कुंज के द्वारे पर पहुँचाइ गइ । पाछे फल कुंज के श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी को दरसन करि दण्डोत करि पाछे श्री स्वामिनीजी ने श्री आचार्यजी के सेवक कृपा पात्र जानि के घनी घनी रीत सो इनको सनमान कीयो और अपने निज मन्दिर धाम को वैभव दिखाइके और कुंज के भक्त के वैभव सब दिखाइ के और मंदिराधिपति सखीन को मिलाइके सबन को पाछे श्री स्वामिनीजी अपनी एक सखी याके साथ देके इहां लाई पोहोंचाइ के । सो वे सखी श्री आचार्यजी महाप्रभु सेवक संबंधी और फल कुंज के आज्ञाव्रत सो सखी अपने द्वार ठाडी है । सो कहवाए हैं । सो सब बात निरूपण करिके पाछे आपके दर्शन की इच्छा करत है । पाछे आपकी आज्ञा होय सो करें । और आज्ञा होइ तो इहां लावे । तब वे रस कुंज के श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी ने आज्ञा कीनी जो सुखेन श्री आचार्य जी की सेवक सखी को बुलाइ लाओ । ऐसे भाग्यवान को कबहू न रोकिये । याते तुम जाइ के वेगि बुलाइ लावो । पाछे वे द्वारपाल सखी जाइ के वे सखी को हाथ पकरि के घने आदर सनमान सों बुलाइ लाई । और वाके हाथ में फल पुष्प की छाब देत है । सो वे श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी के मन्दिर में निकट सनमुख आइ के पाछे दंडवत करिके ठाडी रही । पाछे वे भाव रूपी पुष्प को शृंगार श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी को करत है । पाछे भाव रूपी फल समारि के भोग धरत हैं । पाछे श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी अपनो जीर्ण शृंगार या सखी को देत है । अपने हस्त सों शृंगार करत हैं । महाप्रसादी फल याको देत है । सब समाचार याको पूछत हैं । सो ये सखी सब समाचार कहत है । पाछे अपनी एक सखी इनके साथ देत हैं । और वा सखी को आज्ञा करत हैं जो या सखी को अपने कुंज को मंदिर की सोभा रचना

सब दिखाइये । पाछे मन्दिर की सखीन सों मिलाइ के पाछे जो कोऊ सखी के गुण रूप लावण्यता वैभव देखिके मन में ईर्षा द्वेष होई तो और वैभव संपदा को मोह होय तो भूतल पर डार दीजो । और उन मन्दिर की सखीन विषे प्रेम आसक्ति होइ तो सब रचना दिखाइ के पाछे इहां लाइयो । ऐसे वा सखी सों कहिके । पाछे यह आज्ञाव्रति सखी या सखी की बाह पकरिके लेजात है । पाछे सब मन्दिर मन्दिर की रचना दिखावत है । सो सब मन्दिर की रचना वैभव सब देखि बाग की रचना सब देखि पाछे अधिपति सखी इनसों मिली भेटी । वे सखी इनको आदर सनमान घनो घनो करत है । सुंदर भोजन महाप्रसाद इनको मिष्टान करावत है । पाछे सुगंध बोडा देत है । पाछे वस्त्राभरण दिव्य देत हैं । पुष्प के भूषण देत हैं । अपने कर सों सब सिंगार करत है । पाछे सब समाचार पूछत है सो सब समाचार यह सखी कहत हैं । पाछे और मन्दिर पधारत है । उहा की सखी खबर सुनिके अपनी एक सखी आज्ञाव्रत को उनको बुलावे को सामे पठावत हैं । ऐसे मंदिर मंदिर प्रति रचना कोतिक सब देखत है । ऐसे एक ते एक मंदिर की सोभा रचना वैभव सब द्विगुणित है । एक एक ते अधिक है । ऐसे सब इनको दिखाई पाछे श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी के पास ले आवत है । पाछे निज मन्दिर निज धाम के लीला वैभव कोतिक सब याको दिखावत है । सो मनोहर प्रसाद सब रितु के लेत है । पाछे वस्त्र आभरण देत है । पाछे श्री स्वामिनीजी या सो पूछत है, जो और कछू तेरे मनोरथ है । तब यह सखी कही जो और तो तुम्हारी कृपा ते काहु बात में मनोरथ की अपेक्षा नाही है । पर और कुंज की रचना देखू । और कुंज के अधिपति श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी के दर्सन करें । और कुंज सखी भक्तन सों मिलिये ऐसे मनोरथ है । ता पाछे अपनी एक सखी सों आज्ञा करत है जो तुम इन सखी के साथ जाइके मधुकुंज की सखी की गेल बताइके दिखाइ आउ । ।। इति श्री रस कुंज समाप्त ।।

।। अथ मधु कुञ्ज लिख्यते ।।

और मधु कुंज के द्वार जाइके मधु कुंज के द्वारपाल सखीन सौं कह्यो । तुम्हारी श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी सों जाइ के कहो । खबर करो जो भूतल संबंधी एक भक्त श्री आचार्यजी महाप्रभु की सेवक सखी रूप सो आइ है हमारे कुंज कुंज की स्वामिनीजी ने इहां पठाई है । ऐसे समाचार कहिके तू आइयो पाछे वे आज्ञाव्रत सखी यह सखी की बाह पकरि के मधुकुंज के द्वारे ले जात है । पाछे उहां की द्वारपाल सखीन सों यह आज्ञाव्रत सखी कहत है, जो तुम जाइके अपने श्रीनाथजी स्वामिनीजी सों जाइके सब खबर करो । जो एक सखी भूतल संबधी सखी आई । श्री आचार्यजी की सेवक है । सो हमारे सब कुंज की रचना वैभव देखी पाछे हमारे श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी ने तुम्हारे इहां पठाये हैं । पाछे के द्वारपाल सखी जाइके अपने कुंज के श्रीनाथजी श्रीस्वामिनीजी सों आइके वीनती करत है जू एक भूतल संबंधी वैष्णव श्री आचार्यजी की सेवक सों इहां आई है, सो कुंज द्वार ठाडी है । और रस कुंज की आज्ञाव्रति सखी उनके साथ आई हैं । और वा सखी भाव के दर्सन की इच्छा करे है, याते आपकी आज्ञा होय तो इहां तांई आवे । तब श्रीनाथ जी श्री स्वामिनीजी वा द्वारपाल सखी सों कहत है । जो ऐसे भाग्यवान कू लाईये जू । भूतल के संबधी माइक अविद्या को कोतिक नाटक के जो समुद्र विषय को है, जो महा उत्कृष्ट है । सो सब जीत के इहां लों आए हैं याते सुखेन बुलाइ लावो । पाछे वे द्वारपाल सखी जाइ के वा सखी को बाह पकरिके ले आवत है । पाछे आइके श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी के दरसन करत है । सो दरसन करिके दंडोत करी पाछे भाव रूपी पुष्प फल की छाब वे द्वारपाल सखी हाथ में देत है, सो पुष्प को श्रृंगार श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी को करत हैं । (धरावत है) पाछे सुन्दर फल सिंगार के भोग धरत है । ता पाछे प्रसादी श्रृंगार उतर्ण सो या सखी को देत है । पाछे समाचार पूछत है । सो यह सखी समाचार सब कहत है । ता पाछे श्री स्वामिनीजी ऐक सखी अपुनी आज्ञाव्रत सखी इनके साथ देत हैं और वा सखी सों आज्ञा करत है जो तुम इनके साथ जाइके इनको कुंज के रचना वैभव सब दिखाइ के और मन्दिर अधिपति सखीन सों मिलायके पाछे इहां लाइयो । और कदाचित द्वेष ईर्षा उन सखीन की होय तो भूतल पर डार दीजियो । पाछे वे आज्ञाव्रत सखी इनको पकरिके मन्दिर की लीला वैभव बाग बंगला सब दिखावत है । पाछे उन नाइका सों मिल भेटि पाछे वे सखी इनको हाथ पकरि के उंचे आसन बैठारत है । घने घने आदर सनमान करत है, अपने मन्दिर की रचना वैभव दिखावत है । सुगंधी बीड़ा देत है । सुन्दर दिव्य भांति के वस्त्र आभरण देत हैं । इनको सिंगार सब करत है । पुष्प माला पहरावत है । चोंटी वेस करत है । सुन्दर फल वाके गोद में देत है और मन्दिर की सखी बुलाइबे को आवत है । सन्मुख आवत है । घने सनमान सों बुलाई ले जात है । वे हू याही प्रकार सों सनमान करत हैं । घने घने करत हैं । अपने अपने मन्दिर बाग की रचना दिखावत है । वस्त्र आभरण दिव्य मणी के कंचन के देत हैं । उहां भगवत् लीला संबंधी जो भुवन कुंज में द्वादस कुंज में सब वैभव सामग्री प्रभृति सब इच्छा मात्र ही ते सिद्ध होत हैं । ऐसे भगवत् कृपा अनुग्रह से सब सिद्ध है । सो ऐसे सब मन्दिर की रचना

देखि पाछे घने आनन्द सों श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी इनको अपने निज मन्दिर की रचना लीला सब दिखावत हैं। पाछे महाप्रसाद घने घने प्रकार के मनोहर अति सुन्दर नवीन इनको रुचि सों खिलावत है। पाछे सुगंध बीडा देत है। उहां इच्छा मात्र सब सामग्री है। पाछे सब सिंगार प्रभृति उतीरण देत हैं। इनको आभरण अमोल्य देत हैं। वस्त्र आभरण अमोल्य देत हैं। आदि सब ही सदा नवीन तत्काल सिद्ध होत है। जहां सब भगवत् रूप है। जैसे प्रभित प्रभू की लीला जानी जहां प्राकृत वस्तु कछू नाहीं। नास काहू वस्तु को नाही। सदा नवीन हैं। ऐसे भक्त सदा नव योवन है। पाछे श्रीस्वामिनीजी पूछत हैं जो तिहारे और कछु मनोरथ हैं। तब सखी कहत है। जो महाराजधिराज और तो कछु मनोरथ नाही। परि और कुंज कोतिक रचना दिखाईये। और वहां श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी के दरसन कराईये। और उहां के भक्त सखी सों मिल भेटि संभासन होइ तो भलो।

इति मधु कुंज समाप्त ॥

॥ अथ गो कुञ्ज लिख्यते ॥

ता पाछे श्री स्वामिनीजी अपनी एक सखी बुलाइ के आज्ञाव्रत सखी, वासों कहत है, जो तुम इन सखी के साथ जाइके इनको गो कुंज मार्ग दिखाउ। और गो कुंज के द्वार जाइके उनकी द्वारपाल सखी सों सब समाचार कहियो। जो एक सखी भूतल संबंधी श्री आचार्यजी की सेवक, श्री आचार्यजी के दूत पोहचाय के गये हैं सो माया अविद्या के नाटक प्रपंच रूपी सागर ताको फेर जीत के इहां लों आई है और चार कुंज के वैभव सब देखि के हमारी स्वामिनीजी ने तुम्हारे इहां पठाई है। इनको तुम्हारे श्रीनाथजी श्रीस्वामिनीजी के दर्सन को मनोरथ है। ऐसे कहि तुम मिलाइके पाछी आइयो। ता पाछे वे आज्ञाव्रत सखी इन सखी की बांह पकरिके लेजात हैं। सो गो कुंज के द्वारे इनको लेजात है। पाछे उहां की द्वारपाल सखी तासों सब बात समाचार अपनी श्री स्वामिनीजी के आज्ञा प्रमाण निरूपण करत हैं। सब कहत हैं। जो तुम समझ के श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी सो खबर करो। जो एक सखी भूतल संबंधी श्री आचार्यजी की सेवक सो भूतल में माया अविद्या रूपी सागर ताको पेरिके जीत के इहां आई है सो द्वारे ठाडी है। तुम्हारे दरसन की अपेक्षा करत है। आपकी आज्ञा होइ तो इहां आवे। पाछे द्वारपाल सखी अपने श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी सों दंडोत करि वीनती करत है जो महाराजाधिराज एक सखी भूतल सबंधी श्री आचार्यजी की सेवक माया अविद्या नाटक प्रपंच जीत के सागर पेर के

इहां लो आई है। श्री आचार्यजी के दूत इहां लों पोंहचाय गये हैं और सब कुंज की रचना देख इहां लों आई है। सो मधु कुंज की श्री स्वामिनीजी ने एक सखी उनके साथ देके इहां पठाइ है। सो वे दोऊ जनी सखी अपनी कुंज के द्वार ठाडी है सो आपके दर्सन की इच्छा करत है। याते आपकी आज्ञा होइ तो इहां ताइ आमे। तब ऐसे द्वारपाल सखी के वचन सुनत मात्र ही श्री स्वामिनीजी कहत है जो ऐसे भाग्यवान को न रोकिये तासूं उनकू अपने साथ ले आउ। पाछे द्वारपाल सखी इनकी बांह पकरिके घने घने सनमान सों लेजात है। पाछे द्वारपाल सखी भाव रूपी पुष्प फल की छाब इनके दोऊ कर में देके ले आवत है। जो तुम खाली हाथ कैसे दरसन करोगे। पाछे यह सखी श्रीनाथजी के निज मन्दिर में सानिध्य जाइके पाछे श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी के दर्सन करत है। दंडोत करिके पाछे फल की छाब भोग धरत हैं। पाछे पुष्प को शृंगार करत है। पाछे उतीर्ण सिंगार श्री स्वामिनीजी या सखी को देत है। पाछे महाप्रसादी फल याको देत है। पाछे समाचार सब पूछत है सो यह सखी विस्तार पूर्वक श्री स्वामिनीजी सों कहत है। पाछे श्री स्वामिनीजी इनके साथ अपनी एक सखी देत है सो वा सखी आज्ञाव्रत सों श्री स्वामिनीजी कहत है, जो तुम इनके साथ जाइके इनकूं अपने भवन भवन मंदिर मंदिर की रचना दिखाइ के बाग सब दिखाइ के और मंदिर मंदिर की अधिपति सखी है तिन सबन सों मिलाइके पाछे इहां लाइयो। और जो सखी कदाचित् इह ईर्षा द्वेष करिके आवे तो भूतल में डार दीजो। इहां मती लाइयो। या ते उह सखी इनको हाथ पकरके लेजात है सो सब मंदिर की रचना दिखावत है। पाछे उन मन्दिर मन्दिर की अधिपति सखीन सों मिलावत है। तब वे सखि उठि के आदर सनमान सों भेटिके इनको हाथ पकरिके ऊंचे आसन बैठावत है। सुन्दर अनेक भांत के मनोहर भोजन सुन्दर महाप्रसाद मिष्ठान इनको लिवावत हैं। पाछे सुन्दर दिव्य आभूषण देत है। पाछे फल सुन्दर मेवा भांति भांति के देत हैं। पाछे सब बात सब समाचार इनसों पूछत है सो सब विस्तार करिके कहत है और अपनी बीती आदि अन्तलों सब कहत है। पाछे अपने मन्दिर की सोभा रचना दिखावत है। पाछे और मन्दिराधिपति सखि सों सुनिके अपनी सखी एक बुलाइवे को पठावत है। पाछे सखी इनके सनमुख आइके घने सनमान सों लेजात है। पाछे और मन्दिर की सखी अधिपति सों इनकों मिल भेटिके घने घने सनमान सों मनुहार करिके इनको ऊंचे आसन बैठावत है। पाछे सुन्दर महाप्रसाद इनकों लिवावत है। पाछे तांबूल बीड़ा अति सुगंध के देत है। ता पाछे वस्त्र आभरण दिव्य अमोल इनको देत हैं। पाछे पुष्प माला इनको देत हैं। फल सेवा घने सुन्दर देत हैं। पाछे समाचार पूछत हैं सो सब

बात अपनी आदिते अंतलों कहत है। पाछे अपने मन्दिर की रचना दिखावत है और बाग की सब भवन की लीला इनको दिखावत है। पाछे यह विदा होय आज्ञा मांगि के और मन्दिर पधारत है। ऐसे सब मन्दिर की लीला रचना देखि और मन्दिर की अधिपति सखीन सों मिल भेटि के पाछे फेर श्री स्वामिनीजी पास जात हैं। पाछे श्री स्वामिनीजी अपने निज मन्दिर की रचना भुवन भुवन के वैभव दिखावत हैं। पाछे महाप्रसाद अनेक विधि के मनोहर इनको लिवावत हैं। पाछे सुगंध बीड़ा महाप्रसाद देत हैं। पाछे प्रसादी वस्त्र आभरण उत्तीर्ण सुन्दर दिव्य देत हैं। ऐसे क्षण प्रति शृंगार पलटत है नवीन धरत हैं। और वे उत्तीर्ण शृंगार सब सखी सेवकन को देत हैं फिर वे उत्तीर्ण शृंगार वेहू धरे नाही ऐसे उन भुवन की रीत है। पाछे श्री स्वामिनीजी इन सखीन सों पूछत हैं जो तेरे कछू और बात को मनोरथ है। तब वह सखी कहे जो महाराजाधिराज आपकी कृपा ते मेरो काहू बात को मनोरथ नाही है। श्रीनाथजी स्वामिनीजी के दरसन करें तो भलो है। तब ऐसे वचन सखी के सुनिके श्री स्वामिनीजी अपनी एक सखी आज्ञावृत बुलाय वासों कही जो तू इन सखी के साथ जाइके इनको 'द्वार' कुंज को मार्ग दिखाई आउ।

॥ गो इति कुंज समाप्तं ॥

॥ अथ 'द्वार' कुञ्ज वर्णन लिख्यते ॥

और द्वार कुंज के द्वार जाइ के उहां के द्वारपाल सखी ने इनके सब बात समाचार कहियो और कहियो जो यह सखी भूतल संबंधी श्री आचार्यजी के सेवक माया संबंधी अविद्या के कोतिक मोह के सागर सो सब जीत के इहां लों आई है। श्री आचार्यजी के दूत लाए हैं सो तुम्हारे श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी के दर्सन करिवे के लिये मनोरथ है ऐसे कहते है। पाछे वे आज्ञाव्रत सखी ले जाइ जहां के श्री ठाकुरजी श्रीनाथजी हैं। पाछे द्वार कुंज के द्वारे जाइ के उहां की जो द्वारपाल सखी या सखी सों विस्तार पूर्वक कहत है। तुम्हारे श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी सो जाइके कहो जो एक सखी भूतल संबंधी श्रीआचार्य जी की सेवक तुम्हारे दर्सन को आई है। सो गो कुंज की सखी साथ लाई है। पाछे वे द्वारपाल सखी श्री स्वामिनी जी कूं दंडोत करिके वीनती करत है। जो महाराज एक सखी भूतल संबंधी श्री आचार्यजो की सेवक इहां आई है। सो आइ के अपने कुंज के द्वार पर ठाडी है। श्री आचार्यजी के दूत लाए है सो सब कुंज कूं देखि दर्सन कर के गो कुंज को सखी साथ आई है। सो माया अविद्या रूपी जो विषय को सागर मोह कोतिक सब पेर जीत के इहां लों आई हैं। आपके दर्सन की इच्छा करत है। आज्ञा होइ तो इहां आवे। तब श्री स्वामिनीजी ने कही जो सुखेन अपने संग ले आउ। ऐसे भाग्यवान जीव को ना रोकिये। पाछे वे जाइके द्वारपाल सखी इनकी बांह पकरिके बुलाइ लावत है। पाछे वे द्वारपाल सखी पुष्प फल की छाब हाथ में देत है। पाछे श्रीनाथजी स्वामिनीजी के निज मन्दिर में आइ दंडोत करत है, पाछे फल की छाब समार के आगे भोग धरत है। पाछे पुष्प को सिंगार करत है। ता पाछे श्री स्वामिनीजी अपने उत्तीर्ण सिंगार वस्त्र आभूषण देत हैं। शृंगार करत हैं। पाछे महाप्रसादी फल देत है। पाछे इनके संग एक सखी देत हैं। वा सखी को श्री स्वामिनीजी आज्ञा करत है जो तुम इनके संग जाइके इनको अपने मन्दिर की रचना बाग की रचना सब दिखाइ के पाछे मन्दिर की अधिपति सो इनसों उठिके मिलत है। पाछे बोहोत सनमान करत है हाथ पकरिके इनको ऊंचे आसन बैठारत हैं। पाछे शुद्ध मनोहर भोजन करावत है। घने घने प्रकार के महाप्रसाद लिवावत है। पाछे दिव्य भूषण वस्त्राभरण घने घने प्रकार के देत हैं। सुगंध बीड़ा पुष्प माला देत है। पाछे इनते समाचार सब बात पूछत है सो यह सब विस्तार करिके कह्यो। ऐसे व मंदिर की रचना देखि सब नाइका सखी सो मिल के पाछे श्री स्वामिनीजी के निज मन्दिर में आवत है। पाछे श्री स्वामिनीजी महाप्रसाद इनको देत हैं। सुगंधी बीड़ा देत हैं पाछे उत्तीरण सिंगार वस्त्र आभूषण देत हैं। पुष्प माला प्रसादी देत हैं। अपने मन्दिर की सोभा वैभव दिखावत है। ता पाछे या सो पूछत है जो और कछू तिहारे मनोरथ हैं। तब यह सखी कहत है जो तुम्हारी कृपा सूं और कछू मनोरथ नांही है। अपेक्षा और कछू नांही है। परि और कुंज देखिवेको मनोरथ है। पाछे श्री स्वामिनीजी अपनी एक सखी आज्ञाव्रत इनको साथ देत है और वा सखी सों आज्ञा करत है जो तुम इनके साथ जाइके नव कुंज को मार्ग दिखाइ आउ।

॥ इति श्री द्वार कुंज समाप्तं ॥

॥ अथ नव कुंज लिख्यते ॥

नव कुंज के द्वारे जाइके उहां की द्वारपाल सखी सों कहियो जो यह सखी भूतल संबंधी श्री आचार्यजी की सेवक इहां आई है सो ए तुम्हारी कुंज के श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी के दर्सन की इच्छा करत है। याते तुम जाइके अपने कुंजाधिपति श्रीनाथजी श्रीस्वामिनीजी सों जाय के कहो जू। पाछे वे आज्ञा दे तो ले जाइयो। पाछे आज्ञाव्रत सखी इनको नव कुंज के द्वारे ले जाइके पाछे वे द्वारपाल सखी सों सब बात

समझाय के कहत है । सो द्वारपाल सखी अपने श्री नाथजी श्री स्वामिनीजी सों जाइके कहत है जो महाराजाधिराज एक सखी भूतल संबंधी श्रीआचार्यजी महाप्रभु की सेवक सो माया अविद्या रूपी जो सागर ताको पेरि के आई है । जीत के यह सखी इहां लो आई है। अपनी कुंज द्वार ठाडी है । सो आपके दर्सन की इच्छा करत है । याते आपकी इच्छा होइ तो इहां लों आवें । तब श्रीस्वामिनीजी ने कह्यो जो ऐसे भाग्यवान को न रोकिये । यह माया अविद्या रूपी जो सागर ताको जीत के इहां लों आई है । सो ऐसे को न रोकिये याते तुम अपने साथ वेग ही बुलाइ लाऊ । पाछे वे द्वारपाल इन सखी की बाह पकर के बुलाइ लावत है । सो इनके हाथ में एक पुष्प को शृंगार को एक छाब देत है और फल की छाब सों श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी के भोग धरवे को । पाछे श्रीनाथजी श्रीस्वामिनीजी के निज मन्दिर में जा इनके सानिध्य जाइके दर्सन करिके दडोत करत है। पाछे फल सम्हार के श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी के भोग धरत है । और पुष्प को सिंगार करत है । पाछे श्री स्वामिनीजी उत्तीर्ण सिंगार वस्त्र भूषण या सखी को देत है । पाछे महाप्रसाद फल सो या को देत है । पाछे अपनी एक सखी बुलाइ के याके साथ देत है। और वा सखी सों श्री स्वामिनीजी आज्ञा करत है जो तुम इनके संग जाइके अपने कुंज के मन्दिरादि दिखाई के और मन्दिरन की सखी नाईकान को सों मिलाईके और सब भुवन को रचना वैभव दिखाईके बाग बंगला कोतिक सब दिखाई के ईहां लाईयो । पाछे वह सखी हाथ पकरिके ले जात है । अति हुलास सों जो मंदिर मंदिर की अधिपति सखी इनसों मिलाई के पाछे मन्दिर की नाईका सखी जो उठि के उंचे आसन बैठारत है । पाछे सुन्दर मनोहर अनेक प्रकार मिष्टान अति उत्तम जल अति कोमल अति मधुर ऐसे महाप्रसाद या सखी को लिलावत है । पाछे वस्त्र आभरण दिव्य मणिके इनको देत है । अपने कुंज की लीला वैभव दिखावत है । बाग बंगला पसू पक्षी ऐसे अनेक कोतिक इनको दिखावत सब सों मिलाई के पाछे श्री स्वामिनीजी के पास लावत है । पाछे श्री स्वामिनीजी इनको महाप्रसाद देत है । सुगंध बीड़ा माला देत है । पाछे वस्त्र आभरण देत है । पाछे इनको निज मन्दिर की रचना वैभव दिखावत है । सब सों मिलाइके श्रीस्वामिनीजी इनको पूछत है जो तिहारे और कछू बात को मनोरथ है । तब इन सखीन ने कही जो तुम्हारी कृपा ते और कछू मनोरथ नाही परि और कुंज की रचना देखिवेको मनोरथ है । ता पाछे श्री स्वामिनीजी अपनी एक सखी इनके साथ देत है और वा सखी सों कहत है जो तुम इनके संग जाइके इनको शशि कुंज को मार्ग दिखाइ आउ ।

॥ इति नव कुंज समाप्तं ॥

॥ अथ शशि कुंज लिख्यते ॥

और शशि कुंज के द्वारे जाइके द्वारपाल सखी सों समाचार कहियो । उनको सोंपिके तू आईयो पाछे या सखी को हाथ पकरिके शशि कुंज के द्वारे जाइके वे द्वार पाल सखी सों बात करी जो तुम्हारे श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी सो कहो जो एक सखी भूतल संबन्धी आई है । श्री आचार्यजी की सेवक है सो आपके दर्सन् की इच्छा करत है । ऐसे जाइके कहो । पाछे आज्ञा करे सो कीजो । ऐसे समझाइ के कही । पाछे द्वारपाल सखी जाइके अपने श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी सों प्रार्थना करिके सब बात कही, जो महाराजधिराज भूतल संबंधी श्री आचार्यजी की सेवक आई सो माया अविद्या के कोतिक मोह नाटक के सागर सब जीत के इहां तांई आई है । आपके दर्सन की इच्छा करत है । याते आपकी आज्ञा हो तो इहां लों आवे । तब श्री स्वामिनीजी ने कही जो ऐसे भाग्यवान को न रोकिये याते तुम अपने संग वेग ही बुलाइ लाउ । पाछे वे द्वारपाल सखी इनको बाह पकरिके ले आवत है । पाछे भाव रूपी पुष्प की छाब इनके हाथ में देत है और एक फल की छाब इनके हाथ में देत है । इनके दोऊ हाथ में देत है । पाछे श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी के निकट जाइके दरसन कर दंडोत करिके पाछे फल समार के भोग धरत है । पाछे पुष्प के सिंगार करत है । ता पाछे अपनो उतीरण सिंगार या सखी को देत है । महाप्रसादी फल देत है । पाछे एक अपनी आज्ञाव्रत सखी सों कहो वासों आज्ञा करत है जो तू इनके संग जाइके इनको अपने कुंज की सोभा रचना वैभव दिखाइ के और मंदिर की अधिपति नाइक सों मिलाइ के और मंदिरन के बागन की बंगलान की सब रचना दिखाइ के पाछे इहां लाईयो । पाछे वे सखी बाह पकरिके लेजात है जो मंदिर की अधिपति नाइका सखीन सों मिलावत है । भेटत है पाछे इनको ऊंचे आसन पर बैठारत है । पाछे सुंदर मिष्टान मनोहर अनेक प्रकार के चतुर्विध भोजन महाप्रसाद लिवावत है । पाछे सुगंध बीड़ा तांबूल इनको देत है । पाछे वस्त्र भूषण अमोल्य इनको देत है । पुष्प माला देत है । पाछे अपने कुंज के वैभव रचना इनको दिखावत है । बाग बंगला सब दिखावत है । सब मंदिर मंदिर प्रति घने घने आदर सनमान करत है । ता पाछे सब रचना देखि के वह सखी इनको श्री स्वामिनीजी के पास ले आवत है । इनको फेरि के श्री स्वामिनीजी महाप्रसाद घने घने प्रकार के दोने । सुगंधी बीड़ा देत है । पुष्प माला प्रसादी वस्त्र आभरण सब प्रसादी देत है । अपनो सब सिंगार उतीर्ण सो इनको देत है । पाछे फिर आप पूछत है जो तुम्हारे और कछू मनोरथ है । तब यह सखी कहे जो आपकी कृपा ते और मनोरथ कछू नाही है परि और कुंज की रचना दिखाइये और श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी

के दर्सन कराइये, ए मनोरथ है। ता पाछे श्री स्वामिनीजी अपनी एक सखी बुलाइ के वा सखी सों आज्ञा करत है जो तुम इनके संग जाइके इनको प्रेमकुंज को मार्ग दिखाय आउ।

।। इति शशि कुंज समाप्तं ।।

।। अथ प्रेम कुंज लिख्यते ।।

सो प्रेम कुंज के द्वारे जाइके द्वारपाल सखीसों सब बात समाचार कहियो। जो तुम अपने श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी सों याकी खबरि करो। जो एक सखी भूतल संबंधी श्री आचार्यजी की सेवक इहां आइ हैं। माया अविधा रूपी जो नाटक सागर ताको पेर के जीत के इहां लों आई हैं सो द्वार पे ठाडी हैं। प्रेम कुंज की आज्ञाव्रत सखी ठाडी है सो तुम्हारे दर्सन की इच्छा करत है याते आपकी आज्ञा होय तो इहां आवे ऐसे कही। पाछे वे द्वारपाल सखी जाइके श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी सों दंडोत करके वीनती करत है जो महाराजधिराज भूतल संबंधी एक सखी आई है और श्री आचार्यजी की सेवक है सो माया अविधा रूपी जो सागर ताको जीत के आई है। वाको तुम्हारे दर्सन की इच्छा है सो आज्ञा होय तो इहां ले आवे। वह कुंज के द्वार ठाडो है तब श्री स्वामिनीजी ने कही जो ए सोभाग्यवान को न रोकिये तूं अपने संग वेग ही जाइ के लिवाइ लाउ। तब वो द्वारपाल सखी आप जाइके वाको बांह पकरिके ले जात है। निज मंदिर में जाइके श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी के निकट जाय के दर्सन करिके दंडोत करत है। पाछे पुष्प फल की छाब वे द्वारपाल सखी दोऊ हाथ में देत हैं सो वामें ते फल सम्हार भोग धरत हैं। पाछे पुष्प को सिंगार करत है। पाछे श्री स्वामिनीजी पुष्प को सिंगार अपनो उतीर्ण याको देत है। फल प्रसादी देत है। पाछे श्री स्वामिनीजी अपनी एक सखी बुलाइ के कहत है जो तुम अपने कुंज भवन की रचना इने दिखाउ और मंदिर की जो अधिपति सखी सो इनको अपने कुंज भवन की रचना दिखाइके पाछे इहां लाइयो। ता पाछे वा सखी को पकरिके ले जात है। पाछे नाइका इनसों उठिके मिलत है भेटत हैं। इनकी बांह पकरके घने घने सनमान सो उंचे आसन पर बैठावत है। पाछे सुन्दर मिष्टान अनेक प्रकार के भोजन महाप्रसाद लिवावत है। सुगंध बोड़ा तांबूल देत हैं। पाछे दिव्य मणि के आभरण देत हैं। पाछे मंदिर बाग की रचना दिखावत है। ऐसे सब मंदिर २ प्रति लीला वैभव दिखावत है। पाछे फिर के श्री स्वामिनीजी के पास आवत है। पाछे श्रीस्वामिनीजी इनको महाप्रसादी

फल देत है। अपने निज मन्दिर की रचना सब दिखावत है। बाग सब दिखावत है। पाछे श्री स्वामिनीजी सब पूछत है जो तुम्हारे कछू और अपेक्षा है। कछू और मनोरथ है। तब यह सखी कहत है जो तुम्हारी कृपाते और तो कछू मनोरथ नाहीं है परि और कुंज की सोभा रचना देखिये और श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी के दरसन करिये सो ऐसे मनोरथ है। पाछे श्री स्वामिनीजी अपनी एक सखी संग देके कह्यो जो तुम इनके संग जाइके इनको 'सिद्ध कुंज" को मार्ग दिखाइ आउ।

।। इति प्रेम कुंज समाप्त ।।

।। अथ "सिद्ध कुञ्ज" लिख्यते ।।

और "सिद्ध कुंज" के द्वारे जाइके उहां को द्वारपाल सखी सों सब बात कही जो वे सखी द्वारे ठाडी है आपके दर्सन की अपेक्षा करत है। याते आपकी आज्ञा होइ तो इहां आवे। पाछे वे आज्ञा करे सो कीजे। पाछे वे द्वारपाल सखी अपने श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी के पास जाइके दण्डोत करिके वीनती करत है, जो महाराजधिराज एक सखी भूतल संबन्धी श्री आचार्यजी की सेवक इहां आई है सो माया अविद्या के मोह रूपी जो सागर सो सब पेरि के इहां लों आई है सो आपके दर्सन की इच्छा करत है। आपकी आज्ञा होई तो इहां आवे। तब श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी ने कह्यो जो ऐसे भाग्यवान् को न रोकिये। तू अपने संग लिवाइ लाउ। तब वे सखी इनकी बांह पकरि के सनमान सों ले जात है। पाछे निज मन्दिर में जाइके श्री स्वामिनीजी के निकट दर्सन करि दंडोत करत है। पाछे फल की छाब और पुष्प की छाब द्वारपाल सखी देत है। सो फल सम्हारिके भोग धरत है। पुष्प को सिंगार करत है। पाछे श्री स्वामिनीजी अपने उतीर्ण सिंगार वस्त्र इनको देत है। पाछे महाप्रसाद इनको देत है। पाछे श्रीस्वामिनीजी अपनी एक सखी इनके साथ देत है। वा सखी सों आज्ञा करत हैं जो तुम इनके संग जाइके अपने कुंज मंदिर की रचना वैभव कोतिक सब दिखाइके और जो मन्दिर की अधिपति जो सखी नाइका सों मिलाइ के वैभव कोतिक सब दिखाइ के फेर पाछी यहां लाईयो। पाछे यह आज्ञावृत सखी इनकी बांह पकरि के घने घने सनमान सों इनको ऊंचे आसन पर बैठावत है। सुन्दर मनोहर मिष्टान घने घने प्रकार के महाप्रसाद ईनको लिवावत है। सुगंधी बोडा माला देत है। पाछे दिव्य मनि के आभूषण वस्त्र इनको देत है। शृंगार इनको सब अपने हाथ सों करत है। पाछे समाचार सब पूछत है। सब मन्दिर की बाग की रचना सब दिखावत है। पाछे मुखिया नायकन सों मिलावत है पाछे श्री स्वामिनीजी अपने निज मन्दिर में

बुलावत है। एसे आइके दंडोत करि ठाडी होत है। पाछे इनको महाप्रसाद देत है। घने घने भांति के मिष्ठान भोजन चतुर्विध अति सुगंध, अति मधुर, अति कोमल रसावेष्ट सो इनको देत हैं। प्रसादी वस्त्र भूषण देत हैं। अपने मन्दिर की रचना, बाग की बगीची की सब दिखावत हैं। इनको सब समाचार पूछत हैं। पाछे श्री स्वामिनीजी आज्ञा करत हैं जो तुम्हारे और कछू काहू बात की अपेक्षा है? कछू नाही हैं, मनोरथ कछू नाही हैं परि और कुंज को रचना वैभव देखिवे को मनोरथ हैं और श्रीनाथजी श्रीस्वामिनीजी के दर्सन की इच्छा हैं। तब स्वामिनीजी अपनी एक सखी देत हैं जो तुम जाईके इनको 'लक्ष्मी कुंज' को मार्ग दिखाई आउ। ॥ इति सिद्ध कुंज समाप्तं ॥

॥ अथ "लक्ष्मी" कुंज लिख्यते ॥

'लक्ष्मी कुंज' के द्वारे जाइके वा द्वारपाल सखी सों कही जो तुम्हार श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी सों जायके कहियो। एक सखी श्री आचार्यजी की सेवक सो माया अविद्या रूपी जो सागर ताको पेर के जीत के इहां लों आई है ऐसे जाइके कहियो। पाछे वे आज्ञा करे सों कीजो और ऐसे कहिके सोंप के आईयो। वे सखी इनको हाथ पकरिके ले जात है। पाछे लक्ष्मी कुंज के द्वारे जाइके उहां की द्वारपाल सखी सों कही जो तुम अपने श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी सों जाइके समाचार कहो जो एक सखी श्री आचार्यजी महाप्रभु की सेवक माया अविद्या को जीतके इहां आई है सो तुमारे दरसन की अपेक्षा करत है। याते आपकी आज्ञा होइ तो इहां आवें। वे आज्ञा करे सों कीजो। ऐसे सब बात विस्तार करिके कही। पाछे वे द्वारपाल सखी अपने श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी सों कहत है वीनती करत है जो महाराजधिराज एक सखी भूतल संबंधी श्री आचार्यजी महाप्रभु की सेवक सो माया अविद्या मोह नाटक रूपी जो सागर ताको जीत के इहां लो आई है सो कुंज के द्वारे ठाडो है। आज्ञा होइ तो इहां आवे। तब श्री स्वामिनीजी कहत हैं जो ऐसे भाग्यवान को ना रोकिये। पाछे जाइके इहां बुलावत है। पाछे वे सखी निज मंदिर में जाइके इहां श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी के निकट जाइ दर्सन करत है दंडोत करत है। पाछे पुष्प की छाब भाव रूपी सो इनको दोऊ हाथ में देत है। सो फल सम्हार के आगे भोग धरत है। पाछे पुष्प को सिंगार करत है। पाछे व उतीर्ण सिंगार वा सखी को देत है। पाछे श्री स्वामिनीजी सखी सों कहत है जो तू इनके साथ जाइके अपने कुंज की सोभा रचना वैभव दिखाइ आऊ। अपने मंदिर की सखी अधिपति तासों मिलाइके सब कौतिक दिखाइ के पाछे इहां लाइयो। पाछे वे आज्ञाव्रत सखी इन सखी के सामने लिवाइवे कूं आवत है सो घने घने सनमान सों मंदिर में ले जात है पाछे इनको सनमान या रीत सों करत है। ऐसे सब मंदिरन को नाइकन सों मिलाइके पाछे श्री स्वामिनीजी के मंदिर में आवत है। पाछे श्री स्वामिनीजी इनको महाप्रसाद देत है। पाछे बीडा माला देत है। पाछे उतीर्ण सिंगार देत है। वस्त्र भूषण देत है। पाछे अपने निज मंदिर की रचना दिखावत है। पाछे इनसों पूछत है जो तुम्हारे और कछू बात को मनोरथ है। कछू अपेक्षा है। तब यह सब कहत है जो आपकी कृपा ते और कछू मनोरथ नाही है और अपेक्षा काहू बात की नाहीं है। परि ए कुंज की सोभा रचना देखनी रही है सो दिखावोतो भलो है। और श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी के दर्सन को मनोरथ है। पाछे श्री स्वामिनीजी एक सखी बुलाइ के कही जो तू इनके साथ जाइके तुलसी कुंज को मार्ग दिखाइ आउ। ॥ इति लक्ष्मी कुंज समाप्तं ॥

॥ अथ "तुलसी कुंज" लिख्यते ॥

"तुलसी कुंज" द्वार जाइके उहां की द्वारपाल सखी सों सब बात कहियो। जो या भूतल संबंधी सखी श्री आचार्यजी की सेवक है। माया अविद्या को नाटक जीत के इहां लों आई हैं। याते तुम जाईके सब समाचार अपने श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी सो कहो पाछे वे आज्ञा करिके कहे सो करो। ऐसे कहिके सोपि के तू आईयो। ता पाछे वे सखी अपनी श्री स्वामिनीजी की आज्ञा मानि के चली उन लक्ष्मी कुंज की स्वामिनीजी श्री चंद्रावलीजी है सो उनकी आज्ञा ते उनकी बाह पकरिके पाछे ले जात है। सो तुलसी कुंज के द्वारे जाईके उहां की द्वारपाल सखी सो सब समाचार कहे जो एक सखे श्री आचार्यजी की सेवक सो माया अविद्या के मोह कौतिक रूपी जो सागर ताको पेरिके जीत के आई है। तुम्हारे श्री स्वामिनीजी के दर्सन की इच्छा करत है। सो जाते तुम जाईके अपने श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी से जाईके कहो। पाछे वे आज्ञा करे सो कीजे। पाछे वे द्वारपाल सखी जाईके अपने श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी सो कहत है। वीनती करत है जो महाराजधिराज एक सखी भूतल संबंधी 'श्री आचार्यजी की सेवक सो माया अविद्या रूपी जो सागर मोह नाटक ऐसे जो कौतिक ताको पेरि जीत के ईहां लों आई है। द्वारे ठाड़ी है आपके दर्सन की इच्छा करत है। आपको इच्छा होइ तो इहां आवे। तब

श्रीनाथजी स्वामिनीजी ने कह्यो जो ऐसे भाग्यवान को न रोकिये। याते तुम अपने साथ जाइके लिवाइ लाउ। पाछे द्वार पाल सखी आइके इन सखी को बाहु पकरिके अपने साथ ले जात है। पाछे वे द्वारपाल सखी इनको भाव रूपी पुष्प और फल की छाब इनके हाथ में देत है। पाछे श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी के निज मंदिर में जाइके पाछे दरसन करि के दंडोत करत है। पाछे वे भाव रूपी फल समारिके भोग धरत है। पाछे पुष्प को सिंगार श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी को करत है। पाछे श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी उत्तीर्ण सिंगार वा सखी को देत है और प्रसादी फल देत है। पाछे इनके साथ अपनी एक सखी देत है। वा सखी सो श्री स्वामिनीजी कहत है जो तुम इनके संग जाइके अपने कुंज मंदिर की मुखिया सखी नाइकन सो मिलाइ के पाछे फेर इहां लाइयो। और सब मंदिर की रचना बाग की रचना सब कोतिक दिखाइ के इहां लाउ। पाछे वे आज्ञावत सखी इनकी बाह पकरिके ले जात है। सो मंदिर संबंधी सखीन सों मिलाइ के मंदिर रचना बाग बंगला सब कोतिक या सखी को दिखाइ के पाछे मंदिर को सखी सों मिलाइ के भेंट के पाछे इनके कर पकरके ऊंचे आसन पे बैठावत हैं। पाछे सुन्दर मिष्टान मनोहर चतुर्विध के भोजन अति सुगंधित अति मधुर और अति कोमल ऐसे घने घने प्रकार के महाप्रसाद इनको लिवावत है। और फल सुन्दर महाप्रसादी देत है। पाछे सुगंध बीड़ा देत है। पाछे पुष्प को माला इनको देत है। पाछे सुगंध अरगजा अतर लगावत है। पाछे शृंगार करत है। अनेक भांति के दिव्य वस्त्र अमोल्य घने घने प्रकार के, अनेक अनेक भांति के आभूषण मणी के, माणिक के, हीरा के, मुक्ता के ऐसे वे अधिपति सखी अपने हाथ सों इनकों सिंगारत है। सो पाछे सुन्दर मेवा फल देत है। ता पाछे इनके करके मंदिर की रचना कोतिक दिखावत है। पाछे समाचार बात सब पूछावत है। सो ये बात विस्तार करिके कहत है। अपनी बीती सो कहत है। ता पाछे और मन्दिर की सखी इनको बुलाइवे आवत है। उहां या प्रकार के घने घने आदर सनमान होत है। ऐसे मन्दिर मन्दिर की रचना वैभव कोतिक सब देखत है। मन्दिर मन्दिर की अधिपति सखीन सों मिलके पाछे फिरके श्रीनाथजी श्री स्वामिनी जी के निज मन्दिर में आवत है। पाछे श्रीनाथजी को ठाडी रह के दंडोत करी। तब श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी ने बैठिवे की आज्ञा करी। तब ऊंचे आसन बैठावत है पाछें श्री स्वामिनीजी इनको सुन्दर घने घने मनोहर महाप्रसाद देत है। पाछें बीड़ा सुन्दर बनाय प्रसादी माला देत है और अपने उतीर्ण वस्त्र भूषण देत हैं। पाछें अपने मन्दिर की सोभा रचना दिखावत हैं। पाछें समाचार बात सब पूछत हैं तब सब अपनी बीती बात करत हैं। पाछें श्री स्वामिनीजी इनको पहचानत हैं। इनको पूर्व सम्बन्धी चिन्ह देखिके पहचानत हैं। पाछें वाकी सुधि करिके गद गद कण्ठ होत है। सो तुलसी कुंज के श्रीनाथजी स्वामिनीजी और राधाजी श्री स्वामिनीजी है। सो सब कुंज के श्रीनाथजी स्वामिनीजी सबन के ये है। श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी अधिपति हैं। श्री स्वामिनीजी श्रीनाथजी के अंग हैं। और भक्त श्री स्वामिनीजी के अंग हैं। शृंगार हैं। ए सब कुंज कुंज के श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी श्री के संबंधी सबन के मांही है। न्यारे हैं याते तुलसी कुंज के श्रीनाथजी स्वामिनीजी सबके अधिपति है। और श्रीवल्लभाचार्य इन स्वामिनीजी ताप भावात्मक प्रेम रूपी अग्नि है सो इनके निजाचार्य है। मुख मुरत है। यादे वा सखी को देखि पहचान के गद गद कंठ होत है। पाछें इनको श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी बुलावत हैं जो श्री चन्द्रावलीजी को जूथ संबधी यह सखी है। याते श्रीस्वामिनीजी श्रीराधिकाजी अपनी एक सखी सों कही जो लक्ष्मी कुंज जाइके श्रीचन्द्रावलीजी को बुलाइ लाउ। और उन सखीन सों इन सखीन के समाचार कहियो, जों तुम्हारे अमुके जूथ अमुके संबंधी भूतल सों सखी रूप आई है याते तुमको श्रीनाथजी बुलावत है। पाछें वे सखी जाइके लक्ष्मी कुंज में श्री चन्द्रावलीजी सों समाचार कहत है, जो भूतल संबंधी एक सखी सो तुम्हारे कुंजन की श्री आचार्यजी की सेवक ठाडी है। याते श्री राधिकाजी तुमको बुलावत हैं। पाछें श्री चन्द्रावलीजी पालकी सों बैठिके कितैनी सखी साथ चलत है। ऐसे वैभव सों पधारत हैं। पाछें श्री राधिकाजी सों मिल दंडोत कर पाछें श्री राधिकाजी सों श्री चन्द्रावलीजी बांह पकरिके अपने बराबर बैठावत हैं। पाछें श्री चन्द्रावलीजी सों कहे जो एक सखी तुम्हारे कुंज संबंधी हैं। याके पूर्व संबंधो सरीर पर चिन्ह है। सो तुम देखि के पहचान के याको इनके जूथ सों मिलावो और याको मन्दिर में प्रवेस कराऊ काहेते या समान कोउ धीर्यवान नांही जो भूतल सों माया संबंधी सो माया अविद्या रूपी मोह नाटक रूपी जो सागर अति दुरित है। सो श्री आचार्यजी की कृपा बल सों जीतें पेरि के इहां लों आई है। याते या समान और कोऊ भाग्यवान नाही है ऐसे कही। और कही जो हम तो याके चिन्ह देखि के पहचानी है। पाछे तुम हू चिन्ह देखि के पहचानों। तब ऐसे ऐसे वचन सुनिके श्री राधिकाजी ने श्री चन्द्रावलीजी सों कही जो कोई आप याके पूर्व संबधी चिन्ह देखिके पहचानी सो प्रमाण है। काहेते जो कछू भले प्रताप है। सो तो आपकी कृपा बल ते भयो। आपकी कृपा करि इन भक्तन सखी जो इनके दोष बुधि सों गिरे सो तो इहां ते भूतल पर गिरे। पाछे तो आसुरी जीवन को संगत सों ये महा दुःखित भये। सो इनको सुरति आप करिके महा

ताप कलेस करिके तब ताप भावात्मक श्री आचार्यजी बिन कोन है जो इनकी संभाल को और अनेक बोध करिके प्रमेय बल सों इनकी बुद्धि दृढ आश्रय करि सब विद्या के सोह ते छुडाय के कार्य कीये । ऐसे उत्कठ सों जो कुसंग रूपी अविद्या धारा महा हलाहल वि रूपी जो पेरिके जीत के इहां लो आई है ऐसे कहिके पाछे श्री चन्द्रावली जी इन सखी को बांह पकरिके अपने बराबर बैठावत है । सो तब यह सखी श्री स्वामिनीजी को दंडोत करवे को उठत है । पाछे श्रीचन्द्रावलीजी इनको अंग अंग को चिन्ह देखिके पूर्व की लीला संबंधी पहचान के श्री राधिकाजी श्री चंद्रावली जी को इनको सुन्दर उष्णोदिक देके सुगं और उबटना करि और सखी सों मर्दन कराइके पाछे – उष्णोदिक सुगन्ध सों वाको स्नान करावत है । अपने उतीर्ण सिंगार दिव्य सुन्दर नवीन मनी कंचन के इनको पहराई तिलक करि काजर सिंदूर मांग भरि महावर लगाइके पाछे इनको महाप्रसाद लिवाव है । चोटी पुष्प पारजातिक की वेणी करि गूंथी है, ऐसे ऐसे सब सिद्ध करिके पाछे फि महाप्रसाद मनोहर अनेक प्रकार के संपूरण संयुक्त अति मधुर अति उज्वल अति सुगंध अति कोमल ऐसे इनको मान भाव सों प्रसाद लिवावत है । सुगंध बीड़ा प्रसादी देत है । सुन्दर अरगजा अतर सुगंध के इनके सरीर को लगावत है । पाछे श्रीनाथजी श्री राधिकाजी को दंडोत करि चरण पर सिर धरत है । तब इनको मस्तक दोऊ हस्त सों उठाइ के कठ सों लगावत है । आलिगन करत है । हृदय सों लगाइके गदगद कंठ होत है । और कहो जो तेरो वियोग हमसों सह्यो न जात हो तोसों श्री आचार्यजी ने अनुग्रह करिके यह वियोग टारयो । पाछे इनको दिव्य पालकी सुखपाल में बैठावत है । श्री राधिकाजी श्री चन्द्रावलीजी पालकी में बैठिके आगे चलत है । अनेक सेवक छडीदार चोबदार निसान के गज आगे चलत है । अनेक दिव्य बाजत्र,दुंदभी ढोल,निसान,भेरी सहनाई,दमामा ऐसे अन गतित दिव्य बाजा बाजत है । आगे चलत है । अपसरा नृत्य करत है । झांझ पखावज, ताल, सारंगी, वेणु, वीणा बाजत हैं । और गंधर्व गान करत हैं । ऐसे अनेक वैभव सों सब तुलसी कुंज के वैभव कोतिक सब अद्भुत सब देखत चलत हैं । और कुंज के सखी सब सों आइके मिलत हैं । और इनको तेज रूपो असवार देखि के प्रसन्न होत है । मन में आनन्द पावत हैं । सब देखि के पाछे लक्ष्मी कुंज पधारत हैं । जहां श्री चन्द्रावलिजी कर धर के सिंघासन पर बैठावत है । इनको संबंधी सब सखी आईके मिलत है । भेटत है । आज्ञावृत सखी आइके मिलत है । यह सखी उठि के श्री चन्द्रावलीजी श्री राधिकाजी को दंडोत करत है । घनी स्तुति करत हैं । सिंघासन बेठावत है । पाछे घने उत्सव करत है । सब कुंज के भक्त सखीन को न्योते बुलावत है और श्री चन्द्रावजी सों वीनती करिके

सब कुंज के श्रीनाथजी, श्री स्वामिनीजी बुलावत है । पाछे सबन सों अति स्नेह आदर ते ऊंचे नवीन आसन पर बैठावत है । पाछे अनेक विध के भोजन चतुरविध षटरस भोजन पदारथ अति उज्वल अति सुगंध अति मिष्ठान अति कोमल सब सिद्ध करिके कंचन के थार में मणि जटित वेलान में श्रीनाथजी श्री राधिकाजी श्री चन्द्रावलीजी श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी को न्यारे न्यारे भोग धरत हैं । पाछे सुगंध जल अर्पत है । पाछे श्रीनाथजी श्री स्वामिनीजी आदि सब ठाकुरजी को फिरके शृंगारत है । सुगंध, तेल उबटना अभ्यंग करावत है । पाछे अंग वस्त्र करिके वस्त्र भूषण दिव्य अर्पन करत हैं । पाछे श्रीजी स्वामिनीजी के सब ठोर न्योछावर करत हैं । भेट करत हैं । ऐसे अनेक भेट करत हैं । कहां ताई लिखिये लिखवे में न आवे । ।। इति की तुलसी कुंज समाप्तं ।।

इति की द्वादस कुंज वार्ता संपूर्ण

हस्त लिखित पुस्तक से नकल की है- पुस्तक के अंत का लेख—

मिति पोष बदि १४ सोमवार संवत् १९३९ लिखी तामें रघुनाथ, लिखिया को स्थान मंडी में बैठक श्री गोकुलजी मध्ये । जो कोई बाँचे ताकूं हमारी जेश्री कृष्ण । और जो भूल चूक माफ करना । आगे जैसो प्रति में देख्यो तैसो लिख्यो । रात्र में संपूर्ण ।

इस लेख से यह स्पष्ट है कि द्वादश निकुंज में निम्न लिखित १२ कुंज है जिनको क्रम बद्ध किया जाता है :—

१—पुष्प कुंज २—फल कुंज ३—रस कुंज ४—मधु कुंज ५—गो कुंज
६—द्वार कुंज ७—नव कुंज ८—शशि कुंज ९—प्रेम कुंज १०—सिद्ध कुंज
११-लक्ष्मी कुंज १२—तुलसी कुंज

निकुंजों की संख्या १२ ही रखी गई है इसके अनेक भाव हो सकते हैं उनमें से एक भाव निम्न प्रकार का भी हो सकता है :—

परम कारुणिक भगवान् श्री कृष्ण एवं स्वामिनीजी को गोलोक में चिन्ता हुई कि इस लोक के बहुत से जीव किसी न किसी अपराध से मृत्यु लोक में बहुत समय से भटक रहे हैं, तब श्रीमद्वल्लभ

प्रभु को आप श्री ने आज्ञा करी कि इन जीवों को आप गोलोक में लावें। महाप्रभुजी ने कृपा कर तीन बार पृथ्वी परिक्रमा नंगे चरण कमलों से करके देवी जीवों को शरण में लेकर किस प्रकार गोलोक में उन्हें पहुंचाया। इस विषय को द्वादश निकुंज की भावना के द्वारा समझाया गया है। महाप्रभुजी श्री ठाकुरजी की आज्ञा पालन करने के लिये जब भूतल पर प्रकट हुए तब आप श्री ने देखा कि अनेक जन्मों से देवी जीव आसुर जीवों के सम्बन्ध से वे स्वयं दोष के भण्डार बन गये हैं और इसलिये श्री ठाकुरजी से उनका सम्बन्ध कैसे हो सकता है। तब श्री गोवर्धन धर ने श्रावण मास की शुक्ला एकादशी की अर्ध रात्रि में आज्ञा करी कि आप इनका ब्रह्म सम्बन्ध करावो और उससे इनके पांच प्रकार के दोषों की निवृत्ति हो जावेगी (मैं इन को अंगीकार कर कभी नहीं छोड़ूंगा) तब महाप्रभुजी ने ब्रह्म सम्बन्ध द्वारा जीवों को शरण में लिया और सब ही को आज्ञा दी कि भगवत्सेवा करो। जिन भाग्यशाली वैष्णवों ने आपकी आज्ञा श्रद्धा पूर्वक दृढ विश्वास सहित पालन की, उनको प्रभु की सानु भावना प्राप्त हो कर, श्री ठाकुरजी के लिये विरह हो कर देह छूट गई। इसके बाद वे किस प्रकार गोलोक में पहुंचे इसका वर्णन इस द्वादश निकुंज की भावना में है। श्री महाप्रभुजी की आज्ञा से उस सखी रूप जीव को माया के विषय वासना के भावों से बचाते हुए चार दूत ले जाते हैं। वहां जाने का मार्ग शत योजन लम्बा है। और इतना सँकड़ा है कि एक हो व्यक्ति उस पर चल सकता है। उस राह के दोनों तरफ गहरी खाईयाँ बड़ी कराड़ों में हैं। किसी खाई में नव युवक सुन्दर स्त्री और पुरुष शृंगार किये हुवे मन को मोहित कर रहे हैं। किसी खाई में सुन्दर मिष्ठान्न के थाल सजे हुए हैं। यदि उधर ध्यान देवे तो मोहित होकर खाई में गिरने की सम्भावना है। इसलिये वे दूत आगे पीछे चलते हुवे भगवद् वार्ता से उस सखी को ऐसा मग्न कर देते हैं कि उसका ध्यान माइक दृश्यों की तरफ नहीं जाता है। इस तरह वे दूत पुष्प कुंज के द्वारपाल सखी से कहते हैं कि यह आचार्य महा प्रभु की कृपा पात्र है। सब माया के समुद्रों को पार करके आई है आप अपने कुंज के श्री नाथजी और श्री स्वामिनीजी को इनको दर्शन देने के लिये निवेदन करो। द्वारपाल सखी से यह सूचना प्राप्त कर श्री स्वामिनीजी अपनी आज्ञाव्रत सखी को आज्ञा देती हैं कि आचार्य महाप्रभुजी की कृपा-पात्र सखी माइक दृष्यों से विचलित न हो कर यहाँ तक पहुँची है उसे अवश्य लावो। तब आज्ञाव्रत सखी आकर उस सखी को सन्मान सहित बाँह पकर कर कुंज में ले जाती है। और एक छाब सुन्दर सुगंधित पुष्पों की और एक छाब सुन्दर मीठे अनेक प्रकार के फलों की उस सखी को देकर पुष्पों के शृंगार उससे तैयार करवाती है और फलों को सँवार कर, साथ में ले जाती है। वहाँ पहुंच कर शृंगार युगल स्वरूप को धारण कराती है और फल भोग धरती है। समयानुसार भोग सराती है। फिर युगल स्वरूप को दण्डवत करती है तब श्री स्वामिनीजी प्रसन्न हो कर अपने उतीर्ण शृंगार और फलों का प्रसाद उस सखी को देते हैं। इसके बाद आज्ञाव्रत सखी को आज्ञा देते हैं कि इनको अपने कुंज के वैभव दिखावो और सखियों से भेंट करावो। तब उस सखी को सब कुंज में दर्शन करा कर सब प्रकार से उसका सन्मान करते हैं। जो वह सखी वैभव देख द्वेष ईर्ष्या करे तो उसको भूतल पर भेज देते हैं। यदि वह सखी स्नेह, दृढाश्रय श्रद्धा सहित रहती है तो उसको आगे के १० कुंजों में दर्शन दण्डवत कराते हुए अन्त में तुलसी कुंज में ले जाते हैं। वहाँ की श्री स्वामिनीजी चन्द्रावलीजी को उस सखी के चिन्ह देख कर उसे पहचानने के लिये आज्ञा देते हैं और उसके चिन्ह देख कर, पहचान कर जिस कुंज के जिस यूथ की वह सखी हो वहाँ भेज देते हैं। इस तरह वह सखी अपने पूर्व स्थान को प्राप्त कर लेती है।

॥ श्री हरिः ॥

॥ शृङ्गाररसमण्डनम् ॥

संक्षिप्त परिचय :—

इस ग्रन्थ के दृष्टा श्री मद्वल्लभाचार्य जी के द्वितीय कुमार श्रीमद् विठ्ठलेश्वर श्रीमद प्रभुचरण हैं आप श्री का प्रागट्य (व्रज) पोष कृष्णा नवमी वि.सं १५७२ शुक्रवार के दिन हुवा था. जिस समय श्रीमद् वल्लभाचार्य चरण नित्य लीला में पधारे उस समय श्री मद् विठ्ठलेश्वर चरण की अवस्था केवल पन्द्रह वर्ष की थी परन्तु श्रीमदाचार्यजी के अन्तरग सेवक श्रीमद् दामोदरदास जी भूतल पर विराजते थे उनके पास से ही श्रीमद् प्रभुचरण ने साम्प्रदायिक मत समझा ऐसी कई वार्ताओं से सूचना मिलती है श्रीमद् प्रभु चरण ने श्री मदाचार्यजी के पश्चात सम्प्रदाय का बहुत प्रचार किया है और अनेक राजा लोग इनके सेवक थे। स्वपितृचरण के प्रगट किये हुवे ब्रह्मवाद और भक्ति मार्ग का सरस मण्डन आपने 'विद्वन् मण्डन' नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ में किया है इसी प्रकार व्यास सूत्र के अन्तिम डेढ अध्याय का भाष्य भी स्वपितृचरण के दृष्टि बिन्दु से किया है दशम स्कन्ध के श्री सुबोधिनी जी के आशय को समझाने के लिए आप श्री ने 'श्री टीप्पणी' प्रगट की है भगवद्ल्लीला का गान कीर्तन करवाने और निज गीत संगीत सागरत्व श्रीमद् विठ्ठलेश प्रभु में विनियोग द्वारा समर्पण करके उसे सफल करने के लिए आप श्री ने शृंगार रस मण्डन प्रकट किया है और उसमें भगवद्ल्लीला के दर्शन जैसे आप श्री को हुए हैं उसका सुन्दर वर्णन किया है। आप श्री का विशेष चरित्र साम्प्रदायिक वार्ताओं में प्रसिद्ध है आप श्री माघ व्रज) कृष्णा सप्तमी वि सं. १६४२ के दिन नित्य भगवल्लीला में पधारे थे आप श्री के सेव्य स्वरूप श्री नवनीत प्रियाजी वर्तमान में नाथद्वारा में विराजते हैं आप श्री की विज्ञप्तियां विशेष रूप से भगवत् विरह क्लेशानन्द का शुद्ध प्रतिबिम्ब है।

ग्रन्थ परिचय—शृंगार रस मण्डन के तीन विभाग हैं—(१) वृत चर्चा या रस सर्वस्व (२) दान लीला और (३) उल्लास।

ये तीन विभाग स्वतन्त्र रूप से शृंगार रस मण्डन के अतिरिक्त भी प्रसिद्ध हैं क्रम के सम्बन्ध में कुछ सन्देह है जो यहां पर मुद्रण में क्रम स्वीकार किया गया है वह क्रम अधिकारानुसार है। प्रथम रस सर्वस्व में ऋषिरूपा गोपीजनों के किये हुए कात्यायनी वृत उसके साधन और फल का वर्णन है। द्वितीय दान लीला में श्रुति रूपा श्री चन्द्रावली जी आदि गोपीजन और श्री रसेश प्रभु के परस्पर विलास का वर्णन है और तीसरे उल्लास ग्रन्थ में नित्य सिद्धा श्री राधिकाजी के प्रभु के साथ विलास का निरूपण है। तीसरे विभाग में दस उल्लास होने से यहां उनका दस उल्लास के नाम से उल्लेख है। दान लीला में राधा चन्द्रावली गोपी दासी कथितमद्भुतम्। सम्पूर्णमभवत् कुंजे शृंगाररसमंडनम् श्लोक २०८ में सूचित क्रम में प्रथम उल्लास पीछे दान लीला और अन्त में रस सर्वस्व है टीकाकार श्री गोकुलोत्सव जी ने इसी क्रम से इन तीन विभागों के ऊपर टीका की दिखती है। उल्लास के अन्त में श्रीमद् प्रभु चरण श्री विठ्ठलेश्वर जी ने श्रीमद् दामोदरदास जी और श्री हरिवंशजी की सहायता स्वीकार की है तथा मुख्य प्रचारक श्री रामदासजी का भी स्मरण किया है जब कि अन्तिम दो रस सर्वस्व और दानलीला में किसी का भी स्मरण नहीं है। साम्प्रदायिक गाथाओं का विचार करते हुए श्रीमद् विठ्ठलेश्वर जी ने लीलाओं के इस साक्षात् अनुभव में श्रीमद्

दामोदर दास जी सहायक होवें यह अनुचित नहीं हैं। 'उल्लास' (रसोल्लास) पढ़ते हुए अपने को श्री जयदेवजी के श्री गीत गोविंद का बारम्बार स्मरण होता है वैसा स्मरण दानलीला और इस सर्वस्व में नही होता है इस पद से ऐसा अनुमान होता है कि समय के प्रमाण में उल्लास का प्रागट्य सबसे पहले हुआ है उसके बाद में दान लोला का और अन्त में व्रत चर्या अर्थात् रस सर्वस्व का प्रागट्य हुवा है।

यद्यपि यह शृंगार रस मण्डन नियति कृत नियम से रहित है ब्रह्मा की सृष्टि का लौकिक सृष्टि के नियमों से मर्यादित नहीं है केवन अह्लदैव मय आनन्द प्रद ही है तो भी यह काव्य लौकिक काव्य नहीं है टीकाकार श्री गोकुलोत्सव जी इसे स्पष्ट शब्दों में बतला रहे है कि यद्यपि शृंगार रस मण्डन काव्य मुद्रा है तो भी यह कोई नूतन काव्य नहीं है। लौकिक चातुर्य में से इसका प्रादुर्भाव नहीं हुवा है परंतु नित्य लीलास्थ अन्तरग भक्त वृन्द परस्पर जो भगवद् गुणानुवाद निरन्तर करते है उसका अपने अनुभव से केवल अनुवाद रसिक जनों के मन के प्रमोद के लिए यहां श्रीमद् प्रभुचरण करते है अर्थात् लीला सृष्टि में नित्य प्रसिद्ध इस प्रकार के इस शृंगार रस मण्डन का आविष्कार श्रीमद् प्रभुचरण जैसे भाग्यवान महोदार रसिक जनो के संतोष के लिए करते है 'प्रार्थये रसिका: स्वैर पश्यन्त्विदमहर्निशय। एतद्रसानभिक्षस्तु माद्राक्षीदपि वैष्णव:'।

इस श्लोक की श्रीमद् प्रभुचरण की आज्ञा का अनुसरण करके टीकाकार इस ग्रन्थ का अधिकार वैसे भगवत भाव निष्ठ संसारा सक्ति रहित निष्काम रसिक प्रभु प्रेम मुग्ध भक्तों का ही निर्देशन करते है अर्थात् टीकाकार श्री गोकुलोत्सव जी के मतानुसार यह शृंगार रस मण्डन केवल नित्य लीला का अनुवाद रूप है भगवल्लीला की नित्यता प्रभु के नाम गुण लोला का नित्यत्व: भी सुप्रसिद्ध है। इस प्रकार का नित्यत्व: श्रीमद् विठ्ठलेश्वरजी ने स्वत: ही अपने ग्रन्थ 'विद्ववत् मण्डन' के अन्त में सिद्ध किया है। गोड़ सम्प्रदाय के विद्वानों को भी यह सिद्धान्त अत्यन्त रूचिकर लगा है शृंगार रस मण्डन केवल भगवल्लीला का अनुवाद है।

इस ग्रन्थ का दृष्टि बिन्दु भी विचारणीय है। धर्म मार्ग का प्रगट लौक का नाश या विस्मृति कराकर परलोक का सम्बन्ध या स्मरण कराने के लिए है परलोक के साथ परमतत्व की भावना भी स्थिर हुई ऐसा कोई परम तत्व जिसको यथा रूचि नाम से लौक व्यवहार है उसके निकटतम सम्बन्ध में कैसे आये यह धर्म मात्र का लक्ष्य है इसी दृष्टि बिन्दु से पिता–पुत्र की भावना से प्रभु का भजन लोगों ने करना प्रारम्भ किया इस प्रकार के सम्बन्ध से भजन करने वालों में नारदजी मुख्य हैं अनन्त कोटि ब्रह्मांड का नियामक स्त्रीतत्व हो सकता है यह विचार अन्य ग्रन्थों में स्वीकृत नहीं है। सूफी मत भी इसी कारण से अग्राह्य है परन्तु प्रभु केवल प्रेम रूप ही है। यह भावना टेट उपनिषद् के समय से भारत वर्ष में प्रचलित है तैत्तिरीयोपनिषद् में जब से 'रसो वं स, रस हि एवायं लब्ध्वानंदी भवति' यह उच्चारण हुवा तब से यह स्वीकार किया गया कि परम तत्व की रस रूपता निरुपधि निरवधि आनन्द की प्राप्ति भी इस रसेश की प्राप्ति से ही हो सकती है छान्दोग्यमे 'आत्मरत्ति: आत्मक्रीड: आत्ममिथुन: स स्वराट् भवति सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति' इस वाक्य में ज्ञान की पराकाष्ठा नहीं दिखाई परन्तु भगवद्रस निमग्न भक्त की उतमोत्तम दशा का वर्णन हैं। 'सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चिता' इस वाक्या से विविध रस भोग चतुर आनन्द मय प्रभु के साथ रमण करते हुए भक्त लोग सर्व प्रकार से कामोपभोग करते है ऐसा वर्णन है अर्थात् परम तत्व यह केवल सच्चिदानन्द ऐसे सामान्य नहीं परन्तु केवल आनन्द प्रचुर रस प्रचुर है और इसको ही उपासना से परमानंद की प्राप्ति सब सुख की प्राप्ति होती है इस प्रकार यह श्रुति सूचित करती है कि यह सब प्रकार का सुख आनंदमय रसेश के निकटतम सबंध में आए बिना प्राप्त होना अशक्य होने के कारण छान्दोग्य श्रुति इस रसेश प्रभु को 'आत्म' शब्द से वर्णन करती है। मनुष्य के निकटतम आत्मा है और आत्मा के निकटतम अपनी आत्मा है परमात्मा यह है यह परमात्मा की जब प्राप्ति अपने को होय तब यह अपने आत्मरति आत्म क्रीडा आत्म मिथुन हो सकता है। ब्रह्म के सदन्श और चिदंश से भी केवल आनंद आंश पर अवलम्बन करके अखिल प्रेम मार्ग उपनिषद् में से इसका उद्भव हुवा है प्रभु के परम तत्व के रसोववश: यह कहकर और रस रूपता निसन्दीग्ध रीति से सूचित की गई है।

भारतोय नाट्य शास्त्र में 'शृंगार हास्य करूणारौद्रवीरभयानका:। बीभत्साद्भुतसंज्ञाश्चेत्यष्टौ नाटये रसा: स्मृता:' इस श्लोक में भो शृंगार रस का प्रथम निर्देशन करके उसका प्रधानत्व सूचित किया है इसके बाद 'श्यामों: भवति शृंगार:' इस वाक्य से शृंगार रस की श्यामता सूचित की है और 'शृंगारो विष्णुदेवस्तु' इस वाक्य में शृंगार रस का अधिष्ठात्री देवता विष्णु को बताया है इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उपनिषद् में जो परेरतत्व रस रूप कहा है और जिसकी प्राप्ति से निरवधि निरूपधि आनन्द की प्राप्ति होती है ऐसा उपदेश है वह परमतत्व रसरूप श्याम. विष्णु है पुराणमात्र को वेद्य का उप ब्रहण या अर्थ विचार स्थारक कहा गया है यह बात सूक्षम रीति से उपनिषद् में दिखाई हो तो बातों को पुराण में स्पष्ट दृष्टान्तो से सुदृढ़ को जाती है रस रूप शृंगार रस रूप श्याम विष्णु की प्राप्ति पर परमानन्द की यहां सकल मनोरथ की पूर्ति कराती है यही बात श्रीमद् भागवत् के दशम स्कन्ध में श्रीमद् गोपीजनों को हुई। मेघश्याम गोपवेश विष्णु की प्राप्ति से स्पष्ट कही हो वहां भी कृष्ण को शृंगार रस का अधिष्ठाता विष्णु रसाविष्ट प्रकार से वर्णन किया है। गोपीजन ने भी सर्व ऋषियों को त्याग कर इनकी शरण में गई ऐसा वर्णन है और सब प्रकार के प्रपंचों का त्याग पूर्वक प्रभु के शरण जाने से निरुपधि निरवधि आनन्द की प्राप्ति इनको हुई ऐसा वणन किया गया।

इस प्रकार परम तत्व जो उत्तमोत्तम शृंगार रस का अधिष्ठात्रो देवता होय और उसकी ही प्राप्ति इस परम सुख के कारण होय तो वह शृंगार रस रूप परम तत्व का आविर्भाव कैसे होवे? अनुभव कैसे होवे? इसके लिए भरत, वात्सायन इत्यादि मुनिवरों की प्रवृत्ति है। काम सूत्र के अध्ययन की सफलता तब ही होती है कि जब इसका विनियोग लौकिक रूप में न होते हुए प्रेम पुंज रूप इसेश प्रभु में होय। काम सूत्रकार स्पष्ट रीति से अपने ग्रन्थ के अन्त में बता रहे है कि 'विहितं-लोकयात्रार्थं न रागार्थोऽस्य संविधि। अस्य शास्त्रस्य त्तत्वज्ञो भवत्येव जितेन्द्रीय:' अर्थात् काम सूत्र के ज्ञान से जितेन्द्रिय होकर रसात्मक होकर शृंगार रस के प्रेम पुंज में उसका विनियोग करने का है

भरत नाट्यशास्त्र संगीत शास्त्र इतना ही नहीं पर सब विद्याओं का अर्थात् विनियोग (पूर्ण फल पूर्ण विकास) तब ही हुवा कहलाता है कि जब शृंगार रस रूप प्रेम पुंज के प्राकट्य में उन उन विद्याओं का ज्ञान उपयोगी है। लोक में अनासक्त और प्रभु में परमासक्त ऋषियों का तात्पर्य लोक में न हो यह स्वाभाविक ही है श्रीमद् विठ्ठलेश प्रभु चरण भरतादि. नाट्य शास्त्रों का क्या उद्देश्य है उसके लिए स्पष्ट बता रहे है कि 'लौकिक पुंसि नार्या वा तदाभासो रसशास्त्रे निरूप्यते तद्दृष्टान्तेन भगवद्भाववद्भक्तरीतिभावनार्थ, न तु ऋषीणां लौकिके तात्पर्यं भवितुमर्हति" अर्थात् ऋषियों का कामसूत्रादि ग्रन्थों के लिखने का तात्पर्य लोगों को व्यामोह कराके लौकिक में गिराने का नहीं था परन्तु ऐसे प्रेमयुक्त भक्त को प्रभु का भजन कैसे करना चाहिए रसात्मक प्रभु का अनुभव कैसे होय यह बताने के लिये ही है। अलंकार शास्त्र का भी विनियोग इसी प्रकार समझने का।

यह ऊपर के कथन से श्रीमद्गोपीजन वल्लभ कृष्ण की परम उपास्यता परम आदरणीयता प्रेम निष्ट आचार्यों ने किस प्रकार स्वीकार किया है यह स्पष्ट समझ में आवेगा बंगाल के गौड सम्प्रदाय के 'रूप गोस्वामी' ने अलकार शास्त्र को कृतार्थ करने के लिए उस शास्त्र का प्रतिपादन 'उज्जवल नीलमणि' नामक अलंकार ग्रन्थ का श्री कृष्ण में विनियोग किया है सूरदास जी और परमानन्द दासजी आदि परम भक्तों ने अपनी प्रभुदत्त कीर्तन शक्ति का विनियोग लक्षावधि पदों से प्रभु का गुणगान किया है और श्रीमद् विठ्ठलेश प्रभु चरण निज संगीत सागरत्व और परम कवित्व का विनियोग शृंगार रस मण्डन' द्वारा श्रीमद् गोपीजन वल्लभ में किया है। जिस परम तत्व को तैतरीय उपनिषद् में रसरूप कहा है उसको यहां प्रेम निष्ठ आचार्यों ने श्रीमद् गोपीजन वल्लभ रूप में स्वीकार किया है। श्रीमद् गोपीजन वल्लभ यह केवल देह धारी लौकिक शरीरवान जीव नहीं है परन्तु श्रीमद् गोपीजनों के हृदय में स्थित और बाहर निरन्तर अनुभव में आने वाली प्रेम भाव पुंज की मूर्ति है संगीत का जिनको ज्ञान हो तो उनको तो यह खबर है कि जब सारंग बिभास रागादि कोई भी राग का यथार्थ गान होता है तब वे कहते है कि उस राग का स्वरूप खड़ा हो गया अर्थात् जो राग अनभिज्ञ लोगों को अमूर्त लगता है वही तद् विज्ञ को स्पष्ट मूर्तिमान अनुभव में आता है इतना ही नहीं परन्तु उसका स्वरूप वर्णन तथा उनके चित्र भी सुन्दर देखने में आते हैं। इसी प्रकार से परम प्रेम रूप आनन्द रूप शृंगार रस के अधिष्ठाता का भी साक्षात्कार तद्रसाभिज्ञ को होता है और वैसे तद्रसाभिज्ञ या तननिष्ठावान को 'शृंगार रस मण्डन' आदि ग्रन्थ परमफल रूप होने की स्फूर्ति होती है।

ऊपर के कथन से शृंगार रस मण्डनादि ग्रन्थ श्रीमद् भागवत, गीत गोविन्द, आदि ग्रन्थों ने जो प्रेम मार्ग की परिभाषा श्रीमद् गोपीजन वल्लभ के सम्बन्ध में स्वीकार की है उसकी निर्दोषता स्पष्ट प्रतीत होगी। वस्तुतः शब्द मात्र का मुख्य अर्थ भगवान ही है और लोगों के लोक के आवरण के

कारण उनके शब्दों का भगवत् अर्थ एकत्व और भगवान् सब होने से सर्वात्मकत्व विस्मृत होने से शब्द की दुष्टता की स्फूर्ति लोगों को हुई और परम निर्दोष परिभाषा में स्वहृदय मालिन्य के कारण रसाभाव की काम की दुर्गन्ध आने लगी स्पष्ट बात यह है कि छोटे बालक जो विभत्स शब्द का उच्चारण करते है वह भी उनकी निर्दोषता के कारण हमको परम निर्दोष रूप से जानने में आता है। अर्थात् परिभाषा का दुष्टत्व या निर्दुष्टत्व यह पढने वाले के हृदय में विकास के आधीन है।

इन सम्प्रदायों में गोपीजन वल्लभ को परम प्रेम रूप मानकर रसात्मक पुरुषोत्तम मान कर उनका परम उपास्त्व स्वीकार किया है उन लोगों ने कामरूपी दोष को स्वीकार करने के लिए नहीं परन्तु कामरूपी हृदय रोग से मुक्त होने के लिए ही स्वीकार किया है इसीलिए श्री शुकदेवजी रासपंचाध्याजी के अन्त में बतला रहे है कि 'विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्यः। भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥ अर्थात् विष्णु के रसात्मक पुरुषोत्तम के व्रज भक्तों के साथ का रमण श्रद्धापूर्वक श्रवण अथवा वर्णन यह काम रूपी हृदय रोग का विदारण (नाश) का कारण है। इतना ही नहीं परन्तु परम सुख परम प्रेम का निधान परम आसक्ति का निधान और परम व्यसन का निधान यह प्रेम पुंज रसात्मक श्री गोपीजन वल्लभ है। इस प्रकार की स्फुरणा लौकिक काम वासना ऐसे महानुभावों के हृदय में कैसे रह सकती है ऐसे महानुभावों के केवल हरि ही गोपीजन वल्लभ ही रसोद्बोध कर सकते हैं श्रीमद् वल्लभाचार्य जी ने वेणुगीत की श्री सुबोधिनीजी के आरम्भ में स्पष्ट रूप से आज्ञा की है—

आसक्तिः प्रेम पूर्वेव प्रेमापि हरिणा कृतम्। उद्बोधकं च हरिणा कृतं नान्येन केनचित् ॥

इस कारिका में लीलास्थ भगवदियों को भी जहां प्रेम का उद्बोधक नहीं माना है वहां लौकिक पुरुष या स्त्री इस श्री गोपीजन वल्लभ के प्रेम मार्ग में परम रमणीय वर्णित मार्ग में किसी भी प्रकार से उद्बोधक कैसे हो सकता है? भगवल्लीला के दृष्टांत से लोक में वैसी दुष्ट प्रवृति करने वाले या कराने वाले तो परम निन्दनीय होने से त्याज हा है। लौकिक भोग सविघ्न अल्प और घातक होने से सर्वथा, सर्वदा, त्याज ही है दस दिगन्त विजयी सूरसि श्री पुरुषोत्तम जी आचार्य चरण ने इस वाक्य से अवलम्बन करके इसी प्रकार का निर्णय किया है

सविघ्नत्वादल्पत्वाद्भोगस्त्याज्य इति चोक्तम्। तच्च स्त्रीणां पुसां स्त्रीपुंसयोश्च समानम्,अतो भगवल्लीलादृष्टान्तेन लौकिके प्रवर्तकान् प्रवर्तमानांश्च विमुखाश् निश्चित्य, तत्संग परिहृत्य, सर्वेन्द्रियनिग्रहः कार्यः—आवरण भंग ४३६

अर्थात् अधिकार के अभाव में इस प्रेम मार्ग में जाने में अधः पतन होता है। वह न हो ऐसे जान-

कर ऐसे प्रेम मार्ग के ग्रन्थों को भले वह स्वयं वैष्णव हो तो भी नहीं बांचना चाहिए ऐसा उपदेश देते है प्रभु प्रेम जो रखने की शक्ति बिना के जो लोग नारदजी की तरह प्रभु का यशोगान करते रहे अथवा दक्षिण देश निवासियों की तरह विठोबा रुकमाई की शीतल भक्ति करता रहे। इसी कारण से श्रीमद् प्रभु विठ्ठलेश चरण आज्ञा करते है ।

प्रार्थये रसिका: स्वैरं पश्यन्त्विदमहर्शिम् । एतद्रसानभिज्ञस्तु मा प्राक्षीदपि वैष्णव: ।।

जहां अरसिक वैष्णव के भी अधिकार का आप इतने आग्रह से निशेध करके इस प्रेम मार्ग का परम गोपयत्व निरूपण करते है वहां य:कश्चन को ऐसे ग्रन्थ में अधिकार कैसे हो सकता है? लौकिकासक्त लोकिक श्रृंगार यह तो केवल आभास मात्र है । 'तस्य मात्रामुपजोवन्ति' यह तैत्तीरोय श्रुति में सूचित करते है कि जा लोग आनन्द का अनुभव करते हैं वह तो परमानन्द की मात्रा ही है बिन्दु ही है लौकिकानन्द यह तो आनन्द का केवल आभास है वस्तुत: यह आनन्द नहीं है इस तरह लौकिक काम, लौकिक श्रृंगार यह वास्तव में उसके सत्यरूप नहों है परन्तु उसका केवल आभास है ऐसे लौकिक काम में मुग्ध होने वालों को मोह और क्लेश प्राप्त हो यह युक्त ही हैं इस क्लेश को दूर करने के लिए इस 'श्रृंगार रस मण्डन' में रसात्मक श्री गोपीजन वल्लभ कृष्ण का निजरूप व्रज वधुओं के साथ के रमण का वणन है । उसका अनुसंधान करने से लौकिक काम की निवृत्ति होती हैं परम रस सुख आनन्द क्या है उसका यथार्थ उद्‌मादन होता हैं ऐसी इच्छा वाले भाग्यवान भगवदियो के लिए श्रीमद् प्रभुचरण इस श्रृंगार रस मण्डन को प्रकट किया है। दयाराम भाई भगवदीय भक्तों का भगवल्लीला का अनुवाद रूप काव्य भी यदि इसी दृष्टि बिन्दु से बांचने में आवें तो उसकी भी निर्दोषता की स्फुरणा हुए बिना नहीं रहेगी ।

यह लेख प. भ. मूलचन्द्रजो तेलीवालों के गुजराती भूमिका रूप ग्रन्थ परिचय का अक्षरश: अनुवाद है जिसके पढने से यह स्पष्टतया समझ में आ जावेगा कि रसेश भगवान श्री कृष्ण का और ब्रज गोपीजन को ही सीमन्तनियों की यह वृत चर्या निर्दोष और अलोकिक है श्रीमद् वल्लभाचार्य चरण ने गोपीजन को ही गुरु माना है । वैष्णव जनों को महाप्रभुजी के चरण कमलों का दृढाश्रय रख कर ऐसे ग्रन्थों का अवलोकन करना चाहिए जिससे लौकिक दृष्टि हट कर रसेश भगवान् श्री कृष्ण में दृढ भक्ति हो ।

* * *

।। श्री हरिः ।।

शृङ्गाररसमण्डनम्

—रससर्वस्वम्—

कुमारीणां राधावरमिलनमाकर्णय रमासमाशास्यं स्मेरस्मितलवजिताशेषसुदृयाम् ।
अलं तद्भाग्योक्त्या यदतिमधुरो माधववरो वशे जातो लोकत्रययुवतिमृग्य: सहचरि ।।१।।

हे सहचरि । अपने सुन्दर मन्दहास के लेश से ही जिन्होंने सभी सुन्दरियो को जीत लिया है उन कुमारिकाओं की राधावर(श्री कृष्ण)के साथ मिलने की बात को तुम सुनो, इस प्रकार के मिलन के लिये लक्ष्मी भी लालायित रहती है । इससे बढकर उनके भाग्य की सराहना क्या की जाय जो अतिमधुर माधववर जिन्हें तीनों लोकों की युवतियां भी प्राप्त नहीं कर सकी वे इनके वश में हो गये ।।१।।

पुरैव जनकात्मजारमणहार्दसम्पादितस्वभाग्यनिधयो व्रजे प्रकटिता बभूवु: प्रिया: ।
हरिस्थितिविहारभूरिति विनिश्चयेनोत्तमामधिव्रजमकुर्वत स्थितिममन्दमोदाप्ना: ।।२।।

पूर्वजन्म मे इन कुमारिकाओं ने जनक नन्दिनी के प्रियतम श्रीराम के साथ रमण करने को इच्छा की थो ऐसी परम भाग्य शालिनी प्रिया व्रजमे प्रकट हुई । यह व्रजभूमि भगवान् श्रीकृष्ण की उत्तम विहार भूमि है इसलिये अत्यन्त आनन्द से पूर्ण इन्होंने व्रजभूमि मे निवास किया ।।२।।

तत इह समये गोकुलजनजीवनचरणरेणुराविरभूत् । स्वयमेव सकलनिजगुणकृतोपमानं वहन्नाथ:।।३।।

कुमारिकाओं के प्रकट हो जाने के बाद इस समय गोकुल निवासियों के लिये जिनकी चरण रज ही जीवन का आधार है । स्वयं अपने ही गुणों से जिनको उपमा दी जा सकती है ऐसे श्री गोकुल के नाथ का स्वयं ही प्राकट्य हुआ ।।३।।

नन्दात्मजरूपामृतविभ्रमसम्मोहिता: सर्वा: । अतिदुर्लभतत्सङ्गमकृते व्रते ता मतिं मुदाऽकुर्वन् ।।४।।

नन्दनन्दन के रूपामृत विलास से मोहित उन सब ने अतिदुर्लभ उनके सङ्गम की प्राप्ति के लिये प्रसन्नता से व्रत करने का विचार किया ।।४।।

चम्पककुवलयजातीकुरबककुन्दादिपुष्पसम्पत्त्या । विजितवसन्तेऽकुर्वन् हेमन्ततौ व्रतारम्भम् ।।५।।

चम्पा- नीलकमल- चमेली- कुरबक कुन्द आदि पुष्पों की अधिकता से जिसने बसन्त को भी जीत लिया है ऐसी इस हेमन्त ऋतु मे व्रत का आरम्भ किया ।।५।।

शीतारम्भात् प्रियतमगाढाश्लेषानुकूले यत् । विधुरपि चिरं जहाति न निजरमणीं रात्रिमाश्लिष्टः ।।६।।

शीत का आरम्भ हो जाने के कारण यह समय प्रियतम के गाढालिङ्गन के अनुकूल है । अतएव चन्द्रमा भी अपनी रमणी रात्रि के आलिङ्गन को चिरकाल तक परित्याग नहीं करता । अर्थात् हेमन्त ऋतु मे रात्रि बड़ी होती है अतः उसमें चन्द्रमा भी अधिक समय तक रहता है ।।६।।

अचिरेणासिताम्भोजविकासेनाऽसितेक्षणे । सूचयत्यचिरात् कृष्णचन्द्रेणासां दृगुत्सवम् ।।७।।

हे असितेक्षणे । इस समय शीघ्र ही नीलकमल का विकास हो रहा है, इसलिये इन कुमारिकाओं की दृष्टि के लिये उत्सव के रूप में श्री कृष्ण के दर्शन होने की सूचना मिलती है ।।७।।

रजनीकरकररञ्जितविकसितसमरन्दकुवलयैरासाम् । सूचयति केलिचुम्बनरागं सुदृशां विलोचनयोः।।८।

चन्द्रमा की किरणों से रञ्जित होने से विकास को प्राप्त मकरन्द सहित कुवल (नील) कमलों से यह सूचित होता है कि इन सुनयनाओं के नेत्रों में केलिचुम्बन का अनुराग हैं ।।८।।

मुकुलायमानकुवलयकुलैः प्रभातेषु रविकरात्यरुणैः । ज्ञापयति रात्रिजागरसरागतन्नेत्रयोर्निद्राम् ।।९।।

प्रातः काल के समय अत्यन्त अरुण सूर्य की किरणों से मुकुलित (अविकसित) कमलों से यह ज्ञात होता है कि रात्रि जागरण के कारण इनके नेत्र लाल हो रहे है और इन में नींद आ रही है ।।९।।

कोकार्तस्वरशिशरानिलकुमुदाह्लादतद्ध्वनीन्द्वनलैः । चिरमिह तापसपदवीं विरहिजनं प्रापयत्युच्चैः।।१०।

कोक (चकवे) की आर्त्तध्वनि एवं ठण्डी हवा तथा श्वेत कमल का विकास इस तरह की ध्वनि और चन्द्र की अग्नि से यहाँ विरहीजनों के लिये अत्यन्त तापस का पद प्राप्त हो रहा है । विरहीजन तपस्वियों की तरह अग्नि आदि से संतप्त हो रहे हैं ।।१०।।

विकसितकुन्दैर्विहसति सुन्दरचन्द्रावलोकनादेव । प्रकटं पुष्पवतीर्नवकुमुदवधूः कामहृतलज्जाः ।।११।।

सुन्दर चन्द्र के अवलोकन मात्र से ही यह पुष्पों वाली (ऋतुमती) नवीन कुमुद वधू काम के द्वारा जिसकी लज्जा का अपहरण हो गया है वह विकास को प्राप्त कुन्द पुष्पों से हँस रही है । इसमें समासोक्ति अलंकार है 'समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिङ्ग विशेषणैः । व्यवहार समोरोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुतः'। यहां कुमुद वधू में ऋतुमती नायिका के व्यवहार का आरोप किया जा रहा है ।।११।।

कोष्णकृष्णाजलेनोषस्यग्रे शीतेन च प्रभोः । एतत्सङ्गाभिलाषाङ्गसङ्गौ सूचयति द्रुतम् ।।१२।।

उषः काल में कोष्ण (कुछ गरम) यमुना जल से और आगे शीत से यह सूचित होता है कि प्रभु के संग की अभिलाषा से पहले तो ताप और उसके अनन्तर अङ्ग सङ्ग से शीघ्र ही शीतलता आ जाएगी ।।१२।।

वेपथुसीत्कृतिपुलकं शिक्षयतीवालि सहजमप्येताः । मत्वा कुमारिका रतिकेलिषु योग्या व्रजेशस्य ।१३ ।

हे आलि ! यह हेमन्त ऋतु इन कुमारिकाओं को व्रजेश की रति के योग्य मानकर वेपथु (कम्प) सीत्कार और पुलक (रोमाञ्च) आदि को जो कि इनमें सहज है उनकी मानो शिक्षा दे रही है ।।१३।।

कुसुमैरतिरतिखेदस्वेदैर्विरहिण्यमन्दनयनजलैः । दिवसे हरिविरहौष्ण्याद्रतिसीत्कारैश्च षड्रूपे ।।१४।।

विरहिणी अत्यधिक नयन जल से तथा रति खेद के स्वेद रूप पुष्पों से दिन में तो हरि विरह की उष्णता से और रति के सीत्कारों से छः रूप में हो गई ।।१४।।

कुलकम्—

कालिन्द्यामाप्लुत्य प्रयतमनोवाक्कलेवराः सर्वाः । परिधाय चापरां शुचिनीवीं देवीं समानर्चुः ।१५।।
शृङ्गाररसरूपात्मब्रह्मैक्यप्रतिपादिकाम् । पठत्स्वलिमुनिष्वालि श्रुतिं कुमुदकानने ।।१६।।
अचिरेण जिगमिषत्यपि चन्द्रेऽस्तं हर्षवत्सु कुमुदेषु । षोडशसहस्रगोपीवदनेन्दुष्वागतेषु सखि ।१७ ।
सूर्यानुदयेप्येतद्दन्ताधरदिव्यरुचिरतेजोभिः अर्धविकासे सरसिजवृन्दे शुभसूचके न चिरात् ।।१८।।
अचिरादेवोदेष्यत्यस्मत्कुलबन्धुरित्यमन्दमुदा । कोकेषु विगतशोकेष्वन्योन्यं निकटमनुसृतेषु ।।१९।।
स्त्रियोभिसारिकाभासा यास्तासां त्वरितागतेः । सिञ्जन्नूपुरघोषेण पापे निर्यापितेऽखिले ।।२०।।

कालिन्दी में स्नान कर सभी शरीर मन वाणी से पवित्र होकर पवित्र दूसरी नीवी (वस्त्रों) को धारण किया हे आली! शृङ्गार रस रूप आत्मा और ब्रह्म के ऐक्य का प्रतिपादन करने वाली श्रुति को भ्रमर रूप मुनि पढ़ रहे थे, यद्यपि चन्द्रमा शीघ्र ही अस्ताचल की ओर जाना चाहता था फिर भी कुमुदों में हर्ष ही था क्योंकि हे ! सखी सोलह हजार गोपियों के मुखों के लिये चन्द्र रूप भगवान् आ गये थे। यद्यपि सूर्य उदय नहीं

हुआ था फिर भी उनके दांत और अधर के दिव्य सुन्दर तेज से शुभ सूचक कमल आधे विकासित हो गये और अर्ध विकसित कमलों को देखकर कोक (चकवे) शोक रहित हो गये और वे आपस में एक दूसरे के पास आने लगे। उस समय अभिसारिकाओं की भांति त्वरित गति से आयी हुई उनके झनकार वाले नूपुरों से सब पाप दूर हो गये इस तरह निष्पाप कुमारिकाओं ने देवी की पूजा की ।।१५-२०।।

कुलकम्—

यदभिमुखं पूजां ताश्चक्रुः साशपि यत्र रागवती । तत्रैतद्वरणीयः कृष्णो रागीति किं चित्रम् ।२१।।
विचित्रसिकतामयीं प्रतिकृतिं विधायाद्भुता यथाविधि समागतां स्वनिगमैः समावाह्य ताः।
पवित्रतमपाद्यमाचमनमर्घ्यपूर्वं ददुस्ततोम्बरविभूषिता सखि चकास कात्यायनी ।।२२।।
ततः कुङ्कुःमपाटीरपङ्केनालिप्य तां प्रियाः । अकुर्वन्नवसौवर्णसर्वाभरणभूषिताम् ।।२३।।
सुरभित्रसूननिर्मितमालाः परिधाप्य विविधकुसुमैस्ताः । शुद्धा विशुद्धभावास्तामानर्चुः प्रवालैश्च।२४।
पीतारुणाक्षताद्भिश्च विविधैर्धूपदीपकैः । स्वनाथप्रापिकां देवीं ताः सन्तुष्टामभावयन् ।।२५।।
विविधापूपैः सघृतैराम्रैः खर्जूरनारिकेरैश्च । कदलीफलेक्षुदाडिमबीजैर्द्राक्षाङ्कुरीभिश्च ।।२६।।
अमृतफलादिभिरुच्चावचैः प्रकल्प्योपहारमाचान्ते । ताम्बूलमर्पयित्वा भक्त्या सर्वाः प्रणेमुस्ताम् ।२७।
मुदा कात्यायन्यानिगममतिहार्दोदितमये महाभागे यः प्रागनुदिततरः पङ्कजभुवि।
महायोगिन्यप्यद्भुतरतिभराधीश्वरि तदा जपन्त्यस्ता मौनं दधुरखिलगोप्योऽधिकरुचः ।।२८।।
सुकृतं देवि यदभूत् पतिं श्रीपतिमेव तत् । अकरोत् कुरुते ह्यीष्टमपि साङ्गा नमस्क्रिया ।।२९।।
सुमुखि ततः स्वत एव स्वहृदि प्रादुर्भवत्प्रिया न चिरात् । किंदृग्भावापन्ना जातास्तन्नैव जानेऽहम्।३०।
हृद्येव प्राप्तसंवादाः पतित्वे गोपिकापतेः । त्रिलोकीं तृणवन्मुक्तिमपि तुच्छाममंसत ।।३१।।
अथ तं कमपि सुभदं समयं यस्मिन् प्रियाङ्गसङ्गोऽत्र । भवति मनोरथपूर्तिश्चासन् सख्यः प्रतीक्षन्त्य:।३२
तत्सुमुखि भद्रकालीमर्चन्त्य उदारमानसा मुदिताः । अभवन् भगवद्भावामृताब्धिलहरीभिरासिक्ताः।३३।

जिस दिशा (पूर्व) की ओर मुख करके इनने पूजा को थी वह दिशा भी रागवाली (लाल) हो गई तो जिस को अपने लिये वरणीय मानकर पूजा की वे कृष्ण यदि राग युक्त (अनुरक्त) हो जाय तो इस में क्या आश्चर्य है ।२१। उन्होंने रेती की विचित्र और अद्भुत मूर्ति बनाई और उसका स्वनिर्मित मन्त्रों से आवाहन किया जब वह उस मूर्ति में विधि के अनुसार आ गई तब उसके लिये अतिपवित्र पाद्य-आचम न- अर्घ्य दे कर फिर कात्यायनी को हे सखि ! वस्त्र से विभूषित किया। तदनन्तर केसर और चन्दन का लेप करके प्रियाओं ने उसे नवीन स्वर्ण के आभूषणों से अलंकृत किया। तदनन्तर सुगन्धी फूलों की माला बनाकर उसे पहराई फिर विशुद्ध भाव वाली शुद्ध उन गोपियों ने प्रवालों

(पत्रों) से उसकी पूजा को। पीले लाल अक्षत और जल से तथा अनेक प्रकार के धूपों एवं दीपक से अपने स्वामी को प्राप्त करा देने वाली देवी हम पर प्रसन्न है ऐसी भावना करने लगी। अनेक प्रकार के पूओं से, घृत युक्त आम से, खजूर एवं नारियल से तथा केले के फूलों, ईख दाड़िम बीज, दाख अङ्कूरी से पूजा की एवं अमृत के समान मीठे विविध फलों की भेंट चढाई फिर आचमन कराया उसके बाद् ताम्बूल अर्पण करके सबने भक्ति से उसे प्रणाम किया। महाभाग ब्रह्माजी के हृदय में भी जिन मन्त्रों का उदय नहीं हुआ था परन्तु कात्यायनी के उन मन्त्रों का उदय उन कुमारिकाओं के हृदय में हुआ। और उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से हे महायोगिनि ! हे अद्भुत रतिभराधीश्वरि ! इस प्रकार जप करती हुई उन अतिरूपवती सभी गोपियों ने मौन धारण किया। हे देवि! हमारा पहले जो पुण्य था उस पुण्य ने ही श्रीपति (श्रीकृष्ण) को हमारा पति किया और वह सुकृत अब भी हमारा इष्ट कर रहा है इस तरह कहती हुई साङ्ग नमस्कार किया। हे सुमुखि ! इसके बाद उनके हृदय में स्वतः ही अपने प्रिय का शीघ्र आविर्भाव हो गया तब वे किस भाव को प्राप्त हुई इसको मैं नहीं जान सकती। गोपिका पति हमारे पति है इसका अनुमोदन उनके हृदय ने ही किया तब उन्होंने त्रिलोकी को तृण के समान समझा और मुक्ति को भी तुच्छा समझा अर्थात् तीनों लोकों के सुख को और परम शान्ति रूप मोक्ष को भी उसके सामने हेय समझा। हे सखियों ! उन्होंने विचार किया कि वह कल्याणकारी समय कब होगा जब यहीं पर प्रिय का सङ्ग होगा, इस तरह वे अपने मनोरथ की पूर्ति की प्रतीक्षा करने लगीं। इसलिये हे सुमुखि ! उदार मनवाली वे गोपियां प्रसन्नता के साथ भगवद्भावरूप अमृत समुद्र की लहरों से सराबोर हो गई ।।२१-३३।।

तथाहि—

तत इह पिच्छापीडः पाटीरविलिप्तचारुसर्वाङ्गः । सुरेन्द्रमत्तद्विरदस्मयहरगतिरेकलो रहसि ।।३४।।
पृथुतरनितम्बबिम्बोल्लसदमलामूल्यपीतवसनश्रीः । सिञ्जद्रशनानूपुरहृद्यगतिश्चञ्चलावतंसः ।।३५।।
ईषद्रिगतलोचनकमलः सहजस्मितातिमुग्धास्यः ; आयास्यत्यतिसुन्दरकुन्दस्रगनेन मार्गेण ।।३६।।

इसके बाद वे सोचने लगी कि मोर के पंख का मुकुट धारण किये चन्दन के लेप से सर्वाङ्ग जिनका सुन्दर है। मस्त एरावत हाथी की गति के अभिमान को दूर करने वाली गति से एकान्त में अकेले ही अतिपुष्ट नितम्ब के ऊपर जिनके स्वच्छ अमूल्य पीताम्बर शोभित है। जिनकी करधनी एवं नूपुर को झनकार के साथ अति सुन्दर गति है, कानों

में कुण्डल डोल रहे हे, नेत्र कमल कुछ मस्ती को लिये हुए हैं और सहज मुस्कान से सुन्दर मुख है ऐसे अति सुन्दर प्रिय कुन्द की माला पहने हुए इस मार्ग से आयेंगे ।।३४-३६।।

कुलकम् —

किञ्चित्सत्वरमुन्नतदृष्टिः सन्तप्तदृष्टिमेवं माम् । उत्सुकमना मिलिष्यत्यम्बुद इव चातकीं ग्रीष्मे।३७।
मरकतमणिस्तम्भस्मेरस्वबाहुयुगेन मत्कृतसुकृततो मामाश्लिष्यत्युदारतरोरसा ।
अहमपि समाश्लिष्ये गाढं चिरं पुलकोन्नतस्वभुजलतया प्राणप्रेष्ठं घनस्तनमध्यगम् ।।३८।।

कुछ जल्दी जल्दी ऊंची दृष्टि किये सन्तप्तदृष्टि वाली मुझे उत्सुकमन से ग्रीष्म ऋतु में उत्कण्ठित मन वाला मेघ जिस तरह चातकी से मिलता है उस तरह मिलेगें क्या?।।३७।। मरकत मणि के स्तंभों की तरह अपनी सुन्दर दोनों भुजाओं से मेरे किये हुए पूर्व सुकृत से अति उदारतर हृदय से मेरा आलिङ्गन करेंगे क्या ? मैं भी जिनमें रोमाञ्च हो रहे है ऐसी अपनी भुजलताओं से अपने प्राण प्रिय को घन स्तनों के बीचमें चिरकाल तक गाढा आलिङ्गन करूंगी ।।३८।।

कर्ता चुम्बनमुच्चैः सकचग्रहममृतमधुरतरवचनम् । वक्ता चलत्सुनासामुक्ताभूषः सुरागरदः ।।३९।।

उस समय वे मेरे बालों को पकड कर खूब चुम्बन करेंगे और डोल रहा है सुन्दर मोती जिसमें ऐसी नासिका तथा सुन्दर राग से युक्त दांत वाले वे अमृत के समान अत्यन्त मधुर वचन कहेंगे ।।३९।।

निसर्गरागालिमनोहराधरामृतं निजं मे स हि पाययिष्यति ।
आविर्भवद्भावरसालविभ्रमो ममाधरं पास्यति काकुसीत्कृति ।।४०।।

और वे स्वाभाविक लालिमा से अत्यन्त मनोहर अपने अधरामृत का पान मुझे करायेंगे । और जिसमें भाररस से विभ्रम (विलास) प्रकट हो रहा है उस मेरे अधर का पान काकु और सीत्कार सहित वे करेंगे ।।४०।।

पाटीरलेपजनितव्यवधानोपि प्रियोसहिष्णुर्म । पश्चात्कृतमुक्ताफलहारः सहजाङ्गसौन्दर्यः ।।४१।।

मेरे प्रिय को उनके अङ्ग में लगा हुआ चन्दन का लेप भी मेरे आलिङ्गन में व्यवधान रूप है उसे वह सहन नही करेंगे और सहज ही है अङ्गका सौन्दर्य जिनका ऐसे वे मोतियों को हार को जो आलिङ्गन में व्यवधान रूप बनता है उसे तो उन्होंने पहले ही अपने पीछे (पीठ की ओर) कर लिया है ।।४१।।

कुवलयमालापीडः कुन्तलसङ्क्रान्तकृष्णमदतिलकः । आगत्यालिङ्गनमिह रहसि करिष्यत्युदारतरः।४२।

कमलों की माला का जिनके मुकुट है और कस्तूरी का तिलक जिनकी अलकावली में संक्रान्त हो चुका है अति उदार वे एकान्त में आकर क्या वे यहां मेरा आलिङ्गन करेंगे ।।४२।।

युग्मम् —

स्वसखिभिरेवं मिलिता गत्वा वृन्दावनीयकुञ्जेऽहम् । भाग्यैर्नन्दकुमारं मिलिता सुखिता भविष्यामि ४३

इस तरह मैं अपनी सखियों के साथ मिल कर वृन्दावन की कुञ्ज में जा कर भाग्य से नन्दकुमार से मिलकर सुखी हो जाऊंगी ।।४३।।

मृदुतरपवने यमुना पुलिने गत्वाऽहमेकैव । रहसि प्राप्तं माधवमतिचिरमुरबन्धविभ्रमै रंस्ये ।।४४।।

अत्यन्त मन्द हवा जहां बह रही है उस यमुना के पुलिन पर मैं अकेली ही जा कर एकान्त में जो माधव मुझे प्राप्त हो जायेंगे तो इनके साथ अनेक प्रकार के रतिबन्ध विलासों से रमण करूंगी ।।४४।।

प्रत्येकमेवमुरुविधमनोरथांस्ताः-सदैव कुर्वाणाः । अन्यार्चनासमर्था ह्यभवंस्तद्भावनैसर्ग्यात् ।।४५।।

प्रत्येक कुमारिका इस तरह सदैव अनेक प्रकार के मनोरथों को करती हुई नैसर्गिक भाव के कारण वे अन्य की अर्चना करने में असमर्थ हो गई ।।४५।।

व्रजभूदेवीनिचयाद् हृदि स्फुरन्नन्दगोपराजसुतः । भवतु पतिः स्वयमेवेत्यनिशं तमपूजयन्नित्थम् ।४६।

व्रजभूमि की जितनी भी देवियां है उनसे जिनके हृदय में नंदनंदन ही स्फुरित हो रहे हैं ऐसी वे गोपियां स्वयं ही नन्दतनय हमारे पति हो इस अभिलाषा से सर्वदा उनकी पूजा करती थी ।।४६।।

सम्पूर्णरात्रिरतिभावनया विचित्रबन्धश्रमैर्जलविहारमिवालि कर्तुम् ।
उत्थाय वस्त्रमयथातथमुत्तमाङ्गे कृत्वोषसि प्रचलिता यमुनां समेताः ।।४७।।

इस तरह रात्रि भर रति की भावना से और विचित्र प्रकार के रति बन्धों के श्रमों के कारण ही मानो हे आली अब वे उषः काल में उठ कर अपने सुन्दर शरीर पर उलट

पलट वस्त्रों को धारण कर सब इकट्ठी होकर यमुना पर गयी ।।४७।।

मार्गे व्रजन्त्यो निजमण्डलौघमध्यस्थितं ताः सखि मन्यमानाः ।
अन्योन्यसम्बद्धभुजा विशङ्का जगुः प्रियं तद्रसभावमत्ताः ।।४८

हे सखि ! मार्ग में जाती हुई उन्होंने अपने प्रियतम को हमारे ही मण्डल में वे विद मान है ऐसा मानती हुई एक दूसरी हाथ पकड़े हुई निःशंक होकर अपने प्रिय के रसभा से मस्त होकर गाने लगी ।।४८।।

।। राग विभासः ।।

विधुमधुरानन मानद मनसिजमानद गोपीनयनचकोर पानद ।।ध्रुवपदम्।
राधालोचनकुवलयमोदन कामवरद, अञ्जनरजनीप्रकटतारावृताधरामृतस्यन्द ।। १ ।। विधु० ।।

।। गुर्जरीरागेण गीयते ।।

व्रजानन्दकन्दं व्रजानन्दकन्दम् । घोषपतिभाग्यभुवि जातम्
रसिकवरगोपिकापीतरसमाननं । तव जयतु मम दृशि सुजातम् ।।ध्रुवपदम्।।

रुचिरदरहासगलदमलपरिमललुब्धमधुपकुलमुखकमलसदनम् ।
अमृतचयगर्वनिर्वासनाऽधरसीधु पायय मनोजाग्निशमनम् ।।१।।

हे चन्द्र के समान मधुर मुख, मान देने वाले ! काम को सम्मानित करने वाले ! हे गोपीनयन चकोर ! गोपियों को अपने आनंद का पान कराने वाले ! राधा के नेत्र कमलों को आनन्दित करने वाले ! कामितवर देने वाले ! अंधेरी रात में ताराओं के समा प्रकट अपनी दन्तपङ्क्ति को अपने अधरों से आवृत करके अधरामृत की वर्षा करते वाले ।।१।।

स्मितप्रकटितचारुदन्तरुचिवदनविधुकौमुदीहृतनिखिलतापे ।
विलस ललिताहृद्यकनककलशद्वये मारकतमणिरिव दुरापे ।।२।।

व्रज के आनन्द का कन्द जो व्रजराज नन्द की भाग्य रूपी भूमि में उत्पन्न हुआ अति रसिक जो श्रेष्ठ गोपिकाएं है उन्होंने जिनके मुखारविन्द के रस का पान किया है ऐसे वे व्रजानन्द कन्द जो मेरे नयनों के तारे हैं वे तुम्हारे वन्दनीय हों । सुन्दर जो ईष हास्य उससे गलित जो स्वच्छ परिमल (सुगन्ध) उसके लोभी जो भंवरे उनके झुण्डों के लिये आपका मुख कमल आवास स्थान है । अमृत के समूह का जो अभिमान है कि मे

समान कोई मधुर नहीं है उसके अभिमान को दूर करने वाला है अधरामृत जिनका उस अमृत को कामाग्नि को शांत करने वाला है उसे आप पिलाइये ।।१।। मन्दहास से प्रकटित जो सुन्दर दन्त कान्ति युक्त मुख चन्द्र उसकी चन्द्रिका (चांदनी) से जिस का सभीताप दूर कर दिया है ऐसे ललिता के मनोहर दोनों स्वर्णकलशों के साथ जो कठिनता से प्राप्त होते है उनमें मरकतमणि की तरह आप विलास करिये ।।२।।

सुभगसुमुखीकण्ठनिहितनिजबाहुरतिमत्तगजराजवद्रुचिरम् ।
विरह विरहानलं चारुपुष्करचलनशीकरैरुपशमय सुचिरम् ।।३।।

सौभाग्यवती सुमुखी के गले पर रक्खी है निजभुजा जिन्होंने ऐसे रति में मत्त गजराज की भांति सुन्दर आप सुन्दर पुष्कर (सूंड रूप भुजा) के चलन के शीकरों से बहुत काल का जो विरहानल है उसे शान्त करिये और विहार करिये ।।३।।

अरुणतरलापाङ्गशरनिहितकुलवधूधृति तव विलोचनसरोजम् ।
मम वदनसुषमासरसि विलसतु सततमलगतिर्निजितमनोजम् ।।४।।

अरुण चञ्चल जो अपाङ्ग (नेत्रका अन्त भाग) है वे ही शर रूप हैं उसमें कुलवधुओं का धैर्य रक्खा हुआ है ऐसे अत्यन्तशोभायमान मेरे मुख सरोवर में अपनी अलस गति से जिनने काम देव को जीत लिया है वे आपके नेत्र कमल निरंतर विलास करें ।।४।।

नन्दगेहालवालोदितस्त्रीरागसेकसंवृद्धसुरवृक्षम् ।
व्रजवरकुमारिकाबाहुहाटकलता सततमाश्रयतु कृतरक्षम् ।।५।।

नन्द का घर ही जिसमें आलवाल रूप है उसमें उत्पन्न और स्त्रियों के अनुराग रूप जल के सिञ्चन से वृद्धि को प्राप्त यह कल्पवृक्ष (नन्दसुत) की है रक्षा जिसने वह व्रजवर कुमारिकाओं को भुजा रूप जो स्वर्णलता है उसका निरन्तर आश्रय हो ।।५।।

व्रजश्लाघ्यगुण रसिकतागुणगोनातिशयरुचिरालापलीलम् ।
तादृगीक्षणजनितकुसुमशरभावभरयुवतिषु प्रकटतरनिखिलम् ।।६।।

हे व्रजश्लाघ्य गुण ! (व्रजमें प्रशंसनीय है गुण जिसका) आप अपनी रसिकता को छिपाकर अत्यन्त मधुर आलाप लीला करते हैं और आप की दृष्टि ऐसी है कि जिससे युवतियों में काम भाव उत्पन्न हो जाता है ये दोनो ही बातें अत्यन्त स्पष्ट हैं ।।६।।

रुचिरकौमारचापलजयव्रीडया वल्लवीहृदयगृहगुप्तम् ।
प्रकटयन्निजनखरशरचयैरसमशरमिह जयसि हृतभाववित्तम् ।।७।।

सुन्दर कौमार चापल को जीतने वाली जो लज्जा है उससे गोपियों के हृदय रूप घर में छिपे हुए कामदेव को अपने तीक्ष्ण नख रूप बाणों से प्रकट करते हुए उनके भाव रूप धन को चोर लिया है आपकी जय हो ।।७।।

घोषसीमन्तिनीविद्युद्वेणुकलनिनदगर्जितस्त्वमिह सततम् ।
वचनकरुणाकुलदृष्टिवृष्टीरङ्ग नवजलदमपि कुरु सुहसितम् ।।८।।

घोष (व्रज) सीमन्तिनी ही जहां बिजली है और वेणु का कल निनाद ही गर्जन है वचन से युक्त कारुण्य दृष्टि ही वृष्टि है अतः तुम इस समय नवीन जलद (मेघ) का भी परिहास कर रहे हैं ।।८।।

अन्वहमित्थं प्रियतममुरुधात्युच्चैर्जगुः प्रिये मुदिताः । यान्त्यः स्नातुं सर्वाः कालिन्द्यां भूरिभाग्यास्ताः।४९।

जिस समय वे भाग्य शालिनी सब गोपियां कालिन्दी में स्नान करने जाती थीं उस समय प्रतिदिन इसी तरह बड़ी प्रसन्न होती हुई अपने प्रियतम के गीत बड़े ऊंचे स्वर से गाती थीं ।।४९।।

स्नाने तासामङ्गोपरि पतदमलाम्बु कालिन्द्याः । प्रेमार्द्रनन्दसूनोरङ्गमिवालं चकास कमलाक्षि ।।५०।।

हे कमल नयनी ! स्नान के समय उन गोपियों के अङ्ग के ऊपर गिरता हुआ कालिन्दी का जल प्रेमार्द [प्रेम से द्रवीभूत] नन्दसूनु के अङ्ग की तरह अत्यन्त शोभित हो रहा था ।। ५० ।।

नवकुचकुङ्कुमरञ्जितयमुनाजलचलनमेतदङ्गेषु । भेजे हरिकरकमलप्रोञ्छनलक्ष्मीं सरोजाक्षि ।।५१।।

हे सरोजाक्षि ! इन नवीन जो स्तनों के ऊपर लगाई हुई केसर है उससे रंग से रंजित चलायमान यह यमुना जल इन गोपियों के अङ्गो में ऐसी शोभा पा रहा है मानो भगवान् अपने श्रीहस्त से इनके अंग को पोंछ रहे हैं ।। ५१ ।।

तदा यदासीत् कुचकुङ्कुमेन सरस्वती तत्प्रभया च गङ्गा ।
तत्कामितार्थप्रदता हि युक्ता वेणी त्वतस्तत्र कलिन्दजायाः ।।५२।।

जब उन गोपिकाओं के कुच कुंकुम से वह यमुना सरस्वती बन गई और अंग शांति से गंगा बन गई तब इनसे युक्त वह यमुना इनके इच्छित फल को देती हुई त्रिवेणी बन गई।।५२।।

तद्रसपूर्णं यमुनापानीयं पीतमुद्भटं भावम् । तत्क्षणमुद्दीपयति प्रियसखि नन्दात्मजे रसिके ।।५३।।

हे प्रिय सखि ! उनके रससे पूर्ण पिया गया यमुना का जल तत्काल ही रसिक नन्दतनय में भाव उद्दीप्त कर देता है ।। ५३ ।।

कदाचिद्गोविन्दप्रणयभरिताः पूर्ववदिमाः प्रगायन्त्यो नद्यां प्रियसखि समागत्य मुदिताः ।
समं प्रेष्ठेनेव प्रियसखि विहर्तुं स्ववसनं तटे निक्षिप्याब्जव्रजवति विजहुः स्थिरजले ।।५४।।

हे प्रिय सखि ! गोविन्द के प्रेम से छकी हुई ये गोपियां पूर्व की तरह ही किसी दिन गाती हुई नदी पर आकर प्रसन्न होती हुई हे प्रिय सखि ! इन्होंने प्रिय के साथ विहार करने के समय की तरह अपने वस्त्र को तट पर रख कर कमलों से पूर्ण स्थिर जल वाली यमुना में विहार किया ।। ५४ ।।

तत्कुचकुङ्कुमवपुषोः प्रभया प्रसरत्स्मितश्रिया च तदा । यमुनाह्रदमरूप्यं समभूद्रसरूपता हि यतः।५५।

उन गोपियों के कुचकुङ्कुम तथा अङ्ग कान्ति से एवं फैलती हुई मन्द मुस्कान की शोभा से उस समय यमुना का रूप अवर्णनीय हो गया क्योंकि उसमें रसरूपता हो गई ।।५५।।

करकमलेन तदम्भः परिषिञ्चन्त्यः परस्परं हृष्टाः । विरलाणुपृथुलबिन्दुभिरम्बुजमुख्यो विरेजुरताः।५६।

वे कुमारिकाएं प्रसन्न होती हुई हाथ से आपस में एक दूसरी के ऊपर जल उछाल रही थीं वे जल की बूंदें कहीं तो विरल कहीं अणु और कहीं बड़ी बड़ी थी उनसे वे कमलमुखी शोभित हो रहीं थी ।।५६।।

यमुनाम्बुप्रतिबिम्बश्यामाङ्गनभस्युरोजकनकाद्रेः । परितो बिन्दुज्योतिश्चक्रं चित्रं परिक्रमति ।।५७।।

यमुना जल में प्रतिबिम्ब पडने से उनका अङ्ग नीलगगन के समान था और उसमें उनके वे दोनों स्तन सुमेरु के सदृश थे और उनके अङ्ग पर पड़ी हुई बिन्दुएं ज्योतिश्चक्र की तरह उनके स्तनसुमेरु के चारों और परिभ्रमण कर रही थी ।।५७।।

श्रीकृष्णसङ्गमप्रोद्यच्छ्रमस्वेदाम्बुसन्ततिम् । बिन्दवः सूचयन्त्यग्रे भाविनीं राधिकासखि ।।५८।।

हे राधिका सखि ! इन कुमारिकाओं के अङ्ग की जल बिन्दुए पहले से यह सूचित कर रही हैं कि इनका श्रीकृष्ण के साथ सङ्ग होगा और उस में जो श्रम होगा उससे इसी प्रकार इनके अङ्ग में बार बार स्वेद होगा ।।५८।।

कुमारिकाङ्गगगने बिन्दुतारागणोदयः । अचिरात् कृष्णचन्द्रस्य सूचयत्युदयं सखि ।५९।।

हे सखि ! इन कुमारिकाओं के अङ्गरूप गगन में बिन्दुरूप ताराओं का उदय हो गया है इसलिये अब शीघ्र ही कृष्ण चन्द्र का उदय होने वाला है ऐसा सूचित हो रहा है ॥५९॥

वदनेन्दुस्मितसुधापाने कुचचकोरयोः । प्रस्कन्ना बिन्दवोऽङ्गेषु राजन्ते हरिणीदृशाम् ॥६०॥

इन मृगनयनीयों के अङ्गों में टपकते हुए जल बिन्दु इस तरह शोभित हो रहे हैं जैसे कुचचकोर इनके मुख रूप चन्द्र की स्मित (मन्दहास) रूप सुधा का पान कर रहे हैं ॥६०॥

निर्भरविहारसक्तास्वेवं प्रेष्ठैकतानासु । तत्राजगाम शनकैर्व्रजराजसुतो व्रतस्य सम्पूर्त्यै ।६१॥

इस तरह अपने प्रियतम में एकतान होती हुई जल विहार में आसक्त थी उसी समय इनके व्रत को पूर्ण करने के लिये क्रीड़ा में कोई बाधा न हो इसलिये धीरे से नन्दनन्द वहां आ गये ॥६१॥

विकसद्वदनविलोचनकमलगलत्कान्तिमधुपूरैः । तदपाङ्गरसपयोधिष्वशेषकामान् सुसङ्गमयन् ॥६२॥

प्रसन्नमुख एवं विकसित नेत्र कमल से निकलती हुई कान्ति के मधुर मधु पूर से उन कुमारिकाओं के सकल मनोरथों को उनके अपाङ्ग रस समुद्र में सुसङ्गमित करते हुए आये ॥६२॥

यमुनानिललीलोन्नतचलदलकैरखिलमानसानि हरन् । गोपीमुखाब्जसुषमामधु पातुमिवोत्सुकैरलिभिः॥६

यमुना की हवा की लीला से ऊपर की ओर चलायमान अलकावली से सब के मनोको अपनी ओर आकृष्ट करते हुए भ्रमर सदृश उन उत्सुक अलकावलि से गोपियों के मुखार बिन्द की सुषमा का पान करने के लिये मानो (आये) ॥६३॥

पीतांशुकपरिधानः कुङ्कुमललितातिरुचिरकुन्दस्रक् । सिञ्जद्रशनानूपुरमुखरगतिः स्निग्धतरतारः॥६

पीताम्बर धारण किये थे केसर से अति सुन्दर कुन्द की माला पहने थे और झन कारते हुए करधनी और नूपुर से जिनकी मुखर गति है तथा नेत्रों में जिनके स्नेह भरा है (वहां आये) ॥६४॥

मन्थरचरणन्यासैरेतद्व्रतनियमभङ्ग इति बुद्धिम् । सम्पादयन् स्वभावस्वभावतो यद्विहारादिः ॥६५॥

धीमी गति से चरण न्यास करने से इनके व्रतका भङ्ग हो जायेगा इस बुद्धि को

छोड़कर अपने स्वभाव के अनुसार ही विहरण आदि किया ॥६५॥

विविधालापनिरीक्षणलोलास्वनुरोधरसविशेषस्य । अनुभूत्यै सखि तासां स्वस्यापि तदा वयस्ययुतः।६६।

हे सखि ! उन कुमारिकाओं की जो अनेक प्रकार की बातें उनका निरीक्षण उनमें जो रस विशेष है उसके अनुरोध से तथा अपने भी रस के अनुभव के लिये उस समय अपने साथियों को साथ लिये हुए थे ॥६६॥

अतितुष्टः सर्वस्वं दास्यामीत्यालि गोपिकाभावम् । दर्शयितुं कतिपयनिजसखिभिर्निर्दोषहृदयैः सः।६७।

हे आली ! मैं अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूं अतः तुमें में सर्वस्व दे दूंगा ऐसे अपने भाव को दिखाने के लिये निर्दोष हृदय वाले कुछ मित्रों के साथ वे आये ॥६७॥

कुलकम्—प्राग्जन्मपुरुषत्वाख्यधर्मा अपि वयस्यराम् । प्राप्ता एतैः सहागच्छत् सम्बन्धं सूचयन् हरिः।६८।

पूर्व जन्म में इनमें पुरुष धर्म होने पर भी ये मेरे मित्र हो गये हैं इस सम्बन्ध को सूचित करते हुए हरि उनके साथ आये ॥६८॥

यग्दानज्ञमुनीनपि प्रियतमान् कृत्वात्र भृङ्गाङ्गनाः । सङ्गे स्थापयति स्ववक्त्रमधुना चाप्याययन्त्युन्मदाः।
तेनाहं सखि लक्षये त्रिभुवने यस्मिन् महानुग्रहः । तस्मिन् घोषनितम्बिनीत्वमचिरात् कर्ता प्रियः प्रायशः६९

जो गान के जानने वाले मुनि भगवान् के अत्यन्त प्रिय है उनको भगवान् भृजाङ्गना बनाकर अपने साथ रखते हैं और उन्मद ऐसे अपने मुखारविन्द के मधु (अधरामृत) का पान कराते हैं । अतः हे सखि उनको मैं ऐसा समझती हूं कि त्रिभुवन में जिसके ऊपर भगवान् का महान् अनुग्रह होता है उसको शीघ्र हो हमारे प्यारे प्रायः घोषनितम्बिनी (गोपी) बनाते हैं ॥६९॥

ततः सत्वरमेतासां वासांसि जगृहे स्वयम् । अन्तरायासहिष्णुः स्वप्रियाणां नन्दनन्दनः ॥७०॥

इसके बाद नन्दनन्दन नेअप ने प्रिय के बीच में कोई अन्तराय न हो इसके लिये उनके वस्त्रों को स्वयं ने ही शीघ्र ले लिया ॥७०॥

तदा यद् कालिन्द्या निजजलकृतः केलिरुचिराऽन्तैरायो नो दूरे प्रियसखि कृतस्तासु न चिरात् ।
ततो मन्ये तस्याः सततमनुरोधप्रियतमाद् अपि श्रीकृष्णात् तत्प्रियतमवधूष्वेव सहजः ॥(१)॥

हे प्रियसखि ! उस समय जो कालिन्दी का अपने जल के द्वारा किया गया केलि में रुचिर जो अन्तराय था उसे शीघ्र ही दूर नहीं किया इससे मैं यह मानती हूं कि कालिन्दी

का सतत यह अनुरोध था कि अपने प्रियतम श्री कृष्ण से इनका अन्तराय रहे । ऐसी भावना का होना प्रियतम वधुओं में सहज ही होती है ।।१।।

उद्भिन्नारुणपल्लवयुगमध्यस्थातिरुचिरनवकुसुमैः । प्रकटामलपरिमलभरमदालिजुष्टैर्मनोहरणम् ।७१।

नवीन निकलते हुए लाल लाल दो पत्तों के बीच में स्थित होने से अत्यन्त रुचिर नवीन पुष्पों से जिनमें प्रकट निर्मल अत्यधिक सुगन्ध के कारण मदमाते भ्रमर उनको सेवन कर रहे हैं ऐसे पुष्पों से मन को हरण करने वाला ।।७१।।

रसमयसृष्टिसृष्टोत्पुलकब्रह्माण्डकुसुमशतवपुषम् । आदिपुमांसमिवालिश्रुतिगणसङ्गीतमाहात्म्यम् ।७२।

रसमय सृष्टि में जिसकी उत्पत्ति है इसीलिये जिसके पुष्पों में पुलक (रोमाञ्च-युक्तता) है उनके रोमाञ्चयुक्त पुष्प ही ब्रह्माण्ड है ऐसे सैकड़ों ब्रह्माण्डों से युक्त है शरीर जिसका कि मानो यह कदम्ब क्या है यह तो आदिपुरुष है और ये भौंरे श्रुतियां हैं और श्रुतिरूप भौंरे उनके माहात्म्य का ज्ञान प्राप्त कर रहे हैं ।।७२।।

आकर्णाकर्षणकृतमण्डलनवकुसुमचापनिचयेषु । सन्धितकिञ्जल्केषुव्रातमिवापूर्वकन्दर्पम् ।।७३।।

कान पर्यन्त खींचने से जो मण्डलाकार हो गया है ऐसे नवीन पुष्पों के समुदाय रूप धनुष में किञ्जल्क रूप बाण समूह का जिसने सन्धान किया है एसे अपूर्वकन्दर्प (कामदेव) के सदृश ।।७३।।

किञ्जल्कोदग्राङ्गुलिकुसुमकरैर्दातुमखिलगोप्यर्थान् । आस्थितमिव सुरविटपिनमारुरुहे माधवो नीपम्।७४।

किञ्जल्क से ऊपर उठी हुई अंगुलियों की तरह पुष्परूप हाथों से गोपियों की सब कामानाओं को देने के लिये ही कल्पवृक्ष की तरह खड़ा हो इस प्रकार के कदम्ब के ऊपर माधव चढ़ गये ।।७४।।

कुलकम्-पुष्पितश्चित्रनीवीभिः फलितो नन्दसूनुना । सौन्दर्येण मधुस्रावी पर्यगासीत्तदा तरुः ।।७५।।

गोपिकाओं की विचित्र नीवियों से तो वह कदम्ब वृक्ष पुष्पों सेयुक्त हो गया और नन्द नन्दन से वह फल वाला हो गया तब वह कदम्बवृक्ष चारों ओर से मधु स्त्रावी बनगया ।।७५।।

सुधावर्षीव कुसुमकिञ्जल्काग्रैः कुमारिकाः प्रवृत्त इवं चानेतुं प्रियान्तिकमयं बभौ ।।७६।।

अपने कुसुम किञ्जल्कों के अग्रभाग से मानो सुधा की वर्षा करता हुआ यह कदम्ब उन कुमारिकाओं को अपने प्रिय के पास ले जाने के लिए प्रवृत्त हुआ हो इस तरह शोभित था ।।७६।।

आरोहे प्रियसङ्गात्कम्पित इव शीतकणभरैः स्विन्नः । नवकोमलकिञ्जल्कैः पुलकित इव सर्वतो रेजे।७७।

जब भगवान् उसके ऊपर चढे तो अपने प्रिय के सङ्ग के कारण वह कम्पित सा हुआ और शीतकणों से स्वेद युक्त हुआ और नवीन कोमल किञ्जल्कों से सब ओर से पुलकित की तरह शोभित हो रहा था ।।७७।।

तद्वयस्यतयैवालि कृतार्था अपि तेऽर्भकाः । वयस्यताफलं स्वस्य तद्भावेक्षाममंसत ।।७८।।

हे आली ! भगवान् हमारे मित्र है ऐसा होने से ही वे सब बालक कृतार्थ हो गये फिर भी अपनी वयस्यता (साथी पन) का फल अपनी भावावेक्षा को उन्होंने माना ।।७८।।

अतिविस्मितमनसः सखि मुग्धातिस्निग्धसजलदृष्ट्या तत् । प्रियवदनं पश्यन्तो मग्नाः प्रेमाम्बुधावासन्।७६

हे सखि ! अत्यन्त विस्मित मन वाले वे बालक मुग्ध और अति प्रेम भरी सजल दृष्टि से अपने प्यारे श्याम सुन्दर के उस मुखारबिन्द को देखते हुए प्रेम के समुद्र में डूब गये ।।७९।।

तद्रसमनुभूय तदा परस्परं प्रेक्ष्य निजकृतार्थतया । जातानन्दभवेण प्रहसद्वदना बभूवुस्ते ।८०।।

जल क्रीडा के रस का अनुभव करके अपनी कृतार्थता से एक दूसरे की ओर देखकर अत्यन्त आनन्द से वे हंसने लगी ।।८०।।

तन्निजचरितं सहचरि कौतुकमिव तेषु बोधयन् गोपीः । झटिति प्रबोधयन् सह तैरहसदमन्दमानन्दः।८१।

हे सहचरि ! उस वस्त्र हरणरूप अपनी लीला को कौतुक की तरह बोधित करते हुए और गोपियों को अपनी लीला का ज्ञान कराने के लिये आनन्द स्वरूप भगवान् भी उनके साथ खूब हंसने लगे ।।८१।।

मूर्ध्नि पतन्ती मोहनमुरसि च पाटीरलेपमुरुपश्चात् । सितवसनं सखि तासां चकास हासप्रभा तस्य ।८२।

हे सखि ! उनके मस्तक पर तो मोहन थे और उर पर चन्दन का लेप था । तथा उसके पीछे श्वेत वस्त्र था उस पर पड़ती हुई नन्दनन्दन के हास की प्रभा शोभित होने लगी ।।८२।।

प्रसरत्कौमुदीकोटिविलक्षणरुचा तदा । चकिता इव मुग्धाक्ष्यः सहसैक्षन्त माधवम् ।।८३॥

फैलती हुई करोड़ों चन्द्र की क्रान्ति के समान विलक्षण उस हास की कान्ति चकित की तरह उन मुग्धाक्षियों ने सहसा माधव को देखा ।।८३।।

प्रियदर्शनार्तिसम्मुखलज्जातरलासितेक्षणा मुग्धाः । तत्परिहृताः स्वनीवीर्वीक्ष्यान्योन्यं मुदापश्यन् ।८४

प्रियदर्शन की तथा सम्मुख में लज्जातरल उन मुग्ध असितेक्षणाओं ने नन्दनन्दन द्वारा हरण किये गये अपने वस्त्रों को देख कर प्रसन्न होती हुई आपस में एक दूसरी मुख देखने लगी ।।८४।।

सहसा त्यागात्कुपितक्रीडावेशाद्विषदरुणाक्षीः । सस्मितमुखीरवोचत्परिहासमुदारलीलः सः ।।८५॥

उदारलीला वाले नन्दनन्दन ने सहसा त्याग से कुपित (भा०) क्रीडा के आवेश कुछ रक्त नेत्रा वाली हंसते हुए मुखवाली उन गोपियों को परिहास से ऐसा कहा ।।८५॥

यद्यपि निर्भरभावान्न देहसंवित्कुतः पुनः शीते । आसां तदपि हरिर्यत् सहते सखि तन्महच्चित्रम् ।।८६॥

हे सखि ! यद्यपि नन्दनन्दन में निर्भर भाव के कारण उनको देह का अनुसन्धान नहीं था और फिर ऐसी ठंड में तो देह का अनुसन्धान रहे ही कैसे तथापि हरि (सब दुःख को हरण करने वाले होते हुए) भी इस स्थिति को देख रहे हैं यह बड़ा आश्चर्य है ।।८६।।

अत्रागत्य विचित्रवस्त्रमबलाः स्वं स्वं विदित्वा मया दत्तं तद्व्रतभावितं फलमिव प्रीतेन गृह्णन्त्विदम् ।
मत्तो नानृतवागुदेति कथमप्यत्रार्भकाः साक्षिणः स्वं वासोपि ददाम्यहं प्रियतरं को वात्र वः संशयः ।

हे अबलाओं ! यहाँ आकर अपने अपने विचित्र वस्त्रों को पहचान कर तुम्हारे उस व्रत से भावित फल को तरह प्रसन्न हुए मुझ से ले लो । मेरे मुंह से किसी भी तरह झूठी बात उत्पन्न नहीं होती इसके साक्षी ये बच्चे हैं । तुम्हारे वस्त्र के देने की बात तो दूर रही मैं अपने प्यारे वस्त्र को भी तुम्हें दे देता हूँ अतः तुम्हें अपने वस्त्र की प्राप्ति में क्या सन्देह है ।।८७।।

अभिसारिण्यम्बरमिव सपदि जलं चेतदपसरत्वङ्गात् । जलभरमूकं नूपुरमपि मच्छ्रवणेत्र सफलयतु ८८

अभिसारिका के वस्त्र की तरह शीघ्र ही यमुना का जल अङ्ग से दूर हट जाय । जल के भर जाने से मूक नूपुर यहाँ मेरे कानों को सफल बनावें ।।८८।।

वसनादानप्रसरद्बाहुस्फुरदमलवलयरणितानि । अचिरादखिलदिशामप्यशुभं निरसन्तु रसितानि।। ८९।।

वस्त्रों के ले लेने से फैलती हुई भुजाओं में स्वच्छ कङ्कणों के शब्द शीघ्र ही सम्पूर्ण दिशाओं के अशुभ को दूर करें ।।८९।।

अहह कियद्व्रतकार्श्यं समभूदिति सहजसख्यवात्सल्यात् । तरलकरैरभिमर्षत्यङ्गानि मुहुः प्रियैषा वः।९०।

अहो ! व्रत के कारण शरीर में कितना दुबलापन आ गया है उस बात को सहज मैत्री के वात्सल्य से चञ्चल करों से (तरंगों से) बार बार यह तुम्हारी प्यारी सखी श्री यमुना जी देख रही है ।।९०।।

व्रतकर्शितमङ्गं वस्तरलतराग्राहितामृतौघकरैः । आप्याययितुं यमुना सिञ्चन्त्यनुरागतो बहुधा।।९१।।

व्रत के कारण तुम्हारा अङ्ग कृश हो गया है इसलिये चञ्चल तरङ्गरूप हाथों के अग्रभाग से जिनमें अमृत भरा हुआ है उनके करों से श्रीयमुना बार बार अनुराग के कारण उनकी कृशता को दूर करने के अभिषेक कर रही है ।।९१।।

प्रेरयति तीरगत्यै परिधानाय प्रियाम्बराणां च । भवतीश्चिरविभ्रमलसदलसाक्षीर्वीचिकरनिचयैः ।९२।।

बहुत समय से जलविहार के कारण तुम्हारी आंखे अलसा रही है अतः अब तुम तीर पर चली जाओ और अपने प्यारे वस्त्रों को पहन लो इस तरह श्रीयमुनाजी अपने तरङ्ग रूप हाथों से उन्हें प्रेरित कर रही है ।।९२।।

चिरमिह चरणाम्बुरुहाण्यम्बुनि विमले विरेजिरे सख्यः ।
स्थलकमलश्रियमप्यथ वहन्तु हृतभूमितापानि ।।९३।।

हे सखियों ! ये तुम्हारे चरण कमल बहुत समय से यहाँ निर्मल जल में शोभित हो रहे थे । अब भूमि के ताप को दूर करने वाले ये तुम्हारे चरण कमल स्थल कमल की शोभा को प्राप्त करें ।।९३।।

इयदवधि यद्भीत्या स्वान्तर्जुगोप कलिन्दजा चरणकमलानीमान्याशु क्षपाक्षयमाप सा ।
सरसिजकुलं नीरस्यान्तर्भवेत्कथमन्यथा तदिह मम दृग्भृङ्गी शोभामधूनि पिबत्वलम् ।।९४।।

कलिन्दजा ने इतने समय तक इन चरण कमलों को जिस के डर से छिपा रक्खा था वह रात्रि तो अब समाप्त हो गई । नहीं तो कमलों का समुदाय जल के अन्दर कैसे हो सकता है इसलिये यहाँ भूमि पर मेरी दृष्टि रूपी भंवरी उन कमलों के शोभा रूप मधु का पर्याप्त रूप से पान करें ।।९४।।

मन्नयनाब्जविकासः कुङ्कुमरागातिरुचिरनखकिरणः ।
तरणिरिवोदयगिरिमिह चरणस्तटमनुसरत्वचिरात् ॥९५॥

मेरे नेत्र कमलों को विकसित करने वाला केसर के रंग से अत्यन्त सुन्दर किरणों से युक्त यह चरण रूप सूर्य शीघ्र ही तट रूपी उदयाचल का अनुसरण करें ॥९५॥

भवदीयोरःसरसि स्मरः कुचकनककलशिकाऽमन्दम् ।
भावरसैः पूरयति स्वयमादातुं स तद्रहितः ॥९६॥

भावरूप रस से हीन यह कामदेव तुम्हारे उर स्थल रूप सरोवर में से स्तन रूप स्वर्ण कलशों को भावरूप रसों से भर रहा है ॥९६॥

निसर्गसुषमानीवीं विनैव रुचिरां श्रियम् । भवत्यो दधते सख्यो मद्विलोचनमादिकाम् ॥९७॥

हे सखियों ! नैसर्गिक शोभा वाली नीवी के बिना ही मेरे नेत्रों को मदोन्मत्त करने वाली सुन्दर शोभा को तुम धारण कर रही हो ॥९७॥

इमामाच्छाद्यापि त्रिदशयुवतिश्लाध्यसुषमामपूर्वां यां काचिद्वसनमपि युष्मासु कुरुते ।
तदाप्त्यै मन्नेत्रभ्रमरप्ररयोः स्वीयवसनान्ययं गृह्णन्त्वेकैकश उत सहैवाशु निखिलाः ॥९८

देवताओं की स्त्रियों से भी प्रशंसनीय इस परम शोभा को ढक देने वाले भी वस्त्र तुम्हारे में अपूर्व अवर्णनीय शोभा को करते हैं। उस शोभा की प्राप्ति के लिये मेरे नेत्र भ्रमर बर इच्छा कर रहे है इसलिये हे सखियों ! तुम अपने वस्त्रों को एक एक आकर अथवा सभी इकट्ठी आ कर शीघ्र ही अपने वस्त्र लेलों ॥९८॥

अम्बररूपभवत्कटिमवलम्ब्येमाः सुरञ्जना नीव्यः ।
सपदि वहन्त्वम्बरतामनङ्गवरवीरकृतकवचाः ॥९९॥

अम्बर रूप (अत्यन्त पतली) तुम्हारी कटि का अवलम्बन करके ये सुरञ्जन (सुन्दरङ्ग वाली) जिनको कामदेव ने अपना कवच बना लिया है वे नीवियां शीघ्र ही अम्बरता (वस्त्रयन) को प्राप्त करें ॥९९॥

भवतीषु सत्यमेव प्रियं वदाम्तयेदिह तु नो नर्म ।
व्रतनियमकर्शिता यत्कुमारिका यूयमनवद्याः ॥१००॥

तुम व्रत के नियम से दुबली हो रही हो कुमारिका हो, निर्दोष हो इसलिये तुम्हारे विषय में मैं सत्य और प्रिय ही कहूंगा मैं जो कह रहा हूं इसे तुम परिहास न समझो ॥१००॥

इति निजनाथनिरुक्तां क्ष्वेलीं श्रुत्वा तदीयवचसापि ।
सम्बन्धमाप्य सर्वा वाचोऽतिशयास्तदाऽभूवन् ॥१०१॥

इस तरह अपने स्वामी से किये गये परिहास को सुनकर उनके वचन से भी सम्बन्ध प्राप्त करके उस समय वेअवर्णनीय हो गई ॥१०१॥

तद्वचनचन्द्रिकाभिः प्रवृद्धतत्प्रेमजलनिधौ मग्नाः ।
ता यमुनामपि नन्दात्मजं विहारं च नाविन्दन् ॥१०२॥

उन नन्दनन्दन की वचन रूप चन्द्रिका से वृद्धि को प्राप्त हुए प्रेम के समुद्र में डूबी हुई उन कुमारिकाओं को यमुना का, नन्दनन्दन का और उस जल विहार का कोई भान ही न रहा ॥१०२॥

तेन केनापि भावेन तास्तदा नन्दसूनुना । अन्तः साक्षादिव प्राप्तसम्बन्धा भाग्यतोऽभवन् ॥१०३॥

इस तरह नन्दनन्दन से अवर्णनीय उस भाव से उन गोपिकाओं ने भाग्य से अपने अन्तःकरण में मानों साक्षात्संबन्ध प्राप्त कर लिया ॥१०३॥

रतान्त इव सञ्जातविलक्षणसुखाः प्रियम् । वीक्ष्यातिव्रीडिता आसन्नम्भोजाक्षि सुमध्यमाः ॥१०४॥

हे कमलनयनी ! अपने प्रियतम के साथ रति क्रीड़ा की हो इस तरह का विलक्षण सुख जिनको प्राप्त हुआ है ऐसी वे सुमध्यमा अपने प्यारे को देखकर लज्जित हो गई (शर्मा गई) ॥१०४॥

मय्येवैतदुतान्यास्वपीति विदितुं परस्परं प्रेक्ष्य सम्प्राप्य च संवादं समभूवन् जातहासास्ताः ॥१०५ ।

क्या नन्दनन्दन में मेरा ही ऐसा भाव है अथवा अन्य कुमारिकाओं का भी ऐसा ही भाव है इसको जानने के लिये वे आपस में एक दूसरे की ओर देखने लगीं जब उन्होंने देखा कि सभी में एक सा ही भाव है तब वे हंसने लगीं ॥१०५॥

कौतुकमिव मत्वा तद्भावस्वाभाव्यतोपि यो हासः ।
तासां तं सखि माधवपूजाकुसुमान्यहं मन्ये ॥१०६॥

उनके भाव की स्वाभाविकता से होने वाले हास को भी कौतुक की तरह मानकर हे सखि उनके उस हास को में पूजा के कुसुम मानती हूं ॥१०६॥

अमुनात्यलौकिकेन प्रियसखि भावेन यद्बहिर्न गताः ।
तास्तद्युक्तं यदिमा यमुनायां नो रसे किन्तु ।।१०७।।

हे प्रिय सखि ! इस अति अलौकिक भाव से वे यमुना से बाहर न गई यह उनके लिये युक्त ही था क्योंकि वे यमुना में थी हो नहीं वे तो रस में थीं ।।१०७।।

तदा यत्कालिन्द्या निजजलकृतः केलिरुचिरान्तरायो नो दूरे प्रियसखि कृतस्तासु न चिरात् ।
ततो मन्ये तस्याः सततमनुरोधः प्रियतमादपि श्रीकृष्णात्तत् प्रियतमवधूष्वेव सहजः ।।१०८।।

हे प्रिय सखि ! उस समय जो कालिन्दी का अपने जल के द्वारा किया गया के केलि में रुचिर जो अन्तराय था उसे शीघ्र ही दूर नहीं किया इससे मैं यह मानती हूँ कि कालिन्दी का सतत यह अनुरोध था कि अपने प्रियतम श्रीकृष्ण से उनका अन्तराय रहे। ऐसी भावना का होना प्रियतम वधूओं में सहज ही होता है ।।१०८।।

एवं तासामन्तर्भावं दृष्टवा प्रबोधनाय पुनः । निजगाद नन्दसूनः स्मितेन सम्मोहयन् सुमुखि ।।१०९।।

हे सुमुखि ! इस तरह के उनके अन्तःकरण के भाव को देखकर उनको समझाने के लिये अपनी मुस्कान से उन्हें मोहित करते हुए नन्दनन्दन बोले ।।१०९।।

मयि स्थिता भवन्नीव्यः प्रागेप विपरीतकम् । वदन्ति तन्न युक्तं हि पश्चाद्भावित्वतः प्रियाः ।।११०।।

तुम्हारे वस्त्र तो पहले से ही मेरे पास है परन्तु हे प्रिया तुम जो यह कह रही हो कि अब तुम हमारे वस्त्र ले गये हो यह उचित नहीं ।।११०।।

यद्यपि भवतीषु तदन्युचितं सततं रसाधिक्यात् । रसमर्यादा नैवं भवतीत्यत्रैव गृह्यतां वासः ।।१११।।

निरन्तर रस की अधिकतासे तुम्हारा यह कहना कि अब तुमने हमारे वस्त्र लिये हैं ठीक है किन्तु रस की मर्यादा ऐसी नहीं होती इसलिये तुम यहीं आ कर वस्त्र लेलो ।।१११।।

सर्वतः प्रसृतया मम दृष्टचैवावृतानि कथमप्यनिलोऽपि ।
स्प्रष्टुमर्हति न वै भवदङ्गान्याशु तत्यजत बालकशङ्काम् ।।११२।।

तुम को यदि यह शंका हो कि यहाँ बच्चे देख रहे हैं हम जल के बाहर नग्न रूप में कैसे आवें तो यह शंका मत करो सब ओर फैली हुई मेरी दृष्टि ने ही तुम्हें ढक रक्खा है अन्त अन्य के देखने को तो बात ही क्या यह हवा भी तुम्हारे अङ्ग का स्पर्श नहीं कर सकती अतः यह भय छोड़ दो ।।११२।।

अयमतिसघृणः पवनः शीतमिति परागपूरनवनीवीः ।
परिधापयितुं भवतीष्वम्बुन्यपि हन्त सञ्चरति ।।११३।।

बड़े हर्ष की बात है कि यह अति दयालु पवन, शीत है इसलिये तुम्हें परागपूर रूप नवीन नीवी को पहराने के लिये जल में भी सञ्चरण कर रही है ।।११३।।

यदि भवदभिमतमेतत्तदाहमेवावरुह्यात्र । भवदङ्गेषु निजाङ्गैरावरणं मुग्धलोचनाः करवै ।।११४।।

हे मुग्धलो चनाओं ! यदि तुम चाहती हो तो मैं ही वृक्ष से उतर कर तुम्हारे अङ्गो का आवरण अपने अङ्गों से कर दूं ।।११४।।

प्रेमरसाम्बुधिमग्न मनो विनोदोक्तिनवमहावर्तैः ।
उद्गतमुरुभावमभूत्ससिकतमिवगाङ्गपूराम्यः ।।११५।।

प्रेमरस के समुद्र में डूबा हुआ उन कुमारिकाओं का मन इस प्रकार विनोद के वचनों से नवीन महान् आवर्तो (भंवरों) से जैसे गङ्गा में पूरक जल सिकता (रेती) युक्त हो जाता है उसी तरह उनका मन भी उद्गत अधिक भाव वाला हो गया ।।११५।।

नर्मरसोक्तिसमुद्रैर्मिलितप्रेमाम्बुधिर्यदुद्वेलः । आसीत्तदिह तदीयं मनोपि बहिरास तत्सङ्गे ।।११६।।

परिहास रस की उक्ति रूप समुद्रों से प्रेमरूप समुद्र जब मिला तो उसने अपनी मर्यादा का परित्याग कर दिया इसलिये अन्दर रहने वाला उनका मन भी उनके सङ्ग से बाहर आ गया ।।११६।।

तदा प्रियतमस्य ताः सखि निरीक्ष्य मुग्धाननं त्रपाहसितभावसन्नतदृशा निजाङ्गान्यपि ।
कलिन्दतनयाजले सुमुखि कण्ठपर्यन्तमास्थिता इव निजाञ्चलेऽरुणतरे बभूवुर्मुदा ।।११७।।

हे सखि ! तब प्रियतम के सुन्दर बदन को निहार कर लज्जा और हास भाव से नीची दृष्टि से उन्होंने अपने अङ्गों को भी जैसे कलिन्दनन्दिनि के जल में गले पर्यन्त डूबी हों इस तरह अपने अत्यन्त अरुण अञ्चल में प्रेम से छिपा लिया ।।११७।।

प्रियतमनखपदभानूदयाय न चिरेण शिशिरतरनीरे ।
मग्नास्तपन्त इव नवकोका रुरुचुः कुचास्तासाम् ।।११८।।

कोक (चकवे) के बच्चे की तरह उनके स्तन अपने प्रियतम के नखपद सूर्य के उदय

के लिये अत्यन्त ठण्डे जल में शीघ्र ही तपस्या करने के लिये मानो डूबे हुए शोभित हो रहे थे ॥११८॥

खिन्नौ प्रातः कथमु भवितेत्युत्सुकौ तादृगास्यं दृष्ट्वा राकापतिरयमुदेत्यस्ति राकेति मत्वा ॥
आभीतौ तत्करपतनतो यामुनीये जलेऽस्मिन् लीनौ कोकाविव नवकुचौ रेजतुर्जातकम्पौ ॥११९॥

उन कुमारिकाओं के उस प्रकार के मुख को देखकर यह तो चन्द्रमा है इसका जब उदय है तो अभी रात्रि है तब प्रातः काल कैसे होगा इस तरह खिन्न, उत्सुक, अत्यन्त डरे हुए उनके हाथ से गिर जाने के कारण इस यमुना के जल में डूबे हुए चकवों की तरह कम्पित होते हुए इनके दोनों स्तन शोभित हुए ॥११९॥

किं वर्णयामि यमुनानीरोपरि (वि) लसदखिलवदनानि ।
मन्येहं प्रियवरदे क्षपाधिपानेव सख्युदितान् ॥१२०॥

हे प्रियवरदे सखि ! मैं तुझ से क्या कहूँ यमुना के जल के ऊपर शोभित उन कुमारिकाओं के मुखों को मैं तो उदय को प्राप्त हुए चन्द्रमा ही मानती हूं ॥१२०॥

किमिन्दवोऽमी बहुता न तत्र हि प्रसन्नपद्मान्युत नाधुना रविः ।
इत्थं तदा तद्वदनानि संशयास्पदान्यभूवंश्चिरमर्भकव्रजे ।१२१॥

उन कुमारिकाओं के मुखों को देखकर बालकों को ऐसा सन्देह होने लगा कि क्या ये चन्द्रमा हैं चन्द्रमा तो बहुत नहीं है अथवा विकास को प्राप्त हुए ये कमल होंगे परन्तु कमल तो दिन में खिलते हैं अभी सूर्य नहीं है । इस तरह उनके संशयास्पद हो गये ॥१२१॥

ततो हासस्मेराननकमलमात्मप्रियमिमा विलासश्रीसम्पज्जितमदनकोटिं समवदन् ।
अतिस्निग्धैर्नेत्रैः क्षणमभिमुखैश्चातितरलैः समीक्षन्त्यो गोपैः स्वरसमुदितैर्वेष्टितममुम् ॥१२२ ।

इसके बाद उन कुमारिकाओं ने हास एवं मुस्कान से युक्त मुख कमल वाले अपने प्रिय से जिन्होंने अपनी विलास की शोभा से जीत लिये है करोड़ों कामदेवों को उन से अत्यन्त स्नेह से भरे हुए अत्यन्त चञ्चल क्षण भर के लिये सन्मुख नेत्रों से अपने रस से मुदित गोपों से वेष्टित नन्दनन्दन से बोली ॥१२२॥

परमोदार तवेदं युक्तं यद्वसनदानमाहूय । तद्यदि समये सफलं भवति तदैवाङ्गसङ्गत्वात् ॥१२३॥

हे परम उदार ! बुलाकर वस्त्रों को देना यह तुम्हारे लिये उचित ही है परन्तु यदि उसी समय अङ्ग सङ्ग हो तो उस समय इनकी सफलता है ॥१२३॥

त्वद्धृतवस्तु कदाचित् कथमपि नावर्तते पृथङ् नाथ ।
तदिहास्माकं नीवीर्दास्यसि नो वा न तद्विद्मः ॥१२४॥

हे नाथ आप जिसे स्वीकार कर लेते है उसकी कभी भी किसी तरह अलग से पुनरावृत्ति नहीं होती ! इसलिये आपके द्वारा स्वीकृत हमारे वस्त्र आप देंगे या नहीं इसे हम नहीं जान सकतीं ॥१२४॥

यदि नैकाक्यपहृतमिति ददासि नान्योऽस्मदीयवस्त्वङ्ग ।
स्प्रष्टुमपि कोपि शक्तस्तदखिलमेकाकिनैवं हृतम् ॥१२५॥

हे प्रिय ! यदि आपने अकेले ने हमारे वस्त्रों का हरण नहीं किया है इसलिये दे दोगे इसे भी हम नहीं मान सकती क्योंकि हमारी वस्तु का स्पर्श भी कोई नहीं कर सकता अतः आपने अकेले ने ही उनको हरण किया है ॥१२५॥

हरणं यादृक्तादृग्दानमपीहोचितं महोदार । नाथान्यथा तु सुमहाननयः स भवत्ययुक्तो हि ॥१२६॥

हे महोदार ! जिस तरह से वस्त्रों का हरण किया है उसी तरह उनका दे देना भी यहाँ उचित है । हे नाथ । अन्यथा तो उसे महान् अनीति ही कहेंगे । १२६॥

नहि कुलवधूरन्यस्याग्रे कथञ्चन कुत्रचित् किमपि सरसं स्वाङ्गं साध्वी प्रकाशयति प्रभो ।
यदतिमधुरस्निग्धप्राणप्रियेक्षणयोरपि क्षणमपि न साम्मुख्यं यातस्तदीयविलोचने ॥१२७॥

हे प्रभो ! साध्वी कुलवधू दूसरे के सामने किसी तरह कहीं भी किसी भी सरस अङ्ग को प्रकाशित नहीं करती । उनके नेत्र जो अत्यन्त सुन्दर स्नेही अपने प्राणप्रिय है उनके नेत्रों के सामने भी क्षणभर के लिये भी स्थिर नहीं रहते ॥१२७॥

कदाचित्तरुणी काचिदङ्गं मत्ता प्रकाशयेत् कथं कुमारिकाः कुर्युर्जानन्त्योऽङ्ग तथाधुना ॥१२८ ।

कदाचित् कोई तरुणी मतवाली होने से अपने अङ्ग को प्रकाशित कर भी सकती है । हे प्रिय ! हम जानती हुए कुमारिकाएं उन युवतियों की तरह कैसे इस समय अपने अङ्ग प्रकाशन कर सकती हैं ॥१२८॥

सानन्दनन्दभूपालकुमारं प्राणवल्लभम् । त्वां तु सुन्दर जानीमो नीवीर्देह्यधुनैव नः ॥१२९॥

हे सुन्दर ! हम जानती हैं कि तुम सानन्दनन्दराज के कुमार हो हमारे प्राण वल्लभ हो इसलिये हमारे वस्त्रों को अभी ही दे दो ॥१२९॥

व्रजे सर्वत्रैवाखिलबुधजनैः श्लाघितगुणार्णव त्वामेवंकारिणमुदितमाकर्ण्य किमपि ।
कदाचित्कश्चिन्नः श्रुतिकटु वदेदित्यतिभयं स्वलज्जातोत्यन्तं सुभग हृदयं खेदयति हि ।।१३०।।

व्रज में सब जगह सभी समझदार लोग आपकी प्रशंसा करते है इस तरह के हे प्रशंसनीय गुणों के सागर ! तुम इस प्रकार के काम करने वाले पैदा हुए हो ऐसी कानों को अच्छी न लगने वाली बात कोई हम से कहेगा तो इसका हमें अति भय है हे सुभग ! इस तरह की लोगों की बात हमें लज्जित करेगी और हृदय को दुःखी करेगी ।।१३०।।

तदाशु देहि वासांसि चातुर्यैकनिधान भोः । नोचेदयमुदेत्येव तापयन्नीलनीरजान् ।।१३१।।

हे चातुर्य के एक ही खजाने रूप ! इसलिये तुम हमारे वस्त्र शीघ्र दे दो नहीं तो यह नीलकमलों को तपाने वाले इस सूर्य का उदय हो ही रहा है ।।१३१।।

नैवं भवत्युचितमित्यतिसार्द्रचित्ता साजात्यतः प्रियतमा तव भानुकन्या ।
हस्तान् प्रसार्य निकटे च गताऽस्मदीयनीवीः शनैः कमललोचन याचते स्म ।।१३२।।

ऐसा करना उचित नहीं है इसलिये दयार्द्रचित वाली तुम्हारी प्रियतमा यह यमुना स्त्रीजाति की होने से हमारे लिये अपने तरंगरूप हाथों को फैलाकर तुम्हारे पास आकर हे कमल लोचन ! हमारे वस्त्रों की धीरे से तुमसे याचना कर रही है ।।१३२।।

त्वदङ्गसङ्गतापीतनीवी तडिदिवाम्बुदे विराजतेऽङ्ग सा तत्र सुचिरस्थायिनी नहि ।।१३३।।

हे प्रिय ! तुम्हारे अङ्ग से सङ्गत वह पीताम्बर मेघ के अन्दर रहने वाली बिजली की तरह अधिक समय तक स्थिर नहीं रहेगा ।।१३३।।

तत्रागतासु दाने सम्प्रति च न वर्तते विशेषोऽत्र ।
यद्यस्ति कश्चिदधुना त्वनुचित एवास्ति सुन्दरः सः ।।१३४।।

वहाँ हम आये और तुम हमें वस्त्र दो इसमें और यहाँ आकर देने में विशेषता क्या है यदि कोई विशेषता है तो वह अभी अनुचित नही हैं क्या वह सुन्दर है ? ।।१३४।।

अपरस्त्रीचिन्हाङ्कितमपि हृदयेशं न वीक्षते प्रमदा ।
कथमितरपुरुषसहकृतमुपगच्छेत्तद्वद स्वाङ्ग ।।१३५।।

अपनी स्त्री दूसरी स्त्री के चिन्हों से चिन्हित अपने प्राण प्यारे को भी देखना नहीं चाहती तब इतर पुरुष जब आपके साथ हैं तो हे प्रिय ! हम कैसे आपके पास आवें यह आप ही कहिये ।।१३५।।

स्वयमेवाङ्ग विचारय सततं सर्वत्र सर्वतोऽस्माकम् ।
अविता त्वमेव नाथः किमपरमधिकं नु विज्ञाप्यम् ।।१३६।।

हे नाथ ! जरा आप ही विचारिये कि हमारे तो सतत सब जगह और सब ओर से रक्षा करने वाले नाथ आप ही हैं इससे अधिक हम आप को क्या बतावें ।।१३६।।

अयमतिशिशिरः पवनो मनोऽपि नः सपदि वेपयन् वहति ।
ऋतुरपि शीतभरोऽयं तत्रापि तरामयं समयः ।।१३७।।

तेनातिवेपितानामम्बुनि सुभगाम्बराणि नो देहि ।
त्वयि विश्रान्ता हि दया यच्छीतेप्येवमिह चरसि ।।१३८।।

यह अत्यन्त ठण्डी हवा हमारे मन को भी कम्पित करती हुई चल रही है ऋतु भी अति शीत का है और उसमें भी यह प्रातः काल का समय इसलिये हम जल के अन्दर बहुत ठिठुर रहीं हैं अतः हे सुभग ! हमारे वस्त्र दे दो । तुम्हारे अन्दर दया का निवास है परन्तु इस समय ठण्ड से ठिठुरती हुई के साथ भी ऐसा व्यवहार कर रहे हो ।।१३७-१३८।।

त्वं त्वस्मन्नीवीरुत परिधायास्सेति शिशिरतीरस्थाः ।
माभूवन्बालास्ते सोत्कम्पाः सौकुमार्येण ।।१३९।।

तुमने तो हमारे वस्त्रों को अथवा अन्य वस्त्रों को पहन रक्खा हैं परन्तु यमुना की ठण्डी तीर पर खड़े हुए ये तुम्हारे सुकुमर बच्चे ठिठुरे नहीं, शीत से कम्पित न हों (इसका विचार करिये) ।।१३९ ।

भवामस्त्वद्दास्यस्तरलतरलापाङ्गसुषमालवक्रीता वीताखिलपरिजनाः सत्यवचनाः ।
मुदा तत्सिद्ध्यर्थं वितर वसनानि प्रिय ततो विधास्यामः सर्वं त्वदुदितमरण्येप्यधिजलम् ।।१४०।।

हमतो अति चंचल आपके अपाङ्ग की परमशोभा के एक अंश से खरीदी हुई दासियां हैं हमारे परिजन (कुटुम्बी) भी कोई नहीं है हम सदा सत्य बोलती हैं । हे प्रिय उस दासीपन की सिद्धि के लिये प्रसन्नता से हमारे वस्त्र दे दें । हमें आप जो आज्ञा देंगे उन सब का पालन वन में जल में करेंगी ।।१४०।।

जानासि निखिलसेतूनाकर्णय नस्तदत्र विज्ञप्तिम् । नो चेद्व्रजराजाग्रे सर्वं विज्ञापयिष्यामः ।।१४१।।

आप धर्म की सब मर्यादाओं को जानते हैं अतः हमारी प्रार्थना को आप सुनें । यदि आप नहीं सुनेंगे तो इस सारे वृत्तान्त को हम व्रजराज (नन्दराय) जी से कहेंगी ।।१४१।।

इति व्रजकुमारिकावदनपद्ममन्दस्मितप्रकाशगलितामलेरितमरन्दपूरोक्षितः ।
झटित्युदितनिर्भरप्रणयचित्रभावाङ्कुरोन्नताङ्गरुहभूरभूद्रतिरसज्ञचूडामणिः ॥१४२॥

इस प्रकार व्रज कुमारिकाओं के मुख कमल के मन्दहास के प्रकाश से गलित जो स्वच्छमरन्दपूर उससे सींचा गया इसलिये अत्यधिक प्रेम के कारण शीघ्र ही भावाङ्कुर उत्पन्न हो गया जिससे रतिरसज्ञ चूडामणि का अङ्ग रोमांचयुक्त हो गया ॥१४२॥

सखि निर्भरानुरागात्प्राप्तो यन्निखिलगोपिकैकात्म्यम् ।
तदयं तच्छीतोक्त्या सकम्पपुलकः स्वयं चासीत् ॥१४३॥

हे सखि । गाढे अनुराग के कारण सभी गोपिकाओं के साथ एकात्मकता को प्राप्त हुए ये नन्दनन्दन ने उनकी ऐसी शीतल वाणी को सुनकर स्वयं कम्प एवं पुलक से युक्त हो गये ॥१४३॥

नवप्रेमार्द्रसाकूतसप्रौढिविनयोक्तिभिः । तद्वशः सस्मितः प्रौढभावः सकरुणोऽवदत् ॥१४४॥

नवीन प्रेम से साभिप्रेत प्रौढ़ि से युक्त विनय की उक्ति से उनके वश में होते हुए प्रौढ भाव और करुणा से युक्त होकर मुस्कराते हुए बोले ॥१४४॥

गच्छत मा चिरमखिलं व्रजराजाग्रे निवेदयन्त्वादौ ।
स यदि वदिष्यति देहीतीमानि तदा प्रदास्येऽहम् ॥१४५॥

तुम जल्दी जाओ और यह सब बात सबसे पहले व्रजराज (नन्दजी) को कहो यदि वे कहेंगे कि इनके वस्त्र दे दो तभी मैं तुम्हें वस्त्र दूंगा ॥१४५॥

अहमपि भवदुक्तमेव सत्यं सदपि विधातुमकैतवं वदामि ।
यदिह भवदनागतौ ना दानं भवति न वा परिधानमम्बराणाम् ॥१४६॥

मैं भी तुम्हारी ही कही हुई बात को शीघ्र सत्य करने के लिये बिना कपट के कहता हूं कि यहाँ बिना आये वस्त्र नहीं मिलेंगे और उनका पहनना भी तुम से नहीं हो सकेगा ॥१४६॥

ममैव केवलस्येह दास्यो यदि भविष्यथ । न त्रपाधीनताप्येषा युक्ता मत्पुरतस्तदा ॥१४७॥

तुम केवल मेरी ही दासियां यदि होना चाहती हो तो फिर तुम्हारी मेरे ही सामने इस लज्जा की अधीनता भी उचित नहीं हैं अर्थात् तुम मेरे अधीन कहाँ हो तुम तो लज्जा के अधीन हो और वह अधीनता भी मेरे ही सामने तुम प्रदर्शित कर रही हो ॥१४७॥

मद्वाक्यमेव यदि वः कार्यं तर्हि सुमध्यमाः । समये न विशेषोऽस्ति यदिच्छेव बलीयसी ॥१४८॥

हे सुमध्यमाओं ! यदि तुम मेरे वाक्य का ही पालन करना चाहती हो तो उसमें समय विशेष का कोई नियम नहीं है इच्छा ही सबसे बलवान् है । अर्थात् यदि तुम मेरी आज्ञा पालक हो तो अभी जो आज्ञा दे रहा हूँ उसका भी पालन करो । उसके लिये यह नहीं की अमुक समय में आप आज्ञा देंगे उसका पालन करेंगी ॥१४८॥

दासीत्वेपि मदिच्छा निवर्तते नेयमब्जाक्ष्यः । न हि पूरयति मधुव्रतमधिवच्छामात्मावश्यताब्जस्य ।१४९।

हे कमलनयनियों ! तुम यद्यपि दासी हो गई हो परन्तु मेरी इच्छा के अनुसार नहीं करती हो, मधुकर को जो मधु की इच्छा है वह उसी के अधीन है वह कमल के अधीन नहीं हैं ॥१४९॥

ततोऽधरदरप्रभारचितचित्ररूपस्फुरत्स्थिरामलजलाशयादुपचिताशया निर्गताः ।
त्रपार्धनतलोचनाञ्चलनिरीक्षणेनातटं तमो घनमिव प्रियाः सखि विधित्सवस्तत्क्षणम् ॥१५०॥

इसके बाद अधरों की ईषत्प्रभा से रचित जो चित्ररूप उससे स्फुरित स्थिर स्वच्छ जलाशय से अधिक आशाओं को लेकर लज्जा से जिनकी आधी आँख नीची हो रही है इस प्रकार के निरीक्षण से तट पर्यन्त गाढे अन्धकार को करती हुई की तरह हे सखि ! वे उसी क्षण निकलीं ॥१५०॥

त्रपाधनमपावृते महति सद्मनि प्लावितं प्रियेक्षणसुवृष्टिभिः सपदि हन्त माभूदिति ।
स्वपाणि युगलेन चावरणमालि चक्रुस्तदा प्रतिक्षणसुसङ्कुचज्जघनबाहुकण्ठ्यः प्रियाः ॥१५१॥

बड़े भारी घर में जो खुला पड़ा हो जिसके छत न हो उसमें रक्खा हुआ जैसे लज्जा रूपी धन प्रिय की ईक्षणरूप वृष्टि से प्लावित (भीज) न हो जाये इसके लिये हे आलि ! उन्होंने अपने दोनों हाथों से उस लज्जारूपी धन को ढक दिया और उन प्रियाओं के प्रतिक्षण जधन बाहु और कण्ठ सिकुड़े जा रहे थे ॥१५१॥

तन्निर्गमोत्थजलबिन्दुमनोज्ञवीचिप्रान्तौ विरेजतुरलं युगपद् हृदिन्याः ।
प्राणप्रियाविरहतत्प्रियसङ्गमाद्यदुःखप्रमोदजनिताविव चाश्रुहासौ ॥१५२॥

उनके जल से निकलने के समय जल की बूंदे और सुन्दर तरङ्गों के प्रान्त एक ही साथ अत्यधिक शोभा पा रहे थे । वे यमुना ऐसी मालूम पड़ रही थी मानों अपने प्राणों से भी प्यारी कन्या अपने से अलग हो रही हो और उसे अपने प्रिय का संग हो रहा हो

सर्व प्रथम उस समय की तरह दुःख और प्रसन्नता से यमुना के आँसू भी टपक रहे थे और उसे उल्लास (आनन्द) भी हो रहा था ।।१५२।।

तच्चरणाम्बुजनखशशिनूपुरनवकान्तिभिस्तु कालिन्द्याः । नीरमनिर्वचनीयप्रभमभवदमन्दसौन्दर्यम्। १५३।

उन कुमारिकाओं के चरण कमल के नखरूप चन्द्र एवं नूपुर की कान्तियों से कालिंदी का जल अवर्णनीय कान्ति से युक्त तथा अत्यन्त सुन्दर हो गया ।।१५३।।

कालिन्दीसलिलान्तरात्प्रियसखि प्राणप्रियस्यान्तिकं । यान्त्यः कान्तिभिरर्भकेक्षणचमत्कारान्दधत्यःप्रियाः।।
रेजुर्वीक्ष्य नवाद्‌भुतामृतमयाम्भोदं त्वमेघव्रजं। हित्वा यान्त्य इवैनमालि मिलितुं मोहस्थिरा विद्युतः १५४

हे प्रियसखि ! कालिन्दी के जल के अन्दर से निकल कर अपने प्राण प्रिय के पास में जाती हुई अपनी कान्तियों से बच्चों के नेत्रों के समान कान्ति को धारण करती हुई ये कुमारिकाएँ ऐसी शोभा पा रही हैं जैसे बिजलियां नवीन अद्‌भुत अमृतभरे अपने मेघ समूह को छोड़कर और नन्दसुत को देखकर हे आलि ! मोह से स्थिरता को प्राप्त कर मिलने को जा रही हो ।।१५४।।

यथा यथा तटं तस्या कुमार्योऽनुसृताः सखि । तदीयमणिमञ्जीराण्याविरासंस्तथा तथा ।।१५५।।

हे सखि ! जैसे जैसे वे कुमारिकाएं कालिन्दी के तट का अनुसरण कर रही थी वैसे वैसे उनके मणिमञ्जिर प्रकट हो रहे थे ।।१५५।।

सायं पुलिनागमनप्रातर्गृहगमनयोर्निजावस्था । श्यामाम्भसि मूकैस्तैर्बहिश्च मुखरैस्तदा गदिता १५६।

सांय काल यमुना पुलिन पर आने की और प्रातः गृहगमन की अपनी अवस्था को यमुना के जल में तो मूक रहकर और बाहर मुखर रह कर नूपुरों ने बतायी ।।१५६।।

मञ्जीरसिञ्जिताह्वानसङ्गतेऽर्भकलोचने । लावण्यमोहिते चक्रुः पदन्यासेषु तास्तले ।।१५७।।

आह्वान रूप मञ्जीर के शब्दों से आये हुए बच्चों के नेत्रों को उन्होंने पृथ्वी तल के ऊपर अपने पादन्यासों के लावण्य से मोहित कर दिया ।।१५७।।

अनुरागानन्दहासव्रीडासङ्कोचभीतिभिः । कश्चिच्छबलितो भावस्तासां समभवत्तदा ।।१५८।।

अनुराग, आनन्द, हास, लज्जा, सङ्कोच और भय से उनका भाव अवर्णनीय रूप हो गया ।।१५८।।

आविर्भवन्तोऽथ मिलन्त उत्तमास्तिष्ठन्त एकेऽपसरन्त आतलम् ।
रेजुस्तदङ्गेषु तदा तदात्मकप्रियस्य भावा इव वारिबिन्दवः ।।१५९।।

आविर्भूत जल की बूदें एक दूसरी से मिलती है उत्तम यथावत् रहती हैं कोई तलपर्यन्त फैल जाती है इसी तरह प्रिय के जो तदात्मक भाव हैं वे उसी तरह उनके अङ्गों में शोभित प्रिय के भाव शोभित हुए ।।१५९।।

सर्वात्मभावजलधौ क्रीडन्तौ कृष्णनयनमीनवरौ । वीक्ष्य कुमारीसेतूनास्तामग्रे गतावबलौ ।।१६०।।

सर्वात्मभावरूप समुद्र में क्रीडा करते हुए कृष्ण के नेत्र रूप वे दोनों श्रेष्ठ मत्स्य कुमारीरूप सेतु देख कर उनके आगे उन का बल कुछ न चला वे वहीं रुक गये ।।१६०।।

तदेकस्मिन्नङ्गे कुवलयदृशः कापि मिलिता द्वितीयेप्यासीद्यत्तदपरकुमार्यां च हरिदृक् ।
तदङ्गानामासामपि परहृदाकर्षणवरप्रभावी हेतुर्नापर इति ममासीदवधृतिः ।।१६१।।

हे कमल नयनाओं ! कुमारिका के किसी एक अङ्ग से जब भगवान् की दृष्टि मिली तो दूसरे अङ्ग को देखने लगी और जब एक कुमारिका के अङ्गों को देखा तो अन्य कुमारिका के अवयवों को भगवान् देखने लगे । इस प्रकार दूसरे के हृदय को अपनी ओर आकर्षित करने का श्रेष्ठ प्रभाव उनके अंगों का ही था अन्य कोई हेतु नहीं था ऐसा मेरा निश्चय है ।।१६१।।

स्वरूपमेवाम्बुजलोचनस्य प्रीतौ यतौ हेतुरभूद्वधूनाम् ।
ततस्तदा सोऽतिविलक्षणेन भावेन केनाप्यभवत्प्रसन्नः ।।१६२।।

यद्यपि उन वधूओं में प्रीति का कारण उन कमल नयनाओं का स्वरूप ही था परन्तु उनके अतिविलक्षण अवर्णनीय भाव से प्रभु प्रसन्न हो गये ।।१६२।।

प्रतीत्यर्थं तासामिव रुचिरनीवीः करतले गृहीत्वाऽसीत्पूर्वं कमलनयनो दातुमिव याः ।
निधाय स्कन्धे ताः पुनरपि तथा पूर्वमबलाः समीक्ष्यातिप्रीतः स्मितरुचिरवक्त्रः समवदत् ।।१६३।।

उनको विश्वास हो जाय इसके लिये उनके सुन्दर वस्त्रों को अपने हाथ में लेकर कमल नयन भगवान् उनको दे रहे हों ऐसा भाव दिखाते हुए फिर उन वस्त्रों को अपने कन्धे पर रख कर पूर्व की तरह हो फिर उन कुमारिकाओं को देख कर मुस्कुराते हुए बोले ।।१६३।।

विहाय वसनानि यद्विहृतिमप्सु देवात्मिकास्वपूर्वरुचिरमालं चिरमकुर्वमानन्दिताः ।
तदेव ननु देवहेलनमतोऽस्य शान्त्यै मुदा नमस्कुरुत भूतले सुभगमूर्ध्नि कृत्वाञ्जलिम् ।।१६४।।

तुमने अपने वस्त्रों को अलग रखकर खूब प्रसन्न होती हुई ने जो देवात्मक जलों में अपूर्व सुन्दर पर्याप्त जो विहार किया। यह तुम्हारे द्वारा देवता की अवहेलना हुई अतः उसकी शांति के लिये प्रसन्नता के साथ पृथ्वी पर अपने सुन्दर मस्तक पर अञ्जलि बांध कर नमस्कार करो ।।१६४।।

धृतव्रतानां तु यथेष्टचेष्टितं न युक्तामित्युक्तमये महर्षिभिः ।
सर्वात्मनात्मानवधानमप्यदो निर्दोषवाक्कायहृदामपि क्षणम् ।।१६५।।

अरी महर्षियों ने कहा है कि जिनने व्रत का नियम लिया है उनके लिये यथेष्ट चेष्टा उचित नहीं है। जिनके देह वाणी हृदय ये शुद्ध भी हो परन्तु सर्वात्मरूप से आत्मा का अनवधान भी उचित नहीं होता ।।१६५।।

शशिमदनदेवयुवतिप्रभृतिसुराणां च मानहानिरियम् ।
उद्यन्निखिलाङ्गश्रीकृतोचिता नैव महतीषु ।।१६६।।

तुमने अपने पूरे शरीर की शोभा को प्रकट करके चन्द्रमां-कामदेव और अप्सराओं की यह मानहानि की है ऐसा करना तुम्हारी जैसी उत्कृष्ट स्त्रियों के लिये किसी तरह उचित नहीं हैं ।।१६६।।

भवदङ्गश्रीजलधौ क्रीडन्तौ नयनमीनराजौ नः । सहसा बाहुद्वीपे पतितावावर्तावितीव स्तः ।।१६७।।

तुम्हारे अंग की शोभारूप समुद्र में क्रीडा करते हुए ये हमारे नेत्ररूप मीनराज सहसा भुजारूप द्वीप के आवर्त्त (भवर) में पड़ गये हैं ।।१६७।।

इति सहृदयं श्रुत्वा मत्वा व्रतच्युतिमच्युताभिहितमहितं कर्मच्छिद्रं कथं नु समाहितम् ।
भवति सुरसन्तोषो दोषप्रदोष इति क्षणं निजहृदि विचारं ताश्चक्रुः प्रमोदभयान्विताः ।।१६८।।

इस प्रकार अच्युत भगवान् के द्वारा कही गई सहृदय उक्ति को सुनकर और हमारे व्रत का भंग हो गया है ऐसा मानकर इस कर्म छिद्र का समाधान कैसे हो देवता को सन्तोष कैसे हो और दोष की निवृत्ति कैसे हो इसका उन्होंने अपने हृदय में हर्ष और भय से युक्त होते हुए क्षण भर के लिये विचार किया ।।१६८।।

न पारयामः पुरुषान्तरे नतिं कर्तुं तथा मा भवतादपि क्वचित् ।
आज्ञाप्यनुल्लङ्घ्यतमा प्रियस्य नस्तदत्र भोः किन्तु विधे विधेयम् ।।१६९।।

हम किसी अन्य पुरुषों को नमन नहीं कर सकती यह दोष भी कहीं हम को न लग जाय और प्रियतम की आज्ञा का भी उल्लंघन नहीं होना चाहिये इसलिये हे विधाता हमें क्या करना है ।।१६९।।

चिरादिष्टे दृष्टेऽखिफलतया सम्प्रति पुरः स्थिते वैगुण्यं तत्करणगमकिञ्चित्करमतः ।
विधेयास्मिन्नेव प्रणतिरनयैवाऽखिलमिदं भविष्यत्यस्माकं प्रियपदगतीनां शुभतरम् ।।१७०।।

चिरकाल से जिन्हें हम चाहती थी उनका दर्शन हो गया और सम्पूर्ण फल रूप से वे हमारे सामने खड़े है इसलिये हमारे नियम में जो विगुणता होगी वह अकिंचित्कर है अतः हमें इनको प्रणाम करना ही चाहिये इसके करने से हमारे प्रिय की प्राप्ति में शुभ ही होगा ।।१७०।।

इति सहसा स्फूर्त्या मत्स्वामिन्यः प्राणवल्लभं नेमुः ।
बध्वाञ्जलिमतिसुभगे मूर्ध्न्यतिमुग्धाननाः सुमुखि ।।१७१।।

हे सुमुखि ! इस प्रकार उनके हृदय में स्फूर्ति होने से मेरी स्वामिनीयों ने अपने प्राणवल्लभ को उन अति मुग्धाननाओं ने अति सुभग सिर से अञ्जलि बांधकर प्रणाम किया ।।१७१।।

ततस्तादृग्भावावनतिनिगदाख्यातसहजप्रपत्तिभ्यस्ताभ्यो रुचिरनवनीवीर्हरिरदात् ।
सरोजाक्ष्यः प्राणप्रियभुजयुगस्पर्शिवसनाभिमर्शप्रोत्साहप्रशिथिलतराङ्गयः समभवन् ।।१७२।।

इसके बाद इस प्रकार के भाव से युक्त जो उनकी नति (नमन) जिसको वेदों ने बताया ऐसी सहज प्रपत्ति से उनके लिये हरि ने उनके सुन्दर नये वस्त्र दे दिये। तब उन कमल नयनाओं ने अपने प्राण प्रिय को दोनों भुजाओं का जिनने स्पर्श किया है उन वस्त्रों का स्पर्श प्राप्त कर उत्साह से उनका अंग शिथिलतर हो गया ।।१७२।।

तत्परिधानेपि तदाऽसामर्थ्यं वीक्ष्य सारसाक्षीणाम् परिधापयितुं ताः स्वयमवरुह्यागात्प्रियो नीपात् ।१७३।

उन वस्त्रों के पहनने में भी उन मृगनयनाओं का सामर्थ्य न देख कर उन वस्त्रों को उन्हें पहनाने के लिये आप स्वय कदम्ब से उतर पड़े ।।१७३।।

काञ्चन काञ्चनकमलोपरिलसदलिवृन्दरुचिरकेशेषु । निजवसनेनाप्रोञ्छत्तत्सम्मुखमास्थितः प्रेयान् ।१७४।

किसी कुमारिका के सोने के कमल के ऊपर शोभायमान आलिवृन्द के समान श्याम बालों को उसके सामने खड़े होकर प्रियतमने अपने वस्त्रों से उन्हें पोंछा ।।१७४।।

ततस्तथा स सर्वाङ्गे चकार युगपत्सखि । सर्वास्वनेकरूपोपि कुमारीभिरलक्षितः ।।१७५।।

इसके बाद जिस तरह बालों को पोंछा उसी तरह स्वयं अलक्षित होते हुए अनेक रूपों से उन सभी गोपियों के हे सखि ! एक ही साथ सब अंगों को पोंछ दिया ।।१७५।।

ततः कटितटे तस्याः पटं पट्टमयेन सः । दाम्ना बबन्ध विविधानुसन्धानोऽम्बुजारुणम् ।।१७६।।

तब उनके बाद उसके कमर में पट्टमय बन्धन से कमल के समान लाल वस्त्र को बांध दिया उन सब का बन्धन अनुसन्धान पूर्वक किया ।।१७६।।

सितवसनरचितकुसुमांचितकंचुक्या सकांचनप्रभया । पश्चाद्रचितग्रन्थ्या सपुलकतदुरोऽञ्चयामास।।१७७।

श्वेत वस्त्र से बनी हुई जिसमें पुष्प लगे हुए हैं और सोने की प्रभा से युक्त पीछे की ओर जिस की ग्रन्थी है उस कञ्चुकी से रोमाञ्चयुक्त उसके उरस्थल को भूषित किया ।।१७७।।

कुवलयदलनिभमञ्चल उरु पृथुमुक्ताञ्चिते स धम्मिल्ले ।
कृत्वोन्नतकञ्चुक्यामकरोदुरुभूषणाढ्यायाम् ।।१७८।।

कमलपत्र के सदृश उस पृथु अञ्चल को मोती जिनमें गुँथे हैं उस धमिल्ल (केशपाश) में उढा कर फिर खूब भूषणों से युक्त ऊंची कञ्चुकी में उसको कोस दिया ।।१७८।।

आर्दार्द्रया रसभरोन्नतया निजेष्टदृष्ट्या स्वदृष्टिमिलनेन नतस्मितास्या ।
काचिद्विलक्षणनिजानुभवैकवेद्यभावा शनैः कटितटे वसनं चकार ।।१७९।

अति सरस रसके भार से ऊपर उठी हुई अपने इष्ट (प्रियतम) की दृष्टि से अपनी दृष्टि के मिलने से जरा मुस्कराते हुए मुँह से किसी ने विलक्षण जो केवल अपने अनुभव के द्वारा ही समझ में आ सकते हैं ऐसे भावों को दिखाती हुई ने धीरे से कमर में वस्त्र को पहन लिया ।।१७९।।

लज्जाविलोलांचललोचनेन मुहुः प्रियं चारु विलोकयन्ती ।
मुहुः श्लथद्ग्रन्थिमुदारनीव्या बध्नन्त्यतिष्ठत्परमम्बुजाक्षी ।।१८०।।

लज्जा से चलायमान चञ्चल नेत्र से बार बार अपने प्रिय को साभिप्राय युक्त देखती हुई अपने अधोवस्त्र की ढीली गांठ को बार बार बांधती हुई कमल नयनी बहुत समय तक खड़ी रही ।।१८०।।

मुग्धस्मितमुखाम्भोजो मंजुसिंजाननूपुरः । आगत्य स तदा पूर्वमंचलं पर्यधापयत् ।।१८१।।

मुस्कराते हुए मुंह से, नूपुर की झनकार को करते हुए आकर उन्होंने पहले अञ्चल को पहराया ।।१८१।।

ततः प्रियः पतदुकूलमुल्लद्दाम्ना बबन्धासितगुच्छशोभम् ।
शनैः स्मितस्मेरतरार्द्रदृष्टया विलोकयन्मुग्धमुखाब्जमस्याः ।।१८२।।

उसके बाद प्रिय नन्दनन्दन ने शोभित हो रहा है बन्धन जिसका ऐसे नील गुच्छों की शोभा से युक्त पीताम्बर को कुमारिका के सुन्दर मुख कमल को मुस्कराते हुए अति सुन्दर दृष्टि से देखते हुए उसको बांधा ।।१८२।।

प्रियतमपाणिस्पर्शोदितपुलकात्युन्नतोरसि स्वनिभाम् ।
पुलकितवपुरपि रसिकः साकूतं कञ्चकीमकरोत् ।।१८३।।

प्रियतम के कर स्पर्श से उत्पन्न हो गया है पुलक जिसमें ऐसे ऊपर की ओर उठे हुए उर स्थल पर स्वयं रसिक (नन्द नन्दन) भी पुलकितांग होते हुवे अपने समान वर्णवाली कंचुकी को साभिप्रायरूप से पहनाई ।।१८३।।

कोटिस्मरस्मयहराङ्गनिरीक्षणेन काञ्चिच्चिरादभिमतेन विमुग्धचित्ताः ।
स्वान्युत्तरीयवसनानि नितम्बबिम्बे कृत्वा शनैः परिदधुः सखि मूर्ध्नि नीवीः ।।१८४।।

कोटि कामदेव के अभिमान को दूर करनेवाले अङ्ग के निरीक्षण से जिसे बहुत समय से चाह रही थी उन किन्हीं विमुग्ध हृदयाओं ने अपने उत्तरीय वस्त्रों को पहले अपने नितम्बबिम्ब पर ओढ कर फिर हे सखि धीरे से मस्तक पर वस्त्र धारण किया ।।१८४।।

दृष्ट्वा तत्सर्वं स स्मितमुखकमलः समागतः पूर्वम् ।
अनतिदृढामधिनाभि ग्रन्थिमुदारो मुमोच शनैः ।।१८५।।

इस सबको देखकर मुस्कराते हुवे मुखकमल से जो पहले ही आ गये थे नाभि के ऊपर जो ढीली गांठ थी उसे उन उदार ने धीरे से खोल दिया ।।१८५।।

ततः शिरसि संस्थितामतिविचित्रनीवीं स्फुरन्नितम्बभुवि पर्यधापयदनल्पमुक्ताञ्चिताम् ।
स्वकन्धरविभूषणारुणतरोत्तरीयं शिरस्यभावयदनल्पभूषणयुते प्रियायाः प्रियः ।।१८६।।

इसके बाद सिर पर स्थित जो विचित्र वस्त्र था उसको जिसमें बहुत मोती लगे हुए थे उसको नितम्बस्थान पर पहरा दिया और जो ग्रीवा के आभूषणों से अत्यन्त अरुण

उत्तरीय था उसे अनेक आभूषणों से युक्त प्रिया के मस्तक पर प्रिय ने ओढा दिया ।।१८६।।

काचित्सखि प्रियतमाभिमतावलोकप्रोद्यत्प्रमोदभरसंभ्रमसस्मितास्या ।
उद्यद्दिवाकररुचिं परिधाय नीवीं शैथिल्यतः परिदधौ कुचपट्टिकां न ।।१८७।।

हे सखि ! किसीने अभिमत प्रियतम के अवलोकन से उदय को प्राप्त हुए प्रमोदभर के संभ्रम से मुस्कराहट युक्त मुख से उदय होते हुए सूर्य के समान कान्ति वाले वस्त्र को पहन कर शिथिलता के आ जाने से कुचपट्टिका (कंचुकी) को नहीं पहना ।।१८७।।

ततः करपुटस्थितामलमनोज्ञमुक्ताफलप्रवेककृतवीटिकारुचिरकञ्चुकीं माधवः ।
समीक्ष्य रुचिरस्मितः सखि समागतः सादरं तदञ्चलमपाकरोदमलचम्पकाभो रसः ।।१८८।।

इसके बाद हाथ में ही स्थित स्वच्छ मनोहर श्रेष्ठ मोतियों की हुई बीटिका से सुन्दर कंचुकी को देखकर माधव मुस्कराते हुए आदर के साथ वहाँ आ गये और हे सखि ! स्वच्छ चम्पे के समान उसके उरस्थल से उसके अञ्चल को हटा दिया ।।१८८।।

तत्क्षणं प्रियतमाभिमताङ्गस्पर्शहर्षभरविश्लथिताङ्ग्याः ।
सुन्दरः करपुटादपि चाञ्चत्कञ्चुकीं स्वयमसौ जगृहेऽस्याः ।।१८९।।

उसी क्षण अपने प्रियतम के अभिमत अङ्गस्पर्श के हर्ष भर से श्लथ (शिथिल) हो गया है अङ्ग जिसका ऐसी उस कुमारिका के हाथ से उन सुन्दर नन्दनन्दन ने स्वयं अपने हाथ में उस कञ्चुकी को ले लिया ।।१८९।।

अङ्गदमस्या बाह्वोः प्रथमं परिधाप्य कञ्चुकीं पश्चात् ।
ग्रन्थित्रयमकरोत् सख्यतिसुकरां माधवो मोके ।।१९०।।

इस कुमारिका की भुजा में पहले अङ्गद (बाजू बन्द) पहना कर उसके बाद कंचुकी को पहनाया फिर माधव ने हे सखि ! सहज में ही खुल सके इस तरह की तीन गांठें लगा दी ।।१९०।।

केनापि तेऽ सरसीरुहगर्भगर्वनिर्वासनेन हरिहृत्सहजेन तस्याः ।
अन्तर्गतेन सहसाऽजनि सौरभेण भावस्तदा पुलकसीत्कृतिमोहहेतुः ।१९१।।

कमल के गर्भ में ही ऐसी सुगन्ध रहती है इस अभिमान को दूर करने वाले अवर्णनीय ऐसे भगवान् के हृदय में जो सहज है ऐसे अन्तर्गत सौरभ से सहसा उस कुमारिका का भाव ऐसा हो गया जिससे उसके पुलक- सीत्कृति और मोह उत्पन्न हो गये ।।१९१।।

तत्कालीनं भावमम्भोरुहाक्षी वक्तुं शक्तासक्तियुक्ता न साऽपि ।
किन्त्वेतस्याः सौरभात्मत्वमासीदेतन्मात्रं मद्वचोगोचरोऽस्ति ।।१९२।।

कमलनयनी वह कुमारिका आसक्ति से युक्त होने के कारण उस समय के भाव को कहने में समर्थ न हो सकी किन्तु वह सौरभात्म रूप हो गयी बस इतना मात्र ही मेरी वाणी कह सकती है ।।१९२।

एतावतैव भवतीभिरशेषवार्ता तस्या विलक्षणविचारपराभिरन्तः ।
ज्ञेया कथं नु कथयामि विचित्रभावसारस्य सीम हरिरासजुषः स्फुटोक्तिः ।।१९३।।

विलक्षण विचार में प्रवीण आप उस की सभी बात को इतने से ही अन्दर ही अन्दर जान ले हरि के साथ रास का आनन्द लेने वाली विचित्र भाव के सार की सीमारूप उसके लिये स्पष्ट कैसे कह सकती हूँ ।।१९३।।

वसनादानप्रसरच्चम्पकगर्भातिसुभगभुजलतिकाः । कस्याश्चिन्निजवलयक्वणितैरस्मारयत्किमपि ।१९४।

वस्त्रों के लेनेके समय फैलती हुई चम्पापुष्पके गर्भके समान अत्यन्त सुन्दरभुजलतिकाएं किसी कुमारिकाकी अपने व लय के क्वरणन से किसी बौत की याद दिला रही थी।।१९४।।

तदैवाविर्भूतप्रचुररतिभावातिचपलेक्षणः प्रादान्नीवीं सुमुखि सविकारं सपुलकः ।
स्पृशन्गाढं तस्या मृदुकरतलं पङ्कजमृदुस्वहस्तेन श्रीमन्नखररुचिरेण स्मितमुखः ।।१९५।।

हे सुमुखि! उसीसमय प्रकट हुआ जो प्रचुररतिभाव उससे अत्यन्त हैं चपल नेत्र जिसके ऐसे नन्दनन्दन ने सविकार और सपुलक (रोमाञ्चित) होते हुए उनके वस्त्र दे दिये । वस्त्र देते समय उस कुमारिका के कोमल करतल की शोभायुक्त नख से सुन्दर कमल के समान कोमल अपने हाथ से गाढा स्पर्श किया और मुस्कराये ।।१९५।।

तदा यत्साकूतं समजनि किमप्यालि रुचिरस्मितस्पर्शापाङ्गेक्षणमुदितभावस्य सहसा ।
तदस्या अप्यासीन्मधुरतरभावोद्भुततमः स येनेयं मग्ना रसजलनिधौ तत्क्षणमभूत् ।।१९६।।

हे आली ! उस समय जो उनका सुन्दर मुस्कराहट के साथ स्पर्श और नेत्र के अपाङ्ग से देखना और भावोदय के साथ जो उनका अभिप्राय था उसी तरह का उस कुमारिका में भी मधुरतर और अद्भुततम भाव था जिसके कारण वह रसके समुद्र में तत्क्षरा ही डूब गई ।।१९६।।

तदा सारङ्गाक्षी निजहृदि निधायोत्पुलकिता निमीलद्दृष्टिः सा निजकरतलं तद्रसमयम् ।
मुदाश्लिष्टा साक्षादवशमुपभुक्तेव सहसा प्रियेणासीद्राधा सहचरि चिरं सस्मितमुखी ।।१९७।।

तब उस मृगनयनी ने पुलकित होते हुए उस रसमय अपने हाथ को व नेत्रों को बन्द करके अपने हृदय पर रक्खा और हे सहचरि ! उसने ऐसा समझा कि प्रियतम ने मेरा साक्षत् आलिङ्गन किया और सहसा मेरा उपभोग किया इस तरह चिरकाल तक वह राधा मुस्कराती ही रही ।।१९७।।

सकलान्तररतिचिह्नाङ्कितामबाह्य स्मृतिं प्रियां दृष्ट्वा ।
रसिकशिरोमणिरपि सखि विस्मयमगमद्रमानाथः ।।१९८।।

जिसे बाह्यस्मृति नहीं है और अन्दर सभी रति के चिह्नों से जो चिह्नित है ऐसी प्रिया को देखकर हे सखि ! रसिक शिरोमणि होते हुए भी रमानाथ आश्चर्य चकित हो गये ।।१९८।।

करतलमिलदञ्चलं स तस्याः सुमुखि यदा धृतवान्कररेण नाथः ।
विकसितनयनोत्पला तदेयं समभवदुद्गतसीत्कृतिः सकम्पम् ।।१९९।।

हे सुमुखि ! जब उसके करतल से मिलते हुए अञ्चल को नाथ (प्रिय) ने अपने हाथ से पकड़ लिया तब उसके नेत्र हर्ष से उल्लसित हो गये और सीत्कार के उद्गम के साथ कम्प भी हो गया ।।१९९।।

विस्मयानन्दहासेषद्व्रीडाशबलिताशया । पुरस्थितमपश्यत्सा माधवं लोचनाञ्चलैः ।।२००।।

विस्मय, आनन्द, हास और ईषद् लज्जा से शबलित जिसका आशय है ऐसी वह अपने लोचनाञ्चलों से सामने खड़े हुए माधव को देखती रही ।।२००।।

तदापत्रपया किञ्चित्सङ्कुञ्चन्तीमतिप्रियाम् । वीक्ष्य सत्वरमब्जाक्ष्याः दुकूलं पर्यधापयत् ।।२०१ ।

उस समय लज्जा से कुछ संकोच करती हुई अतिप्रिया कमलनयनी को देख कर शीघ्र वस्त्र ही पहना दिये ।।२०१।।

विविधरसभावोद्भाविन्यास्ता सुषमास्पदप्रियतमदृशा सारङ्गाक्ष्याः शनैर्दृढबन्धनैः ।
प्रिय इह रहस्यागत्यैवं विमोक्ष्यति वास इत्यजनि सहसा भावो यत्तत्तथैव चकार सा ।।२०२।।

अनेक प्रकार के रस भावों को मन में उत्पन्न करती हुई मृगनयनी ने परमशोभा की आस्पद प्रियतम की दृष्टि से ऐसा विचार किया कि मेरे प्यारे यहां आकर एकान्त में दृढबन्धनों से शनैः शनै मेरे वस्त्र को खोल देंगे ऐसा जब उसका भाव हुआ तो उसने वैसी ही क्रिया की (वस्त्र को खोल दिया) ।।२०२।।

प्रपदपतितं वासो वीक्ष्य प्रिया सहसा तदा प्रियवदनमुद्वीक्ष्य व्रीडास्मितानतलोचना ।
सपदि जनितानन्दोद्रेकादियं परिधातुमप्यभवदपटुर्वासस्तूर्णं प्रगृह्य च पाणिना ।।२०३

तब प्रिया ने अपने वस्त्र को सहसा पैर के अग्रभाग पर पड़ा देखा तो प्रिय के मुख की ओर देख कर लज्जा और स्मित से नेत्र नीचे कर लिये और शीघ्र ही अत्यन्त आनन्द के उद्रेक के कारण ऐसी असमर्थ हो गई कि वस्त्र को हाथ में तो ले लिया किन्तु उसे शीघ्र पहन न सकी ।।२०३।।

मुदा तदा गतः प्रियः स्मितश्रिया जितस्मरः । प्रगृह्य पर्यधापयद्दुकूलमुल्लसत्करः ।।२०४।।

अपनी मुस्कराहट की शोभा से जिनने कामदेव को भी जीत लिया है ऐसे प्रिय उस समय प्रसन्न होते हुए आ गये और उसके हाथ से वस्त्र को लेकर उल्लास युक्त हाथों से उसे पहना दिया ।।२०४।।

काचिन्निजान्तिकगतव्रजभूषणाङ्ग्यै नीवीं प्रियस्य ददतः करपङ्कजस्य ।
दृष्ट्वा स्वतः स्तनगतं प्रतिबिम्बमेतद् दत्तं तदेव सपदीत्यविदद्रसाङ्गी ।।२०५।।

किसी कुमारिका ने अपने पास ही खडी हुई व्रजभूषणाङ्गी के लिये वस्त्र को देते हुए प्रिय के करकमल के प्रतिबिम्ब को अपने स्तन पर देख कर रसाङ्गी ने शीघ्र यह समझ लिया कि उन्होंने अपना श्रीहस्त ही स्तनो पर दिया है ।।२०५।।

तदैवासीदेषा पुलकितवपुः क्रीडितनतस्मितस्मेरापाङ्गा मुकुलितमनोज्ञेक्षणयुगा ।
प्रमोदप्राचुर्यप्रशिथिलतराङ्गीकरयुगादपि स्रंसन्नीवीं रसभरतनुर्नाविददहो ।।२०६।।

तब उसी समय उसका अङ्ग पुलकित हो गया और क्रीडन के कारण नीचे की ओर मुस्कराहट से सुन्दर अपाङ्ग वाली हो गई और आनन्द के कारण नेत्रों के बन्द हो जाने से उसके दोनों ही नेत्र बड़े सुन्दर हो गये थे । प्रमोद की प्रचुरता से उसके अङ्ग एकदम शिथिल हो गये और अङ्ग में रस भर गया जिसके कारण अपने हाथों से गिरे वस्त्र का भी उसे भान न रहा यह बड़े आश्चर्य की बात थी ।।२०६।।

तथैव न चिरं स्थितां रुचिरचित्रलेखामिव प्रियामभिविलोकयन्विदितपूर्ववृत्तान्तकः ।
पुरेव परितोषितोप्ययि तदा न देयं किमप्यपश्यदुत तद्वशोऽभवदुदारमूर्तिः सखि ।।२०७।।

सुन्दर चित्रलिखित पुतली की तरह खड़ी हुई उस प्रिया को देखते हुए उस के पूर्व वृत्तान्त को याद किया क्यों कि इस ने पहले ही मुझे प्रसन्न किया था उस समय भी इसे कुछ नहीं दिया था अब भी देने की कोई वस्तु नहीं हैं अतः उदारमूर्ति प्रिय ही, हे सखि ! उसके वश में हो गये ।।२०७।।

विकसितलोचनकुवलययुगला वीक्ष्य प्रिया तथा भावम् ।
सन्तप्ता सहसाऽभून्मीन इवाम्भो विना सुमुखि ।।२०८।।

प्रिया ने विकसित दोनों नेत्र कमलों से उस प्रकार के भाव को जब देखा तो हे सुमुखि ! जैसे जल के बिना मछली तडफती है उस तरह वह सहसा सतप्त हो गई ।२०८।।

पुरस्थितमपि प्राणप्रियं प्राणप्रिया हरेः । निर्भराद्भुतभावाब्धिनिमग्ना नाऽविदत्सखि ।।२०९।।

हरि की प्राणप्रियाने अपने प्राणप्रिय को सामने ही खड़े है तथापि हे सखि! अत्यधिक अद्भुत भाव सागर में वो ऐसी डूबी कि उसे उन का भान ही न रहा उन्हें देख न सकी ।।२०९।।

तथा भावं तस्याः सहचरि विदित्वा स्वयमसौ न सोढुं शक्तोऽभूत्प्रणयभरतः सैव यदभूत् ।
तदैवागत्याऽस्याः पृथुकटितटे सुन्दरतरं दुकूलं कृत्वा स्वप्रणयिनि बबन्धालि रशनाम् ।।२१०।।

हे सहचरि उसके ऐसे भाव को जानकर प्रेम में जब उसकी ऐसी स्थिति देखी तो नन्दनन्दन उसकी ऐसी दशा को सह न सके और उसी समय स्वयं आकर हे सखि ! उसके विशाल कटितट पर वस्त्र पहना कर और अपनी प्रिया की रशना (डोरी) को बाँध दिया ।।२१०।।

शिरसि तदञ्चलमचिरात्कुर्वाणं प्राणवल्लभं वीक्ष्य ।
पुरतस्तदेव वक्षसि कुर्वत्याधिं जहौ सुमुखी ।।२११।।

अपने सिर को वस्त्र से शीघ्र ही ढाकते हुए प्राण वल्लभ को सामने देखकर और उन्हीं के द्वारा अपने वक्षः स्थल पर उसी वस्त्र को पहराते हुए जब उस सुमुखी ने देखा तो उसकी मानसिक पीड़ा सब दूर हो गई ।।२११।।

सुकुमाराङ्गीमेनां स्पृशन्तमित्थं प्रियं प्रिया काचित् ।
पश्यन्ती कथमेवं मय्यपि भूयादिति ह्यविदत् ।।२१२।।

इस सुकुमाराङ्गी का इस तरह स्पर्श करते हुए अपने प्रिय को देखती हुई अन्य किसी कुमारिका ने विचार किया कि क्या मेरे को भी ऐसा प्रिय स्पर्श प्राप्त होगा ।।२१२

मनोरथमहाम्भोधिमज्जनेनान्यविस्मृतिः । प्राप्तप्रियतमस्पर्शभावा पुलकिताऽभवत् ।।२१३।।

वह कुमारिका अपने मनोरथ रूप समुद्र में ऐसी डूबी कि उसे अन्य का स्मरण ही न रहा और उसे ऐसा ही लगा कि मुझे प्रियतम का स्पर्श प्राप्त हो गया है इसलिये वह पुलकित हो गई ।।२१३।।

केनापि तेन रसितानुभवैकवेद्यभावेन सातिशिथिलाङ्ग्यभवत्तदालि ।
नीवी च शारदसरोरुहसोदरश्रीर्हस्तारविन्दयुगलादपतत्कृशाङ्ग्याः ।।२१४।।

हे आलि ! तब वह कुमारिका अवर्णनीय उस रसितानुभवैक वेद्य भाव से (जो उस रस का अनुभव करता है उसी को उसका पता लगता है) अत्यन्त शिथिल अङ्ग वाली हो गई और शरद ऋतु के कमल सदृश जिसकी शोभा है ऐसी नीवी उस कृशाङ्गी के दोनों हाथों से नीचे गिर गई ।।२१४।।

वीक्ष्यैनामेणाक्षीं स्मितरुचिसम्मोहिताङ्गनानिचयः । आगत्य पर्यधापयदपि नीवीं प्रेमपूरार्द्रः ।।२१५।।

इस मृगनयनी को जब ऐसी स्थिति में देखा तो अपनी मुस्कराहट की शोभा से सभी स्त्रियों को मोहित करते हुवे प्रेमपूर से सरस नन्दनन्दन ने आकर उसे वस्त्र पहना दिया ।।२१५।।

एकस्यामपि यावच्चकार करुणानिधिः प्रियायां सः । वक्तुमशक्यं तावन्ममापि किमुतालि सर्वासु ।२१६

उन करुणा निधि ने एक प्रिया के ऊपर जैसी करुणा की हे आलि ! उसी तरह की करुणा जो सभी के ऊपर की उस का वर्णन करना मेरी भी शक्ति के बाहर है ।।२१६।।

यादृग्भावयुताऽभवत्सपदि या तस्यां तथैवाऽऽचरन् यन्नीवीं सखि पर्यधापयदतिस्निग्धार्द्रहासेक्षणः ।
तद्युक्तं नवनीरदोदरमिलद्विद्युन्निभस्वप्रियाभावाम्भोधिविचित्रतुङ्गलहरीविश्रामभूरेष यत् ।।२१७।।

जिस प्रकार का जिस कुमारिका का भाव था उसी भाव के अनुसार प्रियने उनके साथ आचरण किया हे सखि ! अति स्निग्ध सरस हास युक्तदृष्टि से युक्त होते हुए उन्हें वस्त्र पहनाये ऐसा करना उचित भी था क्योंकि नवीनमेघ के अन्दर रहने वाली बिजली की तरह अपनी प्रियाओं के भावरूप समुद्र की जो विचित्र लहरे हैं उनका विश्राम उन्हीं में तो होता है ।।२१७।।

रसाब्धेः स्वस्मिन्यः सखि निरुपधिस्नेहजलधिः प्रवृद्धो मुग्धाक्षीवदनविधुदृष्टया स पतितः ।
कुमारीष्वाप्लाव्य स्थितसहजरागाख्यसरितस्तदैक्यं प्राप्तः सन्निजसदनप्राप्तः पुनरपि ।।२१८।

हे सखि! रसाब्धिका जो अपने ही अन्दर निरुपधि स्नेहसिन्धु है वह उन मुग्धाक्षियों के मुखचन्द्र की दृष्टि से समृद्ध हुआ और वह कुमारिकाओं के ऊपर गिरा और उन्हें आप्लावित करके उनमें स्थित जो सहज रागाख्य सरिता है उसके साथ एकता को प्राप्त करके पुनः अपने ही अन्दर समा गया ।।२१८।।

किमिह वसनान्यासामङ्गेष्वकारि विकारिणा किमपि रससर्वस्वं नैजं नु यौवनमेव वा ।
इति बत न निश्चेतुं शक्यं यतः सखि तत्क्षणान् मधुरमधुरा भावाः सङ्गा बभूवुरतिस्फुटाः २१९।

सात्विक विकार वाले इनने क्या वस्त्रों को उन के अङ्गों में धारण कराया अथवा अवर्णनीय अपना जो रस सर्वस्व यौवन है उससे ही उन्हें अलंकृत किया । हे सखि! इसका कोई निश्चय नहीं हो सकता क्योंकि उसीक्षण से उनके अति मधुर भाव और अति स्फुट सङ्ग हो गया ।।२१९।।

विनैव समयक्रमं सखि तदा यदासीदतिस्फुटं नवलयौवनं त्रिदशमोहिनीमोहनम् ।
तदङ्गगुणो न तद्व्रतकृतोऽन्यदीयोपि वा विचित्ररसभावितप्रियकटाक्षगोऽयं परम् ।।२२०।।

हे सखि ! उस समय, समय के क्रम के बिना ही जो अप्सराओं को भी मोहित करने वाला अतिस्पष्ट नवल यौवन प्रकट हो गया था । इस प्रकार यौवन का प्राकट्य न तो उनके अङ्गों के गुणों से हुआ, और न उनके व्रत के कारण हुआ, और न अन्य किसी कारण से हुआ । उस यौवन का प्राकट्य तो विचित्र रस से भावित जो प्रिय के कटाक्ष हैं उनसे ही हुआ है ।।२२०।।

वय एव यदीदृशं तदीयं किमु वाच्यं सखि विग्रहाद्यशेषम् ।
रसरूपमतोन्दिरादुरापं रसमापूर्यदुदारतो रसाब्धेः ।।२२१।।

हे सखि ! रसाब्धि (रस के सागर) प्रिय ने अपनी उदारता से ऐसा रस उनमें भर दिया कि जिससे उनकी केवल युवावस्था ही नहीं हुई किन्तु उनका प्रत्येक अङ्ग आदि ऐसा रसरूप हो गया कि लक्ष्मी भी वैसी रसरूपता को प्राप्त न कर सकी ।।२२१।।

यादृग्यादृग्भावयुक्तं मनः श्रीकृष्णस्यासु प्राविशत्ते मनोज्ञाः ।
भावा एव व्यक्तिमाप्तास्तदङ्गेष्वन्तश्चापीत्यालि जानाम्यहं तु ।।२२२।।

जिस जिस भाव से युक्त श्रीकृष्ण के मन ने उनमें प्रवेश किया वे मनोज्ञ भाव ही उन के अङ्गों में और अन्दर भी प्रकट हो गये हे आली! मैं तो ऐसा जानती हूं ।।२२२।।

पुरैव नीवीपरिधानतो हरेश्चित्तं यदङ्गेष्वभवन्मृगीदृशाम् ।
पश्चाच्च तन्नूतनभावतस्तयोर्मध्ये पतत्तेन ततो न निर्गतम् ।।२२३।।

वस्त्र के पहराने के समय पहले ही हरि का चित्त उन मृगनयनियों के अंगों के विषय में जो था वह भाव पीछे भी नवीन भाव के मध्य में पड़ जाने से वह पहला भाव वहां से निकल न सका अर्थात् पीछे के भाव से भी पहला भाव हटा नहीं दोनों हीभा व बरा बर रहे ।।२२३।।

अतिमधुरमुदारं वीक्ष्य चित्तं प्रियस्याऽखिलमपि निग्रहीतुं चित्तधारावलम्बाः ।
रुचिरनयनमार्गेणान्तराविश्य सर्वं स्वगतमुदितलोभादालि चक्रुः कृशाङ्ग्यः ।।२२४।।

अत्यन्त मधुर और उदार ऐसे प्रिय के चित्त को देखकर चित्तधारा का अवलम्बन करके उस सारे चित्त को ग्रहण करने के लिये सुन्दर नेत्रों के मार्ग से प्रवेश करके अत्यन्त लोभ के कारण उस सारे चित्त को हे आली ! उन कृशांगियों ने अपने अन्दर कर लिया ।।२२४।।

हृते चित्ते ताभिः स्मरनृपतिरेतत्तरलदृक् स्फुरद्दूतैर्ज्ञात्वा निशितशरसन्धानचपलः ।
समागत्याशक्तो हृतविशयसन्दापनविधौ न यज्ञस्तच्चित्तं प्रतिनिधिवदादापयदहो ।।२२५।।

इन कुमारिकाओं के द्वारा चित्त के हर लिये जाने के बाद इनकी चंचलदृष्टि रूप दूतों से इसका पता लगाकर सम्पूर्ण बाणों के सन्धान करने में चपल ऐसे कामरूप राजा ने वहां आकर हरण किये गये विषयों को दिलाने में असमर्थ होने से नीति कोजाननेवाले उस काम ने उसके प्रतिनिधिरूप में उन कुमारिकाओं का चित्त उन्हें दिया अर्थात् गोपियों ने भगवान् के चित्त को चुरा लिया तो काम देव ने उन गोपियों का चित्त भगवान् को दिला दिया । परस्पर एक दूसरे का चित्त एक दूसरे में आसक्त हो गया ।।२२५।।

निजवक्त्रसुधाकरेधितप्रतिगोपीरसभावसिन्धुषु । समभूदवगाहयंश्चिरं तरलैरेष विलोलकुण्डलः।।२२६।।
त्रपा मृगदृशामतिस्फुटतयाऽखिलज्ञापनेऽ निशं भवति बाधिकेत्यतिविचारचातुर्यतः ।

चञ्चल कुण्डलवाले नन्द नन्दन ने अपने मुख चन्द्र के द्वारा प्रत्येक गोपी के रस भाव रूप समुद्र को बढा कर उन रसभाव सिन्धुओं में चिरकाल तक अवगाहन किया ।।२२६।।

विसारितविलोचनांचलपुटे कृतामीषदानतोन्मुखतया स्थिरां प्रियसमर्पितां चक्रिरे ।।२२७।।

मृगनयनियों के लिये अपने सब भावों को स्पष्ट रूप से प्रकट करने में लज्जा सदा बाधा देती है इसलिये अत्यन्त विचार की चातुरी से उन्होंने उस लज्जा को विस्तृत-लोचनों के अञ्चल पुट में उसको स्थापित करके कुछ नीचा मुंह करके उस लज्जा को प्रिय को सौंप दी ॥२२७॥

तदा यद्व्रीडैव प्रचुरसुनिगूढानपि निजप्रिये भावानावेदयदतिमनोज्ञानिह ततः ।
प्रसन्नाः प्रत्यङ्गं सदनमनुरूपं सखि ददुर्यया वर्धेतास्यानुपवमभिलाषो नयनयोः ॥२२८॥

तब प्रिय को समर्पित की गई उस लज्जाने ही उनके अन्दर अत्यन्त छिपे हुए जो भाव थे जो बड़े ही सुन्दर थे उन भावों को अपने प्रिय के लिये उस लज्जा ने स्पष्ट रूप से बता दिया । अतः हे सखि ! प्रसन्न होती हुई उन्होंने प्रत्येक अंग के अनुरूप उनका समर्पण किया जिससे प्रिय के नेत्रों में अनुक्षण अभिलाषा की वृद्धि हुई ॥२२८॥

यदेतासां दृष्टिः प्रियनयनपङ्करुहयुगे तदीया चैतल्लोचनकुवलयेष्वाविशदहो ।
तदेतासामस्याप्युचितमपटुत्वं तदितरावलोके दृष्टिर्यत् स्वसदनगतैवालि करणम् ॥२२६॥

इन कुमारिकाओं की दृष्टि तो अपने प्रिय के दोनों नेत्र कमलों में चली गई, और प्रिय की जो दृष्टि थी उसने इन कुमारिकाओं के नेत्रकमलों में प्रवेश कर लिया इससे इन दोनों की दृष्टि में किसी वस्तु को देखने का सामर्थ्य न रही यह उचित ही है क्यों कि हे आलि ! जब दृष्टि अपने अन्दर रहे तभी वह (इन्द्रिय है) कार्य कर सकती है ॥२२६॥

वचनमधुराम्भोधिष्वादौ ततः प्रियसंगतस्वसदनसमीक्षाब्धिष्वस्य स्फुरत्सुषमाब्धिषु ।
अथ चपलताम्भोधिष्वेतन्निजाङ्गसुसङ्गतस्ववसनपरीधानाम्भोधिष्वथो रचनाब्धिषु ॥२३०॥

विविधरसभावाम्भोराशिष्वनुक्षणनूतनेष्वपि यदबलास्तेभ्यस्तेभ्यो बहिर्न विनिर्गताः ।
सखि समभवन्मग्नास्तत्किं कथं च विचारिते व्रजवरकुमारीणामेष प्रभाव इति स्थितम् ॥२३१॥

युग्मम्—अत्रैवं जानेऽहं प्रियसखि पूर्वोक्तसिन्धवः सर्वे ।
जलधौ सरित इवासामपाङ्गलहरीषु संलीनाः ॥२३२॥

अत एवैतदपाङ्गस्पृष्टो नवजलदसोदराङ्गश्रीः । तांस्तान् भावान् भजते युगपत्क्रमशोऽपि नन्दसुतः॥२३३॥

सबसे पहले तो वे कुमारिकाएं वचनों के मधुर समुद्र में फिर प्रिय के पास गये हुए अपने वस्त्रों की समीक्षा रूप समुद्र में तदन्तर प्रिय के देदीप्यमान परम शोभा के समुद्र में इसके बाद चपलता के समुद्र में और फिर प्रिय के द्वारा सुसंगत अपने वस्त्रों के परिधान रूप समुद्र में फिर वस्त्रों की रचना के समुद्र में इस तरह अनेक प्रकार के रस भाव रूप अनुक्षण नये नये उन उन समुद्रों से वे अबलाएं बाहर ही न निकल पायीं और हे सखि ! ये फिर डूब गई । यह क्यों और कैसे इसका जब विचार करती है तो समझ में आता है ब्रज वर की कुमारिकाओं का ऐसा प्रभाव है कि हे प्रिय सखि ! ये पहले के जितने भी समुद्र हैं वे समुद्र जैसे समुद्र में नदियां समा जाती हैं उसी तरह ये सब समुद्र इनकी अपांग लहरों में समागये हैं । इसीलिये तो नवीन मेघ के समान श्याम शोभा वाले नन्द नन्दन उनके अपांग के स्पर्श से उन उन सभी समुद्रों के भावों को एक ही साथ अथवा क्रमशः सेवन (प्राप्त) करते हैं ॥२३० – २३३॥

भावैरेभिः स्वहृदयगतैस्तद्वशस्तत्स्वभावान्नान्यासक्तिः स्वपदकमलस्पर्शमात्राभिलाषाः ।
ज्ञात्वा सर्वास्तदभिलषितं दातुमादातुमासां प्रेष्ठः स्वात्माभिलषितमपि स्मेरहासो जगाद ॥२३४॥

अपने हृदयगत इन भावों से प्रिय उनके वश में हो गये उस प्रकार के उनके स्वभाव से इनकी अन्य में आसक्ति नहीं है केवल मेरे चरणकमल के स्पर्श मात्र की ही इन सब की अभिलाषा है ऐसा जानकर वे जो चाहती थी वह उनको दिया और प्रियतम जो उनसे चाहते थे उसे लेने के लिये मुस्कराते हुए बोले ॥२३४॥

मधुरमधुरभावानत्युदारान्सुगूढान् नयनकुवलयान्तेनेषदारात्प्रदर्श्य ।
यदखिलमपि चित्तं भर्तुरेताः प्रलोभ्य स्ववशगतमकुर्वंस्तत्र को वान्तरायः ॥२३५॥

अत्यन्त उदार एवं निगूढ अतिशय मधुर अपने भावों को नेत्रकमलों के प्रान्त से कुछ समीप से दिखाकर इन्होंने भर्ता के सम्पूर्ण चित्त को लुभाकर अपने वश में कर लिया इसमें अन्तराय क्या कर सकता है ॥२३५॥

यदर्थं सर्वस्वं स्वयमपि च तस्मिन्प्रियतमे पुरःस्थायिन्यक्ष्णोः पथमनुगते भावनिचयः ।
यदक्ष्णोरेवाभूत्तदुचिततरं यत्स्वयमपि प्रियस्तादृग्भावं भजति मिलनादेव च तयोः ॥२३६॥

सर्वस्व जिसके लिये है और स्वयं भी जिसके लिये है वे प्रियतम जब सामने खड़े हैं उनके नयन पथ-गामी होने पर जो भाव निश्चय है यह आंखों के लिये ही हुआ यह अत्यन्त उचित है क्योंकि स्वयं प्रिय भी उस प्रकार के भाव को उनके दोनों नेत्रों के मिलने से ही तो वैसे भाव को सेवन करते हैं ॥२३६॥

भवन्नयनवारिधे रसमयस्य तुङ्गोच्छलत् कटाक्षतरलाः प्रिया विविधभावरत्नान्यमी ।
बहिः प्रकटयन्ति तैरतिधनीव भूत्वाहमप्युदारतरमानसः किमपि वच्मि सन्तोषतः ॥२३७॥

रसमय आपके नयन वारिधि (समुद्र) के प्रिय ऊँचे उछलते हुए कटाक्षों से तरल ये अनेक प्रकार के भावरत्नों को प्रकट कर रहे हैं उन्ही रत्नों से मैं धनिक की तरह उदारमन हो कर सन्तोष से कुछ कहता हूं ॥२३७॥

ज्ञाता अपि चपलत्वं विदधति मद्वाचि ये भवद्भावाः । युष्मासु ते स्थिरा अप्यतिमौनं कुर्वते चित्रम्।२३८

जाने हुए भी ये आपके भाव मेरी वाणी में चपलता को करते हैं और आप में स्थिर होते हुए भी अत्यन्त मौन का अवलम्बन करते हैं ये आश्चर्य की बात है ॥२३८॥

व्रतनियमार्चलतुष्टा हृष्टान्विष्टा यदावयोः कार्ये ।
चिरनिभृतनिजमनोरथपूर्त्यै साऽदात्फलं किमपि ॥२३९॥

व्रत नियम और अर्चन से प्रसन्न हुई उस (कात्यायनी) ने अपने काम के लिये हर्षित होती हुई चिरकाल से गूढ अपने मनोरथ की पूर्ति के लिये अवर्णनीय फल दिया ॥२३९॥

येनातिप्रौढभावा निजनिजपतितामत्यभीष्टां चिरान्म-
त्पाणिग्राहेण सिद्धामिव सहजतया मय्यवेत्य स्वचित्ते ।
मामेवाऽपूजयन् स्रङ्मलयजकुसुमस्तोमताम्बूलमुख्यै-
रर्थैः प्रेमार्द्रभावाः स्फुरितमिव पुरः सर्वभावेन सर्वाः ॥२४०॥

अत्यन्त प्रौढभाव वाली तुम सबने अपने लिये चिरकाल से पति को कामना की थी जो तुम्हें अत्यन्त अभीष्ट थी वह कामना मेरे पाणिग्रहण से सहजरूप सेही सिद्ध होगई है ऐसा अपने चित्त में मेरे में समझ कर तुमने मेरी ही माला, चन्दन तथा पुष्पों से और ताम्बूल जिनमें मुख्य ऐसे द्रव्यों से प्रेमार्द्रभाव सहित तुम सब ने मेरी ही पूजा की है।२४०।

निवेद्य यत्रात्मप्रभृति निखिलं पुष्पतलयः स्वाभावोद्गारिण्यो विविधरसभूदृष्टय इमाः ।
पुरः पूज्यश्चाहं प्रकट इह तत्पूजनमिदं न भूतं नो भावि क्वचिदपि च नैवास्ति सुदृशः ॥२४१॥

जिस पूजा में आत्मा आदि का तो निवेदन किया जाता है और सुगन्ध के स्थान में अनेक प्रकार का जिनमें भावों का उद्गार है तथा विविध रस जिनमें उत्पन्न होता है ऐसी ये तुम्हारी दृष्टियां ही पुष्प हैं । सब से प्रथम पूज्य भी मैं ही हूं अतः प्रकटरूप से यह

तुम्हारे द्वारा किया गया है सुनयनाओं यह मेरा पूजन न तो पहले कभी हुआ और न कभी होगा और न इस समय है ॥२४१॥

अथात्र पूर्वपूजायाः फलं किमु भवेन्ननु । किंचास्या इति मच्चित्ते प्रादुरास्ते विचारणा ।२४२॥

मेरे मन में यह विचार हो रहा है कि यह तुम्हारी पूर्व पूजा का फल है अथवा इस पूजा का फल है ॥२४२॥

पूर्वपूजाफलत्वेन यद्यप्येषैव कल्पते । एतस्याः फलमेवैष भवितुं नान्यदर्हति ॥२४३॥

यदि पूर्व पूजा का फल है तो भी यह पूजा ही उसका फल है और यदि इस पूजा का फल है तो भी यह ही फल है अन्य हो नहीं सकता ॥२४३॥

साधनादधिकमेव फलं स्यादेकमेव तदिदं कथमेवम् ।
स्यादिति ग्रहिलवाक्कतिरत्र क्षीणयुक्तिगतिरस्त्वनुभू ॥२४४॥

सदा साधन से फल अधिक होता है परन्तु यहां तो साधन और फल एक ही है तो यह कैसे है इस विषय में जो आग्रही है उनको कोई युक्ति नहीं मिलती है यह तो अनुभव का विषय है अनुभव में युक्ति काम नहीं देती ॥२४४॥

अधुना निवेदनं परमग्रे भोगः फलं ततो भेदः । भवति तयोरिति न मतं पूजान्तस्थो हि मद्भोगः ।२४५।

इस समय निवेदन और निवेदन के बाद भोग फल इस तरह इन निवेदन और भोग में भेद होता परन्तु यहाँ तो पूजा के अन्त में ही मेरा भोग प्राप्त हुआ यह युक्ति संगत नहीं माना जाता ॥२४५॥

अद्भुताद्भुतमद्य तत्पश्यतात्र मृगीदृशः । साधनं तु भवद्गासि तेन मे वाञ्छितं फलम् ॥२४६॥

हे मृग नयनियों! इस अत्यन्त अद्भुत बात को तुम देखो कि साधन तो किया तुमने और उसका फल मेरा इच्छित हुआ अर्थात् तुम को मेरा मिलना होना चाहिये सो न हो कर मुझे तुम मिली हो ॥२४६॥

एवं सखि मन्येऽहं मदर्थमेव च कृतो व्रतारम्भः ।
यदहं निजवाञ्छितफलमाप्नोम्याप्स्यामि चाऽमन्दम् ॥२४७॥

इसलिये हे सखि ! मैं यह मानता हूं कि तुमने जो व्रत का आरम्भ किया वह मेरे

ही लिये किया इसीलिये मैं अपना चाहा हुआ खूब फल प्राप्त कर रहा हूं और आगे भी प्राप्त करूंगा ।।२४७।।

अथवा स्वार्थमेवतद्व्रतं कृतमिति ध्रुवम् । अहमेव भवत्यो यत्तदभून्मयि तत्फलम् ।।२४८।।

अथवा तुमने यह व्रत अपने ही लिये किया यह निश्चित है मैं ही तुम्हारा हूं इसलिये इस व्रत का जो फल हुआ वह मुझे प्राप्त हो गया ।।२४८।।

इत्थं पूजनतुष्टो ददामि वरमेतदितरदुष्प्रापम् । सततं भवतीनामहमृणी सुयुक्तश्च वशगश्च ।।२४९।

इस तरह तुम्हारी पूजा से प्रसन्न हुआ मैं तुम्हें यह वर देता हूं जो दूसरों के लिये कठिनता से भी प्राप्त नहीं हो सकता मैं सदा तुम्हारा ऋणी रहूंगा एवं सदा साथ रहूंगा और वश में रहूंगा ।।२४९।।

तदिमाः क्षपा मया सह रंस्यथ सर्वात्मभावसुलभेन ।
विकसितकुन्दलौकिकशारदरात्रीर्मुदा हसतीः ।।२५०।।

सर्वात्म भाव से सुलभ (इन रात्रियों में) (विकास को प्राप्त कुन्द पुष्पों से युक्त) जो लौकिक शरद रात्रियां हैं उनमें प्रसन्नता से हंसती हुई मेरे साथ रमण करोगी ।।२५०।।

निष्कलङ्कनिशानाथनवोदयभृशारुणैः । किरणैरारुणीभूतनवपंक्तिमनोहराः ।।२५१।।

मद्भावोदय एवायं व्याजात् कुमुदिनीपतेः । करव्याजान्मेनुरागरञ्जिता वनपङ्क्तयः ।।२५२।।

भ्रमद्भ्रमरजुष्टसत्कुवलयावलीभिर्भवद्विलोचनयुगेषु मद्रमणमाशु भावीति वै ।
मुदा कथयतीर्निजोपरि गतामृतांशूद्गतं प्रमोदभरताभिरुत्तमरतं समं चाग्रतः ।।२५३।।

निष्कलङ्क निशानाथ (चन्द्र) के उदय से अत्यन्त अरुण (लाल) किरणों से अरुणीभूत यह वनपंक्ति बड़ी ही सुहावनी लग रही है। यह चन्द्रमा के उदय का तो केवल व्याजमात्र है यह तो मेरे भाव का उदय हो रहा है। और यह वनपंक्ति चन्द्र की किरणों से अनुरञ्जित नहीं है किन्तु मेरे अनुराग से अनुरञ्जित है। भ्रमण करते हुए भ्रमरों से युक्त ये कुवलयों की पंक्तियों से ये भ्रमर तुम्हारे नेत्र युगों में मेरा रमण शीघ्र ही होगा इस बात को बड़ी प्रसन्नता से कहला रहे हैं और तुम्हारे ऊपर विद्यमान अमृतांशु (चन्द्र) से उद्भूत प्रमोद भरताओं के साथ उत्तम रति की सूचना दे रहे हैं ।।२५१-२५३।।

कुवलयमरन्दपानोन्मदमधुपकुलातिमधुरझङ्कारैः । ज्ञापयतीर्भवदमृतप्रमुदितमद्गानमुत्तारम् ।।२५४।।

कुवलयों के मकरन्द पान से मत्त भौरों की अत्यन्त मधुर झङ्कारों से भ्रमर पंक्ति यह ता रही है कि तुम्हारे अमृत से प्रमुदित जो मेरा गान है वह बहुत ऊंचे तारस्वर से होगा ।।२५४।।

प्रतिदलमुन्मदमधुपस्थित्या संशोभिमण्डलाकारम् । प्रत्येकं भवतीनां ज्ञापयती रमणमुद्वेलम् ।।२५५।।

प्रत्येक पत्र के ऊपर उन्माद युक्त भंवरों की उपास्थिति से मण्डला कार से शोभित तुम्हारे प्रत्येक के लिये निःसीम रमण की सूचना मिल रही है ।।२५५।।

अत्यासक्त्या मुकुलितमपि कमलं व्याप्तुमिच्छता ह्यलिना ।
मानाकुञ्चिततावकनयनकरेष्वनुसृतिं मेऽत्र ।।२५६।।

अत्यन्त आसक्ति वाला भंवर कुमुलित (बन्द) कमल में व्याप्त होने की इच्छा से स बात को सूचित कर रहा है कि मानके कारण जिसने नेत्र बन्द कर लिये है इस प्रकार ो स्थिति से युक्त तुम्हारा मैं इसी प्रकार अनुसरण करूंगा ।।२५६।।

मानतनवतरुपल्लवकुसुमस्तबकेषु संरतोत्तानैः । मधुपैः संसूचयतीर्विपरीतरतं कृशोदर्यः ।।२५७।।

नीचे की ओर उलटे झुके हुए नवीन वृक्षों के पत्र और पुष्पों के गुच्छों में उत्तान हो र रति करने वाले भ्रमर हे कृशोदरियों ! मेरे द्वारा होने वाली विपरीत रति की सूचना े रात्रियां दे रही हैं ।।२५७।।

तकुसुमस्तबकमलन्मकरन्दधारो क्षरणेन मधुपानाम् ।
सिञ्चनमिह जलविहृतौ ज्ञापयतीर्मे भवज्जनितम् ।।२५८।।

नीचे की ओर जिनके फूलों के गुच्छे है उनसे टपकती हुई मकरन्द की धारा भंवरो को ञ्चित कर रही है इससे मेरी तुम्हारे द्वारा जल विहार की सूचना इन रात्रियों के द्वारा ल रही है ।।२५८।।

न्द्रांशुरागव्याजेन स्मारारिनमुदितं वने । त्रिगुणानिलफुत्कारैः शनैर्दीपयतीर्नवम् ।।२५९।।

ुनाज्जनशुचिनाप्यतिसभयेनापि पल्लवस्पर्शे । भवदर्थमेव निखिलं कृतमिति पवनेन सूचयतीः ।२६०।

रा दग्धस्य कामस्य सपद्येव भवद्दृशा । जीवितस्यानिलव्याजाद्वहतीः प्राणमारुतम् ।।२६१।।

सख्यं त्यक्त्वानलेन प्रकृतमपि रतिप्राणनाथेन साकं
कृत्वा मन्येऽनिलोऽसौ वहति यदनलः सोऽरिरस्येति म
शैत्यं ताद्दग्वहत्यात्मनि यदखिलमग्याशु निर्वापयेत्तत्
स्तेयी च स्वप्रियार्थं परिमलधनिनां तत्सङ्कोतिमन्दः ।।२६

मन्दानिलानीतविचित्ररागपरागचन्द्रातपचारुमध्याः ।
भृङ्गाङ्गनारङ्गगलद्विचित्रप्रसूनमालादलकीर्णभूमीः ।।२६

चन्द्रमा की किरणों के मिस से वन में उदय को प्राप्त हुई जो नवीन कामाग्नि है शीतल मन्द सुगन्ध त्रिविद्य वायु को फूंक के द्वारा धीरे धीरे प्रज्जालित करती हु यमुना में स्नान करने से पवित्र होने पर भी पत्तों के स्पर्श में अत्यन्त भयभीत होती भी वायु से तुम्हारे ही लिये यह सब कुछ मैंने किया है ऐसी सूचना दिलाती हुई । पू जले हुए काम को शीघ्र ही तुम्हारी दृष्टि से जीवित किये हुए को प्राण वायु को हवा व्याज (मिस) से धारण करती हुई । अग्नि के साथ जो सहज मित्रता है उसे छोड़ और रति प्राणनाथ (काम) के साथ वायु ने मित्रता कर ली है । इसलिये मैं ऐ मानता हूँ कि कामदेव यह मानता है कि यह अग्नि मेरे मित्र वायु का शत्रु है इसलिए काम मेरी आत्मा में ऐसी ठंडक पहुंचाता है जिससे उस सम्पूर्ण अग्नि को शीघ्र ही बु देता है । इधर यह वायु भी अपने पित्र के लिए सुगन्ध रूप धन जिनके पास है उस को चुराने के लिए यह भी सशङ्क और मन्द मन्द बहता है । मन्द वायु के द्वारा ला गया विचित्र रागपराग और चन्द्रमा की चन्द्रिका से सुन्दर है मध्य भाग जिसका भृङ्ग नाओं के रङ्ग (क्रोड़न) से नीचे गिरते हुए विचित्र पुष्पों की माला के पत्रों से व्याप्त भूमि जिसकी ।।२५९-२६३।।

कुलकम्—खञ्जनयुगमथ कुवलययुगलं मीनद्वयं यदि स्याद्वा ।
विमले विधौ तदाऽस्मिन्कथमपि भवदास्यसाम्यं स्यात् ।।२६

स्वच्छ चन्द्रमा में यदि दो खञ्जन हों या दो कमल हों अथवा दो मछलियां हो किसी तरह तुम्हारे मुख की समानता इस चन्द्र में हो सकती है ।।२६४।।

निशानामानन्त्येऽप्ययि यदि न ता नाशरहिताः क्रमाच्चेत्स्ह्येकतरविधुनार्थः सखि भवेत् ।
मदीयप्रत्यङ्गाभिधनवरजन्यस्तु न तथेत्यमी वक्त्रव्याजादुचितमुदितास्ततसितकराः । २६

अरी ! रात्रियां यद्यपि अनन्त हैं परन्तु वे नाश रहित नहीं है और हे सखि ! वे क्रम से हों तो फिर एक चन्द्रमा से ही काम चल सकता है । मेरे ये प्रत्यङ्ग जिन नाम है ऐसी ये रात्रियां वैसी नहीं है इसलिये इन कुमारिकाओं के मुख तो केवल व्याज मात्र है किन्तु ये वास्तव में चन्द्रमा है इसीलिये तो इन मुखों की श्वेत किरणें फूट रही हैं ।।२६५।।

मदङ्गमेघविद्युतो भवत्य इत्यनुक्षणं न सम्भवत्यहो सखि दृशापि दृश्यतात्र वः ।
स्थितिश्च सन्ततं मयीत्ययं सु भावसञ्चयः कदाचिदन्यथा न भाव्यये मयैव पोषितः ।।२६६।।

मेरे अङ्ग रूप मेघ के लिये तुम बिजली रूप हो परन्तु हे सखि ! बिजली तो हर क्षणमें नहीं रहती है और तुम्हारी स्थिति तो मेरे में निरन्तर देखी जाती है अतः यह भाव सञ्चय कभी भी अन्यथा नहीं होगा क्योंकि यह मेरे द्वारा पोषित है ।।२६६।।

प्रसरदसितापाङ्गै र्ध्वान्तं मुखेन्दुचयैश्च भा युगपदिह यत्प्रादुर्भूते तदत्र विचारितम् ।
गमनसमयेऽत्रान्या दृष्टिर्यथा न पदं लभेत् तत इह सुखं भूयादेवं भवत्कृतसाधने ।।२६७।।

प्रसरण करते हुए श्याम अपाङ्गों से तो अन्धकार और मुख समुदायों से कान्ति इन दोनों का प्रादुर्भाव यहां एक ही समय में प्रकट हुआ है अतः इनने यह विचारा कि अन्धकार के कारण तो गमन के समय (अभि सरण) में यहाँ जैसे अन्य दृष्टि को कोई स्थान नहीं मिलेगा और इसके बाद तुम्हारे किये हुए साधन में सुख होगा ।।२६७।।

भवदीयदृगञ्चलस्पृगप्यचलं भावमिमं लभेत हि । भवतीषु सदैकरूपतेत्यलमुक्त्यातिविशुद्धजातिषु ।२६८।

तुम्हारे दृगञ्चल चञ्चल हैं परन्तु उस का स्पर्श करने वाला भी यह भाव अचलता प्राप्त करे क्योंकि तुम विशुद्ध जाति की हो अतः तुम्हारे में सदा एक रूपता है अतः अब अधिक क्या कहें ।।२६८।।

किमतःपरमधिकं ननु वाच्यं यद्भवदपाङ्गसङ्गेन । अहमपि निजपुंलक्षणभावं प्राप्नोमि नेतरथा ।२६९

इस से अधिक और क्या कहा जाय कि तुम्हारे अपाङ्ग के सङ्ग से ही मैं अपने पुंलक्षण भाव को प्राप्त करता हूं अन्यथा नहीं अर्थात् ब्रह्मरूप होते हुए भी मैं तुम्हारे अपाङ्ग के सम्बन्ध से पुरुष बनता हूँ ।।२६९।।

अपि चापाङ्गसङ्गेन तथात्वे का विचित्रता । यदेतत्स्मृतिरप्यस्मास्वपाङ्गं कुरुते स्फुटम् ।२७०।।

अपाङ्ग के सङ्ग से यदि ऐसा हो जाय तो इसमें विचित्रता क्या है इनकी स्मृति भी हमारे स्पष्ट रूप से अपाङ्गता कर देती है ।।२७०।।

तस्माद्धुना यात व्रजमबला यत् पुरोवभात्येषः । चण्डांशुः कुवलयकुलसङ्कोचकृनावसङ्कोचः ॥२७१॥

इसलिये हे अबलाओं ! अब तुम व्रजमें चली जाओ क्योंकि अब यह चण्डांशु प्रचण्ड किरणों वाला सूर्य कुवलय कुल को संकुचित करने में भी जिसे संकोच नहीं हैं वह सामने दिखाई दे रहा है ॥२७१॥

इति निजनिजप्राणेशस्योदिते वचने मुदा श्रवणपथगे भाविप्रेष्ठाङ्गसङ्गविनिश्चयात् ।
य इह मुदकूपाराः प्रादुर्बभूवुरहो गृहव्रजनसिकताकूटादप्योदका इव तेऽभवन् ॥२७२॥

इस प्रकार निज प्राणेश के वचन जब कानों में पड़े तो हर्ष के साथ अपने प्रियतम का सङ्ग निश्चित रूप से होना इस निश्चय से जो हर्ष के समुद्र उत्पन्न हुए उससे आश्चर्य तो यह हुआ कि गृहगमन में रेतकी के कूट से भी वे जलाशय की तरह हो गये ॥२७२॥

यदीयभाव एवासां सर्वविस्मारकोऽभवत् कथं तस्मिन् पुरःस्थायिन्यहो गेहगतिर्भवेत् ॥२७३॥

जिनका भाव ही इनके लिये सबका विस्मारक हो गया तब जब वे सामने खड़े हैं तो फिर घर जाने की गति उनमें कैसे हो सके ॥२७३॥

प्रायो यथाऽतिरणरङ्गविदग्धतातिमुग्धप्रनद्धकवचा अपि वीरवर्याः ।
शान्ते पुरः प्रतिभटे भवति स्वगेहमेवं व्रजन्त्यपि तथैव सुमध्यमास्ताः ॥२७४॥

प्रायः जैसे अत्यन्त रणरङ्ग में चतुरता से अत्यन्त सुन्दर कवच जिनने धारण कर रक्खा है ऐसे श्रेष्ठ वीर भी जब तक सामने वाला योद्धा शांत नहीं हो जाता तब तक वे घर नहीं जाते हैं इसी तरह ये सुमध्यमा भी अपने घर अब लौट रही हैं ॥२७४॥

तेपि यथा वीररसोद्भावप्राचुर्यविस्मृतान्यरसाः । आरणलाभादार्ति लभन्त एवं कृशोदर्यः ॥२७५॥

जिस तरह वे योद्धा भी वीररस के उद्भाव की प्रचुरता से अन्य रसों को भूल जाते हैं और जिस तरह जब तक रणलाभ न हो तब तक अर्ति को प्राप्त करते हैं उसी तरह उन कृशोदारियों ने भी किया ॥२७५॥

यथा कथञ्चित्तु स यदा कदाचिन्नाजाङ्गसङ्गं विदधातु नाथः ।
इत्थं चिरादिष्टमवाप्य हृष्टास्तदिच्छया जग्मुरिमाः स्वगेहम् ॥१७६॥

जिस प्रकार किसी तरह से वह हमारा स्वामी हमारे साथ अङ्ग सङ्ग को जब भी करे इस प्रकार की चिरकाल से जो अपनी अभिलाषा थी उसे प्राप्त करके प्रसन्न होती हुई और उसी इच्छा को लिये हुए ये सपने घर को लौटी ॥२७६॥

वचनादिष्टप्राप्तिज्ञानात् प्रियमभवदालि वचनं यत् । तस्यातो गृहगमनं युक्तं तासां तदाज्ञातः ॥२७७।

वचन के द्वारा इष्ट प्राप्ति होने से हे आली ! उनके लिये वह उनका वचन उन्हें बहुत प्रिय लगा । इसलिये उनकी आज्ञा से उनका घर को लौटना उचित ही था ।.२७७॥

अहं त्वेवं जाने प्रियसखि वरस्तुष्यतु परं भवत्वन्यन्मा वेत्यतिरतिभराक्रान्तहृदयाः ।
कृताः प्रागप्येता निजशिरसि बद्धाञ्जलिपुटा यथा पृष्टेनेवं स्वगृहगतिमत्योपि सपदि ॥२७८॥

हे सखि ! मैं तो ऐसा जानती हूँ कि केवल वर प्रसन्न हो जाय और दूसरा कुछ न हो इस प्रकार के अनुराग से आक्रान्त हैं हृदय जिनका ऐसी उनको पहले भी प्रिय ने निज सिर के साथ अञ्जलिबद्ध किया था उसी तरह अब उनसे पूछ कर उन्होंने शीघ्र ही घर लौटने की बुद्धि की ॥२७८॥

तथात्वेपि तदा प्रेयान् पुरःस्थित इति प्रियाः । मुदिताः सपदि प्रायस्तदभावाद्विपर्ययः ॥२७९।

घर लौटने के समय में भी उन प्रियाओं ने अपने प्रियतम को अपने सामने ही खड़ा समझा और प्रसन्न होती हुई गई यदि उसके विपरीत होते तो वे विह्वल हो जाती ॥२७९॥

ततोऽचिरादेव मुकुन्ददत्तवराप्तरात्रिष्वनवद्यभावाः ।
कुमारिकाः प्राणपतिप्रियाश्च प्रौढा विजहुर्निजवल्लभेन ॥२८०॥

इसके बाद शीघ्र ही मुकुन्द से दिये हुए वर को प्राप्त रात्रियों में शुद्ध भाव वाली उन कुमारिकाओं ने जो प्राणपति को बहुत प्यारी हैं प्रौढ हैं उन्होंने अपने वल्लभ के साथ विहार किया ॥२८०॥

इतोऽन्यत् सम्प्रार्थ्यं वरमिह वरीवर्ति किमु नः सदाऽस्मत्स्वामिन्यः पुलिनमुत कुञ्जं रसभुवम् ।
मुदा सङ्गेऽस्माकं कथमपि समागत्य हरिणा रमन्त्वस्माकं तच्चरणरजसा चास्तु रमणम् ॥२८१॥

इससे दूसरा और कोई ऐसा वर है जिसकी तुम प्रार्थना कर सकती हो ? सदा तुम हमारी स्वामिनियां हो कुञ्ज और पुलिन जो रसभूमि है वहाँ आनन्द के साथ हमारे हरिके सङ्ग में आ कर रमण करें और उनके चरण की रज से हमारा रमण हो ॥२८१॥

इति श्रीमद्गोपीजनचरणदास्याभिधमहापुमर्थावाप्त्यैयोज्झितसकलमोक्षाभिरुदितम् ।
मदीयात्मप्राणेन्द्रियहृदयदेशेषु सततम् । स्वयं भूयादेतद्भजनरससर्वस्वममलम् ॥२८

इस प्रकार श्रीमद् गोपीजनों के चरणों का दास्य नाम का जो महान् पुरुषार्थ उसकी प्राप्ति के लिये सभी प्रकार के मोक्षों को रुचि को जिनने छोड़ दी है उन गोपीज के द्वारा कहा गया (यह रस सर्वस्व) मेरे आत्मा-प्राण-इन्द्रिय हृदय देशों में निरन्तर स्वच्छ भजन रस का सर्वस्व हो ॥२८२॥

इति श्रीमद्व्रजवधूवल्लभाङ्घ्रिरजोर्थिना । रचितं रससर्वस्वं विठ्ठलेनाप पूर्णताम् ॥२८३ ।

इस प्रकार श्रीमद् व्रजाङ्गनाओं के वल्लभ श्री नन्दनन्दन के चरण रज की चाह वा विठ्ठल ने इस रस सर्वस्व को रचा वह पूर्णता को प्राप्त हुआ ॥२८३॥

इति श्रीमद्गोपीजनवल्लभचरणकमलयुगलैकशरणश्रीविठ्ठले-
श्वरविरचितं रससर्वस्वं सम्पूर्णम् ॥

॥ राग रामकली ॥

हरियश गावत चली व्रजसुंदरी, नहो यमुना के बीर ।
लोचन लोल बांह जोटोकर, श्रवरान झलकत बीर ॥१॥
बेनि शिथिल चारु कांधे पर, कटिपर अंबर लाल ।
हाथन लिये फूलन की डालियां, उर मुक्तामणि माल ॥२॥
जल प्रवेश कर मज्जन लागी प्रथप हेम के मास ।
जैसें प्रीतम होय नंदसुत, व्रत ठान्यो यह आस ॥३॥
तबलै चीर हरे नंद नंदन, चढ़े कदंब की डारि ।
परमानंद प्रभु वर देवे को, उद्यम कियो है मुरारि ॥४॥
वसन हरे सब कदंब चढाये ।
सोले सहस्र गोपकन्यन के, अंग आभूषण सहित चुराये ।
अति बिस्तार नीप, तरु, तामें, ले, ले, जहां तहां लटकाये ।
मणि आभूषण डार, डारन प्रति, देखत छबि मनहीं अटकाये ।
नीलंबर, पाटंबर, सारी, श्वेत पीत चुनरी अरुणाये ।
सूर श्याम युवतिन व्रत पूरण को, कदंब डार फल पाये ॥३॥

श्री कृष्णाय नमः ।
श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ।
श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ।

श्रृङ्गाररसमण्डनम् ।

❀ दानलीला ❀

॥ श्रीमत्प्रभुचरणप्रकटिता ॥

मुदा चन्द्रावल्या कुसुमशयनीयादि रचितुं सहासं प्रोक्ताः स्वप्रणयिसहचर्यः प्रमुदिताः ।
निकुञ्जेऽन्योन्यं कृतविविधतल्पेषु सरसां कथां स्वस्वामिन्याः सपदि कथयन्ति प्रियतमाम् ॥१॥

चन्द्रावली ने प्रसन्नता से अपने प्रणयी की सहचरियों को जो बड़ी प्रसन्न थी उन्हें पुष्पों की शैय्या आदि बनाने के लिये हँसते हुए कहा । और निकुञ्जों के अन्दर अनेक प्रकार की बनी हुई शैय्याओं के ऊपर बैठ कर शीघ्र ही अपनी स्वामिनी की अत्यन्त प्रिय और सरस कथा को कहने लगी ॥१॥

अशेषसुकृतोदयैरखिलमङ्गलैर्वेधसा मनोरथशतैः सदा मनसि भावितैर्निर्मिते ।
अहन्यतिमनोहरे निजगृहाद्विहारेच्छया सखीशतवृताऽचलद्व्रजवनेषु चन्द्रावली ॥२॥

जब सभी पुष्पों का उदय हुआ और जिस दिन सभी मङ्गल एकत्रित हुए सैकड़ों मनोरथों की मन में सदा भावना की तब उनके लिये विधाता ने ऐसे मनोहर दिन का निर्माण किया उस दिन वह चन्द्रावली विहार की इच्छा से सैकड़ों सखियों के साथ व्रज के वनों में चली ॥२॥

समुद्ग्रथितमालतीकुरबकादिपुष्पावलीगलत्परिमलोन्मदभ्रमरयूथसन्नादितम् ।
उदारमतिचित्रितं मृगमदादिभिर्बिभ्रती मनोभवमदापहं किमपि केशपाशं सखि ॥३॥

तब हे सखि ! जिनमें मालती-कुरबक आदि पुष्प गुंथे हुए हैं और उन पुष्पावली से निकलती हुई सुगन्ध से उन्माद को प्राप्त हुए भंवरों के झुण्डों का झंकार हो रहा है, तथा कस्तूरी आदि से उदार अति चित्रित जो कामदेव के मद को भी दूर कर देने वाला है ऐसे केशपाश को धारण किया ॥३॥

श्यामेन्दोरनुरूपां विधिरचितां तारकामहं मन्ये । यत्तत्करनखकिरणा न जातु सख्यस्त्यजन्ती माम् ॥४॥

हे सखियों ! मैं तो ऐसा मानती हूं कि श्यामचन्द्र (कृष्णचन्द्र) के अनुरूप ही विधाता के द्वारा रचित वह तारिका है । इसलिये तो इसके हाथों के नखों की किरणें इसे कभी नहीं छोड़ती ॥४॥

कुङ्कुममलयजमृगमदचित्रितकुसुमं तदीयधम्मिल्लम् ।
नो किन्तु कुसुमधनुषस्तूणीरं सज्जितं विधिना ॥५॥

केसर-चन्दन-कस्तूरी से चित्रित पुष्पों से युक्त उस(चन्द्रावली)का केशपाश, केशपाश नहीं था किन्तु विधिके द्वारा तैयार किया गया कामदेव का तरकस था ॥५॥

न धम्मिल्लो मौग्ध्यामृतजलमुचामेष निचयो न पुष्पाणीमानि त्रिदशपतिमौर्वीपरिणतिः ।
न मुक्तागुच्छानि प्रकटसुषमाम्भःकणभरो न काश्मीरोद्भूता सुभगतररेखा तडिदियम् ॥६॥

यह केशपाश केशपाश नहीं है किन्तु सौन्दर्य मृतजलके बरसाने वाले मेघों का समुदाय है, और इसमें लगे हुए ये पुष्प पुष्प नहीं है किन्तु यह तो कामदेव के धनुष की डोरी है। और ये मोतियों के गुच्छे जो इनमें लगे हुए हैं वे तो प्रकट परम शोभा के जलकणों का समुदाय है और इसमें जो केसर से बनी हुई जो सुन्दर पीली रेखा है वह तो बिजली है ॥६॥

निसर्गसुन्दरोऽप्यालि सूक्ष्मचित्राम्बरान्तरे । गूढो भाव इवैतस्याः सोऽदृश्यत विलक्षणः ॥७॥

हे आलि ! नैसर्गिक सौन्दर्य से युक्त महीन सुन्दर वस्त्र के अन्दर छिपा हुआ इसका विलक्षण भाव है । ऐसा दिखाई दे रहा था ॥७॥

मत्समर्पितसिन्दूररेखोपरि परिस्थिताम् । मुक्ताफलावलीमालि सीमन्ते बिभ्रती बभौ ॥८॥

हे आलि ! मेरे द्वारा लगाई गई सिन्दूर की रेखा के ऊपर विद्यमान मोतियों की माला को ये सीमन्त (केशविन्यास) में धारण करने से शोभा पा रही है ॥८॥

न सा सिन्दूररेखालि मुक्ताहारयुताऽपि तु । सफेनराजिराभाति पूरः सौभाग्यवारिधेः ॥९॥

हे आलि ! मोतियों के हार से युक्त यह सिन्दूर की रेखा-रेखा नहीं है किन्तु यह तो सौभाग्यसिन्धु के पूर की फेन पंक्ति है ॥९॥

वदनसुधाकरकिरणप्रसृतेर्मुक्तालतेरिदं चित्रम् ।
यत्कचनिचयतमोऽपि प्रियसखि सततं प्रकाशयति ॥१०॥

हे प्रिय सखि ! मुखचन्द्र की किरणों के प्रसार से और मोतियों की माला से यह बड़ा आश्चर्य है कि केशपाश रूप अन्धकार भी निरन्तर प्रकाश कर रहा है ॥१०॥

सुस्निग्धामलकुञ्चितमेचकसुभगालकावलिं तरुणि । वदनाम्बुजस्य परितो दधती रेजे सरोजाक्षी ॥११॥

हे तरुणि ! अत्यन्त चिकने स्वच्छ घुंघराले श्याम सुन्दर अलकावलिको मुखकमल के चारों ओर धारण करती हुई वह कमलनयनी शोभा पा रही थी ॥११॥

ईषद्धासविकाशविभ्रमगलल्लावण्यमध्वाननाम्भोजस्यालकषट्पदालिरमला मत्ताऽपि राधासखि ।
यत्स्वाभाविकझाङ्कृतीरपि मुदा विस्मृत्य नित्यं पिबत्यस्पन्दं तदिदं विभाति भुवने पङ्केरुहाक्ष्यद्भुतम्।१२।

हे राधा सखि ! ईषत् हास जिसमें विकास रूप है और विलास रूप लावण्य मधु जिसमें से टपक रहा है ऐसे मुख कमल का वे अलक रूप भ्रमर पंक्ति जो स्वच्छ और मस्त भी है वह अपने स्वाभाविक झङ्कार को हर्ष के कारण भूलकर बिना हिले डुले नित्य वदनारविन्द के मधु का पान करती हुई शोभित हो रही है । हे कमलनयनि! यह लोक में बड़ा आश्चर्य है ॥१२॥

नैतन्मुखं प्रियाया राकापतिरेव राजते विमलः । नेयं कुन्तलमालासुषमा मुग्धाः सखीदृशां ताराः॥१३॥

यह प्रिया का मुख मुख नहीं है किन्तु यह तो विमल चन्द्रमा ही है और यह कुन्तल माला की परम शोभा नहीं है किन्तु ये तो सखियों की आँखों के सुन्दर तारे हैं ॥१३॥

सकमलयमुनातरलोद्भूतानिलजातकम्पितव्याजात् । कन्दर्पकोटिशोभामलकचयोऽयं तिरस्कुरुते॥१४॥

कमलों से युक्त जो यमुना है उसकी चञ्चलता से उत्पन्न वायु से कम्पन के मिश से ये अलकावलि कोटिकन्दर्प के लावण्य को तिरस्कृत करती है ॥१४॥

विशाले भाले हीरकमणिगणस्वर्णखचितं स्फुरन्मुक्ताप्रोतं तिलकमलकाक्रान्तिरुचिरम् ।
ततस्तिर्यग्रेखं मृगमदमयं दीपकलिकानिभं सिन्दूरस्य प्रियसखि ततश्चारु दधती ॥१५॥

विशाल भाल के ऊपर हीरे जिसमें जड़े हुए हैं ऐसे स्वर्ण से युक्त और मोती जिसमें पिरोये हुए है ऐसा तिलक जो अलकावली से आक्रान्त होने के कारण शोभित है उसे धारण कर रक्खा है इसके बाद हे सखि ! दीपक की शिखा के सदृश लाल वर्ण वाली जिसमें प्रचुरता से कस्तूरी मिली हुई है ऐसी टेढ़ी सिन्दूर की रेखा धारण कर रक्खी है ॥१५

रेजे मुक्तामयो बिन्दुः कस्तूरीतिलकान्तरे । चलत्कादम्बिनीराजद्राकापतिरिवामलः ॥१६॥

कस्तूरी के तिलक के अन्दर लगा हुआ मुक्तामय बिन्दु ऐसो शोभा दे रहा है जैसे चलायमान मेघमाला के अन्दर निष्कलंक शोभा दे रहा हो ॥१६॥

न भ्रूलता सा न विलोचने ते न विभ्रमास्ते सरसीरुहाक्ष्याः ।
कौमारलीलाजितकाममौर्वी बाणा धनान्येव विलुण्ठितानि ॥१७॥

उस समय उस कमलनयनी की भ्रूलता भ्रूलता नहीं थी न उसके नेत्र नेत्र थे और विलास विलास नहीं था किन्तु भ्रूलता तो कौमारलीला से पराजित काम की बाण की डोरी थी और नेत्र बाण थे तथा बिलास उसके लूटे हुए धन थे ॥१७॥

त्रिभुवनजयमदजनितत्रिवक्रतामालि बिभ्रती तद्भ्रूः ।
मधुसूदनमपि जेतुं सपदि व्यग्रेव चपलास्ते ॥१८॥

हे आलि ! तीनों लोकों को जिसने जीत लिया है उसके अभिमान से उत्पन्न हो गई है त्रिवक्रता (तीन जगह टेढा पन) जिसमें ऐसी भ्रू को धारण करती हुई अब तो वह भ्रू मधुसूदन (नन्दनन्दन) को भी शीघ्र जीतने के लिये उतावली हो रही है ॥१८॥

ज्ञातं मया सखि पुरैव नवानुरागराकाकलानिधिरुदेष्यति तद्धृदीति ।
यत्तस्य कोमलकरप्रसृतिः सरागा नेत्रद्वयेतिरुचिरा प्रकटा बभूव ॥१९॥

हे सखि ! मैंने तो पहले ही जान लिया था कि अब नवीन अनुराग रूप पूर्णिमा का चन्द्रमा उसके हृदय में उदित होगा । क्योंकि उस चन्द्र की कोमल किरणे फूट रही है यह इसके लालिमा को लिये हुए सुन्दर दोनों नेत्रों से प्रकट हो रहा है ॥१९॥

ययास्त्रविद्ययाऽनङ्गो विजितस्तां मृगीदृशे । अद्योपदिशतो नेत्राचार्यौ श्रुतियुगे शनैः ॥२०॥

हे मृगनयनि ! जिस अस्त्रविद्या से काम पराजित हुआ था उस विद्या के नेत्र रूप आचार्य आज भी दोनों कानों को धीरे धीरे उपदेश दे रहे हैं । अर्थात् उसके नेत्र कानपर्यन्त पहुंचे हुए थे ॥२०॥

जगन्ति जेतुं चलिते दृशौ तन्मार्गावरोधे श्रवणद्वयेन ।
सरोषमुन्मार्गमिव प्रवृत्ते वक्राञ्चले रेजतुरालि तस्याः ॥२१॥

सभी लोकों को जीतने के लिये नेत्र जब चलने लगे तो कानों ने उनका मार्ग रोक लिया तब क्रोध के कारण हे आलि ! उन्मार्ग में प्रवृत्त हुए हों इस तरह उसके वक्राञ्चल शोभित हुए ॥२१॥

परिधायाञ्जनकञ्चुकमपाङ्गबाणैः श्रुतिदरीसंस्थम् ।
हन्तुं मदनमृगं तल्लोचनमृगयू विचारयतः ।२२॥

अञ्जन का कवच पहनकर कटाक्षरूप बाणों को कानरूप तरकस में रखकर कामदेव रूप हरिण की शिकार करने के लिये इन नेत्ररूप शिकारियों ने विचार किया है ॥२२॥

श्रवणयुगलेऽस्यास्ताटङ्के विचित्रमहामणिप्रकरकनकप्रादुर्भूतप्रभाजितभास्करे ॥
मदगजभवश्रीमन्मुक्ताफलैरपि मण्डिते कुवलयदलश्रेणीपूर्णोदरे सुविरेजतुः ॥२३॥

विचित्र महामणियों के समूह से तथा स्वर्ग से प्रकट हुई प्रभा से जिनने सूर्य को भी जीत लिया है और गजमुक्ता मे मण्डित तथा कमलदल की श्रेणी पूर्ण से है मध्यभाग जिनका ऐसे ताटङ्क (कर्णभूषण) जिसके दोनों कानों में हैं ॥२३॥

न भ्रूरियं चपलशैशवलीलयैव द्राङ्निर्जितस्य धनुरेव मनोजराज्ञः ।
नो लोचने सखि तदाहितपुष्पवाणौ सर्वस्वमेव हृतमस्य न ते विलासाः ॥२४॥

यह इसकी भ्रू नहीं है किन्तु चपलता जिसमें सहज है ऐसी बचपन की लीला से ही शीघ्र पराजित किये गये कामदेव रूपी राजा का यह धनुष ही है । हे सखि ! ये नेत्र नहीं है ये तो कामदेव जिन बाणों को रखता था वे बाण हैं । ये विलास नहीं है किन्तु उस कामदेव का जो सर्वस्व हरण किया था यह वह है ॥२४॥

स्यातां यदि राकेशौ तदुपरि च दिवाकरावुदेयाताम् ।
तर्हि तथाविधगण्डद्वयसाम्यं स्यात् सरोजाक्षि ॥२५॥

हे कमलनयनि ! यदि दो चन्द्रमा हो और उसके ऊपर दो सूर्यों का उदय हो तब उसके उस प्रकार के उन दोनों कपोलों की समानता हो सकती है ॥२५॥

नवकुङ्कुमपाटीररेखागण्डद्वये सखि विरेजिरे मृगदृशः प्रकटाः सुषमा इव ॥२६॥

हे सखि! नवीन केसर से युक्त चन्दन की रेखा जो उसके दोनों कपोलों पर है वह उस मृगनयनी की प्रकट परम शोभा की तरह है ॥२६॥

शुकतिलकुसुममदापहसुन्दरनासापुटे कुरङ्गाक्षी । अविदूरलम्बिमुक्ताफलमालोलं बभौ दधती ॥२७ ।

तोते की चोंच तथा तिल के पुष्प के मद को दूर करने वाली सुन्दर नासिका में उस

मृगनयनी ने कुछ हिलता हुआ और नजदीक ही में लटकता हुआ मोती पहन रक्खा था वह बहुत ही सुन्दर लग रहा था ॥२७॥

नासाग्रगतमुदारं मुक्ताफलमालि तन्न कमलाक्ष्याः । किन्त्वाधिक्यवशेन प्रकटः सुषमामृतस्यन्दः ॥२८॥

हे आलि ! नासिका के अग्रभाग में वह उदार मोती मोती नहीं है किन्तु उस कमल-नयनी का जो परम शोभा का अमृत है वह इतना अधिक है कि वह बाहर प्रकट हो रहा है उसी की बून्द यह मोती है ॥२८॥

जितबिम्बेऽधरबिम्बे शम्बररिपुशास्त्रगूढतत्वे सा । मुखकमलोदर इव तनुतररेखां बिभ्रती रेजे ॥२९॥

जिसने बिम्बफल को भी जीत लिया है ऐसे अधर के ऊपर कामदेव के शास्त्र में जो गूढतत्व है वह सब मुखकमल के मध्य में है इस तरह एक हलकी सी रेखा को धारण करती हुई शोभित हो रही थी ॥२९॥

निसर्गरागातिमनोहरस्य ताम्बूलरेखापरिरञ्जितस्य ।
स्मितोदितस्फीतरदांशुभूषाऽधरस्य सौन्दर्यमवाक्पथं मे ॥३०॥

स्वाभाविक लालिमा से अत्यन्त सुन्दर ताम्बूल की रेखा से परिरञ्जित, मन्दहास के कारण उत्पन्न हुई अत्यधिक किरणों की शोभा जिसकी ऐसे अधर का सौन्दर्य मेरी वाणी से अवर्णनीय है ॥३०॥

तनुतरसुभगाधरगतरेखा नहि घोषभूषणाङ्ग्यास्ताः ।
वागमृतजलधिपूरः स्रोतांस्येवेत सहचर्यः ॥३१॥

हे सहचरियों ! व्रजभूषणाङ्गी के अत्यन्त हलकी सी जो अधर के ऊपर रेखाएँ हैं वे रेखा नहीं हैं किन्तु वे तो वाणीरूप अमृत सिन्धु के पूर के स्रोत हैं ॥३१॥

अचिरांशुलता अपि द्विजालिव्यपदेशाद्यदतिस्थिरा बिभर्ति ।
व्रजनाथमनो विनोदकारि स्ववशे सा कुरुते न तद्विचित्रम् ॥३२॥

दांतों के व्याज से (मिश से) जो अत्यन्त स्थिर ऐसी बिजली को धारण कर रही है वह दन्तपंक्तिरूप स्थिर विद्युत् व्रजनाथ के मन का विनोद करने वाली है और उनको अपने वश में करती है यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है ॥३२॥

अयि प्रियसखि द्विजावलिरियं न किन्तु प्रियानुरागरसरञ्जिता रतिरसामृतश्रेणयः ।
ददाति तदियं सदा रहसि माधवायैव सोऽप्यमन्दमनुरज्यते रतिरसज्ञचूडामणिः । ३३॥

अरी प्रियसखि ! यह दांतों की पक्ति नहीं है किन्तु प्रिय के अनुराग से रंगी हुई रति रसामृत की पंक्तिया हैं। ये सदा एकान्त में माधव के लिये ही रति रसामृत का दान करती है और रसज्ञचूडामणि वह माधव भी इनसे खूब अनुराग करता है ॥३३॥

मुखचन्द्रमयूखा वा किं वा हीरकराजयः । दाडिमीबीजपङ्क्तिर्वेत्यनिर्धारो रदेष्वभूत् ॥३४॥

उसके दांतों के विषय में यह निश्चय नहीं हो सका कि ये मुख चन्द्र की किरणे हैं या हीरों की पंक्तियां है अथवा दाड़िम के बीजों की पंक्ति हैं ॥३४॥

आधिक्यादधरसुधा स्खलेदिति प्राप्तशङ्कया विधिना ।
रचिते तदुपष्टम्भे चिबुके पाटीरमादधती ॥३५॥

अधर सुधा के अधिक होने से कहीं वह अधर सुधा बाहर बहकर निकल न जाय इस आशंका से विधाता ने उसको रोकने के लिये बनाये गये चिबुक के ऊपर चन्दन को धारण किये हुए थी ॥३५॥

अस्मिन्मुखेन्दौ मदनेन्दुपद्माधिक्यकारिता मात्रकलङ्कितेति ।
प्रकाशयन्ती चिबुकेऽञ्जनस्य बिन्दुं विरेजे दधती मृगाक्षी । ३६॥

निष्कलंक मुखचन्द्र को सकलंक मदन-इन्दु और पद्म से समानता लाने के लिये मृगाक्षी ने अपने चिबुक के ऊपर अञ्जन को बिन्दु को धारण कर रक्खी थी ॥३६॥

किं वर्णयामि सख्यश्चिबुकगतश्यामबिन्दुसौन्दर्यम् ।
मन्ये रसिकशिरोमणिमाधवमन एव तल्लग्नम् । ३७॥

हे सखियों ! चिबुक के ऊपर लगाई हुई उस श्याम बिन्दु की सुन्दरता का मैं क्या वर्णन करूं मैं तो ऐसा मानती हूँ कि रसिक शिरोमणि माधव का मन ही वहाँ लगा हुआ है ॥३७॥

किमयममलो राकाधीशो न तत्र मधुव्रताः कमलमथवा स्मेरं तत्राचिरांशुलता न हि ।
किममृतमयोऽपूर्वो मेघो न तत्र हि खञ्जनाविति शशिमुखाम्भोजं कासां न संशयभूरभूत् ॥३८॥

क्या यह मुख निष्कलङ्क चन्द्रमा है यदि चन्द्रमा है तो वहां भ्रमर नहीं हो सकते

इससे (भंवरों के होने से) यदि इसे हम कमल कहें तो उसमें बिजली तो रहती नहीं यदि इसे हम बिजली (दन्त पंक्ति) के होने के कारण इसे अमृतमय अपूर्व मेघ माने तो उसमें दो खञ्जन (नेत्र) नहीं होते इसलिये यह शशिमुख कमल किन गोपियों के लिये संदेह नहीं देता अर्थात् इसके विषय में सभी को संदेह होता है ।।३८।।

सुधांशुसारं परिगृह्य वेधास्तदाननं यद्विदधेऽतियत्नैः ।
मालिन्यमाभाति तदम्बुजाक्षि तन्मण्डले चिह्नमिति प्रसिद्धम् ।।३९।।

ब्रह्मा ने चन्द्रमा के अन्दर जो सार भाग था उसे ग्रहण करके अत्यन्तयत्नों से इसका मुख बनाया । इसलिये हे कमल नयनि ! सारभाग के निकल जाने से उसमें मालिन्य दिखाई देता है वह मालिन्य ही उस चन्द्रमण्डल में चिन्ह के नाम से प्रसिद्ध हो गया।।३९।।

स्वरेण भुवनत्रयं विजितमित्यभिज्ञापकं तदुद्भवभुवि स्मरस्मयहरे स्वकण्ठे बभौ ।
व्रजेशभुजभूषणे सखि मनोज्ञरेखात्रयं स्वरत्रयमिव स्फुटं मलयजाङ्किते बिभ्रती ।।४०।।

इसने अपने स्वर के द्वारा तीनों लोकों को जीत लिया है इसकी पहचान के लिये स्वर के उत्पत्ति के स्थान भूत काल के मद को दूर करने वाले अपने गले के ऊपर जो व्रजेश की भुजा का भूषण है हे सखि ! उसके ऊपर तीन सुन्दर रेखाए चन्दन से अङ्कित तीन स्वरों की तरह स्पष्ट रूप से धारण कर रक्खी थी ।।४०।।

मणिवरहीरकहाटकजटितं मुक्ताफलामलीप्रोतम् ।
प्रकट इव भावनिचयो भूषणमस्या बभौ कण्ठे ।।४१।।

मणियों में श्रेष्ठ हीरे सोने में जड़े हुए हैं और उसके अन्दर पिरोई हुई मोतियों की पंक्ति है ऐसा आभूषण इसके कण्ठ में भावों का समुदाय जैसे प्रकट हो उस तरह शोभित हो रहा था ।।४१।।

उरसि विविधमप्याकल्पभारं वहन्ती रतिरणजयभूमौ राधिकावल्लभस्य ।
अलमभिशुशुभेऽतिस्थूलगुञ्जामणीनामतिरुचिरमुदारं हारमाबिभ्रती सा ।।४२।।

राधिका वल्लभ की रतिरण की जयभूमि (रणाङ्गणरूप) उर स्थल पर विविध प्रकार की रचनाओं को धारण करती हुई अत्यन्त शोभित हो रही थी उसके ऊपर अति-स्थूल गुञ्जामणियों का अत्यन्त सुन्दर उदार हार भी पहन रक्खा था ।।४२।।

मृगमदपत्राङ्कितमुरुकुङ्कुमपङ्केन रूषितं रेजे । रतिपतिमङ्गलकलशद्वयमिव कुचयुग्ममेतस्याः ।।४३।।

मृगमद (कस्तूरी) के पत्र से अङ्कित और केसर के पङ्क से अलंकृत रतिपति (कामदेव) के दो मङ्गल कलश की तरह इसके दोनों कुच शोभा पा रहे थे ।।४३।।

कुचद्वयं नैव रसौघवित्तमेकीकृतं स्वं द्विविधं स्मरेण ।
न चूचुके किन्त्वपरो मुरारेः प्राप्नोतु मेत्यर्पितराजमुद्रे ।।४४।।

ये दोनों स्तन स्तन नहीं है किन्तु कामदेव ने रस समुदाय रूप जो दो प्रकार का धन है उसको इकट्ठा किया है और ये स्तनों के जो चूचुक हैं वे दो राज मुद्रा है जिस से इन स्तनों को मुरारि के सिवा अन्य कोई प्राप्त नहीं कर सकता ।।४४।।

लावण्यामृतसरसि व्रजाङ्गनावपुषि खेलतः सख्यः । कोकौ कुचौ मनोज्ञौ संश्लिष्टाङ्गावतिस्नेहात् ।४५।

हे सखियों ! यह व्रजाङ्गनाओं का अङ्ग लावण्य का सरोवर है । इसमें ये दोनों कुच रूप चकवे जो बड़े सुन्दर है और खेलते हुए ये अत्यन्त स्नेह के कारण मिल गये हैं ।।४५।।

रतिरसभावद्वयमिव सर्वस्वमनङ्गभूभुज इवाल्यः । कुचयुगलं निजवसनाञ्चलेन सङ्गोपयन्ती सा।।४६।।

हे आलियों ! ये दोनों स्तन कामनृपति के रतिरस भाव के सर्वस्व है इसलिये इन दोनों स्तनों को अपने वस्त्र के आंचल से छिपा रही हैं ।।४६।।

काठिन्येन श्रीफलमतिसरसतया सुधासमूहं च सद्वृत्तमसृणताभ्यां जिग्ये कोकान् कुचद्वन्द्वम् ।।४७।।

इन दोनों स्तनों ने कठिन होने से श्रीफल को और अत्यन्त सरस होने से सुधा समूह को तथा सद्वृत्त (अच्छे गोल) एवं चिकने पन से चक्रावाकों को जीत लिया है ।।४७।।

सौन्दर्यसीम कुचकुम्भयुगं विधाय वेधाः कुदृष्टिभवदोषभियाञ्जनस्य ।
बिन्दुद्वयं यदकरोत्सखि तेन तत्र श्यामाग्रतेत्यहमये कमलाक्षि मन्ये ।।४८।।

अरी कमलनयनी ! सौन्दर्य की पराकाष्ठा को प्राप्त दोनों कुचकलशों को बनाकर विधाता ने किसी की खराब दृष्टि न लग जाय इस डर से कज्जल की दो बिंदु इनके ऊपर लगा दी है जिससे हे सखि ! इन कुचों के आगे श्यामता है ऐसा मैं मानती हूं ।।४८।।

गोपाङ्गनाङ्गसुषमामृतसरसि कुचाब्जयुग्ममतिसरसम् । मन्ये सखि संजातं यत्कोशोपर्यपि भ्रमरौ ।४९।

गोपाङ्गनाओं के अङ्गरूप अति शोभायमान अमृत सरोवर में ये अतिसरस दो कुच-कमल हैं ऐसा मैं मानती हूं और हे सखि ! इन दोनों कमल की कलियों के ऊपर दो भंवर भी हो गये हैं ।।४९।।

सुवर्णसितयूथिकाकुसुमनिर्मितां बिभ्रती कुरङ्गमदकुङ्कुमारुणकर्णैर्विचित्रां स्रजम् ।
विचित्रवसनान्तरे सखि विलक्षणां माधवप्रियाति शुशुभे कुचोपरि विहारमातन्वती ।।५०।।

सुन्दर वर्ण वाले जो श्वेत जुही के फूल हैं उनसे बनी हुई और मृगमद (कस्तूरी) तथा केसर के अत्यन्त लाल कणों से चित्रित माला जो बड़ी विलक्षण है । वह विचित्र वस्त्रों के अन्दर है और जो दोनों स्तनों के ऊपर विहार कर रही है हे सखि ! उस माला से माधव की प्यारी अत्यन्त शोभा पा रही है ।।५०।।

सुन्दरकुचहेमाम्बुजनाल इवालं व्यरोचत कृशाङ्गयाः । नाभीसरोभवः सखि तन्वी रोमावली तस्याः।५१।

हे सखि ! उस कृशाङ्गी के नभिकमल से उत्पन्न हुई हल्की सी रोमावली (बालों की पंक्ति) ऐसी अत्यन्त शोभा पा रही है जैसे ये दोनों स्तन तो सोने के कमल हों और यह रोमावली उसकी नाल (डण्डी) हो ।।५१।।

तनुतरकुवलयदलमयबाणः कुसुमायुधेन तन्वङ्गयाः । हृदयेर्पित इति सख्यो मन्ये नो रोमपंक्तिः सा ।५२।

हे सखियों ! कृशाङ्गी की वह रोमपंक्ति रोमपंक्ति मैं नहीं मानती हूँ किन्तु यह तो कामदेव ने उसके हृदय में अत्यन्त पतला कमल पत्रमय बाण हृदय में लगाया है ।।५२।।

स्वयं धूर्तो नाभीविवरकुहरस्थो रतिपतिर्मनो मीनं तस्या हृदि सरसि कौमारचपलम् ।
वशीकर्तुं सख्यो दधति गुणतारुण्यबडिशं तनौ तत्सूत्रश्रीर्न तु मसृणरोमावलिरियम् ।।५३।।

यह धूर्त कामदेव स्वयं तो नाभी के छेद में बैठ गया है और उस गोपिका का मन जो मछली रूप है वह मन इसके हृदय सरोवर में कौमार अवस्था के कारण अत्यन्त चपल है उस (मन) को वश में करने के लिये गुणतारुण्य रूप बडिश (जो मछली को पकड़ने के लिये एक कांटे में आटा वगैरा लगाते हैं) को इसने पकड़ रक्खा है और इसके शरीर की जो चिकनी रोमावली है वह रोमावली नहीं है किन्तु उसी बडिश की यह डोरी है।।५३।।

न सा रोमावली किन्तु तदीयहृदयोद्भवा । नाभीहृदे पतन्त्यालि रसधारेव राजते ।।५४।।

हे आली ! वह रोमावली नहीं है किन्तु उसके हृदय में उत्पन्न हुई रसकी धारा ही है जो इसके नाभी सरोवर में गिरती हुई शोभित हो रही है ।।५४।।

मत्तेभकुम्भसुषमामदहारितैव नो केवला किमुत केसरिगर्वितस्य ।
निर्वासितत्वमपि वर्तत इत्यतीव मध्ये कृशं सखि चकार विधिर्मृगाक्ष्याः ।।५५।।

हे सखि ! मस्त हाथियों के कुम्भ स्थल की परम शोभा के मद को दूर करने वाले स्तन ही केवल नहीं थे किन्तु अभिमानी सिंह के मद को दूर करने के लिये विधाता ने उस कमल नयनी का मध्य भाग भी बहुत कृश (पतली कमर) बनाया था ।।५५।।

न तन्मध्यं तस्याः किमुत रतिशास्त्रस्य निभृतं रहस्यं तद्वेत्ता शशिवदनि भोक्ता च न परः ।
घनश्यामादित्थं प्रथयितुमुदारेण विधिना कृता रेखा श्यामा सहचरि न रोमावलिरियम् ।।५६।।

हे चन्द्रवदनी ! उसका यह मध्य है या रति शास्त्र का छिपा हुआ रहस्य है उस रहस्य को जानने वाला ही इसका भोक्ता है घनश्याम के सिवाय अन्य कोई इसका भोक्ता नहीं है इस को प्रसिद्ध करने के लिये उदार विधाता ने हे सहचरि ! इस रोमावली से रेखा कर दी है ।।५६।।

न सा नाभिस्तस्याः किमुत सुषमासीधुसरितस्तनोरावर्तोऽयं कुवलयदलाक्ष्याः सहचरि ।
यतश्चेतोऽस्माकं चतुरतरमप्यत्र पतितं निमज्जत्येवेदं धृतिगतिविवेकादिरहितम् ।।५७।।

उस गोपी की वह नाभी है या परम शोभा रूप शरीर सरिता का वह आवर्त (भंवर) है। हे सहचरि ! उस कमलनयनी के इस भंवर में पड़ा हुआ हमारा अत्यन्त चतुर चित्त भी विवेक-धैर्य आदि से रहित होकर डूब ही जाता है ।।५७।।

विविधमणिजटितकनकप्रसूनलसदसितपट्टगुच्छाभ्याम् ।
लसतातिपीतदाम्ना शुशुभे ग्रन्थिः प्रियानीव्याः ।।५८।।

प्रिया की नीवी (अधो वस्त्र) की गांठ जिसमें अनेक प्रकार की मणियां जड़ी हुई है सोने के फूलों से शोभित श्याम पट्ट के गुच्छों से और अत्यन्त पीली डोरी से शोभा पा रही है ।।५८।।

अयि सखि नितम्बोऽस्या नाऽयं परं मदनप्रियासदनजघनोपान्ते कान्ते कुरङ्गविलोचने ।
विधिविरचितः कोशस्तस्या रसौघधनस्य यद्गुरुगुरुतरः शश्वद्गुप्तो हरिप्रणयास्पदः ।।५९।।

अरी सखि ! यह इसका नितम्ब नहीं है किन्तु मदनप्रिया रति का सदन जघन है इसके अन्त के समीप में हे कान्ते ! हे मृगलोचने विधाता के द्वारा रचित उसके रसौ धन का जो अत्यन्त गुरुतर निरन्तर गुप्त हरिके प्रेम का स्थान भूत खजाना है ।।५९।।

विचित्रमणिमेखलागतमनोज्ञमुक्ताफलप्रवेककृतजालकोद्ग्रथितघुर्घुरुघण्टिकाः ।
कलस्वनविमोहितत्रिदशवृन्दवृन्दारिकाः सरोजदललोचने सखि विरेजुरुद्यत्प्रभाः ।।६०।।

विचित्र मणि मेखला में रहने वाले सुन्दर मोतियों की उत्तमोत्तम जालियां हैं और उनमें गुथे हुए घुंघुरु हैं उन की सुन्दर ध्वनि से अप्सराएं भी मोहित हो जाती हैं हे कमल दल लोचने सखि ! उनकी निकलती हुई प्रभा से शोभा पा रही थी ।।६०।।

सुषमानिधानहरिकण्ठभूषणं विधिना मनोरथशतेन निर्मितम् ।
असितैरये सुभगकाचकङ्कणैः शुशुभेऽति बाहुयुगलं मृगीदृशः ।।६१।।

उस मृगनयनी की दोनों भुजाएं जिन्हें ब्रह्माजी ने अनेक मनोरथों से शोभा की खान हरि के कण्ठ को भूषित करने वाली बनाई थी वे भुजाएं अरी ! श्याम रंग के सुन्दर काच के कङ्कणों से अत्यन्त शोभित हो रही थी ।।६१।।

ततः कनककङ्कणावसितपट्टपुष्पाञ्चितौ ततश्च नवमुक्तिकाविरचितौ मुदा बिभ्रती ।
मनोज्ञकरयोः प्रिये सुमुखि राधिकावल्लभप्रियाति शुशुभे तयोर्विदधती समान्दोलनम् ।।६२।।

इसके बाद श्याम पट्ट एवं पुष्प से शोभित सोने के दो कङ्कण पहने और उसके अनन्तर दो कङ्कण मोतियों के बने हुए पहने तब हे प्रिये ! हे सुमुखि ! उन सुन्दर हाथों में राधिका वल्लभ की प्रिया उन कङ्कणों को आन्दोलित करती हुई अत्यन्त शोभा पा रही थी ।।६२।।

ततः पश्चाच्चामीकरसुघटितौ चारुवलयौ ततः सा गौराङ्गी मरकतमयावङ्गदवरौ
स्वबाह्वोरस्मन्मानसनयनपाशाविव दधत्ययि चेतः कासां प्रसभमहरन्नाम्बुजमुखि ।।६३।।

हे कमलनयनी ! इसके बाद उस गौराङ्गी ने सोने के सुन्दर बने हुए बढ़िया दो कङ्कण और मरकतमय दो बाजूबन्द दोनों हाथों में पहने । उसके ये बाजूबन्द क्या थे वे तो मानो हमारे मानस और नयनों के पाश (बांधने वाले) ही थे । अरी ! ये किन्हीं के चित्त का हरण नहीं करते थे ।।६३।।

विविधमहामणिजटिताः कनकमया मुद्रिकास्तदङ्गुलिषु ।
दशसु नखोदितदीधितिभूषासु विरेजुरेणाक्षि ।।६४।।

हे मृगनयनी ! अनेक प्रकार की उत्तम मणियां जिनमें जड़ी हुई है ऐसी सोने की बनी हुई मुद्रिकाएं (अंगूठियां) उसकी दसों ही अङ्गुलियों में थीं जो नखों की काँन्ति के साथ बहुत ही शोभा पा रही थी ।।६४।।

नेमौ बाहू बत बिसलते प्रेमपीयूषपूर्णे नो वा तस्या मृदुकरतले किन्तु पङ्केरुहे ते ।
नाप्यङ्गुल्यः सखि परमिमाः श्रेणयस्तद्दलानां नेमे चञ्चन्नखरमणयः किन्तु तेषां प्रभैव ।।६५।।

उसके ये दोनों बाहू नहीं है ये तो प्रेमामृत से पूर्ण कमल की लता है और इसके कोमल करतल नहीं हैं किन्तु ये तो कमल हैं और हे सखि ! ये अंगुलियां नहीं है ये कमल के पत्तों की श्रेणियां (पंक्तियां) हैं और ये चमकती हुई नखमणियां नहीं है किन्तु उस कमल की यह प्रभा है ।।६५।।

नो पाणिरेष कुसुमायुधबाणराजपङ्केरुहं न नखरा मणिकान्तिभाजः ।
किन्तु प्रियालि रतियुद्धविधौ जयाय कामार्पिताः सुमुखि शातशिलीमुखाग्राः ।।६६।।

यह हाथ नहीं है यह तो काम के पांचों बाणों में श्रेष्ठ कमल नाम का बाण है और मणि की कान्ति से युक्त ये नख नहीं हैं किन्तु हे प्रिय आलि ! ये तो रति युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिये हे सुमुखि ! आगे का भाग जिनका तीखा है ऐसे ये बाण इसे कामदेव ने अर्पित किये हैं ।।६६।।

मन्थरागतिरियं चरणानां बारणस्य कथमत्र करस्था ।
दृश्यतेतिसुभ[illegible] न कासां संशयः सखि बभूव तदूरौ ।।६७।।

हे सखि ! हाथी की मन्थर गति के समान गति [illegible] के चरणों में कैसे है और हाथी की सूंड के समान अत्यन्त सुन्दरता इसकी दोनों जांघों मे [illegible] दिखाई देती है इस विषय में किनको सन्देह नहीं होता है ।।६७।।

कदलीकाण्डविनिर्मितहिन्दोलास्तम्भयुगलमेवैतत् । कुसुमायुधस्य मन्ये तस्या नोरुद्वयं सख्यः ।।६८।।

हे सखियों ! ये उसकी दोनों जांघे नहीं है ये तो कामदेव के लिये केले के गर्भ से बने हुए हिन्दोले के दोनों खम्भे है ऐसा मैं मानती हूं ।।६८।।

तस्याः सानन्दगोविन्दमानसाया मृगीदृशः ।मन्ये रतिगृहस्तम्भद्वयं जानुद्वयं न तत् ।।६९।।

सर्वदा आनन्द जिनमें विराजमान है वे गोविन्द जिसके मन में विराजमान हैं उस मृगनयनी की ये दोनों जांघे जांघे नहीं है किन्तु ये तो रति के घर के दो खम्भे हैं ऐसा मैं मानती हूं ।।६९।।

विविधनूपुरसिञ्जितमोहितत्रिदशनाथवधूवरमानसम् ।
स्फुरदलक्तकरञ्जितमङ्गुलीष्वयि शुभे शुशुभे चरणद्वयम् ।।७०।।

अनेक प्रकार के नूपुरों की झंकार से अप्सराओं के उत्तम मानस को भी जिनने मोहित कर दिया है और अरी शुभे ! देदीप्यमान लाक्षारस से रञ्जित अंगुलियों से दोनों चरण बड़ी शोभा पा रहे थे ।।७०।।

स्मितलक्ष्मीलवलज्जितरतिपतिकृतचरणसरसिजप्रणतौ ।
प्रतिबिम्बितास्तदीयाश्चन्दनबिन्दूलयो न नखाः ।।७१।।

मुस्कराहट की शोभा के लेशमात्र से ही लज्जित हुए कामदेव ने उसके चरण कमल में जो प्रणाम किया तो उन चरणों में जो उस कामदेव के चन्दन की बिन्दुओं का प्रतिबिम्ब पड़ा वे ही बिन्दु चरणों में दीख रही है हे सखियों ! ये नख नहीं है चन्दन की बिन्दु हैं ।।७१।।

तस्याः कृष्णेन्दुसङ्गं हरिभजनदृशा भाविनं भावयित्वा तद्योग्यत्वार्थमेतच्छिशिरतरमये कुर्वता पादयुग्मम् ।
सारेणाम्भोरुहाणां सुचतुरविधिना चारु निर्माय सख्य-
स्तस्याग्रेष्वाहिता ये सितकिरणचयास्ते नखाख्यां भजन्ते ।।७२।।

हरि इसे स्वीकार करेंगे ऐसा दृष्टि से जानकर और उसका कृष्ण चन्द्र से संग होगा ऐसी भावना करके अत्यन्त चतुर विधाता ने अरी ! उसमें योग्यता लाने के लिये अत्यन्त शिशिर दोनों चरणों का निर्माण करते हुए कमलों के सारभाग से उनको सुन्दर बनाकर हे सखियों ! उसके आगे जो श्वेत किरणों का समूह रखा है वह श्वेत किरण समूह ही नख इस नाम को प्राप्त कर रहे हैं ।।७२।।

चरणाङ्गुल्याभरणान्यति रुचुरमन्दकान्तिकान्तानि ।
विषमानङ्गभुजङ्गमफणमणय इवैणशावाक्ष्याः ।।७३।।

उस मृगशावक नयनी के अत्यधिक कान्ति से सुन्दर चरणाङ्गुलि के आभरण विषम जो कामरूप भुजङ्ग उसके फण की मणियों की तरह अत्यन्त शोभा दे रहे थे ।।७३।।

तादृशचित्राञ्चलजुषि शिरसि विचित्रासनं सरोजाक्षी ।
दधिकलशं तदुपायनमिव दधती साधिकं शुशुभे ।।७४।।

उस प्रकार के विचित्रवस्त्र से युक्त मस्तक पर उस कमल नयनी ने विचित्र आसन (इंडोणी) रक्खा और उसके ऊपर मानों भेंट की तरह दही की मटकी रक्खी वह अत्यधिक शोभा पा रही थी ।।७४।।

अलोलग्रीवं सा दधिकलशिकां मूर्ध्नि सुभगा वहन्ती तारुण्यप्रभवमदतस्तुच्छवदिमान् ।
सुरेन्द्रब्रह्मादीनपि विगणयन्त्यालि सहजस्मितस्मेरव्रीडातरलितदृशा कान्न मुमुहे ।।७५।।

गर्दन का हिलना एकदम बन्द था ऐसे मस्तक पर अतिसुन्दर दही की मटकी का वहन करती हुई वह अपनी जवानी से उत्पन्न मद से ब्रह्मा इन्द्र आदि देवताओं को भी तुच्छवत् गिनती हुई है आलि ! उसके अपनी स्वाभाविक मुस्कराहट और सुन्दर लज्जा से चञ्चल दृष्टि से किनको मोहित नहीं किया था ।।७५।।

सखीशतवृताचलद्वलयकिङ्किणीनूपुराद्यमन्दकलसिञ्जिताञ्चितमनोज्ञगत्या वने
वयस्यसहितो व्रजाधिपसुतो व्रजन्तीं पुरो ददर्श सखि सुन्दरीमनतिदूरतस्तां मनाक् ।।७६।।

कङ्कण किङ्किणी और नूपुर की अत्यधिक झंकार से युक्त सुन्दरगति से सैकड़ों सखियों के साथ वह वन में चली । हे सखि ! अपने साथियों के साथ नन्दनन्दन ने आगे जाती हुई उस सुन्दरी को कुछ समीप से देखा ।।७६।।

चकितनयनं दृष्ट्वा दृष्ट्वा तदाननपङ्कजं न समशकदादातुं दृष्टिं मनागपि माधवः ।
निजसहचराशङ्कालज्जावधानमपि व्रजप्रियसखि तदा नाभूत्तस्य प्रियाहृतचेतसः ।।७७।।

माधव ने चकित नयनों से उसके मुख कमल को देखा तो उसके मुख से अपनी दृष्टि को जरा भी न हटा सके । हे व्रज प्रिये सखि ! प्रिया के द्वारा चित्त के हर लिये जाने से उनको उस समय अपने साथियों की शङ्का एवं लज्जा का भी ध्यान न रहा ।।७७।।

चन्द्रावलीसहासोक्तिगलत्परिमलाऽनिलः तत्सङ्गम इवांगेषु सङ्गतः पुलकं व्यधात् ।।७८।।

चन्द्रावली के हास से युक्त वचनों के द्वारा प्रकट मुख की गन्ध से युक्त वायु ने जब नन्दनन्दन के अङ्ग का सङ्ग किया तो मानो उसी के अङ्गों का यह सङ्ग हो रहा है जिससे अङ्गों में रोम खड़े हो गये (पुलकित हो गये) ।।७८।।

कथमस्या ननु सङ्गो भवेत्कथं वाऽत्र सहचराज्ञातः । इति चिन्तयन्नुपायं ज्ञात्वा हरिराह गोपालान्।।७९।।

साथियों को खबर न पड़े इस तरह से इसका सङ्ग कैसे हो इस प्रकार का विचार करते हुए और उसका उपाय समझकर हरि उन गोपालों से बोले ।।७९।।

गोप्यो गोरसविक्रियार्थमखिला गच्छन्त्यदत्त्वोचितं मद्दानं तदिहानयध्वमचिरान्मत्सन्निधौ गोपकाः ।
मा जातु स्पृशतोक्तिभिः परमिमा वाच्या इति स्वामिना
प्रोक्तास्तिष्ठत तिष्ठतेतिवचनास्तेऽत्रागमन् सत्वरम् ।।८०।।

सभी गोपियां मेरे कर को बिना चुकाये ही गोरस बेचने के लिये जा रही हैं इसलिये हे गोपों ! तुम उन्हें शीघ्र ही मेरे पास ले आओ । परन्तु यह ध्यान रखना कि उनका स्पर्श न हो तुम्हें तो इतना ही कहना है कि स्वामी ने यह कहलाया है कि तुम ठहरो ठहरो । ऐसा कहकर वे गोप शीघ्र ही वहां आ गये ।।८०।।

तत्र काचिदुवाचेतान् किमरे गोपदारकाः । आकारयति वो नन्दनन्दनो गोकुलाधिपः ।।८१।।

उन में किसी ने उनको कहा कि अरे गोप बालकों तुम्हारे गोकुल के अधिपति नन्दनन्दन हमें क्यों बुला रहे हैं ।।८१।।

कथमेवं वयं किं वा दास्यस्तस्य कुलाङ्गनाः । यात प्रतिष्ठयास्माकं न तवेयं विभीषिका ।।८२।।

हम कुलाङ्गना हैं क्या उसकी दासियां है जिससे वो हमें ऐसा कहला रहे है तुम अपनी प्रतिष्ठा लेकर लौट जाओ (उससे कह देना कि) हमें तेरा कोई डर नहीं है ।।८२।।

न वयं स्वत एव किञ्चिदुच्चैः कुलयोषित्सु ससाहसं वदामः ।
व्रजनाथवचः परं विधेयं क्षुधिताः किं ननु गच्छत स्वगेहम् ।।८३।।

हम अपनी ओर से साहस के साथ आप जैसी कुलाङ्गनाओं को उच्च स्वर से कुछ नहीं कह रहे हैं आपको व्रजनाथ की आज्ञा का पालन करना चाहिये । यदि आप भूखी हैं तो अपने घर चली जाओ ।।८३।।

मा यात नन्दशपथो व्रजनाथाज्ञां विना वने तस्य । वृन्दा स्त्री तद्विपिनं कुतस्तदीयं परं नः स्यात्।।८४।।

तुम्हें नन्दजी की शपथ है व्रजनाथ की आज्ञा के बिना वन में मत जाओ । यह वृन्दावन तो वृन्दा स्त्री का है उसका कैसे है यह वन तो हमारा है ।।८४।।

वक्रिमैव भवद्वाचि दृश्यते नन्वलौकिकम् । वक्रिमा किल शब्दस्य धर्मस्तस्य दृशाग्रहः ।।८५।।

तुम्हारी वाणी में निश्चयरूप से वक्रोक्ति है क्योंकि वक्रोक्ति ही शब्द का धर्म है और उसका ज्ञान दृष्टि के द्वारा ही होता है ।।८५।।

न्यायोपि पठितः किन्नु भवत्यातिविदग्धया । किमन्यायं पाठयितुमधुना त्वं समागतः । ८६।।

तुम अत्यन्त चतुर हो क्या तुम ने न्याय भी पढ़ा है ? तो क्या तू अब हमें अन्याय पढ़ाने के लिये आया है ।।८६।।

तावद्विलम्बमसहिष्णुरमन्दमञ्चत्काञ्चीकलापकलसिञ्चितमञ्जुगत्या ।
गोवर्धनाद्रिशिरसश्चपलोत्तरीयश्चन्द्रावलीनिकटमागमदम्बुजाक्षः ।।८७।।

उतने विलम्ब को सहन न कर सके और शीघ्र ही काञ्चीकलाप के शब्द से युक्त सुन्दर गति से गोवर्धन पर्वत के ऊपर से चपल है उत्तरीय जिनका ऐसे कमलनयन नन्दनन्दन चन्द्रावली के निकट आ गये ।।८७।।

मनोवचोऽगोचरलोचनान्तसौन्दर्यलेशं सुविचित्रवेशम् ।
स्मितश्रियाऽनङ्गविमोहनं सा ददर्श गोपेन्द्रकुमारमारात् ।।८८।।

मन और वाणी से अगोचर ऐसा लोचनान्त (अपाङ्ग) का जिनका सौन्दर्य है, विचित्र जिनका वेश है, मुस्कराहट की शोभा से जो कामदेव को भी मोहित कर देते हैं ऐसे गोपेन्द्र कुमार को उस चन्द्रावली ने समीप से देखा ।।८८।।

वदनसुधानिधिसुषमाजलधिनिमग्नां दृशं कुरङ्गाक्षी ।
नाशक्दुद्धर्तुं यत्सहैव सहसा मानोऽप्यासीत् ।।८९।।

उस हरिणनयनी ने मुख रूप सुधा निधि के परम शोभा रूप सिन्धु में दृष्टि डूब गई उसको वहाँ से निकाल न सकी और मन को भी सहसा ये ही स्थिति हो गई अर्थात् मन तथा दृष्टि वहाँ से हट न सकी ।।८९।।

अपाङ्गविभ्रमोत्तुङ्गतरङ्गैस्तन्मनोदृशौ । अगाधे पतिते ह्यास्तामशक्ते बहिरागतौ ।।९०।।

अपाङ्ग के विलास रूप ऊँची तरङ्गों में उसके दृष्टि और मन अगाघ अमृत सिन्धु में पड़ गये जिससे वे बाहर निकलने में असमर्थ हो गये ।।९०।।

धम्मिलं वा दधिकलशिकां मूर्न्धि संस्थापपितां वा तं मार्गं वा गमनमथवा कञ्चुकीमञ्चलं वा ।
देहं वा स्वं गृहमुत सखीवृन्दमेषा मृगाक्षी घोषाधीशात्मजमपि तदा नाविदन्मोहितेव ।।९१।।

उस समय वह ऐसी मोहित हो गई कि केशपाश को, सिर पर रक्खी हुई दहि की मटकी को, उस मार्ग को और किधर जाना है इसको और अपनी कञ्चुकी को तथा वस्त्र के आंचल की खबर न रही और उस मृगनयनी को अपने देह का घर का अपनी सखियों का यहाँ तक की नन्दनन्दन का भी मान भूल गयी ।।९१।।

ततोऽनकूलैरिव तत्तरङ्गै रपाङ्गपातैर्विततैरिवात्र ।
जालैर्विशालैर्वचनैः स तस्याः स्वसंविदं सख्यकरोदुदारः ।।९२।।

तदनन्तर अनुकुल तरङ्गों की तरह विस्तृत कटाक्षपातों से विशाल जाल रूप वचनों से हे सखि उन उदार नन्दनन्दन ने उसे स्वयं का ज्ञान करा दिया ।।९२।।

अस्यास्तदा प्रेष्ठतमे यदासीच्चातुर्यधैर्यादिकमत्र युक्तिः ।
नैवास्ति गोविन्दपदप्रतापानुभावमात्रेण विनेति मन्ये ।९३।।

उस समय उसका प्रियतम के विषय में जो चातुर्य धैर्य था उसके विषय में और कोई युक्ति तो समझ में नहीं आती परन्तु ऐसा मैं मानती हूं कि यह सब तो गोविन्द के चरण कमल के प्रताप के प्रभाव मात्र के बिना नहीं हो सकता है ।।९३।।

स्मेराननेन तरलाञ्चललोचनेन स्निग्धेक्षणेन दरहासरुचा स्वगत्या ।
किं वर्णितेन बहुना सखि पेशलैः स्वैः सम्मुह्य तां रसिकतानिधिराह नाथः ।।९४।।

मुस्कराहट युक्त मुख से चञ्चल अञ्चल युक्त नेत्र से स्नेह युक्त देखने से ईषद् हास्य की रुचि से अपनी गति से हे सखि ! और अधिक क्या वर्णन करें अपनी चतुराई से उसे मोहित कर रसिकता के निधिनाथ उससे बोले ।।९४।।

प्रबोधितेव गोविन्दवचनैः सापि सुन्दरी । अत्युद्भटं ददौ सख्यः प्रत्युत्तरमनुत्तरम् ।।९५।।

गोविन्द के वचनों ने मानों प्रबोधित होकर (होश में आ कर) उस सुन्दरी ने हे सखियों ! इस प्रकार का उद्भट उत्तर दिया कि जिसका कोई उत्तर न हो सके ।।९५।।

कथं गच्छस्यदत्वैव दानं गोरसविक्रये । सिञ्जत्काञ्चीकलापेन दर्शयन्ती स्ववैभवम् ।।९६।।

गोरसविक्रय के लिये हमारा लागा चुकाये विना ही झंकार युक्त काञ्चीकलाप से अपना वैभव दिखलाती हुई कैसे जा रही हो ।।९६।।

इयदवधि ते मदीया गतिरपि किं नावलोकिता सुभग ।
पश्येत्थमिति वदन्ती पदानि कतिचित्स्मयन्त्यचलत् ।।९७।।

हे सुभग इतने समय तक तेने मेरी गति को भी नहीं देखा तो देख मेरी गति इस तरह है ऐसा कहती हुई मुस्कराते हुए पैरों से कुछ चलने लगी ।।९७।।

न सम्यगवलोकिता गतिरियं त्वदीया मया मनाङ् निकटमागता निजगतिं पुनर्दर्शय ।
अहो कुलवधूजनं निकटमाह्वयन्निर्भयो भवान् जगति लक्ष्यते विपिनगोचरोत्युद्भटः । ९८।।

मैंने तुम्हारी गति को ठीक तरह से देखा नहीं इसलिये थोड़ी निकट आकर अपनी गति को फिर दिखलाओ । अहो बड़ा आश्चर्य है तुम इतने निर्भय (ढीठ) हो गये हो कि कुलवधू को अपने पास बुलाते हुए जगत में तुम वन में अपनी उद्भटता बता रहे हो ।।९८।।

अतः परं कुतो भीतिस्त्वत्सहायवतो मम । स्वसहायीकरोत्येष मामेवाहो विपर्ययः ।।९९।।

अब मुझे क्या डर है जब कि तुम मेरी सहायक हो बड़ा आश्चर्य है अरे ये तो मुझे ही अपनी सहायक कह रहा है कैसी विपरीत बात है ।।९९।।

गच्छत सख्यो गोकुलमेतद्वृत्तं वदन्तु नन्दाग्रे त्वद्धर्मराज्यमार्गे न श्रुतिविषयोऽङ्गनाधर्षः ।।१००।।

हे सखियों! तुम गोकुल में जाओ यह सारा वृत्तान्त नन्दजी से कहो । तुम्हारे धर्म राज्य के मार्ग है कुलाङ्गनाओं की इस तरह बेइज्जती हो रही है यह बात तुम्हारे कानों तक पहुँची ।।१००।।

तत् किं व्याजेनैव स्वगृहं गन्तुं करोषि चातुर्यम् । अहमासन्ध्यं गोप्यो गृहमपि गन्तुं न दास्यामि ।१०१

तो तुम क्या इस मिष से घर जाने की चतुराई कर रही हो हे गोपियों! मैं तुम्हें संध्या तक अपने घर भी नहीं जाने दूंगा ।।१०१।।

भवान् पुरुषभूषणः कथमु गोपिका त्वं वदत्यहो तदपि सावधि श्रवणमङ्गलं स्वात्मनि ।
बहुत्वमपि ते कथं व्रजकुमार लोकोत्तरा विभाति तव चातुरी विजितवादिजात्युत्तरा ।।१०२।।

पूर्व श्लोक में आये 'गोप्यः' पद को अन्यथा योजना करके गोपी कहती है कि आप तो पुरुष भूषण है फिर अपने में गोपिका पन कैसे कहते हो और फिर 'आसन्ध्यं गोप्यः' अर्थात् सन्ध्या काल तक मैं गोपिका हूं ऐसी कानों को आनन्द देने वाली अवधि भी आपने बताई। साथ ही अपने में 'गोप्यः' ऐसा बहुत पना भी बताया यह सब कैसे है हे व्रजकुमार ! तुम्हारी चातुरी बहुत लोकोत्तर मालूम पड़ती है वादी के जीतने में आपने न्याय शास्त्रान्तर्गत षोडशदोषों में जाति का अवलम्बन किया है ।।१०२।।

विश्वासमुत्पादयितुं स्त्रियोऽस्मान् ज्ञात्वा वदत्येवमयं मृगाक्षि ।
विनैव मद्वाचमये विशिष्टः श्वासो भवत्या भवति श्रमेण ।।१०३।।

अन्य सखी कहती है हे मृगनयनी ! यह तो हम को स्त्रियां जान कर विश्वास उत्पन्न करने के लिये अपने को गोपी कहता है अरी यह तो मेरी वाणी के विना ही ऐसा कहता है, तुम्हें श्रम से अधिक श्वांस उठ रहा है ।।१०३।।

किमधिकमधिकं ब्रूषे कुलाङ्गनास्त्वङ्ग नेदृशं वचनम् ।
सोढुं शक्ताः परमिह किं कुर्मो नन्दराजसुते ।।१०४।।

तू अत्यधिक क्या बोल रहा है अरे ! कुलाङ्गनाएं ऐसे वचन को सहन नहीं कर सकती परन्तु करें क्या तू नन्दराय का पुत्र है ।।१०४।।

गोकुलेश गृहं गन्तुं न ददासि कुतः स्त्रियः । वृन्दावने मृगदृशां दानं लगति मामकम् ।।१०५।।

हे गोकुलेश ! तू घर क्यों नहीं जाने देता है । और फिर हम स्त्रियां हैं । वृन्दावन में मृगनयनियों का मेरा दान लगता है ।।१०५।।

अश्रुतपूर्वमिदं ननु किं तद्दानं लगत्यहो कुत्र । चरणे शिरसि करे वा पश्चादुत तद्वदास्माकम् । १०६।

यह तो नयी बात हम सुन रही हैं वह दान क्या है और कहां लगता है पैर में सिर में हाथ में या पीछे उसे तू हमें कह ।।१०६।।

अञ्चलेनापि कञ्चुक्या यद्गोपितमुरस्तव तस्मिन्निति वदन् वीरः करेणास्पृशदुद्भटम् ।।१०७।।

आंचल से और कञ्चुकी से छिपाया हुआ जो तेरा उरस्थल है उसमें ऐसा कहते हुए उस उद्भट वीर ने हाथ से उरस्थल का स्पर्श किया ।।१०७

कथं कुलवधूजनं स्पृशसि हन्त मर्मस्थले न भीतिमवलम्बसे सकलसेतवोप्युज्झिताः ।
सरोजदललोचने सततमित्थमेवाङ्गनाः स्पृशामि सखि ते कदा वसनसेतुरुल्लङ्घितः ।।१०८।।

बड़े दुःख की बात है तू कुलवधू जन के मर्मस्थल में स्पर्श कर रहा है तुझे जरा भी डर नहीं है तेने धर्म को सब सतुओं (मर्यादाओं) का उल्लङ्घन कर दिया है हे कमदलोचन मैं तो हमेशा इसी तरह स्त्रियों का स्पर्श करता हूं हे सखि ! मैंने कब तेरे वसन-सेतु का उल्लङ्घन किया है ।।१०८।।

वचनोक्तौ द्विगुणितमुत करोषि कामं करीवहृतसेतुः । त्वद्वचनसहकृतं मत्करणं द्विगुणं भवत्येव।।१०९।।

जैसे हाथी सेतु को तोड़ देता है उस तरह तुझ से कुछ कहते हैं तो उससे तू और दुगुना करता है मैं जो करता हूँ उसमें यदि तेरे वचन सहयता करते हैं तो काम दुगुना होता ही है ।।१०९।।

वाक्चातुरीधुरीणं जानीमस्त्वां तु नन्दनृपसूनुम् । अतिदुर्ललितं परमिह दानं दधिषु श्रुतं नैव ।।११०।।

तू नन्दराय का लड़का है और बोलने की चातुरी में तू धुरन्धर है यह हम जानती हैं । परन्तु अत्यन्त दुर्ललित दान दहि के विषय में हमसे सुना ही नहीं है ।।११०।।

किं नालिकेरफलभारमुताम्बुजाक्ष पुगीफलान्युत कुरङ्गमदं नयामः ।
पट्टाम्बराण्युत यतो लगतीह दानमित्युद्भटं वदसि गोकुलपालक त्वम् ।।१११।।

हे कमलनयन ! क्या हम नारियल का बोझा ले जा रही हैं या सुपारी अथवा कस्तूरी ले जा रही हैं क्या पट्ट (रेशमी) वस्त्र ले जा रही है जिसका कि यहां दान लगता है हे गोकुल पालक जिससे तू इस तरह उद्भटता से बोल रहा है ।।१११।।

गोपीषु गोरसस्यैव गृह्णीमो दानमङ्गनाः । भवन्तः के कुलस्त्रीषु वक्तुं वचनमर्भकाः ।।११२।।

हे अङ्गनाओं हम तो गोपियों में गोरस के ही दान को ग्रहण करते हैं । हे बच्चों ! कुल स्त्रियों से ऐसी बात कहने वाले आप कौन है ।।११२।।

विपिनचारिणो वारिसंस्थितान् वदसि वा कथं वल्लवाङ्गने ।
इयदवध्यदस्त्वस्त्वरूपमित्यहह नो मया ज्ञातमुत्तमम् ।।११३।।

हे गोपाङ्गने ! तुम क्या जङ्गल के जानवरों से कह रहो हो अथवा जलचरों से कह रही हो आश्चर्य है कि इतने समय तक मैंने तुम्हारा उत्तम स्वरूप नहीं जाना ।।११३।।

व्याजः परं सुन्दरि गोरसस्य कुतोऽस्त्यमूल्यं किमपीह वस्तु ।
उरः स्थलस्थायि नयस्यलक्ष्यं मदन्यपुंसो न तु तन्ममैव ॥११४॥

हे सुन्दरि ! यह गोरस का तो केवल व्याज (मिष) है परन्तु तुम्हारे पास एक अमूल्य कोई वस्तु है उसे तुम उरस्थल में स्थित करके छुपाकर ले जा रही हो वह वस्तु मेरे सिवा अन्य पुरुष की नहीं है वो तो मेरी ही है ॥११४॥

सततं वृन्दाकाननमागच्छामः परं पयोदानम् । नो जातु श्रुतमपि तत् कुतो वयं तेऽद्य दास्यामः ॥११५॥

सदा हम वृन्दावन में आती हैं परन्तु दूध का दान लगता है यह तो हमने कभी सुना नहीं तो फिर हम तेरे लिये कैसे दें ॥११५॥

अये यदद्यावधि चौररीत्या न दत्तमद्याहमशेषतस्तत् ।
दानं ग्रहीष्यामि सरोरुहाक्षि क्षणं पुरा विश्रम तत्त्वयैव ॥११६॥

अरी ! आज तक तुमने चौर की रीति से दान नहीं दिया था परन्तु आज वह सारा दान मैं ग्रहण करूंगा । हे कमलनयनी ! पहले एक क्षण विश्राम कर और वह दान तेरे से ही लिया जायेगा ॥११६॥

गता गावो दूरं प्रखरखुरचिह्नान्यपि वने न दृश्यन्ते हन्त द्रुततरमिहागच्छत ततः ।
इति श्रीगोविन्दः प्रियवचनमाकर्ण्य सभयम् । तदा गोपानाज्ञापयदुशति गोरक्षणविधौ ॥११७॥

गायें दूर चली गई हैं और उनके खुरों के निशान भी स्पष्ट दिखाई नहीं देते हैं अरे बहुत जल्दी आओ इस प्रकार गोविन्द ने समय प्रिय वचनों को सुनकर गोपों को शीघ्र ही गायों की रक्षा के लिये आदेश दिया ॥११७॥

गतेष्वखिलगोपेषु स्वेष्टमासीदिति प्रियम् । अतिप्रमुदिताः प्रोचुः प्रेमातिशयनिर्भयाः ॥११८॥

सब गोपों के चले जाने पर अब अपना चाहा हुआ प्रिय हो गया है इसलिये प्रेमतिशय से निर्भय होकर अत्यन्त प्रसन्न होते हुए बोले ॥११८॥

विपरीतमहो वयमेव किल व्रजगोपनितम्बिनि चौरजनाः ।
विपिने विजने प्रमदा रुन्धन् वरसाधुजनः स्वयमेव परम् ॥११९॥

हे व्रजगोपनितम्बिनि ! यह तो बड़ी विपरीत बात है कि हम ही यहाँ चौरजन हैं और निर्जन वन में स्त्रियों को रोकते हुए यह बड़ा भला आदमी है ॥११९॥

विपरीतं भवतीनां धर्मो नहि मे सुरोजमुग्धाक्षयः । तर्हि त्वत्तो दानग्रहणं युक्तं बतास्माकम् ॥१२०॥

हे कमल के समान सुन्दर नेत्रों वाली तुम्हारा धर्म विपरीत है मेरा धर्म विपरीत नहीं है तो फिर तुमसे दान ग्रहण करना हमारे लिये उचित है ॥१२०॥

बह्व्यो भवत्योऽहमिहैक एव करोमि किं न निजानुरूपम् ।
दानं बलात्कारिषु देयमेवेत्युच्चैर्वदन्निन्दुमुखीं चुचुम्ब ॥१२१॥

तुम तो बहुत हो और मैं अकेला हूं क्या करूं इसलिये अपने अनुरूप दान बलात्कार करने वाले को देना ही चाहिये इस तरह जोर से बोलते हुए उस चन्द्रमुखी का चुम्बन किया ॥१२१॥

कथमेवं कुलस्त्रीषु करोषि विजने वने । इत्थमित्थमिति स्मेरस्मितः प्रादान्नखं मुखे ॥१२२॥

इस तरह निर्जन वन में कुल स्त्रियों के साथ क्या कर रहा है । ऐसे ऐसे कर रहा हूं इस तरह मुस्कराते हुए मुख पर नखक्षत कर दिया ॥१२२॥

अङ्ग त्वदाननविलक्षणसौरभेण ताम्बूलरेखितकपोलयुगेन चाद्य ।
सौन्दर्यसीमनखराङ्कितवक्षसा च युक्ता निजं गृहमुदार कथं गमिष्ये ॥१२३॥

हे उदार ! तुम्हारे मुख की विलक्षण सुगन्ध से युक्त और ताम्बूल रेखा से चिह्नित कपोल से आज हम सौन्दर्य की पराकाष्ठ को प्राप्त नख से अङ्कित वक्षस्थल से युक्त अपने र कैसे जायेगी ॥१२३॥

कथं हारः क्षुण्णः कथमु वलयानां विरलता विलम्बः केनासीद्दधिकलशिका कुत्र किमभूत् ।
प्रियेत्थं पृष्टाहं निजगुरुजनाग्रे सरभसं किमाख्यास्ये स्त्रीणां परिजनवशो जीवनविधिः ॥१२४॥

अरे ! ये हार कैसे टूट गया और ये हाथ की चूड़िये विरल कैसे हो गयी, विलम्ब कैसे हो गया और तेरी दही की मटकी कहाँ है और ये क्या हुआ हे प्रिय ! इस तरह पूछे जाने र मैं अपने गुरुजनों (बड़ो) के सामने सहसा क्या कहूंगी स्त्रियों का जीवन तो अपने रिजनों के अधीन होता है ॥१२४॥

सत्यं स्त्रीणां जीवनमन्यायत्तं परं न गोपीनाम् । मदधीनमेव किन्तु प्रियसखि तत्ते कुतो भीतिः।।१२५।।

यह बात सत्य है कि स्त्रियों का जीवन अन्य के अधीन होता है परन्तु गोपियों का जीवन अन्य के अधीन नहीं है किन्तु हे प्रिय सखि ! तुम्हारा जीवन तो मेरे अधीन है तुझे डर किस बात का ।।१२५।।

गोकुलमखिलं तावकमनन्यशरणं विशेषतो गोप्यः ।
किन्तु त्वामिह किञ्चित् कश्चिद्‌ब्रूयादियं भीतिः ।।१२६।।

सारा ही गोकुल तेरा है और इसके रक्षक भी केवल तुम ही हो और विशेष रूप से गोपियों के तो रक्षक हो ही किन्तु ऐसे व्यवहार के कारण कोई कुछ तुम्हें कहे तो इसका डर है ।।१२६।।

वशीकर्तुं प्रविष्टेयं वाणी गोविन्दमानसम् । नाशक्नोद्‌बहिरायातुं प्रेमपूरान्तरायतः ।।१२७।।

यह गोपियों की वाणी गोविन्द के मन को वश में करने के लिये उनमें प्रविष्ट तो हो गयी किन्तु प्रेम के पूर में अन्दर ऐसी डूब गयी कि फिर वो बाहर आने में असमर्थ हो गयी ।।१२७।।

व्याजं किन्नु ब्रूषे भावं प्रकटीकरोषि किं नैव ।
नान्यः शृणोति कश्चित् किं भयमवलम्बसे नाथ ।।१२८।।

हे नाथ तुम मिष बनाकर क्यों बोलते हो तुम अपने भाव को क्यों नहीं प्रकट करते यहाँ तो कोई सुन नहीं रहा है फिर तुम्हें भय क्यों हो रहा है ।।१२८।।

कृशाङ्गि दधिभाजनं शिरसि ते भानाग् द्रष्टुमप्यहं बत न पारये विपुलभारमाभाति मे ।
तदत्र विनिधेहि तत् क्षणमपाकुरु श्रान्तिमप्ययं मलयमारुतो वहति सोपि यात्वर्थिताम् ।।१२९।।

हे कृशाङ्गि ! यह दही की मटकी तेरे सिर पर है इसे मैं देख नहीं सकता तेरे सिर पर बहुत भार है ऐसा मुझे प्रतीत हो रहा है । इसलिये उसे यहाँ रख दे और अपनी थकान को मिटा और जरा मलयमारुत का सेवन कर ।।१२९।।

कुमुमसुकुमाराङ्ग श्रीमत्युदारतरे मनाक् त्वदुरसि वरं वासोप्येतद्वयं न सहामहे ।
क्षणमिह तदस्माकं हस्ते कुरु व्रजवल्लवीनयनझषयोर्नीरं नाथ त्वमस्यतिसुन्दरः ।।१३०।।

हे कुसुम सुकुमाराङ्ग ! शोभा युक्त तुम्हारे अत्यन्त उदारता उरःस्थल पर इस वस्त्र को हम सहन नहीं कर सकती हैं अतः क्षण भर के लिये इसे उतार कर हमारे हाथ में धर दो । हे नाथ ! तुम बड़े सुन्दर हो और गोपिकाओं के नेत्र रूप मछलियों के लिये तो तुम जलरूप हो ।।१३०।।

त्वमुत्तारयैतत्पयोभाजनं स्वं सरोजाक्षि देह्याशु दानं मदीयम् ।
व्रजेश त्वदीयोत्तरीयं नु कस्यै ददाम्येतदेवं कथं त्वन्नियोगात् ।।१३१।।

हे कमल नयनी ! इस दूध की मटकी को उतारो और मेरा दान शीघ्र दो । हे व्रजेश ! यह तुम्हारा उत्तरीय तुम्हारी आज्ञा से किसे दूं ।।१३१।।

धृत्वा शिरःस्थं कलशं करेण स्थिते प्रिये कस्य पुरो वदामि ।
भग्नं भवत्येतदिति ब्रुवाणो न्यपातयद्भाजनमेकमुर्व्याम् ।।१३२।।

सिर पर रक्खे हुई मटकी को प्रिय ने अपने हाथ में ले ली और मैं किससे कहूं यह फूट रही रही है ऐसे कहते हुए एक पात्र को पृथ्वी पर पटक दिया ।।१३२।।

तदा चन्द्रावल्या निजभुजयुगेन प्रियतमं निगृह्यैवं प्रोक्तं व्रजमचिरतो गच्छ कथय ।
न गन्तुं शक्तोऽयं त्वदभिमुखमित्युद्भटतरं निशम्यैकाऽगच्छद्व्रजमधिकृता नाधररसे ।।१३३।।

तब चन्द्रावली ने अपनी दोनों भुजाओं से प्रियतम को पकड़ लिया और सखी से बोली कि तू शीघ्र ही यहां से व्रज में जा और यह सब बात कह । यह तेरे पास आ नहीं सकेगा इस बात को सुनकर वह एक व्रज में गयी उसे व्रज में जाने का अधिकार तो मिला किन्तु अधर रस न मिला ।।१३३।।

मया धृतेयं कमलाक्षि किं वानया धृतोऽहं वद तत्त्वमेव ।
समुच्चये नागर को विरोधो विना भवत्पीतदुकूलनीव्योः ।।१३४।।

हे कमल नयनी ! मैंने इस गोपी को पकड़ा है या इसने मुझे पकड़ा है यह तू ही बता । हे नागर ! अपनी समानता में केवल पीताम्बर और नीवी के सिवा और क्या अन्तर है ।।१३४।।

त्वमेव भव मध्यस्था वादिनोरावयोः सखि । युवयोर्बिसीनीसूत्रान्तरं नास्ति क्व मे स्थितिः ।।१३५।।

हे सखि ! हम दोनों वादी है अतः हमारी मध्यस्थ तू ही बन जा तब सखी बोली दोनों के बीच में तो कमल डंठी के सूत के जितना भी अवकाश नहीं है तो में तुम दोनों के मध्य में कहां रहूं ॥१३५॥

खिन्ना भवति सखीयं त्वदङ्गसङ्गाभिलाषया सुभग ।
तत्कुरु मनोऽनुरञ्जनमस्या धैर्येऽप्यशक्तायाः ॥१३६॥

हे सुभग ! यह सखी तेरे अङ्ग के सङ्ग की अभिलाषा से खिन्न हो रही है इसलिये इसका मनोरञ्जन तुम करो यह धैर्य धारण में भी असमर्थ है ॥१३६॥

त्वत्सङ्गागमनस्य प्रियसखि फलमेतदाविरासीन्नः ।
अन्यामपि निजसदृशीं कर्तुं वाञ्छस्यये किं नु ॥१३७॥

सखी चन्द्रावली से कहती है कि हे प्रिय सखि ! तेरे साथ आने का यह फल हमें मिला है अरी क्या तू दूसरी को भी अपने समान करना चाहती है ॥१३७॥

तदा मुदा निजस्पर्शकरणे प्रसरत्करम् । नवप्रणयपूरार्द्रहृदया जगदुः प्रियाः ॥१३८॥

तब प्रसन्नता से अपना स्पर्श करने के लिये बढाये हुए हाथ को देख कर नवीन प्रेम के पूर से सरस हृदय वाली प्रियाओं ने कहा ॥१३८॥

मा मा मानद मा स्पृशेति वचसा ता वारयन्त्यः प्रियं साकूतं करपल्लवेऽपि चिबुके वक्षःस्थलेऽप्यस्पृशन् ।
तत्कालीनविलक्षणेक्षणवशाद्राधाप्रिये प्रेयसः स्पर्शेणापि तथाविधेन वचनेनासंस्तदा तद्वशाः ॥१३९॥

हे मानद! खबरदार मेरा स्पर्श न करना इस तरह वचन से प्रिय को मना करती हुई का साभिप्राय पूर्वक हाथ का चिबुक का और वक्षःस्थल का भी स्पर्श किया । तब उस समय के राधा प्रिय के विलक्षण कटाक्ष से और प्रियतम के उस स्पर्श से तथा उस प्रकार के प्रिय वचन से उनके वश में हो गयी ॥१३९॥

धृत्वाञ्चलं विविधपट्टमयप्रसूनश्रीस्मारितस्मरनिकेतनतोरणं सः ।
वामेन चारुनखरेण करेण गाढं तां प्राह गच्छ कथमालि गमिष्यसि त्वम् । १४०॥

अनेक प्रकार के पट्टमय पुष्पों से स्मरण करा दिया है काम के तोरण का जिसने ऐसे आंचल को सुन्दर जिस में नख है ऐसे बांये हाथ से मजबूती से पकड़ कर उससे बोले हे आली ! जा अब तू कैसे जायेगी ॥१४०॥

स्मरस्मेरास्येन्दु तरलतरतारे च नयने स्मितं तत् साकूतेक्षणमतिमनोज्ञं मृगदृशाम् ।
नवप्रेमार्द्रार्द्रैरमुकुलितैरालि रहितैर्निमेषेणेक्षन्त्यो नयननलिनैस्तस्थुरबला: ॥१४१ ।

कामदेव के सदृश सुन्दर चन्द्रमुख और अति चञ्चल है तारिका जिसमें ऐसे नेत्र तथा मन्द मुस्कराहट एवं साभिप्राय अत्यन्त सुन्दर मृगनयनियों का देखना, नवीन प्रेम से सरस कुछ विकसित और हे आलि ! अपलक सजल नेत्रों से अपने प्रियतम को देखती हुई सभी गोपियां खड़ी थीं ॥१४१॥

सखि वद तादृग्वदनं दृष्ट्वा श्रुत्वा च तदुदितं वचनम् ।
लोकत्रयेपि का स्त्री सम्मुग्धा नो भवेत् सुभगा ॥१४२॥

हे सखि ! तू ही बोल कि इस प्रकार के मुख को देखकर और इस प्रकार से कहे हुए उसके वचन को सुन कर तीनों लोकों में ऐसी कौन भाग्यशालिनी होगी जो मुग्ध न हो जाय ॥१४२॥

भ्रूचापाहितलोचनाञ्चलशरव्रातैः पुरा विद्रुतास्तेभ्युः स्वोर्वरणं कथञ्चिदपि नो दृष्ट्वा परावृत्य च ।
युध्यन्त्यः पृतना इव स्मरमहावीरस्य गोप्यस्तदा
पश्यन्त्यः सखि वक्रकण्ठमखिलाश्चक्रुर्वशे स्वे हरिम् ॥१४३॥

भ्रू रूप धनुष के ऊपर चढाये गये लोचनाञ्चलबाणों से पहले जो भग गई थी उन गोपियों ने किसी तरह उन बाणों से अपना छुटकारा न समझ फिर लौट आयी और फिर महावीर कामदेव की सेना रूप उन गोपियों ने युद्ध करते हुए की तरह उन सबने हे सखि ! वक्र कण्ठ से देखती हुई उन्होंने हरि को अपने वश में कर लिया ॥१४३॥

तत्किमपि गोपिकासु प्रियेक्षणं प्रकटमालि तत्समये ।
सम्मोहमानशबलं भावं कमपि प्रियास्वकरोत् ॥१४४॥

हे आलि ! उस समय गोपिकाओं के विषय में जो प्रकट रूप से प्रिय का अवलोकन था उस अवलोकन ने प्रियाओं में सम्मोह और मान से शबल ऐसे अवर्णनीय किसी भाव को प्रियाओं में प्रकट कर दिया ॥१४४॥

श्यामामृतजलधिं यद् गोपीनयनाञ्चलापगा मिलिताः ।
तत्सारूप्यादैक्यं प्राप्ता इव तास्तदाऽभूवन् । १४५॥

गोपियों के नयनाञ्चलों की सरिता (नदी) श्याम अमृत समुद्र में जब मिल गई और उसकी सरूपता से एकता को प्राप्त हो गयीं अर्थात् दोनों एक रूप हो गये ॥१४५॥

मुग्धाननोपरि हरे परिवारिताहं मुञ्चाञ्चलं समभवत् पथि नो विलम्बः ।
यत्त्वन्मनोभिमतमङ्ग तदेव दास्याम्युल्लङ्घ्य गेहपतिमन्यतियत्नतोऽहम् ॥१४६॥

हे हरे ! मैं तेरे सुन्दर मुख के ऊपर वारी जाती हूँ अब तू मेरे आंचल को छोड़ दे रास्ते में मुझे बहुत देरी हो गई है । हे प्रिय ! मैं अपने घर के पति की परवाह न कर के अत्यन्त यत्न से जो तेरे मन में है उसे मैं दूंगी ॥१४६॥

एवं वदन्ती करपल्लवेन धृत्वा मृगाक्षी चिबुकं प्रियस्य ।
सङ्कोचितं स्वं करपल्लवं सा चुचुम्ब साकूतमथाब्रवीत् सः ॥१४७॥

इस तरह कहती हुई उस मृग नयनी ने प्रिय के चिबुक को अपने कर पल्लव से धारण करके और संकोचित्त अपने कर पल्लव से पकड़ कर चुम्बन किया तब प्रियतम ने इशारे से उसे कहा ॥१४७॥

मदभिलषितमेतत् कञ्चुकीकुञ्चितं यन् महदतिसरसं च श्रीफलश्रीविनिन्दत् ।
वितर किमपि तन्मे वस्तु सत्यं निजोक्तं कुरु सखि तत एतत्स्वाञ्चलं चातिदूरे ॥१४८॥

जो तेरी कचुकी के अन्दर छिपे हुए हैं जो अत्यन्त सरस हैं जो श्रीफल से भी बढकर हैं उन्हें तू मुझे दे ये मेरी अभिलाषा है और तू अपनी बात को सत्य कर इसलिये हे सखि! तू अपने आंचल को एक दम दूर हटादे ॥१४८॥

एवं ब्रुवन्नञ्चलमाचकर्ष प्रियस्तदा पाटितमीक्षमाणा ।
मृषा रुषा माचमुवाच गोपी भीतेव सख्यो निजबन्धुवर्गात् ॥१४९।

ऐसा कहते हुए ! प्रिय ने उसके आंचल को खींचा तो वह चिर गया उसे देख कर बनावटी गुस्सा दिखाती हुई गोपी अपनी सखियों से बन्धुओं से डरती हो इस तरह से बोली ॥१४९॥

नीवोयमद्य व मया नवीना सुलग्नमित्यङ्ग निजाङ्गलग्ना ।
कृता मुदासीदधुनेव सैवं कृता कथं गेहमहं व्रजामि ॥१५०॥

हे प्रिय ! इस वस्त्र को मैंने आज नया ही पहना है और यह मेरे शरीर से बिलकुल चिपटा हुआ था मुझे इस वस्त्र से बड़ा आनन्द आ रहा था उसकी स्थिति तुमने ऐसी करदी हैं अब में घर कैसे जाऊँ ॥१५०॥

कथं चलितमंचलं तव वदेति पृष्टा गृहे किमुत्तरमहं वदाम्यपि च नास्ति कश्चिन्मिषः ।
सुगुप्तामिदमेव नो भवति हन्त किं ते कृतं व्रजेशसुतकार्यमित्यपि वदात्र कोऽन्यो मिषः ॥१५१॥

यह तेरा आंचल कैसे चिर गया है इसे बता घर में ऐसा पूछे जाने पर मैं उसका उत्तर क्या दूंगी ? मेरे पास इसका कोई मिष नहीं है । यह जो तुमने किया है यह तो हमारी गुप्त बात है हाय हाय तेने ये क्या किया । नन्दसुत का यह कार्य है ऐसा कह देना और दूसरा क्या मिष है ॥१५१॥

स्वप्राणसङ्कटेपि त्वामभिधातुं न पारयामोऽङ्ग ।
नो जातु जातिकृपणो निजसर्वस्वं प्रकाशयति ॥१५२॥

अपने प्राणों के ऊपर सङ्कट आने पर भी हे प्रिय ! मैं तुम्हारा नाम नहीं बता सकती जैसे स्वभाव से कृपण पुरुष भी अपने सर्वस्व को प्रकट नहीं करता है ॥१५२॥

एतावता यदि बिभेषि तदा मदीयं वासो गृहाण मयि कुर्विदमञ्चलं स्वम् ।
एषातियुक्तिरतिमुग्धनितम्बिनीनामस्माकमङ्ग न भवत्युत नागरीणाम् ।१५३ ।

यदि तू इससे डरती है तो यह मेरा वस्त्र ले ले और तेरा यह वस्त्र मुझे दे दे हे प्रिय ! यह तुम्हारी युक्ति रति मुग्ध स्त्रियों के लिये उपयुक्त हो सकती है हमारे लिये नहीं साथ ही हम तो नगर वासिनो (नागरी) स्त्रियां है हमारे लिये कैसे उचित हो सकती है ॥१५३॥

नाहं वदाम्यनयमाल्यथ मौल्यमेव दध्नो वदाङ्ग वरिवर्ति न मौल्यमस्य ।
यद्याग्रहस्तव तदोचितमस्य मौल्यं मह्यं त्वमेव वितर स्मरमोहनाङ्ग ॥१५४॥

हे आलि! मैं इस अनय (अनीति) को नहीं कहती तो फिर दही का मूल्य बता ? हे प्रिय ! इसका तो मोल ही नहीं है । यदि तेरा मूल्य देने का आग्रह ही है तो हे स्मर-मोहनाङ्ग! मेरे लिये तू ही जो उचित हो वह मूल्य दे दे ॥१५४।

हारादिदाने सुभगाङ्गि मातुर्बिभेम्यहं तेन निजानुरूपम् ।
मौल्यं ददामीति वदंश्चुचुम्ब पूर्णं तवेदं समभून्न वेति ।१५५॥

हे सुन्दराङ्गि ! हार आदि के देने में तो मैं माता से डरता हूं इसलिये अपने अनुरूप मोल मैं देता हूँ ऐसा कहते हुए चुम्बन किया और फिर पूछा कि यह इसका मोल पूरा हुआ या नहीं ॥१५५॥

व्रजनृपकुमार सरसिजसुकुमार कृतं नु साधु ते सर्वम् ।
त्यज वसनं ननु कश्चिद् द्रक्ष्यति पान्थो ह्ययं मार्गः ॥१५६॥

हे व्रजराजकुमार ! हे कमल सदृश सुकुमार ! तेने सब कुछ ठीक किया अब आंचल को छोड़ दे कोई देखेगा यह राहगीरों के आने जाने का मार्ग है ॥१५६॥

लतागेहश्रेणीं विकचविविधाभासरुचिरप्रसूनप्रोद्भूतामलपरिमलोन्मत्तमधुपाम् ।
सरोजाक्ष्यन्येषां श्रवणसनसामप्यविषयं मुदा पश्यावश्यं त्यज निजजनानां भयमपि ॥१५७॥

लताओं से बनी हुई गृह श्रेणी को देख इस में अनेक प्रकार के रंग विरगे सुन्दर फूल खिल रहे हैं उनकी सुगन्ध से भौंरे मस्त हो रहे हैं हे कमलनयनी ! ऐसी लता गृह श्रेणी अन्य लोगों ने कानों से भी न सुनी होगी और न मन से अनुमान किया होगा उसे तू अवश्य प्रसन्नता से देख और निज जनों के भय को छाड़ दे ॥१५७॥

निजशरपञ्जरगुप्तं स्वभावसर्वस्वमेव रतिभर्तुः ।
कुसुममयं न लतागृहमिदमिति मन्येऽहमेणाक्षि ॥१५८॥

हे कमलनयनी ! यह लता गृह नहीं है किन्तु कामदेव के अपने बाणों के पिंजरे से सुरक्षित अपने भाव का सर्वस्व पुष्पमय घर है ऐसा मैं मानता हूं ॥१५८॥

निकुञ्जनगरे मनोभवनृपोऽत्र धैर्यादिमत्समीरवरमन्त्रिणा सह पिकादिबन्दिस्तुतः ।
स्फुरत्सरसिजोन्मदभ्रमरयूथगीतो जयत्यपाङ्गशर एष सञ्चरति ते न यावत्परम् ॥१५९॥

इस निकुञ्ज नगर में मनोभव (कामदेव) राजा धैर्य आदि समीर वाले (दक्षिणानिल) वर मन्त्री के साथ कोयल आदि वन्दियों से स्तुति किया जाता हुआ और विकास को प्राप्त कमलों ने उन्मत्तभ्रमरो के यूथ से गाया जाता हुआ यह मनोभव तब तक विजयी बना हुआ है जब तक तुम्हारे अपाङ्गशरों का संचरण नहीं होता है ॥१५९॥

रतिप्राणेशोऽयं शशिवदनि तेऽपाङ्गसुषमालवक्रीतो दासः सकमलतडागातिरुचिरम् ।
स्वसर्वस्वेनेदं सदनमनुरूपं तव मुदा चकाराङ्गीकारैः सफलय तदद्य प्रियसखि ॥१६०॥

हे चन्द्रवदनि ! यह रति का प्राणपति तुम्हारे अपाङ्ग की परम शोभा के एक अंश से खरीदा गया दास है। कमलों से युक्त तालाव से अत्यन्त सुन्दर और अपने सर्वस्व से तुम्हारे अनुरूप यह सदन बड़ो प्रसन्नता से तुम्हारे लिये बनाया है, हे प्रियसखि ! उसे अंगीकार करके आज उसके मनोरथ को पूरा करो ॥१६०॥

निकुञ्जदुर्गे निजबाणसंवृते कन्दर्पवीरः कलकण्ठकूजितैः ।
मामाह्वयत्येष रणार्थमत्र तत्कुरु त्वमेवालि सहायमद्य मे ।१६१।

अपने कुञ्जरूप किले में जो उस (काम) के बाणों (पुष्पों) से ढंका हुआ है उसमें यह कामदेव रूप वीर कोकिलाओं के शब्दों से यह मुझे युद्ध के लिये ललकार रहा है इसलिये हे आलि ! इस रण में आज तुम मेरी सहायता करो ॥१६१॥

त्वदाननरुचा स्मरः सपदि लज्जितो निर्जने वने भवनमेतदुत्तमलमं विधायास्थितः ।
विचित्रकलकूजितानुनयवाग्भिरेनं मुदा मया सह मदालसेक्षणविलक्षणे मानय ॥१६२॥

कामदेव तुम्हारे मुख की शोभा से लज्जित हो गया इसलिये वह शीघ्र ही निर्जन वन में आकर भवन बना कर रह रहा है। इसलिये विचित्र कल कूजन रूप अनुनय वाणी से इसको प्रसन्न होती हुई मेरे साथ हे मद से अलासाये हुए नेत्रों वाली इसे मनाओ ॥१६२॥

त्वदीयनयनाञ्चलाशुगपराजितो विद्रुतः स्मरः स्वशरसंवृते वसति कुञ्जदुर्गे भयात् ।
नितम्बिनि सुमध्यमे निजविहारबन्धैः क्षणान्नियन्त्रितुमिहैव तं त्वमपि मत्सहायं कुरु ॥१६३॥

तुम्हारे नेत्रों के अञ्चलरूप बाणों से पराजित होकर भगा हुआ यह कामदेव अपने बाणों से ढके हुए कुञ्ज के इस किले में डर के कारण रह रहा है अतः हे नितम्बिनि ! हे सुमध्यमे ! अपने विहार रूप बन्धनों से, क्षण भर में ही यहीं पर नियन्त्रित करने (बांधने के लिये) तुम भी मेरी सहायता करो ॥१६३॥

अहमद्य सखि स्वार्थसिद्धिद्वारमिवान्तरम् । कुचयोः प्राप्य ते प्राप्स्याम्यखिलाः कामसम्पदः ॥१६४॥

हे सखि ! आज मैं स्वार्थ सिद्धि के द्वार की तरह तुम्हारे इन दोनों स्तनों के बीच में प्राप्त होकर सभी चाही हुई सम्पत्तियों को प्राप्त करूँगा ॥१६४॥

चन्द्रावलि त्वन्मुखपूर्णचन्द्रमःसौन्दर्यसिन्धौ कति सन्ति सिन्धवः ।
यत्पूर्वपूर्वातिविलक्षणाः क्षणे क्षणे तरङ्गाः प्रकटीभवन्ति ते ॥१६५॥

हे चन्द्रावलि ! तुम्हारे मुखरूप पूर्ण चन्द्रमा के सौन्दर्य सिन्धु में कितने सिन्धु हैं जिससे तुम्हारे इस मुख सिन्धु में पूर्व पूर्व से अति विलक्षण क्षण क्षण में तरङ्गे प्रकट हो रही हैं ॥१६५॥

त्वल्लोचनाम्बुजमिदं निजगर्भखेलत्तारोन्मदभ्रमरतस्तरलं कृशाङ्गि ।
सौन्दर्यसीधु परितः किरति प्रिये यत् तत्पारणा भवति लोचनभृङ्गयोर्मे ॥१६६॥

हे कृशाङ्गि ! तुम्हारा यह नेत्र कमल है जिससे इसके अन्दर क्रीडा करती हुई पुतलियां भोंरों के समान चञ्चल हैं। हे प्रिये ! ये सौरन्ध्यामृत को चारों और वितरण कर रहे हैं जिससे मेरा नेत्ररूप भंवरो को पारणा (व्रतान्त भोजन) हो रहा है ।।१६६।।

मदीयनेत्राब्जविकाशकत्वान्नेन्दुर्न भानुः शशिकोटिशैत्यात् ।
चन्द्रावलि त्वन्मुखवर्णनं तन्मन्ये कवीनां विषयो न वाचाम् ।१६७।।

तुम्हारा मुख मेरे नेत्रों को विकासित कर रहा है इसलिये यह चन्द्र नहीं हो सकता और सूर्य इसलिये नहीं हो सकता कि यह करोड़ों चन्द्रमा के समान शीतल है अतः हे चन्द्रावलि ! मैं ऐसा मानता हूं कि तुम्हारे मुख का वर्णन कवियों की वाणी का विषय नहीं है ।।१६७।।

यदतिशयितरागो मय्यनङ्गस्य तस्मान्निजरसशरचापाद्यशेषं स्वकीयम् ।
प्रकटमिह मदर्थे यच्चकारातिगुप्तं तदिदमतिमनोज्ञं त्वन्मुखाब्जं विभाति ।१६८।।

कामदेव की मेरे ऊपर बहुत अनुराग है इसलिये अपने रस शर चाप (धनुष) आदि सब वस्तु जो अत्यन्त गुप्त उन्हें मेरे लिये प्रकट कर दिया है वही अत्यन्त मनोहर तेरा मुख कमल शोभित हो रहा है ।।१६८।।

मन्मानसं वशीकुर्वद्विभाति तिलकं तव । भ्रू चापाहितकन्दर्पकाण्डश्चण्ड इवाद्भुतः ।।१६९।।

मेरे मन को वश में करने के लिए यह तेरा तिलक शोभा दे रहा है । यह ऐसा लग रहा है जैसे तुम्हारी दोनों भ्रू तो कामदेव का धनुष है और उस के ऊपर चढाया हुआ यह प्रचण्ड बाण है ।।१६९।।

चन्द्रत्वे तु चकोरता मधुपता पङ्केरुहत्वे दृशोर्मीनत्वं वदनस्य ते निरुपधिस्नेहाम्बुतायां सखि ।
सौन्दर्यामृतता यदाऽनिमिषता दिव्या तदेत्येतयोस्तत्त्वं तामरसेक्षणे भवति नो निर्धारितं साम्प्रतम् ।१७०

यह तुम्हारा मुख चन्द्र है तो मेरे नेत्रों में चकोरता होती है और यदि यह कमल है तो मेरे नेत्रों में भंवरपन होता है और यदि तुम्हारे मुख में स्नेह रूपजलपना रहता है तो हे सखि ! मेरे नेत्रों में मीन (मछली) पन हो जाता है। और यदि तुम्हारे मुख में सौन्दर्यामृतता होती है तो मेरे नेत्रों में दिव्य अनिमिषता (जिसमें पलक न गिरे) हो जाती है अतः हे कमलनयनी! मैं इन नेत्रों की वास्तविकता का निर्धारण नहीं कर सका हूं । अर्थात् ये मेरे नेत्र चकोर हैं या भंवर हैं मछलियां है या बिना पलक के हैं ।।१७०।।

शीकरसहितः शुण्डादण्ड इवानङ्गवारणस्येयम् । वेणी विभाति मुक्ताश्रेणी गुच्छातिशुभ्राग्रा ।।१७१।।

जल कणों के सहित कामदेव के हाथी की सूंड की तरह यह वेणी लग रही है क्योंकि इस के अग्रभाग में मोतियों के श्वेत गुच्छे शोभित हो रहे हैं ।।१७१।।

लोकोत्तरा हृदयकोमलता तवाभात्यम्भोरुहाक्षि नवपुष्पमयोपि बाणः ।
अन्तर्गतस्तुदति यच्छमनाय तस्य मां तत्र कुर्वगदराजमिवामृताभम् ।।१७२।।

हे कमलनयनी ! तेरे हृदय की कोमलता लोकोत्तरा है क्योंकि तुम्हारे हृदय में ये कामदेव का बाण जो नवीन पुष्पमय है वह भी तुम्हारे हृदय के अन्दर चुभता है इसलिये उस पीड़ा को शांत करने के लिये अमृत सदृश औषध के रूप में मुझे अंगीकार करो ।।१७२।।

करचरणनखरचन्द्रश्रेणी लब्धा मया धृता समये । चन्द्रावलि स्वकीयं नामान्वर्थं कुरुष्वाद्य ।।१७३।।

हाथ पैर के नख जो चन्द्रमा की पंक्ति की तरह मुझे मिले है और उनको मैंने धारण कर रक्खा है अतः समय आने पर हे चन्द्रावलि ! उन्हों से तुम अपने चन्द्रावली इस नाम को सार्थक करो ।।१७३।।

भाषितहसितविलोकितविलसितवदनाङ्गसङ्गचन्द्रैस्त्वम् ।
शिशिरय चन्द्रावलि मां नामान्वर्थं कुरुः स्वीयम् ।।१७४।।

हे चन्द्रावलि ! तुम अपने भाषण से हास से अवलोकन से तथा विलास युक्त मुखसे एवं अङ्ग के सङ्ग रूप मुझे शीतल करो और अपने चन्द्रावली नाम को सार्थक करो ।।१७४।।

प्रथमः सङ्गम इति ते मदुपायनमेव हृद्यफलयुगलम् । आनीतमतिमनोहरनुपुररवमङ्गलोद्घोषैः ।।१७५।।
विलम्बितं त्यजाम्भोजनयने मन्मनोरथम् : पुरयाद्य सखीवृन्दसहिता मुदमाव्रज ।।१७६।।

अपना प्रथम सङ्गम है इसलिये मेरी भेट के रूप में जो तुम ये मनोहर फल अत्यन्त मनोहर नुपुर की झङ्कार रूप मङ्गल घोषों के साथ लायी हो– अतः हे कमलनयने ! अब देर मत करो और अपनी सखियों के साथ मेरे मनोरथ को पूरा करो और आनन्द मनाओ ।।१७५-१७६।।

वदनसुधानिधिगलितामृतमिव वचनं प्रियस्य ताः श्रुत्वा ।
सर्वत एव वशीकृतहृदया वदनं मिथोपश्यन् ।।१७७।।

मुखरूप अमृतसिन्धु से बहते हुए अमृत के समान प्रिय के वचन को सुनकर उनका

हृदय प्रिय के वश में हो गया और वे एक दूसरे के मुख की ओर देखने लगी ।।१७७।।

ततः सहजनिर्भरप्रणयपूरसम्प्लावितत्रपाधृतिभयाः कृशाङ्गि परिवव्रुरत्युत्सुकाः ।
स्वपाणिकमलैश्च तं चिबुकबाहुगण्डद्वये स्पृशन्त्य इव वारिधौ निपतिता बभूवुः प्रियाः ।।१७८।।

इसके बाद हे कृशाङ्गि ! सहज निर्भर प्रणय के पूर से सराबोर अत्यन्त उत्कण्ठित वे सब लज्जा, धैर्य और भय से घिर गई और उन्होंने अपने हस्तकमलों से अपने प्रिय के चिबुक, दोनों भुजाएं एवं दोनों कपोलों का स्पर्श किया तब वे प्रियाएँ मानों समुद्र में डूब गई ।।१७८।।

प्रियापाणिस्पर्शोदितपुलकपालिः समुदितस्वभावोद्दारिण्या रसवलितयार्द्रालसदृशा ।
प्रियः पश्यन् वक्त्रं व्रजवरवधूनां विकसितस्मितस्मेरं राधा सहचरि चिरं तत्त्वमभजत् ।।१७९।।

प्रिया के हाथ के स्पर्श से जिनके गेमाञ्च हो गये है और समुदित स्वभाव को प्रकट करने वाली रस के सहित आर्द्र और अलसाई हुई दृष्टि से प्रिय ने मन्द मुस्कराहट से युक्त व्रजवर वधूओं के मुख को देखते हुए हे राधा सहचरि ! चिरकाल तक इसी तरह देखते रहे ।।१७९।।

गोपीकपोलमुकुरप्रतिबिम्बितस्वरूपावलोकनततिस्मृतरासलीलः ।
आनन्दसिन्धुलहरीभिरिव प्रियाभिर्युक्तः प्रियः समचलत् स्वनिकुञ्जदेशम् ।।१८०।।

दर्पण के सदृश गोपी के कपोल में प्रतिबिम्बित अपने स्वरूप को निरन्तर देखने से रासलीला की याद आ गई और आनन्द सिन्धु की लहरों की तरह प्रियाओं को साथ लेकर प्रिय अपने निकुञ्ज देश में पधारे ।।१८०।।

प्रियांसदेशे निहितप्रकोष्ठो विचित्रलीलाः करपल्लवाभ्याम् ।
कुर्वंश्चकार प्रमदोत्तमासु प्रगल्भभावं कमपि स्मरस्य ।।१८१।।

प्रिया के कंधे पर अपनी कलाई को स्थापित कर और अपने हाथों से विचित्र लीलाओं को करते हुई उन उत्तम प्रमदाओं के साथ कामदेव के अवर्णनीय प्रगल्भ भाव को प्रकट किया ।।१८१।।

तदानीं या शोभा समजनि हरेस्तां निगदितुं न शक्ताहं किन्तु शृणु वचनमेकं मम सखि ।
यदुत्थाप्योत्थाप्य स्वपदकमले स्थापयति तत् त्रिलोकीस्त्रीमानं शशिवदनि संन्नामयति सः ।।१८२।।

उस समय हरि की जो शोभा प्रकट हुई थी उसे कहने में मैं असमर्थ हूं किन्तु हे सखि ! मेरी एक बात तू सुन। जब वे अपने चरण को उठा उठा कर रखते थे हे चन्द्र वदनी ! उससे उन्होंने त्रिलोकी की स्त्रियों के मान का मर्दन कर दिया ।।१८२।।

लतागेहाङ्गणेऽनेकतरुपल्लवपालिते । स विवेश प्रियस्ताभिः स्वोत्तरीयकृतासने ।।१८३।।

विविध प्रकार के वृक्षों के पत्रों से युक्त उस लतागृह के आंगन में जहाँ प्रियाओं ने अपना उत्तरीय बिछा दिया था उस आसन पर प्रियाओं के साथ विराजे ।।१८३।।

स्मितस्मेरास्येन्दुस्तरलितदृगम्भोजयुगलः परीहासं कुर्वन्नतिरसविकासं व्रजपतिः ।
प्रियः प्रोवाच स्वोचितमखिलदानं वितर मे गृहाणेत्युच्चैस्तं शशिमुखि चुचुम्ब व्रजवधूः ।।१८४।।

जिनका मुखचन्द्र मुस्कराहट से बहुत सुन्दर है और दोनों ही नेत्र कमल बड़े चञ्चल हैं रतिरस को विकसित करने वाले परिहास को करते हुए प्रिय व्रजपति ने गोपियों से कहा अब तुम अपने अनुरूप सब दान मेरे लिये दो तब हे शशिमुखी व्रजवधु ने लो ये दान देती हूँ ऐसा कह कर खूब चुम्बन किया ।।१८४।।

उदारहासोदितदन्तपङ्क्तिप्रकाशसन्दीपितकामभावाः ।
तदा यशोदासुतमानसे नो धैर्यं स्थिरं ताः स्वदृशापि चक्रुः ।।१८५।।

उदार हास के कारण प्रकट होती हुई दांतों की पंक्ति से संदीप्त किया है काम भाव जिन्होंने ऐसी उन गोपियों ने अपनी दृष्टि से उस समय यशोदानन्दन के मन के धैर्य को अधीर बना दिया ।।१८५।।

करे धृत्वा गोपीं कुसुममयकुञ्जान्तरगतः प्रियायुक्तः पुष्पैर्नवकिशलयैराशु शयनम् ।
विचित्रं निर्माय स्वयमुदितभावः स्वसमया मुदा चन्द्रावल्यारमत परमोदारचरितः ।।१८६।

कुसुममय कुञ्ज के अन्दर गोपी का हाथ पकड़ कर प्रिया के साथ पुष्पों और नवीन कोमल पत्तों से विचित्र शयन का निर्माण कर परम उदार चरित वाले प्रियने भावोदय के साथ आनन्द से चन्द्रावली से रमण किया ।।१८६।।

विपुलपुलकः सीत्काराविर्भवद्रसधारया मदनसदनाक्रान्तिश्वासोदयातिमनोहरः ।
रभसदसितोदञ्चद्भावप्रभावविलज्जया रसभरवलदृष्टिर्लज्जाविलोलदृशाऽऽरमत ।।१८७।।

सीत्कार के द्वारा प्रकट होती हुई रसधारा से विपुल रोमाञ्च से युक्त मदन सदन की

आक्रान्ति से उत्पन्न होने वाले श्वास के उदय से अत्यन्त सुन्दर और हर्ष के हास से उदित भाव के कारण से लज्जित हर्ष भर से कुछ तिरछी दृष्टि से और लज्जा से चञ्चल दृष्टि के साथ रमण किया ।।१८७।।

पिककलरवकूजिता कृशाङ्गी कृतघनचुम्बनदन्तदंशमेषा ।
रुचिरविविधबन्धविभ्रमोद्यच्छ्रमजलपालिररीरमद्व्रजेशम् ।।१८८।।

कोकिला के समान जिसका शब्द है उस कृशाङ्गीने भी खूब गाढे चुम्बन के द्वारा दांतों के चिह्न जिसमें प्रकट हो गये है इस तरह अनेक प्रकार के बन्धों के विलासों से एकदम श्रम के कारण जिसे पसीना आ गया है उसने भी व्रजेश के साथ रमण किया ।।१८८।।

प्रियाङ्गसङ्गेन मयेदृशो रसः प्राप्तः प्रियः कीदृशमाप्तवानिति ।
ज्ञातुं प्रवृत्तेव नितम्बिनी तदा तद्भावतः प्राप चिरं तदेकताम् ।।१८९।।

प्रिय के अङ्ग सङ्ग से मैंने इसी तरह का रस प्राप्त किया है प्रियने कैसा रस प्राप्त किया है इस बात को जानने के लिये जब प्रवृत्त हुई तो वह नितम्बिनी उस भाव के कारण चिर काल तक प्रिय के साथ एकता को प्राप्त हो गई ।।१८९।।

कथं नु कृत्रिमो भावः स्थिरो भवति भामिनि । यदन्ते सा निजं भावमभजल्लज्जितस्मितम् ।।१९०।।

हे भामिनी ! बनावटी भाव कैसे स्थिर हो सकता है । अतः अन्त में उसने लज्जा और स्मित से युक्त अपने निज भाव को पुनः प्राप्त कर लिया ।।१९०।।

ईषन्मुकुलितनयनं विगतारुणिमाधरं सरोमाञ्चम् ।
श्रमशीकराञ्चितं तद्वदनं धन्यः पिबत्येषः ।।१९१।।

कुछ मुकुलित नेत्र जिसमें है और अधर की अरुणिमा हट गई है रोमाञ्च भी हो रहे है तथा श्रम के सीकर (बिन्दुओं) से युक्त उसके मुख का पान यह धन्य ही कर सकता है ।।१९१।।

रतिरसजलनिधिविभ्रमतरुणतरङ्गेषु पातितः प्रियया ।
पारं न प्रापायं यदसितचन्द्रः स्वयं पूर्णः ।।१९२।।

प्रिया के द्वारा रतिरस के समुद्र के विभ्रम (विलास) रूप तरङ्गों में गिरा दिया गया यह कृष्णचन्द्र स्वयं पूर्ण होते हुए भी पार न पा सका ।।१९२।।

न सोढुं शक्तोऽभूत् स्वनयननिमेषान्तरमपि प्रियावक्त्रं पश्यन् मलयजमपीमां सखि मिलन् ।
प्रियापि प्राणेशं हृदयगतमालिङ्गच सुचिरं समाधिस्थावस्थां समधिगततत्त्वाभजदियम् ।।१९३।।

प्रिया के मुख को देखते हुए अपने नेत्र के पलक के अन्तर को भी सहन करने में अशक्त हो गये साथ ही मलयाचल की हवा भी मिल रही थी । इधर प्रिया भी हृदयगत प्राणपति का आलिङ्गन करके समाधिस्थ की जो अवस्था होती है उसे प्राप्त कर लिया ।।१९३।।

वेणीग्रथनमारभ्य चरणालक्तकावधि। प्रिययोक्तः सखि प्रेयानलङ्करणमातनोत् ।।१९४।।

वेणी के गूथने से लेकर चरणों में लाक्षारस लगाने तक के सब कार्य जो प्रियाने कहेवे किये हे सखि ! प्रियतम ने सभी अलङ्कार भी पहनाये ।।१९४।।

ततः प्रियेण स्वकनीनिकानखे मुखेन्दुमादर्श इव प्रदर्शितम् ।
चन्द्रावली वीक्ष्य मुदा तदाननं दरत्रपास्मेरदृशा समैक्षत ।।१९५।।

तदनन्तर प्रिय ने अपनी कनीनिका (छोटी) अंगुली के नख के अन्दर काच (आइने) की तरह उसके मुख को दिखाया तब चन्द्रावली ने अपना मुख देखकर और भय, लज्जा और मुस्कराहट की दृष्टि से उसे देखा ।।१९५।।

तदातिहर्षोत्पुलकानुकूलं कपोलमानन्दसुधानिधानम् ।
चुचुम्ब गाढं सकचग्रहं तत् सीत्कारधारामुदिताशयः सः ।।१९६।।

तब अत्यन्त हर्ष और पुलक के अनुकूल कपोल को जो आनन्द सुधा का खजाना था उस सीत्कार की धारा से मुदित है आशय जिसका ऐसे श्याम ने मजबूती से बालों को कड़ कर चूम लिया ।।१९६।।

विविधप्रसूनसंकुलकुञ्चितकेशाञ्चितं तनूष्णीषम् ।
अधिदक्षिणभ्रु किञ्चिन्नतमतिमुदिताकरोत् प्रेष्ठे ।।१९७।।

अनेक प्रकार के पुष्पों से बने हुए घुंघराले बालों से शोभित छोटे से मुकुट को जो हिने भ्रू की ओर कुछ झुका हुआ था प्रिय को प्रसन्न होकर पहना दिया ।।१९७।।

मृगमदतिलकं पुलकोन्नतिमति भाले विधाय तन्मध्ये ।
निजमुक्ताफलबिन्दुं सुन्दरमकरोत् कृशांग्येषा ।।१९८।।

और उस कृशाङ्गी ने जिसमें रोमाञ्च हो रहे है ऐसे भाल के ऊपर मृगमद (कस्तूरी)

का तिलक लगा कर उसके बीच में अपने सुन्दर मोती को उस में लगा दिया ॥१९८॥

कर्पूरकुंकुमकुरङ्गमदादियुक्तैरारभ्य सुन्दरकपोलतलं तदीयम् ।
पादाम्बुजावधि कलानिधिचारुवक्त्रं पश्यन्त्यलिम्पदुरुधा सखि चन्दनैः सा ॥१९९॥

बरास-केसर और कस्तूरी से युक्त चन्दन का लेप उसके सुन्दर कपोल तल से लेकर चरण कमल तक कर दिया और हे सखि ! चन्दन का लेप करते समय उस कलानिधि के सुन्दर मुख को भी खूब देखती जाती थी ।१९९॥

कुचकुंकुमपङ्केन पङ्किलं स्वोत्तरीयकम् बबन्ध सा नितम्बेऽस्य तन्वङ्गी चित्ररञ्जनम् । २००॥

अपने कुच का कुङ्कुम जिस में लगा हुआ है ऐसे चित्रित अपने उत्तरीय को उस कृशोदरी ने अपने प्रियतम के नितम्ब पर धारण करवा दिया ॥२००॥

ततश्चित्रं चरणयोः कुरङ्गमदकुंकुमैः । चकार चन्द्रवदनी नूपुरद्वयमुग्धयोः ॥२०१॥

इसके बाद उस चन्द्रवदनी ने दोनों नूपुरो से सुन्दर दोनों चरणों को कस्तूरी और केसर से चित्रित कर दिया ॥२०१॥

हृदि स्वनिष्काभरणं प्रियस्य निधाय हारानपि कुंकुमाद्यैः ।
विचित्रतां पुष्पमयस्रजं तत्कण्ठेऽकरोत्कुण्डलमण्डितास्या ॥२०२॥

कुण्डलो से शोभित है मुख जिसका ऐसी प्रिया ने अपने वक्षःस्थल के आभूषण को प्रिय के हृदय में पहना कर हार पहनाये तथा केसर आदि से चित्रित पुष्पों की माला को गले में पहनाया ॥२०२॥

कर्णिकारकुसुमं सुभगाङ्गी कर्णयोः सखि निधाय मुरारेः ।
गण्डमण्डलयुगे तनुरेखं चित्रमद्भुतमतीव चकार ॥२०३॥

उस शुभाङ्गी ने हे सखि मुरारी के कानों में कनेर के पुष्प धारण कराये और फिर दोनों कपोलों पर बड़ी विचित्र अद्भुत हलकी सी रेखा भी बनायी ॥२०३॥

प्रिया नासापुटे चारु स्वनासापुटभूषणम् । कृत्वा स्वयं परिदधौ तदीयं प्रमदोत्तमा । २०४॥

प्रियाने अपनी सुन्दर नकवेसर को तो अपने प्रिय को पहना दी और अपने प्रिय की नख वेसर को स्वय ने पहन लिया ॥२०४॥

ततस्तादृग्रूपं शशिवदनि दृष्ट्वातिमुदिता ह्यधीरेवालिङ्गय प्रियसखि चुचुम्ब प्रियमुखम् ।
न जाने कीदृग्वा सुखमभयदस्या हृदि तदा दृशोर्नाथस्यापि प्रणयभरपूर्णस्य सुदृशः ॥२०५॥

हे चन्द्रवदनी ! इसके बाद अपने प्रियतम के ऐसे रूप को देख कर बड़ी प्रसन्न हुई और हे सखि ! अत्यन्त अधीर की तरह अपने प्रिय के मुख को चूम लिया तब जान नहीं सकते कि इसके हृदय में उस समय कैसा सुख हुआ । और प्रणय के भार से पूर्ण सुन्दर जिनके नेत्र हैं उन स्वामी को भी कैसा सुख हुआ कौन कह सकता है ॥२०५॥

स्वविलासलवक्रीतकन्दर्पा व्रजसुन्दरीः । एवमेवाखिलाः श्रीमान् कृष्णो रेमे रसप्रदः ॥२०६॥

अपने विलास के एक अंश से जिनने कामदेव को खरीद लिया उन सब व्रजसुन्दरियों ने तथा रस का दान करने वाले श्रीमान् कृष्ण ने रमण किया ॥२०६॥

अस्माकं तु जगत्त्रयेपि सुभगे नापेक्षितं किञ्चिदप्येतावत्परमम्बुजाक्षि सततं सम्प्रार्थनीयं मुहुः ।
इत्थं शश्वदनिन्द्यपङ्कजदृशा नन्दात्मजः सुन्दरः सर्वस्वार्पणधीरया स रमतामस्मत्कृते सद्मनि ॥२०७॥

हे सुभगे ! हमारे लिये तो तीनों ही लोकों में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो हमे चाहिये परन्तु हे कमलनयनी ! इतना तो हम बार बार मांगती हैं कि इस तरह निरन्तर अनिन्दनीय कमल सदृश दृष्टि वाली सर्वस्व के अर्पण करने में धीर अपनी प्रियतमा के साथ सुन्दर नन्दात्मज हमारे लिये कुञ्ज में रमण करें ॥२०७॥

राधाचन्द्रावलीगोपीदासीकथितमद्भुतम् सम्पूर्णमभवत् कुञ्जे शृङ्गाररसमण्डनम् ॥२०८॥

इस तरह राधा चन्द्रावली गोपी दासी के द्वारा कहा गया यह अद्भुत शृङ्गार रस मण्डन कुञ्ज में संपूर्ण हुआ ॥२०८॥

इति श्रीमद्व्रजेशस्य तत्प्रियाणां च वाञ्छितम् । मिथः सर्वस्वदानं श्रीविठ्ठलः स्वाशयेऽकरोत् ॥२०९॥

॥ इति श्रीगोपीजनवल्लभैकतान श्रीविठ्ठलदीक्षितविरचिता दानलीला सम्पूर्णा ॥

इस तरह श्रीव्रजेश के और उनको प्रियाओं के चाहे हुए परस्पर सर्वस्वदान को श्रीविठ्ठल ने अपने हृदय में धारण किया ॥२०९॥

❀ इति दात लीला सम्पूर्ण ❀

श्रीकृष्णाय नमः ।
श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ।
श्रीमदाचार्यचरणकमलेभ्यो नम ।

शृङ्गाररसमण्डनम् ।

दशोल्लासः ।

श्रीमत्प्रभुचरणप्रकटितः ।

प्रथम उल्लासः ।

कथय कथय स्वामिन्या मे कथं नवसङ्गमः सुमुखि समभूग्दोविन्दस्येन्दिराधिकराधया ।
सखि विदितमेवैतत्ते किं ब्रुवे तदियं कथा व्रजवरवधूदासीनां नः कृशोदरि जीवितम् ।।१।।

हे सुमुखि ! लक्ष्मी से भी अधिक मेरी स्वामिनी राधा के साथ गोविन्द का नवसङ्गभ कैसे हुआ उसे तू बार बार मुझे कह हे सखि ! तुम्हें तो यह बात विदित ही है फिर मैं तेरे से क्या कहूं हे कृशोदरि ! हम तो व्रजवरवधु को दासियां है हमारा तो यह जीवन ही है ।।१।।

स्मृतनिजनिजस्वामिन्यस्ताः स्वभावजनिर्भर-प्रणयपुलकोद्भिन्नाङ्ग्यः साश्रुलोलविलोचनाः ।
व्रजपरिवृढक्रीडाम्भोधेः परस्परमम्बुभिः सुखितहृदयाः सिञ्चन्त्यः श्रीसनोप्यहरंस्तदा ।।२।।

अपनी अरनी स्वामिनीयों को याद करके अपने स्वाभाविक निर्भर प्रेम के कारण जिनके अङ्ग में रोमाञ्च हो गये हैं और आंखों में आंसू आ गये है उन सब ने व्रजपति के क्रीड़ा समुद्र से सुखित ह्वदय होकर आपस में एक दूसरे को उस क्रीड़ा समुद्र के जल से सिञ्चन करने लगी जिसको देख कर लक्ष्मी का मन भी उसके काबू में न रहा ।।२।।

यदैवाविर्भूतश्चिरनिभृतभाग्यैर्व्रजदृशां यशोदायां प्राचीदिशि सकलतारापतिरिव ।
तदैवासामासीत् सहजरतिरस्मिन् मधुरिपोः परं राधायां सख्यनिशयितरागः समजनि ।।३।।

सम्पूर्ण ताराओं के अधियति चन्द्र की तरह पूर्व दिशा के सदृश यशोदा में चिरकाल से संचित व्रजवासियों के भाग्य से जब नन्दनन्दन प्रकट हुए तभी से इन मधुसूदन में सहज अनुराग हो गया और उससे भी बढ़ कर हे सखि ! राधा में तो अतिशय अनुराग उत्पन्न हो गया ।।३।।

कदाचित् कालिन्दीपुलिननलिनामोदधनिना । प्रमोदप्रचुर्यप्रशिथिलसमीरैण ललिते ।।
मुदा वृन्दारण्ये निजसहचरीवृन्दसहितागता राधा गोपीशतगतमपश्यद्व्रजपतिम् ।।४।।

किसी समय कालिन्दी के पुलिन के कमलों की सुगन्ध के धनी प्रमोद की प्रचुरता से मन्द मन्द चलने वाली हवा से सुन्दर वृन्दावन में हर्षित होती हुई अपनी सहचरियों के समुदाय के साथ राधा आ गई । व्रजपति ने सैकड़ों सखियों से घिरो हुई उसे देखा ।।४।।

चिरं चेतस्तस्या हरिवदनलावण्यजलधावगाधेऽभूद्राधासहचरि निमग्नं व्रजदृशा ।
तदा सारङ्गाक्ष्या वदनवरचन्द्रे मधुरिपोश्चिरादिष्टे दृष्टिर्न्यपतदनिमेषातिरुचिरा ।।५।।

हे राधा सहचरि ! हरि के अगाध लावण्य सिन्धु में दृष्टि के साथ साथ उसका चित्त भी डूब गया । तब उस मृगनयनी की अपलक सुन्दर दृष्टि चिरकाल से देखे गये मधूसूदन के श्रेष्ठ मुख चन्द्र पर पड़ी ।।५।।

यदैवास्या गोपीपरिवृढदृशा दृष्टिरमिलत्तदैवाभूद्भावः प्रणयिनि स कोपि प्रियगतः ।
यतः स्तम्भस्वेदोत्पुलकविवशत्वादय इमे स्फुटा भावास्तस्यां प्रियसखि बभूवुर्न चिरतः ।।६।।

जिस समय इसकी दृष्टि गोपियों के प्रभु की दृष्टि से मिली उसी समय उसका प्रियगत अनिर्वचनीय भाव हो गया । क्योंकि शृङ्गार रस में होने वाले स्तंभ-स्वेद-उत्पुलक-विवशत्व आदि सभी भाव हे प्रियसखि ! इस में शीघ्र ही हो गये ।।६।।

नवप्रेम्णा पूर्णे हृदि निरवकाशेपि सुदृशः प्रियापाङ्गानङ्गप्रहितशरसन्दोहविततिः ।
गतान्तः साजात्यात् सुमुखि यदसौ तेन कठिनः कृशाङ्ग्याः सन्तापः समभवदहो वागविषयः ।।७।।

नवीन प्रेम से पूर्ण (भरे हुए) अवकाश रहित उस सुनयनी के हृदय में प्रिय के अपाङ्ग के कारण कामदेव के द्वारा प्रषित बाणों के समुदायों की परम्परा ने समान जाति की होने से हृदय में प्रवेश किया अर्थात् बाण भी पुष्प रूप हैं और हृदय भी पुष्प रूप है जिससे हे सुमुखि ! उस कृशाङ्गी को इतनी कठोर पीड़ा हुई कि उसे वाणी से भी नहीं कह सकती ।।७।।

चिराद्दासक्ता सा कृशतनुरशक्ता धृतिकृतौ तदा राधा बाधाशतवलितभावा प्रियसखि ।
क्वचित् कुञ्जे गुञ्जन्मधुपमुखरे धीरपवनाश्रिते लीना दीना निजसहचरीं प्राह ललिताम् ।।८।।

हे प्रियसखि ! वह राधा चिरकाल से हरि में आसक्त थी जिससे उसका अङ्ग कृश हो गया था अतः धैर्य धारण में वो असमर्थ हो गई । तब वह सैंकड़ों बाधाओं से घिर गई । तब किसी कुञ्ज में जिसमें भंवर गुञ्जार कर रहे थे तथा धीर पवन चल रहा था उसमें लीन होकर बड़ी दीनता से अपनी सहचरी ललिता से इस तरह बात कही ।।८।।

मल्हाररागेण गीयते

सह विहरति युवतिभिरिह सहचरि हरिरतिकोमलानिले सेवति ।
किमु कथयामि वागविषयो मम मनसि परं खेलति ॥१॥ ध्रुवपदम्।

हे सहचरि ! हरि अत्यन्त कोमल वायु का सेवन कर रहे हैं और युवतियों के साथ विहार कर रहे हैं मैं तुझ से क्या कहूँ कुछ कहते बनता नहीं परन्तु मेरे मन में तो वे क्रीडा कर रहे हैं ॥१॥

वदनकमल एव रुचिरहसिते दृष्टिरपतदपगतधृतिगतिरेव ।
अङ्गमपरमनङ्गकोटिरुचिरतरं मया न दृष्टमेव ॥२।

सुन्दर हास से युक्त मुखकमल के ऊपर दृष्टि पड़ते ही मेरा धैर्य छूट गया और स्तम्भित सी हो गई । करोड़ कामदेव के समान सुन्दर ऐसा दूसरा अङ्ग मैंने देखा ही नहीं । ॥२॥

मदन एवायमिह प्रकट इति जाने नयनकुसुमशैरेर्यदति दुनोति ।
इत्थमधीरराधिकाकथितं शुभं वितनोति ॥३॥

यह तो प्रकट रूप से कामदेव ही है ऐसा मैं जानती हूं । क्योंकि कामदेव की तरह ही यह अपने नयनरूप पुष्प बाणों से अत्यन्त पीड़ा पहुंचा रहे हैं । इस तरह राधिका का धैर्य रहित कथन शुभकारी होता है ॥३॥

सकृद्दृष्टं दूराद्वदनकमलं गोकुलपतेः कथञ्चिन्मे मुग्धस्मितमनुपमं दर्शय पुनः ।
तदा किं ते देयं वद सखि वरीवर्ति भुवने परं प्राणाः स्युर्मे मधुरिपुदृशा ते बत हृताः ॥९॥

गोकुलपति का मुखकमल एक बार दूर से देखा, सुन्दर मन्दहास से अवर्णनीय उस मुख को पुनः किसी तरह वे दिखावें । हे सखि ! तू कहना कि इसमें तुम्हें क्या देना पड़ता है । इस लोक में मेरे प्राणों को मधुसूदन की दृष्टि ने हर लिया है ॥९॥

इत्थमसकलाक्षरं तन्निगदितमाकर्ण्य सहचरी चतुरा । राधामवोचदारान्माधवमुपदर्शयन्त्यालिः ॥१०॥

इस प्रकार उसकी संक्षिप्त बात को सुनकर उस चतुर सहचरी ने पास से ही माधव को दिखाती हुई सखी राधा से बोली ॥१०॥

वसन्तरागेण गीयते

हरिरिह व्रजयुवतीशतसङ्गे । विलसति करिणीगणावृतवारणवर इव रतिपतिमानभङ्गे ॥१॥ ध्रु०।

रतिपति (कामदेव) के मान भङ्ग करने के लिये गजराज जैसे हथिनीयों के समूह के साथ विलास करता है उसी तरह हरि यहां सैकड़ों युवतियों के सङ्ग में विलास कर रहे हैं ॥१॥

विभ्रमसम्भ्रमलोलविलोचनसूचितसञ्चितभावम् । कापि दृगञ्चलकुवलयनिकरैरञ्चति तं कलरावम् ।२

विभ्रम-संभ्रम से चञ्चल नेत्रों से सूचित किया है अपने संचित भावों का जिसने ऐसी प्रिया ने अपने नेत्र कमलों द्वारा उस कलरव का सन्मान किया है ॥२॥

स्मितरुचिरुचिरतराननकमलमुदीक्ष्य हरेरतिकन्दम् ।
चुम्बति कापि नितम्बवती करतलधृतचिबुकममन्दम् ॥३॥

स्मित (मन्दहास) की रुचि से अत्यन्त सुन्दर आनन्दकन्द हरि के मुखकमल को देखकर कोई नितम्बिनी उस मुखकमल के चिबुक को हाथ में लेकर खूब चूमती है ॥३॥

उद्भटभावविभावितचापलमोहननिधुवनशाली । रमयति कामपि पीनघनस्तनविलुलितनववनमाली ।४

उद्भट भाव से विभावित चपलता से युक्त मोहन रति क्रीडा करने वाले श्याम पीन (पुष्ट) घन (कठोर) स्तनों आलिङ्गन करने के कारण मिसला गई है माला जिनकी वे किसी के साथ रमण करते हैं ॥४॥

निजपरिरम्भकृतेनुद्रुतमभिवीक्ष्य हरिं सविलासम् । कामपि कापि बलादकरोदग्रे कुतुकेन सहासम् ।५।

अपना आलिङ्गन करने के लिये पीछे पीछे दौड़ते हुए विलास युक्त हरि को देख कर कोई हँसती हुई किसी और को ही जबरदस्ती कौतुक से हरि के आगे कर देती है ॥५॥

कामपि नीवीबन्धविमोकससम्भ्रमलज्जितनयनाम् ।
रमते सम्प्रति सुमुखि बलादपि करतलधृतनिजवसनाम् ॥६॥

नीवीबन्ध (अधो वस्त्र की गांठ) के खुल जाने से सम्भ्रम से लज्जित हैं नेत्र जिसके और हाथ में ले रक्खा है अपना वस्त्र जिसने ऐसी किसी के साथ हे सुमुखि ! इस समय रमण कर रहे हैं ॥६॥

प्रियपरिरम्भविपुलपुलकावलिद्विगुणितसुभगशरीरा ।
उद्गायति सखि कापि समं हरिणा रतिरसरणधीरा ।।७।।

प्रिय के आलिङ्गन से अत्यन्त रोमाञ्चित होने से अङ्ग की शोभा जिसकी बढ़ गई है रति रस के रण में धीर ऐसी कोई हे सखि ! हरि के साथ में ऊँचे स्वर से गा रही है ।।७।।

विभ्रमसम्भ्रमगलदञ्चलमलयाञ्चितमङ्गमुदारम् ।
पश्यति सस्मितमति विस्मितमनसा सुदृशः सविकारम् ।।८।।

विलास के सम्भ्रम से गिरते हुए वस्त्र के कारण प्रकट दिखाई दे रहे चन्दन चर्चित उदार सुनयना के अङ्ग को विकार युक्त मुस्कराते हुए अत्यन्त विस्मित मन से देख रहे हैं ।।८।।

चलति कयापि समं सकरग्रहमलसतरं सविलासम् । राधे तव पूरयतु मनोरथमुदितमिदं हरिरासम् ।९।

किसी के साथ उसका हाथ पकड़ कर विलास युक्त अलस गति से चल रहे हैं । राधे! यह हरि का उदय को प्राप्त रास (रस समूह) तुम्हारे मनोरथ को पूरा करे ।।९।।

श्लोकः—कुवलयदलकोमलाङ्गसङ्गप्रकटमनोभवभावसुन्दरीभिः ।
विलसति सरसे कलिन्दकन्योपवनभवत्पवने वहत्युदारः ।।१०।।

कमल दल के समान कोमल अङ्ग के सङ्ग से जिनमें काम भाव उत्पन्न हो गया है उन सुन्दरियों के साथ कलिन्दनन्दिनी के उपवन में होने वाले सरस पवन के चलने के समय यह उदार उनसे विलास कर रहा हैं ।।१०।।

कलिन्दतनयातटोन्मदमधुव्रतास्वादितप्रसूननवपल्लवाञ्चितमनोहराकल्पकः ।
स्फुरन्मुरलिकाकलस्वनविमुग्धगोपीजनो मनोरथशतं हरिः सखि तनोतु पूर्णं तव ।।११।।

कलिन्दनन्दिनी के तट पर मदमस्त भोरों के द्वारा चक्खे गये पुष्प और पत्रों से बनाया गया है मनोहर वेष जिसका, स्फुरित मुरली के कलनाद से मुग्ध कर दी है गोपीजनों को जिसने हे सखि ! वे हरि तेरे सैकड़ों मनोरथों को पूर्ण करें ।।११।।

इति श्रीविठ्ठलेश्वरविरचिते शृङ्गाररसमण्डने प्रथम उल्लासः ।।१।।

द्वितीय उल्लासः ।

विहारान्दोलत्रुटदमलहारन् व्रजपतेश्चिरं दृष्ट्वा मत्तो रतिरतिशयान्यासु समभूत् ।
इतीर्ष्यातः स्थातुं न समशकदासक्तिवशतो न गन्तुं चेत्थं सा चिरमभवदान्दोलितमनाः ।।१।।

विहार आन्दोलन के कारण हार टूट गये हैं ऐसे व्रजपति के विहारों को चिरकाल तक देखकर अहो मेरे से भी बढ़ कर इन गोपियों में इनका अनुराग है ऐसी ईर्ष्या से आसक्ति के कारण वहां ठहर नहीं सकी और वहां से हट भी न सकी इस तरह राधिका का मन चिरकाल तक हिन्दोले की तरह एक जगह स्थिर न हो सका ।।१।।

ततोन्यत्रागत्य क्वचिदपि लताकुञ्जभवने मरन्दोन्मत्तालिध्वनितशिखरे धीरपवने ।
निसर्गस्नेहार्द्रे सखि मुकुलयत्यम्बुजदृशौ मुहुः काञ्चिद्राधा निजसहचरीं प्राह रहसि ।२।।

तब किसी दूसरी जगह लताकुञ्ज भवन में आकर मकरन्द से मस्त भंवरों की ध्वनि से युक्त है शिखर जिसका ऐसे स्वाभाविक स्नेह से आर्द्र धीर पवन में हे सखि ! कमल सदृश अपनी आंखों को जरा बन्द करके राधा ने अपनी किसी सहचरी को एकान्त में कहा ।।२।।

कल्याणरागेण गीयते ❋

मानसमिदमपि क्षणमालि त्यजति न हरिमातुरमति ।
विविधविलसितचारुनयनाविशिखविनिहतगति । १।। ध्रुवपदम् ।

हे आलि ! यह मेरा अत्यन्त आतुर मानस एक क्षण के लिये भी हरि को नहीं छोड़ता है । अनेक प्रकार के विलासों से युक्त नेत्र बाणों के प्रहार से मेरे मनकी गति रुक गयी है ।।१।।

कलमुरलीनादमोहितयुवतीवृन्दविलसितवशगम् ।
मम नयनयोरपि सुखमादधतं चित्रीकृतनरमृगविहगम् ।।२।।

हाथ की मुरली के नाद से मोहित जो युवति वृन्द है उनके विलास के वश में हो गया है । मेरे नेत्रों को भी सुख दान करते हुए इसने नर-मृग-पक्षियों को भी चित्र लिखित सा बना दिया है ।।२।।

मदद्विरदमन्थरा सुमुखि सा गतिस्तत्स्मितं मनो भवति मोहनं किमपि चारु चार्द्रेक्षणम् ।
मुखेन्दुसुषमा च सा वचनचातुरीमाधुरीजितामृतचया बत त्रिभुवनेपि नैवास्त्यहो ।३।।

हे सुमुखि ! मदोन्मत्त हाथी की तरह मन्थर गति और वो मन्दहास मन को मोहित करने वाला है तथा अनवंचनीय उनका स्नेह युक्त अवलोकन और मुखचन्द्र की वह परम शोभा और मीठी बचन की चातुरी से तो अमृत को भी जीत लिया है। ऐसी मधुर वचन चातुरी तो तीनों लोकों में भी नहीं है ।।३।।

प्रियाया यो मुक्ताफलविरचितो बिन्दुरमलः स्वभाले कस्तूरीतिलकरुचिरे केलिकुतुकात् ।
धृतः स्वप्रेष्ठेन प्रियसखि परीवर्तमुभयोः स्वरूपस्य ब्रूते किमपरमितो वाच्यमधिकम् ।।४।।

प्रिया का जो मोतियों का बनाया गया स्वच्छ बिन्दु (बेन्दी) अपने भाल पर सुन्दर कस्तूरी के तिलक के अन्दर शोभित है जिसे केलिकौतुक के लिये धारण किया था। हे प्रियसखि ! उस बिन्दु का अपने प्रिय के द्वारा होने वाला जो परिवर्तन है उसके कारण स्वरूप की सुन्दरता का अधिक वर्णन क्या किया जाय ।।४।।

उद्गायतोपि गोपीनिर्भरपरिरम्भविपुलपुलकालेः । स्थिरतरतरलग्रीवानासाभूषे मनो हरतः ।।५ ।

गोपिका के गाढालिङ्गन से खूब पुलकित है रोमावली जिसकी तथा ऊँचे स्वर से गायन करने के कारण स्थिरतर तरल ग्रीवा और नासिका आभूषण ये दोनों मेरे मन का हरण कर रहे हैं ।।५।।

वक्रग्रीवमुदञ्चदंगुलिचलद्भ्रूवल्लिवक्रेक्षणं कुञ्चच्छोणतराधरं मुरलिकामुत्फुल्लनासापुटम् ।
व्यत्यस्तांघ्रि यदा मुदाधरसुधापूरैरलं पूरयत्यम्भोजाक्षि न लक्षसे त्रिभुवने किं कर्तुमिच्छत्यसौ ।।६।।

टेढी गर्दन ऊपर चलती हुई अंगुलियों से चलायमान भ्रू वल्ली के साथ तिरछा देखना कुञ्चित अरुण तर ओष्ठ, फूली हुई नासिका इनके साथ जब पैरों को दांये को बांये और बांये को दांये करके मुरली को जब प्रसन्न होकर अपनी अधर सुधा से खूब पूर्ण करते हैं तब हे कमल नयनी ! ये त्रिभुवन में क्या करना चाहते हैं इसे तू देख नहीं रही है ।।६।।

आस्तां तावदनङ्गकोटिमदहृत्प्रत्यङ्गवार्ता हरेः संस्थानं किमु वर्णयामि सुषमाधाम त्रिभंगस्य यत् ।
मद्दृष्टेर्वपुषो विवेकिमनसो मन्ये गतीनामयं भंगः प्रादुरकारि कोपि विधिना येनाहमेतादृशी ।।७।।

करोड़ों कामदेव के मद को दूर करने वाली हरि के अङ्ग की सुन्दता को तो रहने दो इन त्रिभङ्ग ललित जो परम शोभा है उसका मैं क्या वर्णन करूँ। इसने अपने शरीर का त्रिभग क्या किया इसने तो मेरी दृष्टि, मेरे अग और विवेकी मनकी गतियों का ही ऐसी विधि से भंग प्रकट कर दिया जिससे ऐसी हो गई है ।।७।।

सहासभाषणामोदमदान्धमधुपावृतः न वेणुं पूरयत्येष किन्तु मामधरामृतैः ।।८।।

हासयुक्त भाषण, आमोद तथा मदान्ध भंवरों से घिरे हुए ये वेणु को पूर्ण नहीं कर रहे हैं किन्तु अधरामृत से मुझे पूर्ण कर रहे हैं ।।८।।

अपि च—मामेवाधरसीधुना मुरलिकाव्याजात् प्रियः पूरयंश्चेतोपि व्यवधायकं वरतनोर्मा भूदिहेत्यण्वपि
यच्चेतो हृतवान् स्वयं निजरसं चापूरयत्तेन मे तद्भावस्तु सुदुर्निवारतर एवायं करोत्यालि किम् ।।९।।

अपनी अधर सुधा से मुरली को पूर्ण करने का तो बहाना मात्र है यह तो मुझे ही अपनी अधर सुधा से पूर्ण कर रहे हैं इस बरतन का चित्त भी किसी तरह थोड़ा भी व्यवधान न करे इसलिये चित्त को हर लिया और स्वयं ने ही अपने रस को भर दिया है उसका भाव तो किसी तरह दूर नहीं किया जा सकता हे आलि ! वह दुर्निवार भाव ही ऐसा कर रहा है ।।९।।

केदाररागेण गीयते

कथमपि मधुमथनं मया सह मनोभवकोटिरुचिरम् ।
रमय कामरसमप्यारस नय रसिकं सुचिरम् ।ध्रुवपदम्।

कुञ्जे निलीय रचितकुसुमशयनं गतया कथमपि रहसि ।
रतिरभसेन हसन्त मीषल्लज्जितया चारुभावे चेतसि ।।१।।

चाटुकृतावतिचतुरं मृदुतरमतिमन्दहासभाषितया ।
शिथिलीकृतमद्वसनं कुसुमितशयने निवेशितया ।।१०।।

मदुरसि कृतशयनं कृतपरिरम्भणचुम्बनादिकया कृतमधुराधरपानं रतिरणधीरातिधीरयोत्पुलकम् ।११
विविधबन्धविशारदमानदं जितपिकध्वनिकूजितया सखि ।
श्रमकणाञ्चितमुग्धमुखाम्बुजं तदधरामृतपानमदश्रिया ।।१२।।

अर्धस्त्रस्तदुकूलमर्धतिलकंस्वेदांकुरार्धश्लथत्पुष्पालीरुचिरालकातिमधुरेणास्येन्दुना मोहनम् ।
अर्धस्त्रस्तदुकूलमर्धतिलकंस्वेदांकुरार्धश्लथत्पुष्पालीरुचिरालकातिमधुरेणास्येन्दुना मोहनम् ।
रासाधिक्यमदातिवक्ररुचिरभ्रूवल्लिमुद्वल्लचीवृन्दापाङ्गवशं सुनिर्वृतिपदं गच्छामि पश्यन्त्यपि ।।१३।।

करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर मधुमथन को किसी तरह मेरे साथ रमण करा। रसिक से चिरकाल तक के लिये मुझे रसास्वादन करा। मैं एकान्त में कुञ्जमे बनी हुई पुष्प शैय्या पर किसी तरह छिपकर रहती हूं। वे आकर रति वेग से हँसती हुई मुझसे सुन्दर भाव वाले चित्त में कुछ लजाती हुई सी खुशामद करने में अत्यन्त चतुर को अत्यन्त कोमल मतिवाली मैं मन्दहास युक्त भाषण से, जब वे मेरे वस्त्र को

शिथिल करके मुझे पुष्प शय्या पर बिठायेंगे और मेरे हृदय पर जब वे सो जायेंगे तब मैं उनका आलिंगन चुम्बन आदिक से उनके मधुर अधर का पान करूंगी। पुलकित और अनेक बन्धों में चतुर मान देने वाले रतिरण में धीर के साथ अति धीर जिसने कोयल की ध्वनि को जीत लिया है ऐसी मेरे साथ (रमण करा) हे सखि ! जब श्रमकण से युक्त उनका मुख कमल होगा उस समय उनके अधरामृत पान करने की शोभा से और आधा वस्त्र जिनका सरक गया है और तिलक भी जिनका आधा रह गया है स्वेद के अंकुर से आधी श्लथ पुष्पावली से सुन्दर अलक से अत्यन्त सुन्दर मुखचन्द्र से मोहन को रास के मद की अधिकता से वक्र रुचिर है भ्रू वल्ली जिसकी उसके मोद से बल्लवियों (गोपियों) के झुण्ड के अपांग के वशीभूत प्रिय को देखती हुई सन्तोष को प्राप्त करूंगी ।।१३।।

कल्पप्रसूनसौरभ्यकालिन्दीकणवित्तवान् । सुखयत्यनिलो नापि तद्भारेणेव मन्थरः । १४।।

कल्पवृक्ष के पुष्पों को सुगन्ध वाला और कालिन्दी के जल कणों से युक्त होने के कारण उसके भार से धीमी गति वाला अर्थात् शीतल-मन्द सुगन्ध युक्त वायु भी मुझे सुख नहीं पहुंचा रहा है ।।१४।।

विकचविविधपुष्पपालिरेषा सह शिशरांशुकरैर्दहत्यमन्दम् ।
कथमपि न सुखं करोमि किं वा वद सखि मत्प्रियसङ्गमः कथं स्यात् ।।१५।।

विकसित विविध प्रकार के पुष्पों की यह पंक्ति (कतार) चन्द्रमा की किरणों के साथ मुझे खूब जला रही है। मुझे किसी तरह चैन नहीं है हे सखि ! तू ही बता मेरा प्रिय के साथ संगम कैसा होगा ।।१५।।

क्रीडाम्भोधौ विविधतरुणीविभ्रमापाङ्गवीचिसन्दोहान्दोलितनवनवस्नेहपूरार्द्रसर्वः ।
अम्भोजश्रीमदनमदहृत्त्वन्मुखाब्जावलोकप्रोद्यल्लज्जास्मितरुचिरयं पूरयत्वाशिषं ते ।।१६।।

क्रीडा समुद्र में अनेक प्रकार की तरुणियों के विलास युक्त अपांगों की तरंगों के समूह से आन्दोलित जो नव नव स्नेह पूर उससे सराबोर सब को जिसने कर दिया है ऐसा प्रिय कमल की शोभा के मद को तथा कामदेव के मद को हरने वाले तेरे मुखकमल के देखने से उत्पन्न हुई लज्जा तथा मुस्कराहट की शोभा से युक्त यह (प्रिय) तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण करे ।।१६।।

इति श्रीविठ्ठलेश्वरविरचिते शृङ्गाररसमण्डने द्वितीय उल्लासः ।।२।।

तृतीय उल्लासः ।

मधुसूदनोपि राधामाधाय हृदि स्वकेलिमप्येनाम् । विजहौ रसिकशिरोमणिरत्यासक्त्या ह्यधीर इव ।१।

मधु सूदन ने भी राधा को अपने हृदय से लगाकर जो अपनी रमण रूपा है उसे रसिक शिरोमणि होते हुए भी अत्यन्त आसक्ति से अधीर से होते हुए उसे छोड़ दिया ।।१।।

साक्षादनुनयकरणे सव्रीडः प्रणवकोपभीरुस्ताम् । परितोनुसृत्य कुत्रचिदासीनोऽचिन्तयद्विविधम् ।।२।।

साक्षात् अनुनय करने में लज्जा का अनुभव करते हुए प्रणय कोप से डरते हुए उस राधा को चारों ओर अनुसरण करके कहीं बैठ कर अनेक प्रकार का विचार करने लगे ।।२।।

हरि हरि किमभूदिदं नु कुर्यां किमु वानादरकोपतश्च राधा ।
चिरविरहभरेण किं करिष्यत्यहह कथं बत सा भवेत् प्रसन्ना ।।३।।

हरि हरि यह क्या हो गया अब मैं करूं अनादर के कारण कुपित राधा चिर विरह के कारण वह क्या करेगी और वह कैसे प्रसन्न हो सकती है ।।३।।

कुपितकुटिलभ्रू वल्ली सा सुशोणतराधरस्फुरणमरुणस्नेहार्द्रातिचञ्चलमीक्षणम् ।
रभसचलितस्रंसच्चञ्चद् कूलनियन्त्रणं त्यजति न मनस्तद्वक्त्राम्भोरुहश्रियमाग्रहि ।।४।।

कुपित होने के कारण जिसकी त्योरी बदल गयी है ऐसी उस राधा के होंट अत्यन्त लाल होकर फड़कने लगे, नेत्र भी लाल लाल हो गये और स्नेह के कारण उनमें गीलापन आ गया तथा चञ्चल हो गये। शीघ्र चलने के कारण वस्त्र अपने स्थान से खिसक गया उसको ठीक न किया परन्तु मन तो उन प्रियतम के मुखकमल की शोभा के आग्रह को नहीं छोड़ सकी ।।४।।

कुपितारुणं तदीयं लोचनयुगलं विचारयामि भृशम् । कुवलययुगलमिवारुणपरागपूरारुणं चारु ।।५।।

कुपित होने के कारण लाल लाल उसके दोनों नेत्रों का मैं खूब विचार करता हूं तो वे मुझे ऐसे सुन्दर लगते हैं जैसे दो कमल अरुण पराग के पूरण से अत्यन्त लाल हो गये हो ।।५।।

त्वद्भ्रूचापाहितापाङ्गशरसन्दोहजा व्यथा । शाम्येत् त्वदधरास्वादभेषजेनैव नान्यथा ।।६ ।

तुम्हारे भ्रू धनुष के ऊपर चढाये गये अपांग (कटाक्ष) रूप बाणों के समुदाय से उत्पन्न पीड़ा केवल तुम्हारे अधर के आस्वादन रूप औषध से ही शान्त हो सकती है और कोई उपाय नहीं है ।।६।।

सुमुखि स्वीयं मत्वा मामहि निजवागमृतपूरैस्त्वम् । सिञ्चाद्य करसरसिजस्पर्शेनापाकुरुष्व तापं च ।७।

हे सुमुखि ! तुम मुझे अपना मान कर अपनी वाणी रूप अमृत के पूर से मुझे सिञ्चित करो और अपने कर कमल के स्पर्श से मेरे ताप को दूर करो ।।७।।

विना त्वत्करुणावीचीलसल्लावण्यसागरम् । न मन्मनोमहामीनो विहर्तुं कुत्रचित् क्षमः ।।८।।

तुम्हारी दया ही जिसमें तरङ्गरूप है ऐसे तुम्हारे इस लावण्य समुद्र के सिवाय मेरा यह मन भी न अन्य किसी समुद्र में विहार करने में समर्थ नहीं है ।।८।।

वदत्येवं नाथे प्रणयभरभारातिशिथिले रसाले कालिन्दीतटनवनिकुञ्जेतिविशदे ।
समासीने राधाप्रियसहचरी काचिदवदन् निजस्वामिन्यास्तत्प्रचुरतरदुःखं प्रियकृतम् ।।९।।

अति प्रणय के भार के कारण जिनका अङ्ग शिथिल हो गया है और जो सरस कालिन्दी के तट के नवीनकुञ्ज में बैठे है उनकी इस प्रकार की बात को सुनकर राधा की किसी प्रिय सहचरी ने अपनी स्वामिनी (राधा) के प्रियकृत प्रचुर दुःख का वर्णन किया ।।९।।

कान्हरारागेण गीयते ।

हे सुभग ते विरहे सा सीदति ।
अतिदीना सुकुमारी शीतांशुमपि परिनिन्दति । ध्रुवपदम् ।
त्रिगुणानिलमपि दहनमाकलयति चन्दनमपि विन्दति खेदम् ।
नासैव ते नाथ कथयति कथमपि निजदेहमपि जानाति नेदम् ।।१।।

हे सुभग ! वह राधा तुम्हारे विरह में दुःखी हो रही है । अतिदीन सुकुमारी चन्द्रमा की निन्दा कर रही है । शीतल मन्द-सुगन्ध वायु भी उसे जला रही है और चन्दन भी दुःखी कर रहा है । वह केवल तुम्हारे नाम की ही रट लगा रही है उसे अपनी देह का भी भान नहीं है ।।१।।

त्वत्प्राणा जीवतीह त्वल्लीलाविष्टा विचेष्टते । त्वत्कुजितानुषङ्गेण गृह्णति तव नाम सा ।।१०।।

तुम ही उसके प्राण हो इससे वह जी रही है और तुम्हारी लीला के आवेश से ही उसमें चेष्टा होती है तुम्हारे कूजन के अनुषङ्ग से तुम्हारे नाम को पुकारती है ।।१०।।

चकितनयनं पश्यन्त्यूर्ध्वं निरीहतनुर्नभस्त्वदुदितमहाचिन्तमग्ना तिरोहितवाक् चिरम् ।
भुवनदहनत्रासाच्छ्वासं कथञ्चन मुञ्चति त्वदमिलनदावाग्निज्वालाशिखामिव सुन्दर ।।११।।

निश्चेष्ट शरीर से चकित नेत्रों से ऊपर आकाश को देखती है, तुम्हारे द्वारा उत्पन्न महाचिन्ता में डूबी हुई चिरकाल तक गुम सुम बैठ रहती है । हे सुन्दर ! कहीं लोक जल जाय इस नर से तुम्हारे नहीं मिलने की जो दावाग्निज्वाला की शिखा की तरह गरम गरम श्वास को किसी तरह छोड रही है ।।११।।

त्वद्विरहमर्ममारणमूर्छामाप्ता कथञ्चनोद्बुद्धा । भवति त्वदीयकृपया परं किमस्माकमुपचारैः ।।१२।।

तुम्हारे विरह मर्म की मरणरूप मूर्च्छा को प्राप्त हुई वह किसी तरह तुम्हारी कृपा से चेतना को प्राप्त कर सकती है हमारे उपचार से कुछ नहीं हो सकता ।।१२।।

पाटीरपङ्कमेषा विषमिव शीतांशुसरसिजे चाग्नी । कलयति पाशं कण्ठे स्रजमपि हारं महाभारम् ।१३।

चन्दन के लेप को यह विष की तरह और चन्द्र तथा कमल को अग्नि की तरह जानती है । गले की माला को फांसी की तरह और हार को भार समझती है ।।१३।।

अधिधरणि लुठति नाथ त्वद्विरहेणातिविह्वला राधा ।
विलपति रोदिति पङ्कजसुकुमाराङ्गी त्वदीयापि ।।१४।।

हे नाथ ! वह राधा तुम्हारे विरह से अत्यन्त विह्वल होकर पृथ्वी के ऊपर लोटती है तथा कमल के समान जिसके कोमल अङ्ग हैं वह तुम्हारी होते हुए भी राधा बिलाप करती है रोती है ।।१४।।

अतिदीना त्वामेव स्वहृदि पुरस्थं विधाय संनत्वा । न प्रार्थयते स्वीयं जीवनमधिकं किमु श्राव्यम् ।।१५।

अत्यन्त दीन वह राधा तुम्हें ही अपने हृदय में सामने रखकर नमन करके अपने जीवन की भी प्रार्थना नहीं करती इससे अधिक क्या सुनाया जाय ।।१५।।

निगदत्यनुपदमचिरं त्वदीयपादाब्जमेव शरणं मे । जीवय वा मारय मां निजाङ्गसङ्गेन विरहेण ।।१६।

पद पद पर शीघ्र यह कहती रहती है कि तुम्हारे चरण कमल मेरे रक्षक हों अपने अङ्ग के सङ्ग से चाहें तो आप जिलायें अथवा अपने विरह से मुझे मारें ।।१६।।

रोमाञ्चति सीत्कुरुते कृशतनुरुत्कम्पते चिरं सुभग ।
ताम्यति मीलति पतति प्रयाति मूर्छत्यतीवार्ता ।।१७।।

हे सुभग ! उसके कृश शरीर में रोमाञ्च होते हैं, सीत्कार करती है चिर काल तक कम्पन होता है, दुःखी होती है आंखे बन्द कर लेती है पृथ्वी पर पड़ जाती है कभी पागल की तरह घूमने लगती है एवं अत्यन्त दुःखी होकर मूर्च्छित हो जाती है ।।१७।।

एतावत्यतिविषमज्वरे त्वदीयाधरामृतेनैन । जीवेत् कृपयसि चेत्वं नो चेत् किमहं ब्रुवे दीना ।।१८।।

इस प्रकार की अवस्था को प्राप्त हुए विषय ज्वर में तुम यदि कृपा करो तो तुम्हारे अधरामृत से वह जी सकती है अन्यथा उसकी क्या दशा होगी इसे मैं दीन क्या कह सकती हूँ ।।१८।।

आसारपीडितनिजव्रजरक्षणाय लीलोद्धृताचलशिरोमणिरार्द्रचित्तः ।
कुर्यान्मनोरथशतं परिपूर्णमेनं तापं हरत्वचिरतः सखि राधिकायाः ।।१९।।

आप तो ऐसे सरस हृदय हैं कि वर्षा की धाराओं से पीड़ित अपने व्रज की रक्षा के लिये सहज ही में पर्वत शिरोमणि गोवर्द्धन को उठा लिया था अतः हे सखि ! राधिका के ताप को शीघ्र हरिये और उसके सैंकड़ों मनोरथों को पूर्ण करिये ।।१९।।

इति श्रीविट्ठलेश्वरविरचिते श्रृङ्गाररसमण्डने (श्रीकृष्णचन्द्रं प्रति दूतिकावचनं नाम) तृतीत उल्लासः

चतुर्थ उल्लासः ।

अहमिह निवसामि स्वामिनीमानयेथा मदनुनयवचोभिर्मा चिरं याहि राधाम् ।
इति मधुरिपुणा सा सार्द्रचित्तं नियुक्ता स्वयमतिचतुरेदं प्राह राधामुपेत्य ।।१।।

तू शीघ्र ही राधा के पास जा मैं यहीं रहता हूं तू स्वामिनी राधा को मेरे अनुनय वचनों से मना ला इस प्रकार मधुरिपु के द्वारा नियुक्त की गई सस सखी ने जो स्वयं अति चतुर थी सरस हृदय होकर राधा के पास जाकर इस बात को कही ।।१।।

कल्याणरागेण गीयते ।

नन्दसूनुरिह तव विरहे न राधे सुखयति कथमपि किमपि सम्प्रति ।
तव नामैव विलपति बहुतरमतिविषमं शशिनमपि निन्दति ।।ध्रुव०।
यदतिचिन्तनेन त्वदैक्यमाप स तेन त्वदार्तिमपि सकलां प्राप्नोति ।
किमधिकमालि कथयामि सुकुमारोति ।।१।।

हे राधे ! नन्दपुत्र तेरे विरह में इस समय यहां किसी तरह सुखो नहीं है । केवल तेरे नाम की ही रट लगा रहा है अत्यन्त विषम चन्द्र की भी निन्दा करता है । तुम्हारी अधिक याद करने से तुम्हारे साथ वह एकता को प्राप्त हो गया है इसलिये तुम्हें जो पीड़ा होती है वह पीड़ा भी उनको होती है । हे आलि ! मैं तुझसे अधिक क्या कहूं वह अत्यन्त सुकुमार है (पीड़ा सहन नहीं कर सकता) ।।१।।

त्वत्सम्बुद्धो हुङ्कृतिमपि कुरुते नन्दसूनुरायातः । इत्युक्त्वे स्वावस्थामनुसन्धत्ते सखि प्रेयान् । २।।

तुम्हारे को जब कोई बुलाता है तो हुंकार भी वे नन्द कुमार करते हैं यह आया ऐसा कह कर फिर हे सखि ! वह प्रेमी अपनी अवस्था का अनुसन्धान करता है ।।२।।

रूपं तवैतदतिसुन्दरनीलमेघप्रोद्यत्तडिन्मदहरं व्रजभूषणाङ्गि ।
एतत्समानमिति पीतवरं दुकूलसूरावुरस्यपि बिभर्ति सदा स नाथः ।।३।।

हे व्रजभूषणाङ्गि ! तेरा यह रूप अत्यन्त सुन्दर नील मेघ के अन्दर उदय को प्राप्त होने वाली बिजली के मद को दूर करने वाला है इसी बिजली के समान ही वह स्वामी भी श्रेष्ठ पीताम्बर को अपने ऊरु (जांघ) तथा उरस्थल पर धारण करता है ।।३।।

अधराञ्जनदीप्तिभिः सुनासापुटमुक्ताफलभूषणं तवास्य-
सदृशं भवतीति गोपि कुञ्जाफलमुच्चैरुरसि प्रियो बिभर्ति ।।४।।

अधराञ्जन की दीप्तियों से सुन्दर नासा पुट का भूषण मोती तुम्हारे मुख के सदृश हो इस के लिये वह प्रिय भी गुञ्जाफल को अपने हृदय के ऊपर धारण करता है ।।४।।

किमित्येतावत्त्वं विषमशरतापं नु सहसे चल प्राणप्रेष्ठं मिल विरहतापं च शमय ।
तमप्यन्तः सन्तोषय वचनपीयुषनिचयैर्मुदा गोविन्दाङ्गे विलस सखि कामं चिरमिह ।।५।।

अरी तू इतने कामदेव के ताप को सह रही है चल प्राणेश से मिल उनके विरह ताप को शान्त कर अपने वचनामृतों से उनके अन्तःकरण को धीरज दिला और हे सखि ! प्रेम से गोविन्द के अंग के साथ चिर काल तक विलास कर ।।५।।

अजनि रजनिरेषा सान्द्रमासीत्तमस्तत् त्यज सुमुखि विलम्बं नीलनीवीं विधेहि ।
प्रतिपदमतियत्नं नूपुरे मुकयन्ती चल कुरु वलयादीन्यञ्चलेनावृतानि ।।६।।

यह रात हो गई है और गाढा अन्धकार भी हो गया है । हे सखि ! अब देर न कर नील वस्त्र को पहन ले ये नूपुर बजे नहीं इस तरह का यत्न कर और कङ्कणों को भी कपड़े से ढकले और चल ।।६।।

विविधकोमलपल्लवनीरजस्थलजपुष्पदलैः सुभगः स्वयम् ।
शयनमालि विधाय तवागतिं चकितदृष्टि मुहुर्मुहुरीक्षते ।।७।।

अनेक प्रकार के कोमल पत्तों से और जल में उत्पन्न तथा स्थल में उत्पन्न पुष्पों और पत्तों से स्वय ने शय्या बनायी है और वह सुभग अब चकित दृष्टि से बार बार तुम्हारे आने को राह देख रहे हैं ।।७।।

शनैर्गत्यायास्यत्यनु नतदृशा द्रक्ष्यति च मां समालिङ्गय प्रीत्या रतमपि विधास्यत्यतिचिरम् ।
इति स्वान्तश्चिन्ताशतवलितभावोपि स तदा मुदा तत्तद्रूपो भवति तदयं केवलरसः । ८।।

धीमी गति से वह आयेगी और इसके बाद नीची दृष्टि किये हुए मुझे देखेगी और प्रेम से आलिङ्गन करके अति चिर काल तक रमण भी करेगी इस प्रकार अपने अन्तःकरण में अनेक भावों का चिन्तन करता हुआ वह उस समय हर्ष से तत् तत् रूप होता है वही तो यह केवल रस है ।।८।।

एतादृशो हरिर्यद्यभिसरति त्रिगुणमारुते वहति । किमतः परमधिकसुखं वद त्रिलोक्यां वरीवर्ति ।।९।।

शीतल-मंद-सुगन्ध इस तरह की त्रिविध वायु के चलने पर यदि इस प्रकार का हरि अभिसरण करता है तो कहो इससे बढ़कर अधिक सुख तीन लोक में कोई है ? ।।९।।

जानासि स्नेहरीतिं तदनु मधुरिपोर्निर्भरस्नेहमात्म-
न्यत्यन्तार्द्रार्द्रतां च प्रियतमहृदयस्यासि दूना स्वयं च ।
तत्रागन्तुं तथापि त्वमिह न मनुषे तत्र हेतुं न जाने
मानाम्भोधेरपीत्थं सरसिजनयने सेतुरुल्लङ्घितस्ते ।।१०।।

तू स्नेह की रीति को जानती है और मधू सूदन के निर्भर स्नेह को भी जानती है तू अपने हृदय की अत्यन्त सरसता को और प्रियतम के हृदय की सरसता को भी जानती है और तू स्वयं भी दुःखी है । फिर भी तू वहां आना नहीं चाहती इस का कारण मैं नहीं जानती हे कमलनयनी ! तू तो इस मान समुद्र के सेतु को भी उलांघ गयी है ।।१०।।

इति श्रुत्वा तस्या वचनमरुणार्द्राञ्चलदृशा प्रपश्यन्ती दूतीं विरहभरदीनार्द्र कुपिता ।
शनैरर्धस्पष्टाक्षरमवददम्भोयुतदलान्युरस्यम्भोजानां प्रियसखि वहन्ती कथमपि ।।११।।

इस प्रकार दूती के वचन को सुनकर आंसुओं से युक्त लाल लाल आँखों से दूती को देखती हुई विरह की वेदना से आद्र और कुपित होती हुई अपने हृदय के ऊपर कमलों के जल युक्त पत्रों के स्थापित किये हुए बड़ी कठिनता से, हे प्रिय सखि ! धीरेसे जिसमें आधे अक्षर ही स्पष्ट सुनाई देते थे इस तरह बोली ।।११।।

किमेवं दूति त्वं वदसि युवतीयूथवलितः स तु स्वच्छन्दं तद्विलसितवशो हन्त रमते ।
तदस्त्वेवं किन्तु प्रियविरहतप्तं तदधरामृतं शीतं पातुं स्पृशति हि मनः किन्नु करवै ।।१२।।

हे दूति ! तू यह क्या कह रही है वह तो युवतियों के यूथ से घिरा हुआ है और बड़े दुःख की बात है कि वह उनके विलास के वशीभूत होकर स्वच्छन्द रमण कर रहा है वह जो कर रहा है करे परन्तु प्रिय के विरह से तपा हुआ मेरा मन उसके शीतल अधरामृत का पान करने की इच्छा कर रहा है अतः क्या करूँ ।।१२।।

यदि त्वदुक्तं सखि सत्यमेव नायाति नाथस्त्वरितं नु कस्मात् ।
निर्दोषलेषामपि मां यदित्थमुपेक्षते तद्विधिवैपरीत्यम् ।।१३।।

हे सखि ! यदि तेरा कहना सत्य ही है तो वह स्वामी शीघ्र क्यों नहीं आ जाता । जिसमें किसी प्रकार के दोष का लेष भी नहीं है उस मेरी वे उपेक्षा कर रहे हैं यहीं तो भाग्य की विपरीतता है ।।१३।।

यस्मिन् स्मृतेपि चन्दनपङ्को विषमास मारुतो दहनः ।
तदपि न जहाति तं प्रियमतिस्वतन्त्रं मनो हन्त ।।१४।।

जिसकी याद आते ही यह चन्दन पङ्क विष बन गया और यह वायु अग्नि बन गयी । तो भी अति स्वतन्त्र उस प्रिय को मेरा मन छोड़ नहीं रहा है इससे अधिक दुःख की बात क्या है ।।१४।।

अत्रान्तरे च लक्ष्मव्याजात् कुलटाविलोचनाम्बूनि ।सन्धारयन् कलानिधिरुदगादनिलो वियोगाग्नेः ।१५।

ऐसी बातें हो रही थी उसी समय कुलटाओं के नेत्रों के आंसुओं को कलङ्क के रूप में धारण करता हुआ चन्द्रमा और बियोगाग्नि की हवा प्रकट हो गयी ।।१५।।

कुलटाकुलकोपारुणकटाक्षमोक्षैरिवारुणं चन्द्रम् । दृष्ट्वा च हरिविलम्बितमनुतापं साऽकरोद्दीना ।।१६।

कुलटाओं के समुदाय के क्रोध से अरुण कटाक्षों के मोक्षण से मानों लालिमा को प्राप्त हुए चन्द्रमा को देखकर भगवान् के मिलने में विलम्ब के कारण वह दीन होकर अनुताप करने लगी ।।१६।।

पञ्चमरागेण गीयते ।

हा हा कथं हरिर्मां कृपयिष्यति ।
अधरामृतमपि पाययित्वा जीवयिष्यति । ध्रुवपदम् ।
सङ्गाशयापि साधु न जीवितमिह दूतिका मे वृथा वञ्चनमकृत ।
कं नु व्रजामि शरणं माधवं विना नाथ कृपानिधिरसि दीनायै वदनं दर्शय प्रीतिवृत ।।१।।

हाय हाय हरि मेरे ऊपर कैसे कृपा करेंगे । अपना अधरामृत पिलाकर मुझे जीवित करेंगे ? सङ्ग की आशा से भी जीवित रहना ठीक नहीं इस दूती ने व्यर्थ ही मुझे चकमा दिया है । माधव के बिना अब किसकी शरण में जाऊँ हे नाथ ! आप कृपा निधि हैं हे प्रीति से वरण किये नाथ मुझ दीना को अपना मुख दिखलाओ ।।१।।

परिक्लिष्टामेवं सकृदपि हृदा यत् स्मरति नाप्ययोगाग्निज्वालाशबलितमनः स्पर्शमपि तत् ।
न जानाति प्रायस्तदिह सखि साध्वेव समभूत् सहन्ते न प्राणाः क्षणमपि विलम्बं परममी ।।१७।।

इस तरह से अत्यन्त दुःख से दुःखित हुई की याद भी हृदय से नहीं करते हैं और वियोगाग्नि की ज्वाला से शबलित मेरे मन के स्पर्श को भी नहीं जानते हैं अतः हे सखि ! प्रायः यह अच्छा ही हुआ किन्तु ये मेरे प्राण क्षणभर का बिलम्ब भी सहन नहीं कर रहे हैं ।।१७।।

स हि स्त्रीसम्भोगेष्वनुरतमना मन्मथमदोज्झितव्रीडास्ता अप्यतिचतुरमागन्तुमपि न ।
ददत्यन्यत्रेति प्रियतमविलम्बोऽभवदथो पथि ज्ञातः केनाप्यतिमधुरमूर्तिर्विधिवशात् ।।१८।।

वह तो स्त्री भोग में अनुरक्त मन वाला है ही और कामदेव के मद से लज्जा जिनकी छूट गयी है वैसी वे स्त्रियां हैं अतः वे स्त्रियां उनको अत्यन्त चतुर होने पर भी दूसरी जगह आने नहीं देती इसलिये प्रियतम के आने में विलम्ब हो गया है । अथवा रास्ते में भाग्यवश किसी ने उस मधुर मूर्ति को जान लिया है (इससे विलम्ब हो गया है) ।।१८।।

गोपस्त्रीनयनाञ्जनं व्रजवधूनेत्राम्बुजान्तर्गता तारा तत्कुचचूचुकं मरकताकल्पः कुमारीहृदाम् ।
गोपीबाहुलतातमालविटपो त्वत्सङ्गमाशाचलद् वल्लीकल्पतरुः करोतु न चिराद्राधे त्वदिष्टं हरि ।१९।

गोपस्त्रियों के नेत्र के अञ्जनरूप, व्रज वधूओं के नेत्र कमल के अन्तर्गत तारा रूप और कुमारिकाओं के हृदयों के लिये उनके कुच के अग्रभाग मरकत मणि के सदृश है । और गोपिकाओं की बाहुलता के लिये तमालवृक्ष है और तुम्हारी सङ्गमाशा जो चलायमान वल्ली के समान है उसके लिये वह कल्पवृक्ष है ऐसे हरि हे राधे ! तेरी चाही हुई बात को शीघ्र ही पूरी करे ।।१९।।

इति श्रीविठ्ठलेश्वरविरचिते शृङ्गाररसमण्डने चतुर्थ उल्लासः ।

पञ्चम उल्लासः ।

अतीतायामित्थं कथमपि निशायामथ हरिं दरव्रीडानम्रोभवदतिचलेक्षातिरुचिरम् ।
प्रभाते वाक्पेशैरनुनयकृते चातिमधुरं वदन्तं खिन्नापि प्रणतमपि सासूयमवदत् ।।१।।

इस तरह किसी प्रकार रात्रि के बीत जाने पर भय और लज्जा से नम्रतायुक्त अत्यन्त चलायमान नेत्रों से सुन्दर हरि को सवेरे खुशामद की बातों के बनाने में अत्यन्त चतुर और मीठी बात बोलते हुए और प्रणाम करते हुए को दुःखित होती हुई भी तिरस्कार युक्त वाणी से बोली ।।१।।

यद्रसपूर्णो माधव बहिरन्तश्चापि वर्तसे नूनम् । तद्रसविरुद्धवचनं नोचितमृतभाषिणस्ते हि ।।२।।

हे माधव ! निश्चयरूप से तू जिसके रस से बाहर और भीतर पूर्ण है उस रस के विरुद्ध तेरा बोलना उचित नहीं क्योंकि तू तो सत्यवादी है इसलिये सच्ची बात बोलनी चाहिये ।।२।।

साधुरसि यत्स्वकीयं गुणमपि रागं तदीयलोचनयोः । दत्वा तन्मालिन्यं स्वयं बिभर्षि व्रजाधीश ।।३।।

हे व्रजाधीश ! तुम बहुत भले हो इसलिये अपना गुण भी जो रागरूप है वो तुमने उसके नेत्रों को दे दिया है और उसकी मलीनता को तुम धारण कर रहे हो ।।३।।

अधरगतं दशनपदं प्रथयति रसभङ्गनिश्चयं भवति । स्थाने स्थानेऽरुणिमानुरागविरलत्वमावहति ।।४।।

तुम्हारे अधर के ऊपर जो दन्तक्षत के चिह्न है वे तुम्हारे रसभङ्ग का निश्चय करने

वाले हैं । और स्थान स्थान पर जो अरुणिमा है वह अनुराग की विरलता को बताती है ॥४॥

अद्यापि निर्भरध्यानप्रकटायास्तवान्तरे । बहिरप्याविरास्तेऽस्याः कुचकुङ्कुमबिम्बितम् ॥५॥

अभी भी बहुत ध्यान करने के कारण तुम्हारे अन्दर प्रकट हुई उस (नायिका) के कुच कुंकुम काबिम्ब तुम्हारे बाहर आविर्भूंत हो रहा है ॥५॥

भवान् सा सा भवानासीदिति तस्याः सुरञ्जनम् । वसनं वहति श्याम मदपेक्षा तदा कुतः ॥६॥

ध्यान के कारण आप नायिका बन गये हैं और आप के ध्यान से वह नायिका आपके रूप में परिणत हो गयी है इसलिये तो उस नायिका का सुरञ्जन वस्त्र आपने धारण किया है हे श्याम ! तब मेरी आपको क्या अपेक्षा है ॥६॥

यस्तस्यामनुरागः स एव नेत्रारविन्दयोः प्रकटः । आसीज्जागरजनितस्तद्गोपनमत्र तेऽशक्यम् ॥७॥

उस नायिका में जो आपका अनुराग है वही तो आपके नेत्र कमलों में (लालिमा के रूप में) प्रकट है । वह अनुराग (राग) जगने के कारण हुआ है इसलिये उसका छिपाना कठिन है ॥७॥

मन्येऽहं माधव तव लोचनतारान्तरापि सैवास्ते । यदिह निमीलयसि मुहुर्गोपयितुं ता मदग्रे ते ॥८॥

हे माधव ! मैं ऐसा मानती हूं कि तुम्हारे नेत्रों की पुतली के अन्दर वह नायिका है अतः उसको छिपाने के लिये बार बार मेरे सामने उन दोनों आंखों को बन्द करते रहते हो ॥८॥

का मम शङ्का वीरस्मररणजयलेखमावहस्युरसि । सापि प्रमदा नूनं लौकातीता ददौ यदिमम् ॥९॥

अब मुझे किसी बात की शंका नहीं है क्योंकि वीर की याद दिलाने वाली जयलेखा को तुम अपने उरस्थल में धारण किये हुए हो और वह प्रमदा (नायिका) निश्चय रूप से लोकातीत है जिसने तुम्हें यह जय लेख दिया है ॥९॥

तस्या नखाङ्को नैवायं किन्तु त्वद्धृदयान्तरे । प्रवेष्टुं रचितं द्वारं तयैवाग्रिमशङ्कया ॥१०॥

तुम्हारे अङ्ग में उस नायिका का यह जो नखचिन्ह दिखाई दे रहा है वह नखचिन्ह न होकर तुम्हारे हृदय में प्रवेश करने के लिये उसने यह अग्रिम शंका के कारण द्वार बनाया है ॥१०॥

त्वय्यतिप्रणता सास्ते वीर यत्कुचकुङ्कुमम् । त्वत्पादतलमायातं तदलं गोपनैस्तव । ११॥

हे वीर ! उसने तुमको अत्यधिक प्रणाम किया इसी कारण से उसके स्तनों की केसर तुम्हारे चरणों में आ गयी है अब उसका छुपाना तुम्हारे लिये व्यर्थ है ॥११॥

हृदयानुरूपमेव व्रजेश शीघ्रं विधेहि तामेव । अनुसर सरसिजलोचन या कामं तेऽकरोत् पूर्णम् ॥१२॥

हे व्रजेश ! तुम शीघ्र उसे ही अपने हृदय के अनुरूप बनाइये । हे कमलनयन ! उसी का अनुसरण करो जिसने तुम्हारी कामना को पूर्ण किया है । ॥१२॥

अवधीकृता निशा ते स्वागमनेऽद्यापि सा न जातेह । अतिसाधुरसि किशोर प्रभात एवागतो यत्त्वम् ॥१३

तुमने जिस रात्रि में आने का वादा किया था वो तो अभी हुई नहीं तुम तो बड़े भले पुरुष हो हे किशोर! तुम तो सवेरे ही आ गये । इसमें विपरीत लक्षण है अर्थात् जिस रात्रि में आने की कही थी उस रात्रि में नहीं आये ॥१३॥

एतादृश्यामपि मयि यदि त्वत्कृतिरीदृशी । तदा वदामि किं नाथ किं वा भावि न वेद्मि तत् । १४॥

इस प्रकार का अनुराग रखने वाली के साथ भी जब तुम ऐसा व्यवहार कर रहे हो तो हे नाथ ! तब मैं क्या कहूं क्या होगा इसकी कुछ समझ नहीं पड़ती ॥१४॥

ईषन्मुकुलितनयनं जृम्भन् राधाभयेन रत्यङ्कान् । सङ्गोपयन्नुदारः शमयत्वाधिं सरोजाक्ष्याः ॥१५॥

राधा के भय से सम्भोग के चिन्हों को छिपाते हुए वे उदार अधखुली आंखों से जंभाई लेते हुए कमलनयनी की मानसिक पीड़ा को शान्त करे ॥१५॥

इति श्रीविठ्ठलेश्वरविरचिते शृङ्गाररसमण्डने पञ्चम उल्लासः ॥

षष्ठ उल्लासः ।

अथ तां विषादमूकां स्मरशरखिन्नां स्वरूपमाचरितम् ।
ध्यायन्ती स्वहृदि हरेः शनैरवोचत् सखी चतुरा ॥१॥

इसके बाद विषाद से मूकता को प्राप्त एवं काम के बाणों से दुःखी राधा से चतुर

सखी ने हरि के स्वरूप का आचरण अपने हृदय में ध्यान करके धीरे धीरे बोली ।।१।।

शृणु सखि वचनमिदं मम मा कुरु मानं त्वमुन्मुखे तस्मिन् ।
प्राणप्रियेऽनुरागिणि न ह्युचितं जातु मुग्धाक्षि ।।२।।

हे सखि ! मेरी इस बात को सुन जब हरि तेरे सामने खड़े है तो अब तुझे मान नहीं करना चाहिये । हे मुग्धनयने ! जब प्राणप्रिय अनुराग युक्त हों तो इस तरह मान करना किसी तरह उचित नहीं है ।।२।।

मन्दानिले वहति माधव एष राधे प्राप्तोभिसारपदवीं यदि काननेस्मिन् ।
लोकत्रये किमपरं सुखमस्ति तत्त्वं जानास्यहं किमु वदामि तथापि तेस्मि ।।३।।

हे राधे ! धीमी धीमी हवा चल रही है और यह माधव इस वन में अभिसरण करके जब आये हैं तो इससे बढ़कर तीनों लोकों में और सुख क्या हो सकता है यह तो तू जानती ही है मैं तुझे क्या कहूं परन्तु मैं तेरी हूं इसलिये कहती हूं ।।३।।

राधे त्वद्भाग्यमहिमा न वेदविषयोप्ययम् । यन्माधवस्त्रिलोकस्त्रीमृग्यस्त्वयि रतस्तराम् ।।४।।

हे राधे ! तेरे भाग्य की महिमा को वेद भी नहीं कह सकता जहां तीनों लोकों की स्त्रियां जिनकी अभिलाषा करती है वे माधव तेरे में अत्यन्त अनुरक्त हैं ।।४।।

किमिति विषीदसि मुग्धे मधुसूदनमाशु मिल मनस्तापम् ।
मुञ्च विलोचनयुगलं सफलय तद्दर्शनेनाद्य ।।५।।

अरी बेसमझ ! तू क्यों विषाद कर रही है मधुसूदन से जल्दी मिल और अपने मन के ताप को दूर कर तथा उनके दर्शन से आज अपने दोनों नेत्रों को सफल कर ।।५।।

कतिधा कथितमिदं ते मा परिहर माधवं जातु । सागस्केपि प्रणयिनि हृदयस्याशक्यवृत्तित्वात् ।।६।।

मैंने तुझे कितनी तरह से समझाया है कि माधव को कभी मत छोड़ जब हृदय उससे हट न सके तो अपराधयुक्त भी यदि प्रेमी हो तो भी उसे नहीं छोड़ना चाहिये ।।६।।

कुचकुंकुमपङ्कं सखि लोचननीरेण सिञ्च मा यदयम् । प्रकटोनुराग एव प्रियतमविषयो हि नो दहनः ७

हे सखि ! स्तन के ऊपर लगी हुई केसर को तू अपने नेत्रों के जल से मत सिंचन कर इसे लाल लाल देखकर तू अग्नि समझ रही है पर यह अग्नि नहीं है यह तो प्रियतम विषयक अनुराग प्रकट हुआ है ।।७।।

हरिरतिकोमलचित्तः सोढुमशक्तस्त्वदीयमानमपि । तदिहायात्वतिमधुरं वदतूदारो हरत्वार्तिम् ।८।।

हरि अत्यन्त कोमल चित वाले हैं ये तेरे मान को भी नहीं सह सकते हैं इसलिये यहां आ और उनसे मधुर बोल हरि बड़े उदार हैं तू उनकी पीड़ा को दूर कर ।।८।।

अत्रान्तरे प्रणयकोपभरस्माराधिनिश्वासचञ्चदधरां शिथिलाभिमानाम् ।
राधानुरागभरसार्द्रहृदा स चाटु सानन्दमिन्दिवदनीं निजगाद नाथः ।९।।

इसी बीच में प्रणय कोप की अधिकता के कारण काम की पीड़ा से निकलने वाले निश्वास से होठ जिसके कांप रहे हैं एवं अभिमान जिसका ढीला पड़ गया है ऐसी कमलनयनी राधा अत्यन्त अनुराग के कारण सरस हृदय से चातुर्य तथा आनन्द के साथ स्वामी बोले ।।९।।

कल्याणरागेण गीयते ।

सरसिजनयने मानं त्यज ।
मयि न तवोचितमसमशरे परिधावति । ध्रुवपदम् ।
निजाधरसुधया तापं मनसिजरचितं दूरीकुरु ।
निजवाचा सुखं तनु ।।१।।

हे कमलनयने ! मान को छोड़ जब कामदेव मेरे ऊपर आक्रमण कर रहा है उस समय मेरे पर मान करना उचित नहीं । अपनी अधर सुधा से कामजन्य ताप को दूर कर और अपनी वाणी से मुझे सुखी कर ।।१।।

कुचकुम्भपरीरम्भारम्भसम्भावनैव ते । सुखयत्वालि मामेवंभूते किं नु विलम्बसे ।।१०।।

हे आलि ! तुम्हारे कुचकलश युगल के आलिङ्गन के आरम्भ की सम्भावना से ही मुझे सुखी कर जब मैं तुम से इतना अनुराग कर रहा हूँ तो तू विलम्ब क्यों कर रही है ।।१०।।

लोचनकुवलययुगलं तव नवराकाकलानिधिः किरणैः ।
रञ्जयतु तत्प्रभाप्रतिबिम्बात् साङ्को भवत्वद्य ।११।।

तुम्हारा यह नवीन पूर्णिमा का चन्द्र (मुख) अपनी किरणों से दोनों नेत्र कमलों को रञ्जित करे जिससे उसके प्रभाबिम्ब से वह मुख चन्द्र अङ्क सहित हो जाय अन्यथा निष्कलङ्क होने से चन्द्र के समान तो न हो सकेगी ।।११।।

रतिपतिमङ्गलकलशे नवपल्लवपङ्क्तिरुल्लसत्वालि । तत्स्थितरसप्रकाशकमर्धं शशिबिम्बमाविभृहि।१२

हे आलि ! रतिपति के मङ्गल कलश(स्तन) के ऊपर ये नवीन पल्लवों की पङ्क्ति उल्लसित हो और उस मङ्गल कलश में स्थित रस के प्रकाशक अर्ध चन्द्र बिम्ब को धारण करो ।।१२।।

यदि मयि कोपिन्येवं प्रणयिन्यसि चारुविविधबन्धांस्त्वम् ।
रदखण्डननखरशराम् घटय मुदाहं त्वदीयोस्मि ।।१३।।

हे भामिनि ! यदि तुम मेरे में प्रेम करती हो तो सुन्दर विविध प्रकार के बन्धों की रचना करो दांतों से खण्डन (दन्त क्षत) का और नखों के बाणों का प्रसन्न होकर उपयोग करो मैं तुम्हारा हूँ ।।१३।।

त्वद्भ्रूचापाहितौ नेत्रबाणौ कुसुमधन्वनः । अलक्ष्यौ किं नु कुरुषे मुग्धे मयि पुरः सति ।।१४।।

तुम्हारे भ्रू रूप धनुष के ऊपर चढ़ाये हुए कामदेव के ये नेत्र बाण जो अलक्ष्य हैं वे हे मुग्धे ! मेरे सामने खड़े रहने पर क्या कर सकते हैं ।।१४।।

सर्वांशेन सखित्वं सख्यावयोरस्ति किं न वा । परिमाणेन धर्मैश्च तन्निर्धारय तत्त्वतः ।।१५।।

संर्वाश से हम दोनों सखियों में सखित्व (मित्रता) है या नहीं उसको तुम परिमाण से धर्मों से तथा तत्वत उसका निश्चय करो ।।१५।।

परीरम्भाम्भोभिस्तव वचनमन्त्रैस्त्वदधरामृतेन त्वन्नेत्राम्बुजमिलनतश्चापि सुमुखि ।
शमं प्राप्स्यत्येषः स्मरगरलतापः कथमपि प्रयोगैर्नान्यैस्तत्त्यज सखि विलम्बं प्रियतमे ।।१६।।

हे सुमुखि ! आलिङ्गन रूप जल से वचन रूप मन्त्रों से, अधरामृत से और तुम्हारे नेत्र कमल के मिलने से भी यह कामदेव के विष का ताप किसी तरह शान्त हो जायगा । हे सखि ! और प्रयोगों से यह शान्त होने का नहीं है अतः प्रियतम के विषय में विलम्ब न करो ।।१६।।

त्वयैवाक्रान्तेस्मिन्मम हृदतदेशे न हि परः समाक्रान्तुं शक्तस्तरुणि परमं देवमसि यत् ।
अतो हित्वा शङ्कां मयि कुरु सरोजाक्षि विपुलं प्रासादं मौनं च त्यज विमुखतां च व्रज मुदम् ।।१७।।

तुम्हीं ने मेरे इस हृदय देश पर आक्रमण कर रक्खा है इसलिये इस पर दूसरा कोई आक्रमण नहीं कर सकता और हे तरुणि ! तुम हो मेरी परम देवता हो इसलिये शङ्का छोड़ दो और हे कमलनयने ! मेरे ऊपर कृपा करो मौन और विमुखता का परित्याग करो और खुश हो जाओ ।।१७।।

दूरगगवां हरिः स्वप्रीत्या नवनीरदार्द्रया वाण्या । उद्धृतबाह्वाह्वानं कुर्वन् राधाप्रियं तनुतात् ।।१८।।

जो हरि दूर चली गई गायों को प्रीति के साथ नवीन मेघ की गर्जना के सम सरस वाणी से हाथ को ऊंचा उठाकर बुलाते हैं वे हरि राधा का प्रिय करें ।।१८।।

इति श्रीविट्ठलेश्वरविरचिते शृङ्गाररसमण्डने षष्ठः उल्लासः ।

सप्तम् उल्लासः ।

इत्थं प्रियामनुनयेन चिरं कथञ्चित् राधावरे स्मितमुखीं सखि मानयित्वा ।
वेशं विधाय च लतागृहपुष्पशय्यां प्राप्तै त्रपास्मितदृशीमवदत् ताम् ।।१।।

इस तरह प्रिया को किसी तरह मनाकर हे सखि ! उसे राधावर (कृष्ण) के प्रति स्मित मुखी (प्रसन्न मुख वाली) कर दिया जब वह वेश पहन कर लतागृह की पुष्प शय्या पर पहुंची और लज्जा से मुस्कराती हुई दृष्टि वाली से तब सखी बोली ।।१।।

राधे त्वत्सदृशी लोकत्रये का नु नितम्बिनी । इत्थंभूतो हरिर्यस्यां तदलङ्कारमातनु ।।२।।

हे राधे ! तेरे जैसी कामिनी तीनों लोकों में कौन हो सकती है जिस के लिये हरि इस तरह अभिलाषा करते हैं अतः अबतुम अलङ्कार पहनो ।।२।।

इत्युक्त्वा सुमुखीमतिमुदिता पाटीरमृगमदागरुभिः । कर्पूरागरुसारैरकरोदुद्वर्तनं साऽस्याः ।।३।।

इस तरह कहकर प्रसन्न होती हुई उस सखि ने उस सुमुखी का चन्दन कस्तूरी अगर कपूर अगुरुसार से उसका उबटन किया ।।३।।

ततः केवलकाश्मीरपङ्केनोद्वर्तनं सखि । सर्वाङ्गे सहजामोदमोहने सुदृशोऽकरोत् ।।४।।

हे सखि ! फिर केवल केसर से उसके अङ्ग में उबटन किया यद्यपि उसके सर्वाङ्ग में सहज ही आमोद और मोहनता थी परन्तु फिर भी उस सुनयना के लिये उबटन किया ।।४।।

तस्यास्ततः कनकपट्टमयप्रसूनगुच्छोल्लसत्तनुतरामलपीतदाम्ना ।
सानन्दतः कटितटे प्रकटार्धनाभिनीवीं बबन्ध वररञ्जनमोहनाङ्गी ।।५।।

इसके बाद स्वर्णपट्टमय फूलों के गुच्छों से शोभित अत्यन्त महीन स्वच्छ नीवी (अधो वस्त्र) को बडे आनन्द से वर को रञ्जित और मोहित करने में चतुर सखी ने कमर में इस तरह बांधी कि जिस में आधी नाभि स्पष्ट रूप से दीखती रहे ।।५।।

माध्यमिकत्वान्मन्ये शून्यालम्बीह मध्यविज्ञानम् । वाधारं कुचकुम्भावनुमापयतः परं सत्वम् ।।६।।

नाभिका छिद्र मध्य में इस कारण से यह है कि शून्य से ही मध्य का ज्ञान किया जाता है । अतः स्वाधार पर सत्व को ये कुच कुम्भ नापने वाले हैं ।।६।।

विद्यु ति नीलो जलदस्तदुपरि तहतिः स्थिरा यदि स्युरहो ।
विविधाकल्पयुतायाः कञ्चुक्याः स्यात्तदा साम्यम् ।।७।।

बिजली के ऊपर नील मेघ हो और उसके ऊपर पुनः स्थिर बिजली हो यदि ऐसा हो तो अनेक प्रकार की रचनाओं से बनायी गई श्याम कञ्चुकी की समानता हो सकती है ।।७।।

परिधाप्यासितकञ्चुकमाकल्पांश्चात्र सहचरी चतुरा । तस्यै भावि द्विविधं रतमेव वरोरु सूचयति ।८।

चतुर सहचरी ने श्याम कंचुकी को पहनाकर और अनेक प्रकार की रचना करके उसने इस बात को सूचित किया कि हे वरोरु ! तुझे दोनों प्रकार की रति होगी ।।८।।

सितपीतयूथिकानवमालत्यादि प्रसूननिकरैः सा । उद्ग्रथ्य चारुवेणीं मुक्तागुच्छान्यरचयत् प्रान्ते ।।९।।

उसने श्वेत-पीत जुही के तथा मालती के पुष्प समूहों से सुन्दर वेणी को गूंथ कर उसके प्रान्त में मोतियों के गुच्छे बनाये ।।९।।

मृगमदतिलकं विधाय तिर्यङ्मणिजटितामलमुक्तिकायुतं च ।
तदुपरि विदधे ततश्च पुष्पाण्यलकशते विरलान्यकुर्वतास्याः ।।१०।।

कस्तूरी का तिलक लगा कर उसमें तिरछा मणिजटित स्वच्छ मोती लगा दिया और फिर उसके ऊपर सैंकड़ों अलकावालियों में दूरी दूरी पर पुष्प लगा दिये ।।१०।।

भ्रमरचये कमलारुणपरागरेखा यदि भवेत्तस्याम् । मकरन्दबिन्दवश्च स्यात् सीमन्ते तदा साम्यम् ।११।

उसके सीमन्त की शोभा का साम्य तब हो सके कि जब भौंरों के झुण्ड़ों पर कमल की लाल पराग रेखा हो और उसमें यदि मकरन्द की बिन्दुएं हो तब समता हो सके ।।११।।

न मुक्ताश्रेणीयं सुरसरिदये किं नु यमुना न केशाः सिन्दूरं नहि सखि सरस्वत्यनुगता ।
तदेवं वेणीति स्मरविरचितं कामितफलप्रदानं तीर्थं माधवमुनिवरस्यैव मिलनात् ।।१२।।

ये मोतियों की रेखा नहीं हे अरी ये तो गङ्गा है और ये केश नहीं है किन्तु यह तो यमुना है और हे सखि ! यह सिन्दूर नहीं है किन्तु गङ्गा और यमुना के साथ मिली हुई सरस्वती है अतः यह मन चाहे फल को देने के लिये कामदेव के द्वारा बनाया गया त्रिवेणी तीर्थ है परन्तु यह तीर्थ माधव मुनिवर के मिलने से ही होगा ।।१२।।

कनकमणिजटितविविधाभरणातिमनोज्ञकर्णयोरुपरि ।
अरुणे चकार कुसुमे मनोजबाणाविवाकृष्टौ ।।१३।।

सुन्दर कानों में सोने में जड़ी हुई अनेक मणियों के विविध आभरणों के ऊपर दो लाल पुष्प ऐसे लग रहे थे मानो कामदेव के निकाले हुए दो बाण हो ।।१३।।

सततं नन्दकुमार स्वरूपचरितामृतश्रुतावनयोः । यो निर्भरोऽनुरागः प्रकटः सोयं न पुष्पयुगम् ।।१४।।

ये कानों के ऊपर दो लाल पुष्प हैं वे पुष्प नहीं है किन्तु निरन्तर नन्दकुमार के स्वरूपामृत और चरितामृतों को जो सुना उसके कारण से जो निर्भर अनुराग प्रकट हुआ है वे ये (पुष्प) हैं ।।१४।।

मुद्रिकादिविविधाभरणानि प्रेयसीभुजयुगे परिधाप्य ।
अञ्जनं सखि चकार मृगाक्ष्या लोचनाम्बुजयुगे तनुरेखम् ।।१५।।

तदनन्तर मुंदरी आदि विविध आभरणों को प्रेमिका के दोनों भुजाओं में पहनाकर फिर उस मृगनयनी के नेत्रों में अञ्जन लगाया उस अञ्जन की रेखा दोनों नेत्रों में बहुत हलकी सी थी ।।१५।।

कुवलयबाणावेतौ रतिपतिराज्ञो यदग्रतः कुटिलौ ।
विधिना रचितौ तत्सखि विद्धौ न बहिः समायातः ॥१६॥

रति के पति राजा कामदेव के ये दोनों कमल बाण हैं जो आगे से कुटिल (नोकदार) हैं विधाता ने ही उन्हें ऐसा बनाया है इसलिये हे सखि ! उन बाणों से उसे वेध दिया अतः टेढे होने के कारण बाहर न आ सके अन्दर फंस गये हैं ॥१६॥

दलिताञ्जननीलः श्रीकृष्णः परमं तदीयदृशोः ।
विषय इति ज्ञापयति प्रियसखि परितोऽञ्जनं तस्याः ॥१७॥

हे प्रियसखि ! उसकी आंखों के चारों ओर का अञ्जन इस बात की सूचना दे रहा है कि फोडे हुए अञ्जन के ढेले के समान श्याम श्री कृष्ण इसकी आंखों में रम रहे हैं ॥१७॥

आधिक्यान्नमनारविन्दगरसो मायात्विति प्रेयसी । यत्नेनाञ्जनसेतुमत्र विदधे सम्प्रत्यभूद्विभ्रमः ।
एतेनैव सरित्सहस्रमखिलास्वाशास्वयेऽचालयत् । तद्युक्तं कुटिलस्य हि प्रियसखि स्वाभाविकोऽयंगुणः ।१८।

उस सखी ने देखा कि इन नेत्र कमलों में रहने वाला जो रस है वह अधिक होने से कहीं बाहर न निकल जाय इसके लिये बड़े प्रयत्न से उसने यहां अञ्जन का सेतु (बांध) बांध दिया है परन्तु इस समय उसमें थोड़ासा छेद पड़ गया है जिसके कारण हजारों नदियां सभी दिशाओं में चल पड़ी हैं ऐसा होना उचित भी है हे प्रियसखि ! कुटिल (नेत्रों) का तो यह स्वाभाविक गुण होता ही है ॥१८॥

अञ्जनरञ्जितनयनं खञ्जनमेनं जयत्यये यदिदम् ।
स्थिरमपि सदा हरेर्हृदि तरलतरत्वं बिभर्त्यव ॥१९॥

अञ्जन से रञ्जित इसके नेत्र खञ्जन से भी बढ़कर हैं खञ्जन तो केवल चञ्चल ही होता है किन्तु इसके नेत्र हरि के हृदय में सदा स्थिर रहते हैं और अन्य समय ही चञ्चलता को धारण करते हैं ॥१९॥

राधा कृपया यद्यपि वर्णयितुं शक्तिरस्ति मे तदपि ।
नो वर्णयामि सङ्गमकथाविलम्बोऽप्यसह्यो यत् ॥२०॥

राधा की कृपा से यद्यपि मेरे में वर्णन करने की शक्ति है तथापि मैं वर्णन करना नहीं च हती ङ्गम कथा में विलम्ब हो जाना असह्य है ॥२०॥

अशेषभूषणं तस्या विधाय सुमनस्रजम् । कण्ठे चकार पाटीरकुङ्कुमादिविचित्रताम् ॥२१॥

सभी आभूषण उसे पहना कर फिर फूलों की माला गले में पहनाई और चन्दन केसर आदि से उसे चित्रित किया ॥२१॥

तन्वङ्गमुत्तरीयं सा परिधाप्य सुरञ्जनम् । ददौ कर्पूरकस्तूरीयुतं ताम्बूलमुत्तमम् ॥२२॥

महीन सुन्दर रङ्गीन उत्तरीय (ओढनी) पहना कपूर और कस्तूरी से युक्त उत्तम ताम्बूल दिया ॥२२॥

ततश्चदर्शान्तः प्रतिफलितमेषा निरुपमं स्वरूपं दृष्ट्वातिप्रमुदितमना वीदितदृशा ।
कपोले किञ्चितत्स्वाञ्चलमनुचकारातिरुचिरे स्मितस्मेरां काचित् सहचरि तदातां समवदत् ॥२३॥

तब आईने के अन्दर प्रतिबिम्बित अपने निरुपम स्वरूप को देखकर लजीले नेत्रों से मन में बहुत प्रसन्न हुई और उसने अपने सुन्दर कपोल को वस्त्र से ढक दिया हे सखि ! तब मुस्कराती हुई राधा से सखी बोली ॥२३॥

मालव गौड़ीरागाभ्यां गीयते ।

राधिके सरसिजनयने, अनुसरमधुमथनम् ॥ध्रुवपदम्॥

सुमुखि तवानुनये कृत बहुतरयत्नं सम्प्रति कुञ्जगतं व्रजरत्नम् ॥१॥

धननिभहरिमिलने सफलय निजरूपं सुन्दरि राधे विद्युल्लतारूपम् ॥२॥

हे कमलनयने ! राधिके ! अब तुम मधुमथन का अनुसरण करो । हे सखि ! जिनने तुम को मनाने में बहुत ही यत्न किया था । अब इस समय वे व्रजरत्न कुञ्ज में विराजमान हैं । मेघ के सदृश हरि से मिलने में हे सुन्दरि राधे बिजली के समान अपने रूप को सफल बनाओ ॥१-२॥

त्वदगुणो मन्दोऽयं प्रेरयति प्रेष्ठसङ्गमे पवनः । शिक्षयति चातिमन्दं चरणन्यासं घने तमसि ॥२४॥

तुम्हारे अनुकूल यह मन्दगति पवन तुम्हें प्रिय से मिलने की प्रेरणा दे रहा है और इस गाढे अन्धकार में शनैः शनैः पैरों के रखने की तुम्हें शिक्षा दे रहा है ॥२४॥

अथभिसारयोग्यः समय इति ज्ञापनाय पिकदूतः ।
त्वामाह्वयति कुशलं सखि कुहूकुहूरित्युदारम् ।२५॥

यह समय अभिसार (प्रियतम के पास जाने का) के योग्य है इस बात की सूचना यह कोयलरूप दूत दे रहा है। और हे सखि ! कुहू कुहू इस उदारतर कलशब्द से तुम्हें बुला रहा है ।।२५।।

युवजनहृदयविदारणकुसुमेषुविमुक्तकुवलयेषूणाम् । सन्ततिरलौकिकानां तम इत्यभिधीयते सुमुखि।२६।

हे सुमुखि ! जिसे तुम (अन्धकार) कहती हो वह अन्धकार नहीं है किन्तु युवकों के हृदय को चीरने वाले ये कामदेव के द्वारा छोड़े गये अलौकिक कमल बाणों का समूह है ।।२६।।

चन्द्राभिसारिकाशावनितानेत्रार्थमञ्जनं राज्या । यद्रचितं वृन्दावनपाले स्थूले सदुल्लसति ।।२७।।

चन्द्र का अभिसरण करने वाली जो दिशा है उसकी आंखों में लगाने के लिये रात्रिने जो वृन्दावनरूप बड़े पात्र में कज्जल तैयार किया हैं वही कज्जल यह हैं अन्धकार नहीं है ।।२७।।

ज्ञातं निखिलसखीभिस्तवाङ्गमेतन्मनेजिसभराय । उद्युक्तमित्यलज्जं तदभिसरारातिसरसहृदा ।।२८।।

सब सखियों ने यह समझ लिया है कि तेरा यह अङ्ग कामसमर(युद्ध)के लिये उद्यत है अतः अब तुम लज्जा को छोड़ कर अत्यन्त सरस हृदय से अभिसार (प्रिय के पास गमन) करो ।।२८।।

नूपुररशनानिः स्वनडिण्डिभमुपयाहि माधवं राधे । ईषत्कुटिलाञ्चलेन नयनेषुणा जय तम् ।।२९।।

हे राधे ! शब्द से रहित नूपुर और करधनी रूप डिण्डिम घोष के साथ तुम माधव के पास जाओ और थोड़े से टेढे घूंघट से युक्त नेत्र बाणों से उन्हें हरादो ।।२९।।

कुञ्चिताधरमुदञ्चितदृष्टि त्वां त्रयार्धनतसस्मितदृष्टिम् ।
कामभावचपलः सखि चुम्बत्यच्युतः सचिबुकग्रहमुच्चैः ।।३०।।

हे सखि ! कामभाव से चपल वह अच्युत दृष्टि जिसकी कुछ ऊपर है तथा होठ जिस के सिकुड़े हुए है और लज्जा से नीची तथा मुस्कराहट युक्त दृष्टि वाली के चिबुक को वे ऊँचा उठाकर चुम्बन करें ।।३०।।

इति श्री विट्ठलेश्वर विरचिते शृङ्गाररस मण्डने सप्तम् उल्लासः

अष्टम् उल्लासः ।

काञ्चनकाञ्चीदामश्रवणाभरणांशुदीप्तकुञ्जस्य । द्वारे दृष्ट्वानाथं सव्रीडां तां सखी प्राह ।।१।।

सुवर्ण की करधनी पहनी हुई और कानों के आभरणों की कान्ति से कुञ्ज को जिसने प्रकाशयुक्त कर दिया है वह राधा नाथ को द्वार पर देख कर लज्जित हो गयी तब सखी ने उससे कहा ।।१।।

प्रविश राधिके माधवान्तिकं मदनभूपते राजमन्दिरे ।
विलसराजिते विश्वगुल्लसत्कुसुमपल्लवैः कोकिलस्वने ।।२।।

हे राधे ! तुम माधव के पास प्रवेश करो यह काम नृपति का राजमन्दिर है इस में चारों ओर पुष्प और पत्र खिले हुए हैं कोकिला की ध्वनि हो रही है इसमें विलास करो ।।२।।

मन्थरविपुलतडिन्निभघनजघने विविधकुसुमचयरचिते ।
शयने विलस चिरं शुचितरे नितम्बिन्युदारतरे ।।३।।

हे मन्थर विपुल बिजली के समान घने जघन वाली नितम्बिनि ! अनेक विध पुष्प समूहों से रचित अतिस्वच्छ उदारतर शयन पर चिरकाल तक विलास करो ।।३।।

पिककल कूजित मुखरे सुखय हरिं सालिकमलनिभनेत्रम् ।
विकसित सरसिजनयने प्रकटय गूढं रसं राधे ।।४।

हे कोयल के कल (अव्यक्त) कूजन के समान वाणी वाली, हे खिले हुए कमल के समान नेत्रों वाली राधिके ! जिसमें भोंरे भी विद्यमान है ऐसे कमल के समान नेत्रों वाले हरि को तुम सुखी करो और गूढ रस को प्रकट करो ।।४।।

चिरचिन्तनसम्पाप्तत्वदैक्ये को नु सम्भ्रमः । इन्दीवराक्षि कन्दर्पसुन्दरे नन्दनन्दने ।।५।।

हे कमलनयने ! चिरकाल से तुम्हारी याद करते करते तुम्हारे साथ एकता को प्राप्त हुए काम के सदृश सुन्दर नन्दनन्दन के विषय में तुम्हें संकोच क्यों होता है ।।५।।

प्रकटस्त्वद्भावोऽयं रसशतवलितः सरोजमुग्धाक्षि । श्रीकृष्णाख्यस्तमिह स्वस्थानगत कुरुष्वाद्य ।।६।।

हे कमल के सदृश सुन्दर नेत्रों वाली राधे ! सैंकड़ों रसों से युक्त तुम्हारा भाव ही

यह प्रकट हुआ है जिसका नाम श्रीकृष्ण है उसे आज तुम अपने स्थान में ले जाओ ।।६।।

ततः साकूतार्धप्रणतविपुलानन्दसहजस्मितस्मेरायाङ्गक्षणमुदितमञ्जीरनिनदम् ।
विशेषानन्दार्द्रोत्पुलकितशरीरस्य सदनं हरेर्विष्वङ्मोदप्रसरमुदितालिध्वनियुतम् ।।७।।

तदनन्तर साभिप्राय अर्धप्रणाम से विपुल आनन्द के साथ ही सुन्दर मुस्कराहट युक्त निरीक्षण सहित मञ्जीर की ध्वनि से आनन्द से सरस पुलकित शरीर वाले हरि के सदन में प्रवेश किया वह सदन सब ओर से अत्यन्त फैलती हुई सुगन्ध के कारण भंवरों के झंकार से युक्त था ।।७।।

उद्वेलानन्दजलधितरङ्गपुलकोन्नतम् । राधैकतानहृदयं सा ददर्शालि माधवम् ।।८।।

अपनी मर्यादा का उल्लघन करनेवाले आनन्द के समुद्र की तरङ्गों से जिसे पुलकित रोमाञ्च हो गये है और हे आलि! राधा ही में जिनका हृदय एकतान हो रहा है ऐसे माधव को राधा ने देखा ।।८।।

अहमहमिकया राधासमागमेऽभ्युत्थितैरिवाङ्गरुहैः । प्रीत्या प्रथमागमने परिरब्धुमिवात्सुके रुचिरम्।९।

राधेक्षणसुधावर्षाप्रोद्यद्भावाङ्कुरैरिव । रोमभी रसधाराभिरिव राधान्तरोन्मुखैः ।।१०।।

प्रत्यङ्गान्तस्थितः प्रेष्ठा बहिरागमने सखि । वत्म संदर्शनायाङ्गरुहैरग्रेसरैरिव ।।११।।

राधा के साथ प्रथम समागम के लिये ही मानो खड़े हुए हों ऐसे रोमाञ्चों ने प्रेम के साथ मैं पहले मैं पहले इससे आलिङ्गन करूंगा इस तरह की होड से ही वे उत्कण्ठित हो रहे थे तथा राधा की दृष्टि की अमृत वर्षा से मानों उन रोमों में अङ्कुर उत्पन्न हुए थे। राधा की ओर अन्तः उन्मुख रसधाराओं की तरह उन रोमों ने हे सखि! प्रत्येक अंग के अन्दर विराजमान अपने प्रियतम को उनके बाहर आने के लिये मार्ग दिखलाने को ही मानों वे रोम आगे आगे चल रहे हैं ।।९-१०-११।।

सकुसुमकेशं राधा मञ्जीरनिनादसिद्धकलमन्त्रैः । अन्तर्गर्भितकुसुमस्तबकमिव स्मरतरुं सद्यः ।।१२।।

बालों में जिसने फूल गूंथ रक्खे हैं ऐसी राधा मञ्जीर को निनद ही जिस में मन्त्र रूप है उससे तथा जिसके अन्दर फूलों के गुच्छे हैं एसे कामवृक्ष की तरह शोभित हो रही थी ।।१२।।

राधाननराकेशप्रवृद्धसुषमाम्बुराशिमप्यल्पम् । मन्ये ते दृङ्मीनावुच्छालयतो यदम्बवग्रात् ।।१३।।

राधा के मुखचन्द्र के देखने से समृद्धि को प्राप्त परमशोभारूप समुद्र को भी मैं थोड़ा ही मानाता हूं क्योंकि उस जल का अग्र भाग इन की दृष्टिरूप मछलियों को बाहर उछाल रहा है ।।१३।।

राधागुणामृतसरोवरकर्णयुग्मात् तद्दृष्टिवृष्टिभरतो बहिरागतौ तत् ।
त्युक्तुं च कुण्डलझषावसमर्थचित्तावालम्ब्य सुन्दरि सपद्यपि तिष्ठतस्ते ।।१४।।

राधा के गुणामृत के सरोवर रूप दोनों कानों से उनकी दृष्टि की अधिक वर्षा से वे कुण्डल के झष (मकर) बाहर आ गये परन्तु उसके कर्ण सरोवर को छोड़ने में उनका चित्त असमर्थ है अतः हे सुन्दरि! उन्हीं कर्ण सरोवर के सहारे वे स्थित हैं ।।१४।।

बहिर्दृष्ट्वा रूपामृतरससरस्तद्गुणसरो हृदि स्मृत्वा चालागमनविषये संशयवशात्।
चलावप्याधिक्यं श्रवणसरसि स्नेहशबलाशयौ मन्वानौ तौ शशिमुखि न तज्जातु जहतः ।।१५।।

मकराकृति कुण्डलों के मकरों ने बाहर तो उसके रूपामृत सरोवर को देखा और हृदय में उसके गुणमरोवर का स्मरण किया इसलिये अधिक चञ्चल होते हुए भी सन्देह के कारण हे चन्द्रमुखी ये कुण्डल के दोनों मकर स्नेह से शबलित जिनका आशय है ऐसे ये उन दोनों को कभी छोड़ते नहीं ।।१५।।

राधागुणैः सहाविष्टे माधवान्तर्हृदि स्मरे । तत्र गन्तुमशक्तोऽयं केतुः कर्णावलम्बितः ।।१६।।

राधा के गुणों के साथ माधव के हृदय के अन्दर प्रवेश करते हुए कामदेव के वहां प्रवेश करने में असमर्थ होने से उसकी ध्वजारूप मकर कान के यहां ही रह गया है अर्थात् कामदेव ने माधव के हृदय में जब प्रवेश किया तब ध्वजा अन्दर न जा सकी इसलिये ध्वजारूप मकर कुण्डल में दिखाई दे रहे हैं ।।१६।।

विविधलतागृहकुसुमप्रतिबिम्बमनोज्ञ चारुसर्वाङ्गम् ।
राधेक्षातिप्रकटितविचित्रकन्दर्पभावामिव (सहसा) ।।१७।।

अनेक प्रकार के लतागृहों के पुष्पों में प्रतिबिम्बित जो सुन्दर सर्वाङ्ग है वह ऐसा ज्ञात होता है मानों राधा के देखने से ही उनमें सहसा विचित्र कामभाव प्रकट हो गया है ।।१७।।

गौरांशुकेन निर्भरराधालिङ्गनाशयेव वृतम् । किमधिकमालि प्रकटं रससर्वस्वं निजप्रणयम् ।।१८।।

हे सखि ! अधिक क्या कहूं प्रकट रससर्वस्व निजप्रणय को गौर (श्वेत) वस्त्र ने राधा के गाढलिङ्गन की आशा से ही उसे ढका है ॥१८॥

साकूतं पश्यन्त्याः प्रियवदनेन्दुं सखीजनस्तस्याः । आदायेव व्रीडां सस्मितभागाद्बहिर्गहात् ॥१९॥

साभिप्राय प्रिय के मुख चन्द्र को देखती हुई राधा को देखकर उसकी सखियां इस लता गृह से लज्जा को साथ में लेकर मुस्कराहती हुई मानों बाहर निकल गयी अर्थात् सखियों के बाहर निकल जाने पर राधा को फिर कोई लज्जा न हुई ॥१९॥

चिरसञ्चितभाग्यैर्निजपतिपरिरम्भेऽत्र राधायाः ।
अचिरेण चान्तरायान् हरिर्विहन्यान्नखशराजेयः ॥२०॥

चिरकाल से सञ्चित भाग्यों से ही अपने पति के आलिङ्गन में जो राधा के लिये कोई अन्तराय है उन्हें नखशरों से अजय हरि नष्ट करें ॥२०॥

इति श्री विट्ठलेश्वर विरचिते शृङ्गाररसमण्डने अष्टम् उल्लासः

नवम् उल्लासः ।

निर्भरस्मरभावाब्धितरङ्गोत्क्षिप्तलज्जिताम् । तल्यार्पितस्मेरेदृष्टि राधिकां प्राह माधवः ॥१॥

अत्यन्त काम भाव रूप समुद्र की तरङ्गों ने लज्जा को उछाल (नष्ट) दिया है ऐसी राधा को जिसकी दृष्टि शय्या की ओर है और मुस्करा रही है उससे माधव ने कहा ॥१॥

विततप्रसूनभूमौ कामिनि विविधत्वदीक्षणाम्बुरुहैः ।
रचिते शयने शमय प्रेमार्द्रार्द्रैर्मनोजाग्निम् ॥२॥

हे कामिनी ! जिस पर पुष्ट बिछे हुए हैं ऐसी भूमि पर प्रेम से अत्यन्त आर्द्र अनेक प्रकार के तुम्हारे नेत्र कमलों से रचित शयन पर कामाग्नि को शान्त करो ॥२॥

मृदुत्वसुषमादिभिस्तव पदाम्बुजनाखिलप्रलूननिचयो जितः कलमरालगामिन्ययम् ।
सपद्यनुभवत्वये सखि पराभवं त्वत्पदाम्बुजद्वयनिवेशनात् कुसुमकेलितल्येस्तमे ॥३॥

हे कलहंसगामिनी ! तुम्हारे कोमलता एवं परमशोभा वाले चरणकमल ने पुष्पों के ढेर को जीत लिया है अतः हे सखि ! पुष्परचित क्रीडातल्य पर, तुम्हारे दोनों चरणकमलों के रखने से यह शीघ्र ही पराजय का अनुभव करे ॥३॥

विचित्रभावदलहृत्कमलेन विनिर्मिते शयने विलस प्राणप्रिये त्वत्संगशीतले ॥४॥

हे प्राणप्रिये ! विचित्र भाव ही जिसमें दल है ऐसे हृदय कमल से बनाये गये तुम्हारे संग से शीतल इस शयन पर विलास करो ॥४॥

मदुरसि निजकुचकलशं निवेश्य राधे विषादमपि शमय ।
मुखरय रशनां रचय प्रियसखि वचनं तदेकरसम् ॥५॥

हे राधे ! मेरे उरस्थल पर तुम अपने स्तनकलश को रख कर विषाद को भी शान्त करो । और हे प्रिय सखि ! इस करधनी को मुखरित करो और उसी के अनुसार एक रस वचनों की रचना करो ॥५॥

चिरसञ्चित सुकृतैस्त्वं शान्तोग्रमहत्तपोभिराचरितैः ।
प्राप्तास्यन्यतुरापा मयात्वदाशावलम्बनेन ॥६॥

चिरकाल से सञ्चित (इकट्ठे किये हुए) पुष्पों से और शान्त तथा उग्र तप करने से तथा तुम्हारी आशा के सहारे हो दूसरों से प्राप्त न हो सके ऐसी तुम को मैंने प्राप्त किया है ॥६॥

सोऽहं त्वदीय एव त्वमपि मदीयैव संशयोनात्र । यत् त्वत्कृतेहमास्मि प्रकटस्त्वं मत्कृते राधे ॥७ ।

वही मैं तुम्हारा ही हूँ और तुम भी मेरी ही हो इसमें कोई संदेह नहीं है । हे राधे ! मैं तुम्हारे लिये प्रकट हुआ हूँ और तुम मेरे लिये प्रकट हुई हो ॥७॥

क्षणमपि तिष्ठन्त्यां त्वयिकुचकलशरसस्तदपि नो सहते ।
यत्तद्भरेण रोमाण्यपि बहिरासन्मुदा सङ्गे ॥८॥

तुम एक क्षण भी खड़ी रहती हो तो तुम्हारे कुच (स्तन) कलश का रस उसे सहन नहीं कर सकता । तुम्हारे कुच कलश के भार से ही तुम्हारे ये रोम भी सङ्ग में हर्ष से बाहर प्रकट हो गये है ॥८॥

रसमयमङ्गमुदारं माञ्चलपिहितं कुरुष्व मुग्धाक्षि ।
कनकाचलः पुरागाच्छन्नो न हि जायते जातु ॥९॥

हे मुग्धाक्षि ! तुम रसमय इस उदार अङ्ग को वस्त्र से मत ढको कनकाचल (सुमेरु) कभी पुष्पों की पराग से ढका जा सकता है ? ॥९॥

अधरामृतेन मेऽन्तःस्पर्शेन बहिश्च सरसतां सद्यः ।

सम्पादय चिरसञ्चितकामं पूर्णं कुरुष्व निजम् ॥१०॥

अपने अधरामृत से मेरे अन्तः करण को और स्पर्श से मेरे बाहर के शरीर को शाघ्र ही सरस बनाओ और अपनी बहुत समय की जितनी भी इच्छायें हैं उन्हें पूरी करो ॥१०॥

गाढालिङ्गनचारुचुम्बनमिलद्दन्ताग्रदंस्फुरत् सीत्काराधरसीधुपाननखरोल्लेखार्द्ररोमाञ्चितैः ।
तत्तत्सौरतबन्धकेलिरभसौदारस्मितोत्कूजितैर्भावावेदकलोचनाञ्चलदृशा चारीरमत्तां हरिः ॥११॥

गाढालिङ्गन, सुन्दर चुम्बन, दांतों के अग्रभाग से जो दंश उसके कारण से होने वाला सीत्कार (सी इस प्रकार की शब्द) अधरामृत का पान नखों के निशान, आर्द्र रोमाञ्च और विविध प्रकार के रति बन्ध केलि की शीघ्रता, उदार मुस्कराहट और उच्च स्वर से कूजन इत्यादि से, अपने भाव को प्रकट रूप से बताने वाले लोचनाचलों की दृष्टि से हरि ने उस राधा को रमण कराया ॥११॥

रतिरसतत्त्वज्ञानादुभयोरन्योन्यभावतादात्म्ये युक्तः पुम्भावोऽस्या रतिश्रुतीनां चिरश्रवणात् ॥१२॥

रति रस के तत्व ज्ञान से दोनों ही में आपस में भाव की तादात्म्यता के होने पर रतिश्रुतियों का चिरकाल से श्रवण करने के कारण इस राधा में पुंभाव उचित ही है अर्थात् स्त्रियां श्रुति (वेद) का श्रवण नहीं कर सकती ॥१२॥

रतिरणधीरा राधा यन्मधुमिदनङ्गकरजशरपातैः । पुलकाञ्चितैव मोदं भजते सीत्कारजयनादैः ॥१३॥

यह राधा रतिरण में बड़े धैर्य वाली है इसीलिये मधुसूदन कामदेव के नखरूप बाणों के प्रहारों से घबड़ाती नहीं किन्तु पुलकित होती हुई खुश हो रही है और सीत्कार रूप जय घोष कर रही है ॥१३॥

अन्योन्यतादात्म्यवतोस्तयोर्यद्रसातिरेकात् सुनिसर्गकाले ।
अन्योन्यतादात्म्यमतः पुनः स्वं भावं रसज्ञौ भजतो मृगाक्षि ॥१४॥

परस्पर तादात्म्य वाले उन दोनों में स्वाभाविक काल में जो रसातिरेक होता है उससे हे मृगनयनी ! वे रसज्ञ पुनः अपने-अपने भाव को प्राप्त हो जाते हैं ॥१४॥

मिलने मिथो मुदा सखि माधवराधारसोदध्योः । स्वेदविलासतरङ्गोत्क्षिप्तकणा रेजिरे तदङ्गेषु ॥१५॥

हे सखि ! माधव और राधा रूप दोनों रस समुद्र जब आनन्द से आपस में मिलते हैं तो उनके अङ्गों में स्वेद के रूप में विलास तरङ्गों के उछले हुए कण शोभित होते हैं ॥१५॥

माधवदृगञ्चलैकेक्षणरसजलधावपि प्रिया मग्ना । तत्परिरम्भरसाब्धावपि मज्जत्येतदाश्चर्यम् ॥१६॥

माधव की दृष्टि कटाक्ष रूप समुद्र मे प्रिया (राधा) डूबी हुई है तथापि माधव के आलिङ्गन रूप रस समुद्र में भी स्नान कर रही है यह आश्चर्य है ॥१६॥

समुद्रत्वोपचारो हि गोपीनाथरसेष्वयम् । तेषामवधिमत्त्वेन तद्राहित्यादिह प्रिये ॥१७॥

गोपीनाथ के रसों को समुद्र बताना भी औपचारिक है क्योंकि हे प्रिये समुद्रों की तो अवधि होती है किन्तु इन रसों की तो कोई अवधि (माप) नहीं है अतः समुद्र बताना केवल परिचय मात्र है ॥१७॥

निरवधि निजरसपूर्णावन्योन्यरसैश्च पूरितौ प्रेष्ठौ । कीदृक्सुखमनुभवतस्तन्नो जानेऽतिवैचित्र्यात्॥१८॥

प्रिया और प्रियतम ये दोनों ही एक दूसरे के अवधि रहित रसों से पूर्ण हैं अतः वे किस प्रकार के अति विचित्र रस का अनुभव कर रहे है यह मैं नहीं जान सकी ॥१८॥

इत्थं रमयति रमणे राधा स्वाधीनभर्तृका नाथम् । निजमण्डनरचनाय प्रोवाचानन्दिता मधुरम्॥१९॥

इस प्रकार प्रियतम के द्वारा रमण करायी गई स्वाधीन भर्तृका राधा ने प्रसन्न होते हुए स्वामी से मधुर वचनों से अपने शारीरिक मण्डन के लिए कहा ॥१९॥

मानद मण्डनमखिलंरचय कचेषु प्रभिन्नकुसुमेषु । रतिगलितेषु मनोहरमलयजकस्तुरिकारेखाः ॥२०॥

हे मानद ! (मान देने वाले) जिनमें से फूल अलग हो गये हैं ऐसे मेरे बालों को आप मण्डित (ठीक) करिये और रति के कारण मिटी हुई मनोहर चन्दन और कस्तूरी की रेखाओं को भी पोछी ठीक करिये ॥२०॥

मृगमदतिलकं ललितं विधाय मुक्ताफलमयं बिन्दुम् । कुरु सतडिद्घन इव नवसुधानिधानं सरोजाक्षि ॥२१॥

पहले तो कस्तूरी का सुन्दर तिलक बनाओ और फिर उस में मोती की बिन्दी लगाओ । हे कमल नयन ! वह तिलक नये अमृत के खजाने की तरह हो और वह ऐसा लगे मानो । बिजली वाला मेघ हो ॥२१॥

त्वत्परिरम्भरसामृतभरितं कुचकलशमलसदृग्रुचिरम् । मृगमदपत्रविचित्रं कुरु निजकरपद्मविश्रामम्॥२२॥

तुम्हारे आलिङ्गन रूप रसामृत से भरे हुए अलसाई हुई दृष्टि से मनोहर स्तन कलश

को जो तुम्हारे हस्त कमल के विश्राम के स्थान हैं उनको कस्तूरी के पत्र लेखन से विचित्र बनाईये ॥२२॥

विविधाभरणमनोज्ञश्रवणयुगे चारुकुण्डले कृत्वा । तनुतरविकचेन्दीवरकुसुमे कुरु तत्र मुग्धाक्ष ॥२३॥

हे सुन्दर नेत्रों वाले ! अनेक प्रकार के आभरणों से सुन्दर ऐसे दोनों कानों में सुन्दर कुण्डल पहनाकर फिर उस पर अत्यन्त पतले खिले हुए कमलों के पुष्पों को करो ॥२३॥

त्वच्चुम्बनारुणकपोलतले मदीये कन्दर्पगर्वहर तत्प्रतिबिम्बितेन ।
वक्त्रेन्दुरङ्कसुषमामयमावहत्वप्यत्यन्तनिर्मलतनुर्विकचाम्बुजाक्ष ॥२४॥

मेरे कपोलतल जो तुम्हारे चुम्बन से लाल हो गये हैं हे कन्दर्प के दर्पको हरण करने वाले ! हे विकसित कमल के समान नेत्र वाले ! यद्यपि तुम्हारा शरीर अत्यन्त निर्मल है फिर भी जब मेरे कपोलों में तुम्हारा मुख चन्द्र प्रतिबिम्बित होगा तो वह चन्द्रमा के अन्दर के कलङ्क की परम शोभा को प्राप्त करे ॥२४॥

त्वच्चुम्बनामृतसरोवरमज्जनेनम्लिष्टाङ्गरागमिव लोचनभृङ्गयुग्मम् ।
आघूर्णमुज्ज्वलय साञ्जनरेखमात्मरूपामृताप्लुतमिवाङ्ग कुरुष्व नाथ ॥२५॥

तुम्हारे चुम्बन रूप अमृत सरोवर में डुबकी लगाने से इन दोनों नेत्र रूप भंवरों की अङ्गराग मानों धुल गया है इसलिये इधर-उधर-घूमने वाले इनकी अञ्जन की रेखा से उज्ज्वल करिये और हे नाथ इन्हें आप अपने रूपामृत में आप्लुत कीजिये (रंग दीजिये) ॥२५॥

स्वपीतवसनेनाङ्ग नीवीं रचय सुन्दरे । नितम्बे शम्बरारातिजयनिस्वनमेखलाम् ॥२६॥

और सुन्दर नितम्ब के ऊपर आप अपने पीताम्बर की नीवी की रचना करिये आप अपने पीताम्बर को अधोवस्त्र की जगह पहनाइये और उस नीवी के ऊपर कामदेव के विजय घोष की घोषणा करने वाली मेखला को पहना दो ॥२६॥

कलसिञ्जितजितरतिपतिमञ्जीरयुगं च चरणयोः कृत्वा । रचयानल्पाकल्पांगुलीष्वलक्तेन चित्राणि ।२७।

अपने कलनाद से कामदेव के दोनों मंजीर को जिनने जीत लिया है ऐसे नूपुरों को मेरे पैर में पहना कर फिर अनेक प्रकार की रचना अंगुलियों में लाक्षा रस से बनाइये ॥२७॥

प्राणप्रियानिगदितः सुमुखीत्थमञ्जस्तन्मण्डनं व्यरचयन्मनसोऽप्यगम्यम् ।
मन्येऽहमालि विविधं निजभावपूरगं राधावशः स कृतवानिह तत्र तत्र ॥२८॥

हे सुमुखि ! इस प्रकार प्राण प्रिया के कथनानुसार शीघ्र ही उसके देह का मण्डन किया वह मण्डन मन से भी अंगम्य था । हे आलि ! में तो ऐसा मानती हूं कि राधा के वशोभूत प्रिय ने अपने भावों के समुदाय का जहाँ-तहाँ कर दिया ॥२८॥

इति श्री विट्ठलेश्वर विरचिते शृङ्गाररसमण्डने नवम् उल्लासः

अथ दशम् उल्लासः

इयं राधादेवी चिरमिह निजोपासनवशादतिप्रीता दत्वा सुमुखि रससर्वस्वमखिलम् ।
स्वरूपं च श्रीमाधवमुनिवरे कण्ठनिहितप्रकोष्ठा स्वं सम्पादयितुमवदत्तद्वशगता ॥१॥

हे सुमुखि ! यह राधा देवी है जिसने चिरकाल तक यहाँ अपनी उपासना से अत्यन्त प्रसन्न होकर अपना सब रस सर्वस्व देकर अब अपने स्वरूप का सम्पादन करने के लिये माधव मुनिवर के गले में अपनी कलाई को रखकर माधव के वश होती हुई इस प्रकार कह रही है ॥१॥

त्वच्छृङ्गारं विरचयाम्यहं पुरुषभूषण । मुग्धाक्षि निजवेशं मे सम्पादय चिरेप्सितम् ॥२॥

हे पुरुष भूषण ! अब मैं तुम्हारा शृङ्गार करती हूं हे मुग्धाक्षि ! बहुत समय से जो मेरी इच्छा थी कि तू मेरा वेश संपादन करे अतः अब तू उस वेश का सम्पादन कर ॥२॥

इत्युक्त्वा विविधप्रसूननिचयैरुद्ग्रथ्य वेणीं श्रुतिद्वन्द्वे चम्पकपुष्पकुण्डलयुगं कृत्वा कपोलद्वये ।
चित्रं कुङ्कुमतो विधाय तिलकं तिर्यग्द्विरेखं विभोः पाटीरेण सकुङ्कुमेन विदधे तस्मिन् स्वमुक्तामयम्।३।

ऐसा कहने पर अनेक प्रकार के पुष्पों से वेणी गूँथ कर और दोनों कानों में चम्पा के पुष्प के दो कुण्डल पहना कर फिर दोनों कपोलों पर केसर का चित्र बनाकर और फिर तिरछी दो रेखा का तिलक बनाकर फिर केसर मिले हुए चन्दन से उसमें मोती लगाया ॥३॥

प्राग्रचिते सीमन्ते मुक्ताहारं विधाय तस्यादौ । हीरकहाटकजटितं भूषणमकरोत् कचाक्रान्तम् । ४॥

पहले बनाये हुए सीमन्त में उसके आदि में मोती का हार बनाकर फिर हीरे जिसमें जड़े हुए है उस भूषण (टीके) का बालों में लटका दिया ॥४॥

दत्वाञ्जनं नयनयोरतिचारुसूक्ष्मरेखं कुरङ्गनयना निजभूषणानि ।
कण्ठे चकार सहजस्मितचारुवक्त्रचन्द्रस्य चन्दनकुरङ्गमदादियुक्ते ॥५॥

उस मृगनयनी ने दोनों नेत्रों में अत्यन्त सुन्दर सूक्ष्म रेखा वाला काजल लगा कर सहज मुस्कराहट से युक्त मुख चन्द्र वाले उस (प्रिय) के चन्दन कस्तूरी आदि से युक्त कण्ठ में अपने आभूषण पहना दिये ॥५॥

प्राणप्रियापाणिपद्मस्पर्शोत्पुलकितोन्नते । उरस्युदारे काश्मीरचित्रं व्यरचयद्वधूः । ६॥

फिर उस वधू ने प्राण प्रिया के हाथ के स्पर्श से जिस में रोमाञ्च हो रहे हैं ऐसे उदार उरस्थल पर केसर का चित्र बना दिया ॥६॥

एकां रेखामपि यत्कृत्वा तज्जातशोभया राधा । विस्मितमना द्वितीयां करोति तद्विस्मयोऽस्माकम् ॥७।

एक रेखा भी जब वह खींचती हैं तब उसकी शोभा को देखकर राधा आश्चर्य चकित हो जाता है दूसरी रेखा को जब वह करती है उसका करना हमारे लिये आश्चर्य की बात हो जाती है ॥७॥

निजनीवीमुपरि रणद्रशनां परिधाप्य चात्मभुजभूषाः । बाह्वौ कृत्वा तदुरस्यञ्चलमकरोद्विचित्रं सा ।८

अपनी नीवी (अधोवस्त्र) के ऊपर शब्द करती हुई करधनी को पहना कर और अपने आभूषणों को भुजाओं में पहना फिर प्रिय के उरस्थल पर विचित्र आंचल लगा दिया ॥८॥

निजमञ्जीरमनोहरचरणाङ्गुलिपल्लवेषु वरभूषाः । कृत्वा स्वकुङ्कुमश्रीष्वलक्तचित्रं न सा चक्रे ॥९॥

अपने मञ्जीरों को प्रिय की सुन्दर चरणों की अंगुलियों में पहना कर केवल अपने केसर की शोभाओं में लाक्षारस का चित्र उसने नहीं बनाया ॥९॥

इत्थं त्रिभुवनसुन्दरगोविन्दगोपसुन्दरीवेषे । रचिते सहजमिवाभाति तद्युक्तं तस्य हि प्रेष्ठे ॥१०॥

इस तरह त्रिभुवन सुन्दर गोविन्द को जब गोपिका के सुन्दर वेष में बनाया गया तो वह वेष उन प्रियतम के लिए सहज (स्वाभाविक) सा ही प्रतीत होने लगा अर्थात् यह कन्या ही है ऐसा समझने लगे ॥१०॥

दृष्ट्वैकमङ्गमपि पूर्वविलक्षणं सा राधा सुविस्मृततदन्यरसा तदासीत् ।
राधाकपोलमुकुरप्रतिबिम्बितं स्वं रूपं विलोक्य हरिरप्यतिहर्षितोऽभूत् ॥११॥

उस राधा ने प्रत्येक अङ्ग को भी पूर्व से विलक्षण देखा तो वह अन्य सब रसों को भूल गयी । इधर हरि भी राधा के कपोल रूप दर्पण में अपने रूप को देखकर बहुत प्रसन्न हुए ॥११॥

स्वरूपान्तर्निविष्टां तां चुचुम्ब स कचग्रहम् । तत्क्षणोद्भिन्नपुलके कपोले कामभावितः ॥१२॥

काम भावित हरि ने स्वरूपान्तर (स्त्री वेष) में जिसका आग्रह है ऐसी राधा के बालों को पकड़ कर उसी क्षण जिसमें रोमाञ्च हो रहे है ऐसे कपोल का चुम्बन किया ॥१२॥

जागरितेव तदेषत्त्रपास्मितस्मेरवीक्षणावक्त्रम् । पश्यन्त्यतिमुदिता नवनिर्भररागाऽवदद्राधा ॥१३॥

चुम्बन के कारण वह राधा जैसे अचानक जग गई हो इस तरह उस समय किञ्चित् लज्जा से मुस्कराते हुई सुन्दर नेत्रों से युक्त हरि के मुख को देखती हुई अत्यन्त प्रसन्न होती हुई नवीन निर्भर राग वाली राधा हरि से बोली ॥१३॥

किं वर्णयामि माधव तव स्वरूपं न वाङ्मनोगम्यम् । प्रत्यङ्गं सुषमाम्बुधिसहस्रमुद्वेलमास्ते यत् ।१४।

हे माधव ! तुम्हारे स्वरूप का मैं क्या वर्णन करूँ यह स्वरूप तो मन और वाणी से अवर्णनीय है । तुम्हारा प्रत्येक अङ्ग परम शोभा रूप समुद्र की हिलोरें जैसा हो रहा है ॥१४॥

नेन्दुर्मत्कुचकोकयोगकरणान्मल्लोचनेन्दीवरानन्दान्नैव रविर्न पङ्कजवरं मद्वक्त्रचन्द्रोत्सवात् ।
एवं त्वद्वदनं कवीशवचसां नो गोचरः किन्तु मद्भाग्यं यच्चिरसञ्चितं प्रकटितं सत्यं तदेतत्प्रिय ॥१५॥

हे प्रिय ! यह तुम्हारा मुँख चन्द्र तो नहीं हो सकता चन्द्र के उदय होने पर तो चकवा-चकवी अलग हो जाते है परन्तु मेरे दोनों स्तन रूपी चकवे तो अलग नहीं हुए है अतः चन्द्र नहीं है । मेरे नेत्र रूप इन्दीवरों (रात्रि में विकसित होने वाले कमलों) के विकसित होने से मुख को सूर्य भी नहीं कह सकते । यह मुख कमल भी नहीं है क्योंकि मेरे मुखचन्द्र को इस (कमल) के देखने से आनन्द हो रहा है । इसलिये यह तुम्हारा मुख श्रेष्ठ कवियों की वाणी के अगोचर है परन्तु मेरे भाग्य से ही जिसका मैंने चिरकाल से सञ्चय किया है उसी के कारण यह मुख प्रकट हुआ है यह सत्य है ॥१५॥

विधुर्वा मन्नेत्रोत्पलवरविकासेन निजवाङ्मधुस्यन्देनाऽथो सरसिजवरं नाथवदनम् ।
न जाने लावण्यामृतरससरः किन्तु नयनाम्बुजप्रादुर्भावादखिलरसरूपं किमपि वा ।।१६।।

मेरे श्रेष्ठ नेत्रोत्पल को विकसित करने के कारण यह आपका मुख चन्द्रमा है अथवा स्वामी का यह मुख अपनी वाणी रूप मधुका स्त्राव करने से कमल है क्या ? लावण्यामृत रस का यह सरोवर है क्या इसका पता नहीं लगता परन्तु इसमें से नेत्र रूप कमल उत्पन्न हुए हैं इसलिये यह सम्पूर्ण रस रूप अवर्णनीय कोई है ।।१६।।

सुन्दरयुवतीवदनं वदाम्यहो पुरुषभूषणस्याथ । उभयं प्रमाणसत्त्वादुररीकार्यं हि गोपीनाम् । १७ ।

अहो ! इसे मैं सुन्दर युवती का रूप कहूँ या पुरुष भूषण का रूप कहूँ दोनों ही रूप प्रामाणिक है इसलिए गोपियों को तो दोनों ही रूप स्वीकार करने चाहिये ।।१७।।

प्रतिजानेऽहं प्रिय मम हृदयं प्रकटं तवाननं नान्यत् । सहजत्वमितरथा मम वेषस्य कथं भवेद्भवति ।१८

हे प्रिय ! मैं तो यह प्रतिज्ञा करती हूँ कि मेरा हृदय ही तुम्हारे मुख रूप में प्रकट है अन्य नहीं हैं अन्यथा मेरे वेष की सहजरूपता तुम्हारे में कैसे होती ।।१८।।

त्वं यद्यनया रीत्या त्रिभङ्गिरूपेण वेणुकलगानम् । कर्ता तदैव पुंसामपि युवतीभावमुद्वेलम् ।।१९।।

तुम यदि इसी रीति से त्रिभङ्गीरूप से वंशीनाद करो तो उसी समय पुरुषों का भी युवतीभाव उद्वेलित (उभर जाय) हो जाय ।।१९।।

यद्यपि युवतीवेशस्तथाप्यपाङ्गस्तवात्यमर्यादः । विहितस्मरशरलीलो हन्ति विवेकत्रपाधैर्यम् ।।२०।।

यद्यपि तुम्हारा युवती वेष है तथापि तुम्हारा अपाङ्ग तो मर्यादा रहित है । जब यह तुम्हारा अपाङ्ग (कटाक्ष) काम बाण को लीला वाला होता है उस समय विवेक धैर्य और लज्जा को नष्ट कर देता है ।।२०।।

इति राधावचनसुधाधारोदजमन्दभावसुस्मेरः । उद्भटभावाधीरां गाढं तामालिलिङ्गायम् ।।२१।।

इस प्रकार राधा के वचनामृतों के आधार रूप कमल के भाव से मुस्कराते हुए प्रिय ने उद्भट भाव से अधीर उस राधिका का गाढालिङ्गन किया ।।२१।।

सा रेमे सुचिरं सखि माधवमधरासवप्रमदा । रतिरसितौ तौ किद्दक्सुखमनुभवतस्तदा न तज्जाने ।२२।

अधर के आसव से अत्यन्त मस्त होकर उस राधा ने चिरकाल तक रमण किया । हे सखि ! इस तरह रति रसमय उन दोनों ने किस प्रकार के सुख का अनुभव किया उसे मैं नहीं जान सकती ।।२२।।

ततो मुक्त्वा नीवीं तदनुगुणभूषामपि तनूत्तरीयं प्रेष्ठायाः सुमुखि परिधाय प्रियतमाम् ।
विहारान् श्रीकृष्णः कुचविलुलितस्त्रक्प्रियतमाभुजाश्लिष्टो मत्तद्विरद इव चक्रे निजवने ।।२३।।

नीवी को पहन कर और उसी के अनुसार शृङ्गार करके फिर प्रियतमा के उत्तरीय (ओढनी) को ओढ कर हे सुमुखि ! स्तनों से जिनकी माला लुलित (मसली गई) हो गई है ऐसे श्री कृष्ण ने अपनी प्रियतमा की भुजाओं से आलिङ्गित होते हुए मस्त हाथी की तरह अपने वन में अनेक प्रकार के विहार किये ।।२३।।

क्वचित् क्रीडां पुष्पापचयमपि च क्वापि शयनम् स्रजां निर्माणं क्वाप्यधरमधुपानं क्वचिदपि ।
क्वचिद्गानं प्रेष्ठांसनिहितभुजः सूर्यतनयातटे कुर्वन् कृष्णः स्खलितगतिरेनां सुखयति ।।२४।।

कहीं क्रीड़ा की, कहीं फूलों का चयन किया कहीं शयन किया कहीं मालाएं बनायी, कहीं अधरामृत का पान किया अपनी प्रियतमा के कन्धे पर हाथ रख कर यमुना के तट पर कहीं गान करते हुए स्खलित गति से अपनी प्रियतमा को सुख पहुंचाया ।।२४।।

अहं स्वस्या दास्यात् त्रिजगति न निश्रेयसमपि प्रमाणत्वेनान्यत्कथमपि विशङ्के सहचरि ।
कथा का वै तस्यास्तविह हि यदस्मासु फलितं तदेतासामेव स्वकृतपरमानुग्रहवशात् ।।२५।।

हे सखि ! मैं तो स्वामिनी जी के दासीपन से अधिक तीनों लोको में निश्रेयस (मोक्ष) को भी किसी तरह प्रमाण रूप से नहीं मानती मैं इसके लिये तुम से अधिक क्या कहूँ हमारे लिये जो यह फल मिला है वह उन्हीं के द्वारा की हुई कृपा का ही प्रसाद है ।।२५।।

इदमेव मे सदा सख्याशास्यं नन्दनन्दनो राधाम् । सुखयत्वनिशं सास्मास्वनुग्रहं च प्रिया कुर्यात् ।।२६।।

हे सखि ! मैं तो बार-बार ये ही मांगती हूँ कि नन्दनन्दन राधा को सुखी करे और यह भगवान् की प्रिया राधा हमारे ऊपर अनुग्रह करे ।।२६।।

इति श्रीमद्गोपीजनचरणपङ्करुहयुगानुगाभिस्तत्प्रेमामृतजलधिमग्नाभिरनिशम् ।
बभूवेदं पूर्णं स्मितजितसुधाभिर्विरचितं निकुञ्जे शृङ्गाराभिधरसवरे मण्डनमिदम् ।।२७।।

इस तरह श्रीमद्गोपीजनों के चरण कमल युगल का अनुसरण करने वाली औ

उन्हीं के प्रेमामृत समुद्र में अहर्निश डूबी हुई से तथा जिन्होंने अपने मन्दहास से अमृत को भी जीत लिया है उन्हीं से निकुञ्ज में यह शृङ्गार नामक श्रेष्ठ रस का मण्डन पूर्ण हुआ ।।२७।।

यस्मात्सहायभूतौ दामोदरदासहरिवंशौ । श्रीविठ्ठलरचितमिदं तदभूच्छृङ्गारमण्डनं पूर्णम् ।।२८।।

इस शृंङ्गार रस मण्डन में दामोदरदास और हरि वंश मेरे सहायक रहे इसी कारण से (मुझ) श्री विठ्ठल ने इसकी रचना की और यह शृङ्गार रस मण्डन पूर्ण हुआ ।।२८।।

श्रीकृष्णदेवप्रियरामदासादिषु (भिः?) प्रकुर्वत्सु मुकुन्दसेवाम् ।
गोवर्धनेशस्य सदा मदीयसर्वस्वरूपस्य कृतं मयेदम् ।।२९।।

श्री कृष्ण देव प्रिय रामदास आदि मुकुन्द की सेवा करते रहे और मैंने मेरे सर्वस्व स्वरूप श्री गोवर्द्धननाथ (श्रीनाथ) जी का यह शृंङ्गार रस मण्डन बनाया ।।२९।।

इति श्रीमद्गोपीजनवल्लभचरणैकतान श्रीविठ्ठलेश्वरविरचिते
शृङ्गाररसमण्डने दशम उल्लासः सम्पूर्णः ।।

।। श्री हरिः ।।

श्रीमद् गोस्वामी हरिरायजी महा प्रभु विरचित

दस उल्लास

प्रथम उल्लास —चौपाई

श्री पुरुषोत्तमजू कों करों प्रनाऊँ । इनकौ उल्लास परम रुचि गाऊँ ।।
श्री वल्लभ कृपा अनुग्रह करहीं । मो मतहीन सारद सुद्ध धरहीं ।।
एक समै प्रभु अति उल्लासा । देख रूप नख चंद्र प्रकासा ।।
सौरभ गंध तुलसि दल आयौ । इच्छा रमन द्वै रूप मन भायौ ।।
छंद—इच्छा भई द्वै रूप की, तब कोटि मनमथ मोहहीं ।
सकल कला सौंदर्ज सीमा, बाम भाग जु सोहहीं ।।
देख प्रभु सो रूप अद्भूत, रमन चित्तै बिचारियौ ।
दच्छिन भाग जु और ललना, रस में रस निरधारियौ ।।
जुगल रस कौ रस बढ़ावन, मध्य रूप प्रकासही ।
अधिक बढ़तौ घाट आवै, घाट बढ़तौ जाइ सही ।।
साम दाम जु भेद इनके, मध्य कौ अधिकार है ।
यह उल्लासनि रास रसमय, 'रसिक' मन निरधार है ।।

द्वितीय उल्लास — चौपाई

स्व इच्छा के महल बनाये । उनकी सोभा बरनी न जाये ।।
वाके गुन नहीं होत हैं न्यारे । इक-इक् महल छै ऋतु अनुसारे ।।
रतन जटित के छज्जे तिबारी । हाटिक स्फटिक की फुलबारी ।।
छंद—फूले तरु बेली लता द्रुम, निबिड़ कुंजन रच पची ।
हंस कोकिल कीर कल रव, पांति बक दल अति मची ।।

बहति मन्द सुगन्ध सीतल, मोर कुहुंकन अति बनी ।
रटत पिउ-पिउ सुखद चातक, चकोर चन्दा चक्षुनो ।।
चकवा रु चकई तीर सरिता, नीर जहां झरना झरै ।
श्रीपति की सदन सोभा, कौन कछु सरबर करै ।।
निज धाम सो गोलोक कहियत, गाय बछरा अति घने ।
होत सब्द जु मथन कौ, उल्लास 'रसिक' जु मन गने ।।

तृतीय उल्लास —चौपाई

सखी जूथ कौ है विस्तारा । कछु गिनती नहिं आवै पारा ।।
मेघ बून्द अरु रवि की किरनी । श्री पुरुषोत्तम लीला बरनी ।।
सेस महेस न ध्यान समाधा । कवि जन रंक कहा करैं साधा ।।
जूथ मुखी की संख्या करहीं । तुच्छ बुद्धि कैसे चित धरहीं ।।
छंद—धरों कैसे चित्त में करि, थकी बानी जात है ।
लीला अप्राकृत प्राकृत चातक, घन न चौंच समात है ।।
कोटि साढ़े तीन मुखिया, पुरुसोत्तम निज दास है ।
और की को गिनै संख्या, चरन रज की आस है ।।
चरन कौ झंकार सखियन, घोष सब्द जु गाजही ।
चलत अति उत्साह सखिगन, रसन सरिता भ्राजही ।।
पुरुषोत्तम उल्लास कौ कहूँ, वेद पार न पावही ।
मूढ़ कैसे चित्त लावै, 'रसिक' मन न समावही ।।

चतुर्थ उल्लास —चौपाई

बाम भाग सिंगार बखानौं । इक रसना मुख कहत न आनौं ।।
उनके बसन नीलांबर सारी । स्याम कंचुकी लाल किनारी ।।
छंद— स्याम कंचुकी लाल लैहंगा, फोंदना मखतूल है ।
सूच्छम कटि पै फबी नीबी, किंकिनी बहुमूल है ।।

देख रूप स्वरूप सुन्दर, रमा कोटिक बारियै ।
श्री पुरुषोत्तम उल्लास कौ रस,'रसिक'चित्त बिचारियै ।।

पंचम उल्लास —चौपाई

केसर आड़ सु भाल मनोहर । मुक्ता बिन्दु बीच मनु ससि कर ।।
नैन बिसाल भ्रकुटि मसि बिंद । बदन कमल के ढिंग अलि फन्द ।।
स्रवन तरकली मनि की जोति । बैनी जटित जंगाली पोति ।।
द्वै तिन पंचलरी मनि मुक्ता । रतन जटित नग हारन जुक्ता ।।
छंद—रतन पदक सुनहरी चौकी, भीर भूषन फबि रही ।
केस के बिच मनिन मुक्ता, बीच झूमक सों गुही ।।
बाजूबन्द जराव फुन्दना, पाँति चुरियन की बनी ।
नासा बेसर बलय कंकन, मुद्रिका दरपन अनी ।।
जेहर-तेहर पायल अनवर, बिछुआ महावर छबि किये ।
हस्त मैंहदी मुकुर दीन्हे, चन्द्र नख लखि ससि जिये ।।
नख सिखन सिंगार कहां लों, कहूं मति थकि जात है ।
श्री पुरुषोत्तम उल्लास कौ रस,'रसिक' मन ललचात है ।।

षष्ठ उल्लास —चौपाई

नित्य लीला में प्रभु बिराजे । ज्यों जलधार न टूट समाजे ।।
ज्यों सरिता प्रवाह नहीं थामै । अविच्छिन्न धारा तट आवै ।।
कबहुक नृत्य करत कल गानै । कबहुक भक्त करत सनमानै ।।
कबहुक रास क्रीड़ा उद्योती । कबहुक जल क्रीड़ा जु कपोती ।।
छंद—पोत में हरि जूथ बैठे, केवट आपु कहावही ।
चलत इत उत बिहँसि मुख,प्यारीहिं पिय जु रिझावही ।।
प्यारी कौ मुख देखे बिना प्रभु, और कछु न सुहात हो ।
चन्द निरखि चकोर ज्यों, नहीं नैन पलत समात हो ।।

कबहुक नव रितु सरद कौ, जस-गान ललना स्वर भरै ।
परिपूर्ण ब्रह्म स्वरूप मोहन, सकल कारज अनुसरै ।।
कबहुक निज तांबूल श्री मुख, भक्त मुख में मेलही ।
श्री पुरुषोत्तम उल्लास कौ रस, 'रसिक' रसमय झेलही ।।

सप्तम उल्लास —चौपाई

जोग सक्ति आवरन जु करहीं । जन भीतर लीला सब धरहीं ।
गोलाकृति ज्यों रवि की जोति । त्यों माया के तेज उदोति ।।

छंद— तेज पुंज सो जानिकै, निराकार मत कों अनुसरै ।
माया संगी जीव दुर्मति, भरम भूलौ पचि मरै ।।
जानै नहीं जो ईस ब्रह्म, वेद मुख नित गावहीं ।
श्रीपुरुषोत्तम उल्लासरस तजि, गणितानन्द को ध्यावहीं ।।

अष्टम उल्लास —चौपाई

परमानन्द उल्लास बढ्यौ जब । जस बन्दीजन गान करें सब ।।
रुचि उपजी हरि जू कों भयौ । निकसी ऋचा रूप मुख आयौ ।।

छंद— निकसीं ऋचा जु स्वरूप श्री मुख,सजस गान सुनावहीं ।
आप सुनियत मगन है कैं. मांगौ बर जु दिबावहीं ।।
तब कही बर जो दैन चाहौ, लीला अनुभव सुख गहों ।
श्री पुरुषोत्तम उल्लास कौ रस,'रसिक मन चाहन लहों ।।

नवम उल्लास —चौपाई

वाकौं हंसि प्रभु जू बर दीनौ । मेरौ ही ब्रज मोहि रस भीनौ ।।
द्वार प्रगट तुमरे रस मानौं । पाछे तें मोहि आधौ जानौं ।।

छंद जानों जु आयौ मोहि कौं, लीला ये सुख देनौ चहों ।
यमुना वृन्दावन श्री गोवरधन,रस सरस हौं नित रहों ।।

।। श्री हरिः ।।

श्री गोवर्धन नाथजी और श्री वल्लभाधीश का प्रथम मिलन

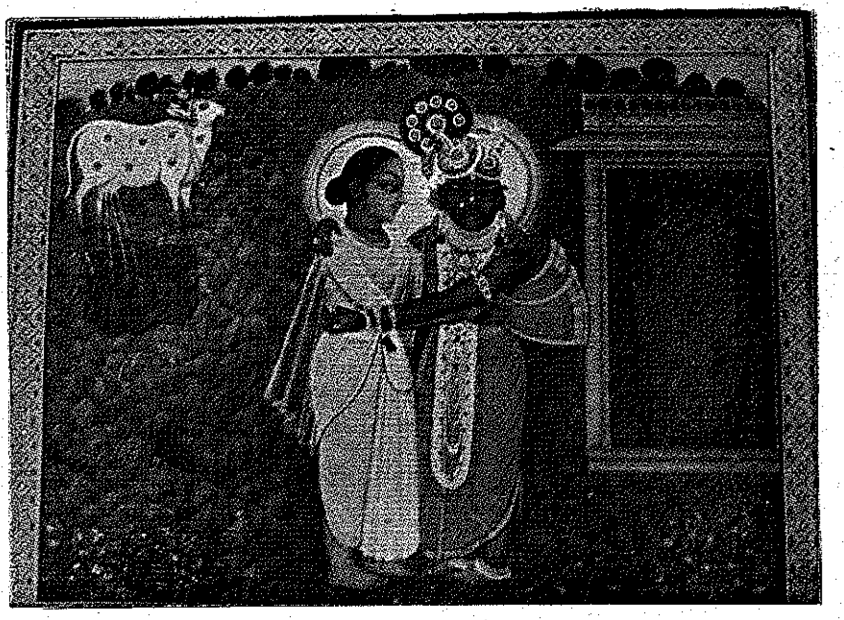

श्री मद्वल्लभाचार्य चरण गिरराज पर्वत पर पधारे तब श्री गोवर्धन नाथजी उठि के श्री आचार्यजी के साम्हे आये तब श्री आचार्यजी गोवर्धन नाथजी को गोद में ले दोउ कपोल परस कर कहे । बाबा ! अब तुम्हारी कहा इच्छा हैं तब श्री गोवर्धन धर कहे मेरी सेवा प्रगट करो तब आचार्यजी महा प्रभु ने सेवा की सब ब्यवस्था करी ।

चौरासी वैष्णव–वार्ता

गिरराज ने आश्वास दीधो, धरी कोमल चरण ।
हरखे ते सामा आविया, श्री गोवर्धन उद्धरण ।।

(श्री वल्लभाख्यान-२)

तहां देखे प्राणपति तब, हुलस दोउ तनं फुल ही ।
वही समय सुख कहि न आवे, पंगु गति-मति भूल ही ।।

(मूल पुरुष)

और सखी षट दस हजारै, वाकों बर दीन्हौ जबै ।
वेहू प्रगट जु होंइगी तब, तुम उतहिं सुख देहौ तबै ।।
कल्प सारस्वत ब्रज की लीला,पंछो गन करो आस है ।
ताही दैवी सृष्टि 'रसिकन', श्री पुरुषोत्तम उल्लास है ।।

दशम उल्लास —चौपाई

दैवी सृष्टि उद्धारन कारन । श्री बल्लभ प्रिय मुखी सुधारन ।।
बत्तीस लक्ष जीव की गिनती । लीला रस तें भक्त प्रतीती ।।
हत चिंता करि तपत बुझावन । आज्ञा भई बल्लभ मन भावन ।।

छंद—आज्ञा भई बल्लभ हिं, ब्रह्म सम्बन्ध तुम जु करावहू ।
सकल दुष्कृत दूरि करि, सेवा प्रयत्न जतावहू ।।
श्री गोबरधन गिरि कंदरा में, देवदमन कहावहीं ।
आपु सेवा करि कराऔ, प्रगट लीला दिखावहीं ।।
पवित्रामाल उर धारि बस करि,जीव लक्ष बत्तिस बरे ।
गिरिराज धर कौ रूप पीयुष, पियत नैना दुख हरे ।।
श्री गोबरधनधर की यह लीला, हृदय मेरे रमि रहौं ।
श्रीपुरुषोत्तम उल्लास कौ रस,'रसिक'जन मिलि नित कहौं ।।

अवतरणिका

ऐसा प्रसंग सुनने में आया है कि एक बार गोलोक में स्वामिनीजी को अपने लोक से बिछुड़े हुए जीवों का भान हुवा और इस से वे उदास हो गई। भगवान् कृष्ण को उनने अपने संतप्त हृदय की दशा बताई। तब दोनों स्वरूपों के हृदय में से विरह ज्वाला निकली उसका स्वरूप प्रकट हुवा जो श्रीमद् वल्लभ का स्वरूप है। दोनों महानुभावों ने आज्ञा की कि आप भूतल पर प्रकट होकर बिछुड़े हुवे जीवों को लाईये महाप्रभु श्रीमद्वल्लभ श्रीकृष्ण और स्वामिनी जी के दोनों स्वरूप है जैसा कि पुष्टिमार्गीय ग्रन्थों से स्पष्ट हैं।

इसी प्रकार महाप्रभुजी के द्वितीय कुमार श्री प्रभु चरण विठ्ठलनाथजी का भावात्मक स्वरूप चन्द्रावलीजी का है, ये दोनों स्वामिनियाँ भगवान् कृष्ण के समीप बिराजती हैं, कारण बिना कार्य नहीं होता है इसलिए एक बार ललिताजी ने श्री ठाकुरजी को अपनी निकुंज में पधारने के लिये निवेदन किया सो प्रभु ने स्वीकृति दी। जब पधार रहे थे तब राह में से ही चन्द्रावलीजी श्री ठाकुरजी को अपनी निकुंज में पधरा कर ले गई जहां छः महीनों तक आप बिराजे। जब इसको सूचना ललिताजी को मिली तब क्रोधावेश में उन्होंने चन्द्रावलीजी को शाप दिया की आप अपनी सृष्टि समेत भूतल पर पधारो और जैसे आपने मुझे छः महीनों का वियोग श्री ठाकुरजी से कराया है वैसे ही आपको छः महीनों का वियोग हो। तब चन्द्रावलीजी ने वापिस शाप दिया कि तुम भी भूतल पर प्रकट होकर प्रेत बनोगे और तब तुम्हारा उद्धार मैं ही करूंगी।

पारस्परिक शाप की सूचना स्वामिनीजी को मिली तब वे बहुत उदास होकर श्री ठाकुरजी से निवेदन करने लगी कि मैं चन्द्रावली के बिना क्षण मात्र भी नहीं रह सकूंगी। तब ठाकुरजी ने उत्तर दिया कि जो अपने से बिछुड़े हुए जीवों को वापिस गोलोक में लाने का विचार जो आपने किया था उसकी सिद्धि तब ही हो सकती है कि आप श्रीमद्वल्लभ के स्वरूप में और चन्द्रवलीजी जो आपके मुखचन्द्र से यहां प्रकट हुई है वह श्रीमद्वल्लभ के सुपुत्र रूप विठ्ठलेश होवे। और मैं भी गिरिराजजी से प्रकट होऊंगा। इस प्रकार श्रीमद्वल्लभाचार्य का अलौकिक स्वरूप स्वामिनीजी का है और श्रीमद् विठ्ठलेश प्रभु चरण का स्वरूप चन्द्रावलीजी का है। ललिताजी का स्वरूप कृष्णदासजी अधिकारी हैं जिनको अन्त में प्रेत बनना पड़ा तब गुसांई ने उनका उद्धार किया।

वार्ता साहित्यानुसार कृष्णदासजी अधिकारी ने श्रीनाथजी के दर्शन की मनाई श्रीमद्विठ्ठलेश प्रभु को करी तब आपश्री पारासोली पधारे और श्रीनाथजी को ९ विज्ञप्तियां लिखकर भेजी जिन में प्रगाढ भक्ति, दैन्य स्वरूप के दर्शन होते हैं वे विज्ञप्तियां हिन्दी अनुवाद सहित दी जा रही हैं जिनके पाठ से दैन्य की प्राप्ति हो जिसका होना आवश्यक होते हुए भी दुर्लभ है।

॥ श्री गोपीजन वल्लभाय नमः ॥
॥ श्रीमदाचार्य चरण कमलेभ्यो नमः ॥
॥ श्री विठ्ठलेश्वर परमदयालवे नमः ॥

❀ अथ मंगलाचरणम् ❀

(१)

श्री विट्ठलनाथजू के चरण शरणं।
श्री वल्लभनन्दनं कलिदुःख खण्डनं, पूरणपुरुषोत्तम त्रयताप हरणं ॥१॥
सकल दुःख दारुणं, भवसिन्धु तारणं, जनहित लीला देह धारणं।
कान्हरदास प्रभू सब सुख सागर, भूतल दृढभक्ति प्रकट करणं ॥२॥

(२)

बलिहारी श्रीविट्ठलेश की जिन जगत उद्धार्यो। माया सिंधुते तारके भवपार उतार्यो।१।
पाप पुण्य जीवदुष्टको हृदे नाँय विचार्यो। कृष्णदास की बाँह पकर मारगमें डार्यो।२।

(३)

श्रीवल्लभ सुत के चरण भजो।
नन्दकुमार भजनसुखदायक पतितपावन करण भजो ॥
दूर किये कलिकपट वेद विधि मत्तप्रचण्ड विस्तरण भजो ॥
अतुल प्रताप महिमा स्यामयश तापशोक अघहरण भजो ॥
पुष्टि-मर्याद भजन सुख सीमा निजजन पोषण भरण भजो ॥
नन्ददासप्रभु प्रकट भये दोऊ श्रीविट्ठलेश गिरधरण भजो ॥

(४)

हौं चरणातपत्र की छैयाँ।
कृपासिन्धु श्री वल्लभनन्दन बह्यो जात राख्यो गहि बहियाँ ॥१॥
नवनख चन्द्र शरद मण्डल छवि हरत ताप स्मरत मनमहियाँ।
छीतस्वामी गिरधरन श्री विट्ठल सुयश बखान संकत श्रुति महियाँ ॥२॥

(५)

हमारे श्री विट्ठलनाथ धनी।
भवसागर ते काढ़ महाप्रभु राखि शरण अपनी ॥१॥
जाको नाम रटत निश वासर शेष सहस्त्र फणी।
छीतस्वामी गिरधरन श्री विट्ठल त्रिभुवन् मुकुट मणी ॥२॥

(६)

परम कृपाल श्रीवल्लभनन्दन, करत कृपा निज हाथ दे माथे ॥
जे जन शरण आये अनुसरही, गही सोंपत श्रीगोवर्धन नाथे ॥
परम उदार चतुर चिन्तामणि, राखत भव धारा ते साथे ॥
भजौ कृष्णदास काज सब सरही जो जाने श्रीविट्ठलनाथे ॥

।। श्रीनाथजो ।।
श्रीगोपीजन वल्लभाय नमः ।। श्रीगोवर्द्धननाथो विजयते ।।
श्रीमदाचार्य चरणकमलेभ्यो नमः ।।

श्रीमत्प्रभुचरण (श्री गुंसाईजी) कृत

।। नवविज्ञप्ति-स्तोत्र ।।

।। प्रथम-विज्ञप्ति-प्रारम्भः ।।

कियान्पूर्वं जीवस्तदुचितकृतिश्चापि कियती । भवान्यत्सापेक्षो निजचरणदाने बत भवेत् ।।
अतः स्वात्मान स्वं निरूपममहत्वं व्रजपते । समीक्ष्यास्मन्नेत्रे शिशिरय निजास्याम्बुजरसैः ।१।

हे व्रजनाथ ! कहां तो यह जीव ही कितनों तुच्छ है और या दुष्ट जीव की कृति कैसी है; जो कि अपने दोष भी निवृत्त नहीं कर सकै है । सो प्रियतम कहा अपनो चरणारविन्द दैवे में जीव की अपेक्षा करौगे ? सर्वथा नहीं ! यासूं प्यारे अपनी उपमा रहित महिमा कूं देखकें, आपकी विरह अग्नि सूं सन्तप्त जो हमारे नेत्र हैं, इनकूं अपने मुखारविन्द के रस सूं शीतल करौ ।।१।।

स्वदोषाञ्जानामि स्वकृतिविहितैः साधनशतै । रभेद्या यस्त्यक्तुं चापटुतरमना यद्यपि विभो ।।
तथापि श्रीगोपीजनपदपरागांचितशिरास्त्वदीयोऽस्मीति श्रीव्रज नृप न शोचामि मुदितः ।२।

हे सर्व समर्थ ! अपने दोषन कूँ मैं जानूँ हूँ । अपनी कृति ते किये भए सैकड़न साधन सूँ भी निवृत्त करवे में असमर्थ मन बारे हैं । श्री गोपीजन के चरण मकरन्द सूँ अभिषिक्त शिर वारी मैं आपकी हूँ, तासूँ सोच नहीं करूँ हूँ, प्रसन्न हूँ ।।२।।

धृतं यदर्थे वपुरेतदासीत्तदिच्छया यद्भविता तदस्तु ।
प्रभो कृपालो यदि रोचते ते विज्ञापनीयं न कदापि किंचित् ।।३।।

हे प्राणनाथ ! हम आपके लिए देह धारण किये हैं; सो आपकी इच्छा से जो होय सो होय । हे प्रभू ! आप कृपालू हो, जो रुचै सो करौ । हमकूँ किसी समय में कछु भी प्रार्थना नहीं करनी है ।।३।।

श्री कृष्ण भक्ति प्रवर्त्तक:
श्री मत्प्रभुचरण श्री विट्ठलनाथजी (गुसांईजी)

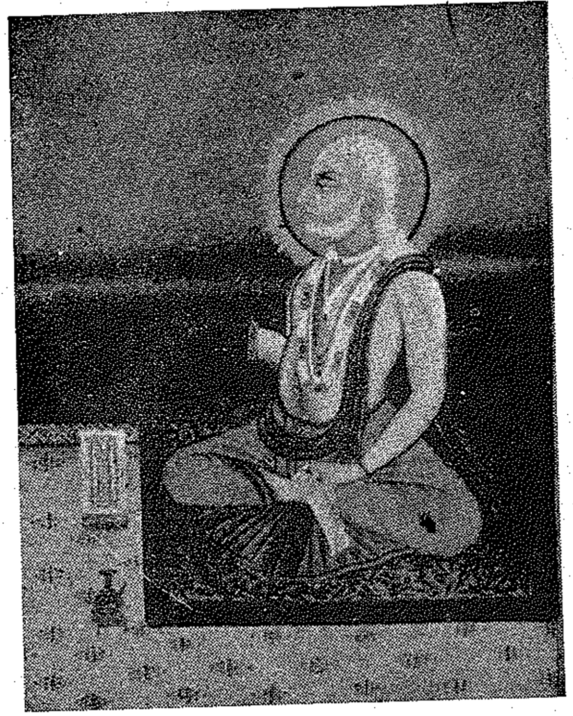

प्राकट्य वि. सं० १५७२ (व्रज) पोष कृष्ण ९.
आसुरव्यामोह वि० सं० १६४२ (व्रज) माघ कृष्ण ७.

सायं कुञ्जा लयस्थासनमुपविलसत्स्वर्णपात्रं सुधौतं ।
राजद्यज्ञोपवितं परितनुबसनं गौरमम्भोज वक्त्रम् ।
प्राणानायम्य नासापुट निहितकरं कर्णराजद्विमुक्तं ।
वन्देऽर्धोन्मीलिताक्षं मृगमद तिलकं विट्ठलेशं सुकेशम् ।।

यमंतरेण क्षणमप्यशक्यं यो मन्यमानः स दिनान्यमूनि ।
नयामि तेनापि विना यदित्थं किमस्ति कापट्यमितोऽधिकं मे ।।४।।

हा नाथ ! आपके संयोग में यह विचार होतौ हतौ कि आपके वियोग में एक क्षण भी कैसें बीतैगौ । सो हे नाथ ! आपके बिना इतने दिन बीत गये और बीते जांय हैं, सो जासूँ बढ़के अधिक कपट और कहा होयगौ ।।४।।

आसारैः पीडितं स्वं व्रजमवितुमधादाशुगोवर्द्धनाद्रिं ।
दावाग्नेदह्यमानं तमपिवदमिताऽसह्य भक्तार्तिभीतिः ।।
गोपस्त्रीविप्रयोगानलमुपसमयन्नेति गोष्ठं दिनांते ।
सोऽपि श्रीगोकुलेशः किमति करुणया मामिहोपेक्षते स्वम् ।।५।।

हे नाथ ! आप ऐसे दयालू हो, जा समय इन्द्र कोप करके व्रज कूँ डुबाइवे के ताईं वृष्टि करवे लग्यौ, तब श्री गिरिराजजी धारण कर रक्षा करी । दावानल जरायवे आयो, बाकौ पान कियौ । हा नाथ ! भक्तन के क्लेश आप सहन नहीं करौ हौ । श्री गोपीजन के विप्रयोग रूपी अग्नि कूँ शान्त करवे के ताईं आप वन में सन्ध्या को पधारो हो । हा निःसाधन गोकुल के स्वामी ! मैं आपकी हूँ । करुणा सूँ क्यों नहीं अपनाऔ हो ? उपेक्षा क्यों करौ हो ।।५।।

जानामि मंदभाग्योऽहं, यदर्थं गोकुलेश्वरः ।
भक्तक्लेशा सहिष्णुत्व-स्वभाव कुरुतेऽन्यथा ।।६।।

हे गोकुल के स्वामी ! मैं अपने कूँ मन्दभागी जानूँ हूँ । कारण पहलें आप भक्तन के क्लेश नहीं सहते हते । अब सहवे लगे । हमारे लिये अपनों स्वभाव विपरीत कियो । यासों हमारे मन्दभाग्य ही कारण हैं ।।६।।

आशातृणावलंबेन त्वद्वियोगाधिवारिधिम् ।
अनुग्रहगरिष्ठोऽतितरामिह तराम्यहम् ।।७।।

हा नाथ ! फिर हमकूँ आपकी प्राप्ति होयगी । या आशारूपी तृण को अवलम्बन करकें, आपके अनुग्रह के बल से विप्रयोगरूपी समुद्र तरेंगे ।।७।।

अम्बुदस्य स्वभावोऽयं समये वारि मुञ्चति ।
तथापि चातकः खिन्नो रटत्येव न सशयः ।।८।।

मेघ को तो यह स्वभाव ही है, कि वह समय आइवे पर ही जल बरसावे है । फिर भी खिन्न चातक अपनी पिउ पिउ रटना कियौ ही करै है । हा नाथ ! वैसे ही अपने समय पर ही आप मिलोगे, परन्तु हमारी रटना बन्द नहीं होय है ।।८।।

यद्यप्यहमपराधी तथापि तव चरणसेवकोऽस्म्येव ।
एवं सत्येवं मयि करणं नैवोचितं नाथ ।।९।।

हे नाथ ! यद्यपि हम अपराधी हैं । फिर भी आपके चरण-सेवक हैं । ऐसौ होयवे सूँ हमारे प्रति ऐसौ करनों उचित नहीं हैं ।।९।।

काल कर्माधानतां यत्करोषि मयि सुन्दर ।
तदप्यनुचितं यस्मात्वदीयोऽस्म्युररीकृतः ।।१०।।

हे सुन्दर ! आप मोकूँ काल और कर्म के आधीन करौ हो, सो उचित नाहिं है । मैं आपकी हूँ, मोकूँ अंगीकार करो ।।१०।।

स्वतन्त्रत्वेन मर्यादां मनुषे नैव चेत्प्रभो ।
श्रीगोकुलप्रभुरसि तैनैवं दीनतां ब्रुवे ।।११।।

हे प्रभू ! आप स्वतन्त्र हो, यासूँ मर्यादा कूँ नहीं मानों हो । श्री गोकुल के पति हो, यासूँ दीनता करत हूँ ।।११।।

सर्वसाधनशून्योऽहं सर्वसामर्थ्यवान्भवान् ।
श्रीगोकुल प्राणनाथ न त्याज्योऽहं कदापि वै ।।१२।।

हे नाथ ! हम सर्वसाधन शून्य है और आप सर्वसामर्थ्ययुक्त हो; यासूँ हे गोकुल के प्राणनाथ ! हमारो कभी त्याग मत करो ।।१२।।

यत्करिष्यसि तन्नाथ, स्वतः एव करिष्यसि ।
अतो मुहुः किं वदामि श्रीगोपीजनवल्लभ ।।१३।।

हे नाथ ! आप जो करोगे, सो स्वतः करोगे । तासूँ हे श्री गोपीजन वल्लभ ! हम बारम्बार कहा कहैं ।।१३।।

एकोऽपि रेणु व्रजभूषणांघ्र्या पातुं क्षमः सर्वत एव सर्वम् ।
अशेषतत्पादसरोजरेणु सनाथ–सर्वस्य कुतोऽस्ति मे भिः ।।१४।।

हा नाथ ! श्री गोपीजन की चरण की एक रेणु सर्वप्रकार सूँ सबकूँ पावन करवे कूँ समर्थ है । तब तो उनके सम्पूर्ण रेणु हमारे नाथ है; तब हमको कहाँ से भय है । अर्थात् श्री गोपीजन हमारे माथे विराज रहे हैं ।।१४।।

घुणकीटवदेव यवोरंतश्चरति प्राणभृतामशेषसारम् ।
अपगच्छति नाप्युपायलक्षैर्व्रजनाथ प्रणयः स किं सुखाय ।।१५।।

हे व्रजनाथ ! सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में घुटकीट की तरह सूँ रहवे वारौ और सम्पूर्ण धैर्य रूपी सार कौ हरण करवे वारो, तथा लाखों उपाय करवे पर भी नहीं जाइवे वारो प्रेम कहा सुख के लिए होय है । अर्थात् नहीं ।।१५।।

त्वन्नामोच्चारणेऽप्यस्ति न जीवेष्वधिकारिता ।
अलौकिकत्वात्त्वन्नामस्त्वद्वाचोऽलौकिकत्वतः ।।१६।।

हे नाथ ! जीवों में आपकौ नाम उच्चारण करवे को भी सामर्थ्य नहीं है । कारण आपकौ नाम अलौकिक है और जीव की वाणी लौकिक है ।।१६।।

एवं सत्यपि जानामि त्वन्नामादिप्रभाववित् ।
उद्यदेव स्वयोग्यां त्वां कुर्वदेवहि राजते ।।१७।।

हे नाथ ! ऐसौ होइवे पर भी आपके नाम के प्रभाव को जानवे वारी जो मैं हूँ सो ऐसौ जानूँ हूँ कि जीव जब आपके नाम लैवे को विचार करै है, सो आपके नाम वा जीव की वाणी को अपने लैवे योग्य सम्पादन करके विराजित होय है ।।१७।।

त्वदंगीकृतयो जीवेष्वधिकारा यतः प्रभो ।
अतस्तेन विचारार्हाः कृपां कुरु कृपानिधे ।।१८।।

हे प्रभु ! जीवों में आपको अंगीकृतरूपी अधिकार है, याही सो विचार करबे योग्य नहीं है । हे कृपानिधि ! आपही कृपा करौ ।।१८।।

साधिता भवतु साधिताथता–बाधितार्थं विहिताधिकारिता ।
क्वापि कापि गनिरुत्सुकास्म्यहं–राधिकाचरण दासिका परम् ।।१९।।

हे नाथ ! होयवे वारौ जो अर्थ है, सो सिद्ध होय, जो विहिता अधिकार होयवे सूँ बाधक रूप होय एवं कहूँ पे कोहू गति होय, तोहू मैं श्री राधिकाजी के चरण की परम दासी होयवे कूँ परम उत्सुक हूं ।।१९।।

मदीयोऽयमिति ज्ञात्वा, न कस्मै त्वं प्रसीदसि ।
यादृशस्तादृशो वाहं तव चेत् किं विलम्बसे ।।२०।।

हे नाथ ! यह हमारौ है, ऐसौ जानकें काहके ऊपर आप प्रसन्न नाहीं होत हो ? अर्थात् अपनौ जानों हों, उन सबन के ऊपर आप अपनौ नाम जान के प्रसन्न होत हो, तो जैसे तैसे हम जो आपकी दासी हैं, सों क्यों विलम्ब करो हो ।।२०।।

आचार्यचरणैरुक्तं दैन्यं त्वत्तोषसाधनम् ।
स्वल्पं बहुतरं वापि तदस्तीति प्रसीद मे ।।२१।।

हे नाथ ! श्री आचार्य चरण आज्ञा किये हैं, कि आपकी प्रसन्नता कौं कारण एक दैन्य है । हे नाथ ! वो दैन्य चाहें थोड़ौ या अधिक कछु तो हमारे में है ही है, यासूँ आप कृपा करो ।।२१।।

प्रभुस्त्वमेव मे नाथ यत्करोषि वरं हि तत् ।
तथाप्यधीरतामेव मानसं मेऽवलम्बते ।।२२।।

हे नाथ ! हमारे प्रभू आप ही हो, जो करौगे सो अच्छौ ही करोगे तथापि मेरो मन धैर्य रहित होय जाय है ।।२२।।

यदि प्रसन्न एवासि त्वदीयोऽहं न चान्यथा ।
न चेदहं तथैवास्मि स्मर स्वानुग्रहं मयि ।।२३।।

हे नाथ ! आप प्रसन्न हौ तो भो हम आपके ही हैं, अन्य के नहीं हैं; यासूँ हमारे पर किये भये अनुग्रह कौ ही स्मरण करो ।।२३।।

यादृशी मे कृतिर्नाथ, तस्या फलमिदं कियत् ।
यादृशस्त्वं प्रभुः किन्तु तादृगेव विधीयताम् ।।२४।।

हे नाथ ! जैसी हमारी कृति है, वाको फलरूप दण्ड कितनों है; अर्थात् बहुत कम है और अधिक दण्ड होनों चाहिए, किन्तु जैसे आप प्रभु हो वैसौ ही अपने स्वरूप कूँ विचार करकें करो ।।२४।।

अपि मे सापराधस्य शिक्षितस्याप्यजानतः ।
हा नाथ पालनीयस्य किमुपेक्षोचिता तव ? ।।२५।।

हे नाथ ! हम जो अपराधी हैं सो आपके शिक्षारूपी दण्ड वाकूँ नहीं जान रहे हैं तौ भी आपसे ही पालन करवे योग्य हैं । कारण कि हमारे आप ही हौ । यासूँ हे नाथ ! हमारी उपेक्षा करनी आपको कहा उचित है, अर्थात् नहीं ।

।। श्री गुंसाईजी विरचित प्रथम विज्ञप्तिः समाप्तम् ।।

।। द्वितीय विज्ञप्ति प्रारम्भः ।।

यदि तुष्टोऽसि रुष्टो वा, त्वमेव शरणं मम ।*
मारणे वारणे वापि, दासीनां नः प्रभुर्गतिः ।।१।।

हे नाथ ! यदि प्रसन्न हौ अथवा रुष्ट हौ, परन्तु हमारे तो आप ही रक्षक हौ । जैसे घर की जो दासी वाके मारवे अथवा निवारण करवे में घर को जो पति है, वही गति है अथवा दूसरी गति नाहीं है ।।१।।

त्वद्वियोगे य आद्यो, मच्छ्वासो निर्गमद्बहिः ।
तेनैव सह चेत्प्राणा, न ययुस्तर्हि किं ब्रुवे ।।२।।

हे नाथ ! आपके वियोग में जो प्रथम आह के अर्द्धश्वांस बाहर निकले, तो वाके साथ में हमारे पतित प्राण नहीं चले गये सो या कपट कूँ हम कहा करें ।।२।।

निरपत्रपतां चान्यां, किं ब्रुवे योऽहमीदृशः ।
संगमाशां करोम्येवं, विचाराद्यनपायिनीम् ।।३।।

हे नाथ ! ऐसे भी कपटी होकर के फिर भो विचार आदिकों से भी दुर्घट जो आपके संग की आशा हम कर रही हैं, सो याते बढ़कर हम अपनी निर्लज्जता कहा कहें ।।३।।

एवं सति त्वदीयस्य, त्वमेव शरणं मम ।।
गोकुलेश किमप्यस्तु, त्वं मा मा त्यज किं परैः ।।४।।

हे नाथ ! ऐसे होवे पर भी आपकी जो मैं हूँ, सो मेरे आप हो शरण हौ । सो हे गोकुलेश ! चाहे कुछ भी हो पर हमकूँ आप त्याग मत करौ ।।४।।

त्वद्वियुक्तस्य जीवस्य, नित्यता मास्तु कस्यचित् ।
किंतु तत्क्षरण एवास्य, नाश एव व्रजेश्वर ।।५।।

हे व्रजेश्वर ! आपसे अलग भयो जो जीव है वाकी नित्यता 'जीता' रहे कभी न हो, अर्थात् आपके वियोग के ही क्षरण में बाकौ नाश होय जाय है ।।५।।

तोषसाधनराहित्यं, यद्यप्यस्ति मयि प्रभो ।
तथापि सहजैश्वर्यं, त्वय्यस्तीत्यहमक्लमः ।।६।।

हे प्रभो ! यद्यपि आपकी प्रसन्नता कौ साधन हमारे कछु भी नहीं है । तथापि आप में सहज ऐश्वर्य जो दीनन कौ पालन करवे रूप विद्यमान है, तासूँ ही हम प्रसन्न निश्चित् हैं ।।६।।

यद्यपि त्वत्कृपायोग्यं, पात्रं नास्ति तथापि तु ।
त्वमर्हसि कृपां कर्तुं, पितरं वीक्ष्य मे प्रभो ।।७।।

हे प्रभो ! यद्यपि हम आपकी कृपा योग्य नहीं हैं तथापि हमारे पितृचरण श्री आचार्य चरण कूँ देखकर हमारे ऊपर कृपा करवे योग्य हैं ।।७।।

महत्यल्पेऽथवार्थे या पराश्रयकृतिर्मम ।
निसर्गदोषात्तन्नाशोऽपीह, कार्यस्त्वस्त्वयैवहि ।।८।।

हे नाथ ! स्वभाव दोष सों ही थोड़े अर्थ के ताईं अथवा महान् अर्थ के ताईं दूसरे कौ आश्रय रूप जो कृति हमसे होय है, सो कृपा करके याकी निवृत्ति भी आप ही सुँ होयगी ।।८।।

सर्वज्ञे त्वय्यज्ञतरः किं वच्मि व्रजपालक ।
सर्वथाहं त्वदीयोऽस्मि, सान्वयः सपरिग्रहः ।।९।।

हे व्रजपाल ! सर्वज्ञ जो आप हो, सो आपके प्रति अत्यन्त अल्पज्ञ हम कहा कहें । परन्तु हे नाथ ! निश्चय करके सब कुटुम्ब तथा सब वस्तु सहित हम आपके ही हैं । हमको इतनों ही कहनों है कि हम आपके ही हैं ।।९।।

सर्वथा स्वीयतां राधा-प्रिय ज्ञात्वा सदा मयि ।
यत्करिष्यसि तत्सर्वं साध्वेवेति मतिर्मम ।।१०।।

हे श्री राधिकाजी के प्रिय ! निश्चय करके हमको आप अपनों समझ करकें, हमारे प्रति जो जो करोगे अच्छो ही है । ऐसी हमारी मति है ।।१०।।

कस्याग्रे कथयाम्याली मनोदुःखस्य संततिम् ।
व्रजाधीश वियोगाब्धि-मग्नः कोऽपि न दृश्यते ।।११।।

हे सखि ! हमारे मन के दुःख को जो विस्तार है, सो कौनके सामने कहें । कारण कि व्रजाधीश के वियोग रूपी समुद्र में कोई मग्न नाहीं दोखे है ।।११।।

यद्दैन्यं तोषहेतुस्ते, आचार्यैः प्रकटीकृतम् ।
विना साधनसंपत्ति, तेन मेऽस्ति स्थिरं मनः ।।१२।।

हे नाथ ! आपकी प्रसन्नता कौ कारणभूत जो दैन्य श्री आचार्य चरण ने प्रकट कियौ है सो साधन सम्पत्ति के अभाव होयवे सूँ वो दैन्य हमारे में है । यासूँ हमारौ मन स्थिर है ताते अवश्य कृपा करौगे ।।१२।।

त्वद्दर्शनादृते नूनं, दीनानीमानि हृत्पते ।
वृथा यांति त्वदीयस्ये, नाथ त्वं दर्शयान्तिकम् ।।१३।।

हे हृदय के पति ! आपके दर्शन विना ये सब दिवस निश्चय करके हमारे वृथा जा

रहे हैं। वासूँ हे नाथ ! मैं जो आपकी हूँ, सो अपनी समीपता हमकूं शीघ्र दर्शावो ॥१३॥

मयि यद्यपि नैवास्ति, त्वत्प्रसादनकारणम् ।
तथापि स्वीकृतं दैन्यं, मत्वा कार्या कृपानिशम् ॥१४॥

हे नाथ ! यद्यपि आपकी प्रसन्नता को कारण हमारे में नाहीं है, तथापि स्वीकृत किये हुए जो दैन्य, आपकी कृपा के कारणभूतसो हमारे में विद्यमान है, यासूँ अहर्निश कृपा करौ ॥१४॥

त्वद्विप्रयोगदहनज्वरितासवो मे। यत्संस्थिताः, कथमपीदमतीव चित्रम् ॥
भो जीवितेश मम यान्ति कथं दिनानि। शून्यानि ते, स्मितमुखाब्जविलोकनैन

हे नाथ ! आपके विप्रयोग रूपी ज्वाला सों ज्वलित जो हमारे प्राण हैं, सो कोन से कारण कौ अवलम्बन करके स्थित रहे हैं। मालूम नाहीं पड़े है, सो अत्यन्त आश्चर्य है ॥१५॥

अपिजीवितनाथ मन्मनो, लुलितं त्वद्वदनं समिक्षुतुम् ।
व्यथते सततं समुत्सुकं, नयमां त्वपदपंकिजांतिकम् ॥१६॥

हे जीवन के स्वामी ! मन्द मुस्कयान ते युक्त मुखारविन्द के दर्शन के विना ये हमारे शून्य दिवस कैसे जाय रहे हैं। हे जीवन के नाथ ! आपके मुखारविन्द के दर्शन करवे के ताईं हमारौ मन घबड़ाय रह्यौ है और निरन्तर उत्सुकता करके शीघ्र अपने चरणारविन्द के समीप ले चलौ ॥१६॥

ईदृशः कोऽपराधोऽस्ति, हृदयेश न वेद्म्यहम् ।
येनांतराय एतावान् श्रीमुखालोकने मम ॥१७॥

हे हृदय के स्वामी ! ऐसौ कौनसो अपराध है, जाकूँ मैं नहीं जानूँ हूँ कि जा करके श्रीमुखारविन्द के अवलोकन में हमारौ इतनों अन्तराय ह्वै गयौ ॥१७॥

सर्वात्मनादुरापत्वं, ज्ञात्वाप्याशां करोमि यत् ।
भ्रांतोऽस्म्यहं न वेतीश, न जाने करवाणिकिम् ॥१८॥

हे नाथ ! सर्व प्रकार सों आप दुरप्राप्य हो; ऐसा जान करके भी फिर आपकी प्राप्ति की आशा मैं करूँ हूँ। यासूँ भ्रान्त हूँ अथवा नहीं, यह नहीं जानूँ हूँ। सो हे नाथ ! अब मैं कहा करूँ ॥१८॥

श्रुतिर्यत्प्राह गोपीश, साधनप्राप्यतां त्वयि ।
तन्मे न खेदहेतुर्यत्साधनं नास्ति मेऽण्वपि ॥१९॥

हे गोपीजन के स्वामी ! श्रुतियां साधन सूँ (अप्राप्य) आपकी प्राप्ति नहीं बतावें हैं। यासूँ हमको खेद नहीं होय है। कारण कि हमारे में अणुमात्र भी साधन नहीं है। यासूँ हमें आपकी प्राप्ति अवश्य होयगी ॥१९॥

त्वदीयत्वं त्वदीयत्वं, त्वदीयत्वं यदस्ति मे ।
तदेव फलमित्यात्म-शास्त्रतः प्रमिमोम्यहम् ॥२०॥

हे नाथ ! मैं जो आपको हूँ; आपकी हूँ, आपको हूँ। हमको यही फल है। याकूँ आत्मा के अनुभव रूप शास्त्र सों ही प्रमाणित है ॥२०॥

तथापि मन्नेत्रवपुः— प्रभृतीनां व्रजाधिप ।
साक्षात्वय्युपभोगं मे, मनः कामयतेतराम् ॥२१॥

हे व्रज के अधिप ! तथापि हमारे नेत्र, शरीर इत्यादि सर्वाङ्गसूँ आपके उपभोग करबे की अत्यन्त कामना करे हैं ॥२१॥

त्वदंतरंगभक्तांघ्रि—पद्मदास्यं व्रजेश्वर ।
त्वदीयतायाः फलमित्यहं मन्ये न चेतरात् ॥२२॥

है व्रजेश्वर ! आपके अन्तरंग जो भक्त हैं, उनके चरणारविन्द कौ दास होनौं, आपके जन होयवे कौ ये ही फल है; ऐसौ मैं जानूँ हूँ, अन्य नहीं ॥२२॥

यदुक्तं तातचरणैः श्रीकृष्णः शरणं मम ।
तत एवास्ति नैश्चित्यमैहिके पारलौकिके ॥२३॥

हमारे तातचरण श्री आचार्य चरण ने आज्ञा करी है कि हमारे रक्षक श्रीकृष्ण

हैं। याही सूँ हमको या लोक में तथा परलोक में निश्चिन्तता है ।।२३।।

इति वस्तुस्थितौ सत्यामपि त्वद्वदनांबुजम् ।
द्रष्टुं कामयते चेतः, सस्मितेक्षणमोहनम् ।।२४।।

ऐसी वस्तुस्थिति होवे पर भी मन्दमुस्कान से युक्त मनोहर जो आपकौ मुखकमल है, वाकूँ देखवे कूँ चित्त अत्यन्त कामना करै है ।।२४।।

नान्यास्ति कामना देहस्थितिरेतादृशी मम ।
नोचिता तावकीनस्य, विज्ञप्तिरियमेव मे ।।२५।।

हे नाथ ! जैसे आपके मुखकमल के दर्शन की कामना हमारे मन में है, ऐसी कोई भी कामना नहीं है। हे नाथ ! आपके हो करके बाकी ऐसी स्थिति होनी उचित नाहीं; हमारी यही प्रार्थना है ।।२५।।

।। श्री गुसांईजी विरचित द्वितीय विज्ञप्ति समाप्त ।।

।। तृतीय विज्ञप्ति प्रारम्भः ।।

यद्दैन्यं त्वत्कृपाहेतुर्न तदस्ति ममाण्वपि ।
तां कृपां कुरु राधेश, यया ते दैन्यमाप्नुयाम् ।।१।।

हे राधेश ! जो आपकी कृपा के हेतुभूत दैन्य है, सो हमारे में अणुमात्र भी नाहीं है; सो ऐसी कृपा करो, कि जामें वो दैन्य हमारे में प्राप्त हो ।।१।।

सर्वेषां जीवनं लोके, दृष्टं सर्वार्थसाधकम् ।
ग्लान्येकफलकं जात्मधुना मम जीवितम् ।।२।।

हे नाथ ! सम्पूर्ण प्राणीन के जीवन या जगत् में सर्वार्थ दीखवे में आवै है या समय में हमारौ जीवन केवल ग्लानियुक्त फलजनक हैं ।।२।।

कर्त्तुं पुनर्यथाकर्तुमन्यथा कर्तुमीश्वरे ।
सामर्थ्यं यन्मया दृष्टं, त्वय्येवातो न संशयः ।।३।।

हे नाथ ! कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथाकर्त्तुं यह सामर्थ्य ईश्वर जो आप हैं। सो आप में ही हमने देख्यौ है, यामें कोई भी संशय नाहीं है ।।३।।

तं न पश्यामि यस्याग्रे, वार्तां स्वस्य मनोगताम् ।
उक्त्वा तदुत्तरं लब्ध्वा, मनो विश्रामये क्षणम् ।।४।।

हे सखी ! ऐसे प्राणी को हम नहीं देखें हैं। जाके आगे मन को बात कहकें और वाकौ उत्तर पायकें क्षणमात्र भी मन में विश्राम करें ।।४।।

अतीव नीचा मत्प्राणा, मूर्खा अपि गतत्रपाः ।
स्वस्थित्ययोग्यकालेऽपि, यतस्तिष्ठन्ति साम्प्रतम् ।।५।।

हमारे प्राण अत्यन्त नीच, मूर्ख तथा निर्लज्ज हैं। कारण कि अपनी स्थिति के अयोग्य समय में भी ठहर रहे हैं। कारण कि प्राणनाथ के वियोग में इनको निकल जानों हतो, सो नहीं निकले हैं ।।५।।

शास्त्रं नियामकं तावद्यावत्पूर्णकृपा नु ते ।
कृपया तेन पूर्णस्य, नैव कोऽपि नियामकः ।।६।।

हे नाथ ! शास्त्र तब ताईं नियामक है, जब ताईं आपको पूर्ण कृपा नहीं है और आपकी कृपा से जो पूर्ण हो गये हैं, उनको कछु भी नियामक नाहीं है ।।६।।

सुभगा एव जानन्ति प्रियसौभाग्यजं सुखम् ।
तद्धीनायास्तदीयेति, प्रसिद्धिः शरणं सखि ।।७।।

हे सखी ! जो सुभगा स्त्री है; अपने प्रियतम के सौभाग्यरूपी सुख को ही जानें है और सौभाग्यहीन जो है, सो केवल अपने पति के नाम से प्रसिद्ध है कि अमुक की स्त्री है ।।७।।

प्रियसंगमराहित्याद्, व्यर्था सर्वे मनोरथाः ।
निरपत्रपतासिद्ध्यै, जीवामि सखि साम्प्रतम् ।।८।।

हे सखी ! प्रियतम के संग से रहित होयवे सूँ हमारे सब मनोरथ व्यर्थ हैं। या समय

में केवल निर्लज्जता की सिद्धि के लिए ही हम जी रही हैं ।।८।।

न लब्धस्तादृशः कोऽपि, यस्याग्रे स्वमनोगताम् ।
वार्तामुक्त्वा स्वमात्मानं, क्षणं विश्रामयाम्यहम् ।।९।।

ऐसौ कोई प्राप्त नहीं होय है कि जाके आगे मनोगत वार्त्ता कहकें क्षणमात्र भी अपनी आत्मा को विश्रामित करें ।।९।।

अद्य श्वो वः परश्वो वा, कदाचित्कृपयिष्यति ।
नाथ इत्याशया सर्वंगतं जन्म करोमि किम् ।।१०।।

हे नाथ ! आज अथवा कल अथवा परसों कभी भी कृपा करोगे । या आशा सौं सगरो जन्म बीत गयौ । हाय ! अब हम कहा करें ।।१०।।

तथापि त्वत्कृपाकांक्षा, मनो मे निरपत्रपम् ।
कं वा हेतु सुनिश्चित्य, करोतीति न वेद्म्यहम् ।।११।।

तथापि यह मेरौ निर्लज्ज जो मन है, सो कौन हेतु कौ निश्चय करकें आपकी कृपा की आकांक्षा करे है । याकूँ मैं नहीं जानू हूं ।।११।।

स्वभावतः सदा मेघः, सर्वेषां जीवनप्रदः ।
जाने तस्यैव दौर्भाग्यं, सोऽपि यमुपेक्षते ।।१२।।

स्वभाव सौं ही मेघ सम्पूर्ण प्राणिन कौं जीवन रूप जल प्रदान करै है । सो यह मेघ भी जाकी उपेक्षा करे, ताकूँ जल प्रदान न करै, वाकूँ मैं दुर्भगा ही जानूँ हूँ ।।१२।।

त्वदीयत्वमपि ज्ञात्वा, मयि कालादयः प्रभो ।
प्रभवन्ति ततो मन्ये, त्वत्कृपाशून्यतामपि ।।१३।।

हे नाथ ! कालादिक सब मोहे आपकी जानकें भी जो अपनौ प्रभाव दिखावै है । यासों आपकी कृपा से शून्यतामय अपने कूँ मानूँ हूँ ।।१३।।

विज्ञप्तौ वाऽपराधे वा, पाखण्डे वा मदुक्तयः ।
पर्यवस्यंति कुत्रेति, न जानेऽहं विमूढधीः ।।१४।।

हे नाथ । ये हमारौ कथन प्रार्थना में अथवा अपराध में अथवा पाखण्ड में कहाँ पर अवसान होयगौ । याकूँ मैं नहीं जानूँ हूँ । बुद्धि मूढ़ होय गई है ।।१४।।

राज्यायोग्ये तदाकांक्षा, दडावाह्यौ यथा भवेत् ।
त्वत्सेवायामहं तादृक् तदवापदशामिमाम् ।।१५।।

राज्य के अयोग्य जो होय है और वह राज्य की आकांक्षा करै है, सो जैसे दण्ड देयवे कौ पात्र होय है । ऐसे ही हे नाथ ! आपकी सेवा में अयोग्य जो मैं हूँ सों या दशा को प्राप्त भई हूँ ।।१५।।

स्वीयं कृतागसं चेत्त्वं, दूरस्थं कुरुषे यदि ।
इतः परोऽधिकोदण्डस्त्वदीयस्य न विद्यते ।।१६।।

हे नाथ ! अपराधी अपने जनन कूँ आप यदि दूर करौ हो, तौ यासे अधिक वाके लिए और दण्ड नहीं है ।।१६।।

वियोगो बाधते तावद्यावद्हृद्येव ते स्थितिः ।
यदा बहिस्तदानेति, विचित्रेयं स्थितिस्तवः ।।१७।।

हे नाथ ! जहाँ ताईं आप हृदय में विराजो हो, वैसे ही वियोग भी बाधा करै है और जब हृदय से बाहर पधार जाओ हो, तब वियोग भी बाधा नहीं करै है । ये आपकी विचित्र स्थिति है ।।१७।।

भूर्जत्वगिव मद्दोषा, निस्सरत्येव सर्वतः ।
तथैवानन्यगतिके, त्वत्क्षमेति न मे भयम् ।।१८।।

हे नाथ ! भोजपत्र के पत्ता की तरह से चारों ओर से हमारे दोष निकसते ही जाँय हैं । तथापि अनन्यगति जो हम हैं; जाकौ दूसरौ स्थान नहीं है, सो आप ही रक्षक हो, यासूँ भय नाहीं है ।।१८।।

बलिष्टा अपि मद्दोषास्त्वत्क्षमाग्रेऽतिदुर्बला ।
तस्या ईश्वरधर्मत्वाद्-दोषाणां जीव धर्मतः ।।१९।।

हे नाथ ! बलिष्ठ भी हमारे दोष हैं, तौ भी आपकी कृपा के आगे अति दुर्बल हैं। कारण कि आपकी कृपा ईश्वर कौ धर्म है और दोष जीव कौ धर्म है ।।१९।।

मत्प्राणानां स्वतो लज्जा, नैवास्ति परतोऽपि च ।
प्राप्याप्यवस्थां नो यान्ति, इहामुत्र च गर्हिताम् ।।२०।।

हे नाथ ! हमारे प्राणनकूँ स्वतः भी लज्जा नाहीं हैं और दूसरन सूँ भी लज्जा नाहीं है। कारण कि या लोक और परलोक में निन्दित अवस्था कूँ प्राप्त होय करकें भी नाहीं जाँय हैं ।।२०।।

त्वद्दर्शनविहीनस्य, त्वदीयस्तस्य तु जीवितम् ।
व्यर्थमेव यथा नाथ, दुर्भगायाः नवं वयः ।।२१।।

हे नाथ ! आपके दर्शन विना जो आपके जन कौ जीवन है, सौ विधवा की नवीन अवस्था के नाईं व्यर्थ है ।।२१।।

गतः स कालो यत्रासीत्सु, दुर्लभकृपा मयि ।
इदानीमीदृशः कालो यत्वं दृग्गोचरोऽपि न ।।२२।।

हे नाथ ! जा काल में आपकी दुर्लभ कृपा मोये: हती वो काल अब चल्यौ गयौ, या समय में तो ऐसौ काल आयौ है कि आप दृष्टिगोचर भी नाहीं हौ ।।२२।।

त्वदीयानां सुखं दुःखं, न लोकसदृशं भवेत् ।
त्वत्सेवायां सुखं सर्वं, नोचेत्तस्य विपर्ययः ।।२३।।

हे नाथ ! आपके जन को जो दुःख-सुख है, सो लोक सदृश नाहीं होय है। कारण कि आपकी सेवा में ही सुख और सेवा विना सम्पूर्ण दुःख है ।।२३।।

मत्वा स्वकीयतां नाथ, रोषेण कृपया तव ।
ताड़नं लालनं चैव, परमानन्ददं मम ।।२४।।

हे नाथ ! अपनों मान करकें रोष सों अथवा कृपा सों पालन करौ, चाहें ताड़न करौ वो हमकूँ परमानन्द दैवे वारौ होयगौ ।।२४।।

त्वद्वियुक्तस्य जीवस्य त्वदीयस्यापि नित्यता ।
संगं विना न चैवास्तु विज्ञापनमिदं मम ।।२५।।

।। श्री गुंसाईजी विरचित तृतीय विज्ञप्ति समाप्तम् ।।

हे नाथ ! आपके जन होय करकें जो आपसों-वियुक्त हैं, सो आपके संगम के विना उनके जीवन की नित्यता न हो, नाश हो जाय; यही हमारी प्रार्थना है ।।२५।।

।। चतुर्थ विज्ञप्ति प्रारम्भः ।।

यादृग्भाग्यं पुरा मेऽभूत्तन्महत्वं न वेद्म्यहम् ।
येनासीत्त्वत्कृपा पूर्णा, सुदुर्लभतरा मयि ।।१।।

हे नाथ ! पहिले हमारो जैसो भाग्य हत्तो, बाकी महिमा को मैं नाहीं जानूँ हूँ, कि जा भाग्य से हमारे में सुदुर्लभ और पूर्ण कृपा आपकी भई हती ।।१।।

मा जीवता त्वदीयो यस्तव सेवा विवर्जितः ।
सत्या विज्ञप्तिरेषा मे, नाथ त्वं मनुषे यदि ।।२।।

हे नाथ ! आपके जन हो करकें आपको सेवा से रहित बाकौ जीवन मत होओ। हमारी सत्य विज्ञप्ति यही है, यदि आप मानों ।।२।।

स्वस्थित्ययोग्यं मत्वापि, मच्छरीरं ममासवः ।
यन्न त्यजन्ति तेनाहं, मन्येतान्निरपत्रपान् ।।३।।

हे नाथ ! हमारे प्राण हमारे शरीर को अपनी स्थिति के अयोग्य भी मान करकें जो त्याज्य नाहीं करें हैं, यासूँ हम प्राणनकूँ निर्लज्ज मानें हैं ।।३।।

त्वत्कृपातः पुरा नाथ, मया कालादयः प्रभो ।
तुच्छीकृताः साम्प्रतं मां, बाधन्ते त्वत्कृपां विना ।।४।।

हे नाथ ! आपकी कृपा से पहले हमने कालादिकन कूँ तुच्छ कर दियो हतो; सो हे प्रभो ! या समय में आपकी कृपा को अभाव जानके सब बाधा करें हैं ।।४।।

त्वत्सेवायामयोग्यस्य, त्वदीयस्य मम प्रभो ।
इत्येव हि पराकाष्ठा, अभाग्यस्येति मे मतिः ।।५।।

हे प्रभो ! मैं आपकी हो करकें आपकी सेवा के अयोग्य जो हूँ; सो मेरे अभाग्य की यही चरम सीमा है, ऐसी हमारी बुद्धि है। (ऐसो मैं मानूँ हूँ) ॥५॥

इत्थं जीवनमस्तु, क्षणमपि भवदंघ्रिविप्रयोगे तु ।
मरणं भवतादेवं, भावे शरणं त्वमेवाशु ॥६॥

हे नाथ ! या प्रकार सो आपकी सेवा-सम्बन्ध से जीवन हो, सो तो ठीक है, नहीं तो क्षणमात्र भी आपके चरणारविन्द के वियोग में मरण होय जा सो ही उचित है। ऐसो होयवे में भी आप ही की शरण हो (अर्थात् आप ही रक्षक हो) ॥६॥

गत्तान्यपि बहून्यहान्यह हयान्तियास्यन्त्यपि ।
त्रिभंगललिताकृति प्रियतमाङ्गसङ्गं विना ॥
न कोऽपि मम सक्षणो, भवति यत्र भाग्योदयः ।
कदा नु निजजीवनं, दृशि निवेशयिष्याम्यहम् ॥७॥

हे प्रियतम ! त्रिभंग ललित जो आपकी आकृति है, सो आपके अंग संग के बिना बहुत दिन बीत गये और बीते जाँय हैं, और बीतेंगे। कोई भी हमको वो क्षण नाहीं है, कि जा क्षण में हमारे भाग्य उदय हों। कब अपने जीवन, प्राणनाथ को अपनी दृष्टि में प्रवेश करावेंगी ॥७॥

इयदवधि कदापि गोकुलेशः, स्वजनकृते समाकारिनो विलंबम् ।
परमिह सुतरामुपेक्षितोऽहं—कथमिति खिद्यति मानसं मुहुर्मे ॥८॥

आज तक वो गोकुलेश ! कभी भी अपने जनन के ऊपर कृपा करवे में विलम्ब नाहीं किये थे। केवल हमारी ही उपेक्षा अब क्यों करें हैं। सो हमारौ मन क्षण-क्षण में खेद पावै है ॥८॥

बहुधैवममापराधवृन्दस्तदपि त्वं न विमुंचसि स्वकीयान् ।
अतएव न क्वापि कापि चिंता, भवति प्राणपते ममेदृशस्य ॥९॥

हे नाथ ! हमारे अपराध कौ समुदाय बहुत है, तथापि आप अपने जनन को त्याज्य नाहीं करौ हो; याही सों हे प्राणपते ! ऐसी जो मैं हूँ, सो कोई बात की चिन्ता नाहीं करूँ हूँ ॥९॥

हृदयं विरहं तवेच्छतीदं, न दृशो मे व्रजनाथ किं करोमि ।
न हि कोऽपि परस्परं विरोधे त्यजति स्वार्थमतिप्रबोधितोऽपि ॥१०॥

हे नाथ ! हमारौ जो हृदय है, सो आपके बिरह की इच्छा करे है और हे व्रजनाथ ! यह दृष्टि आपके दर्शन की इच्छा करै है, सो हम कहा करें। अति ज्ञानी भी परस्पर विरोध में अपनी स्वारथ नाहीं छोड़ै है ॥१०॥

हा नाथ जीविताधीश, राजीवदललोचन ।
यथोचितं विधेहीति, प्रार्थनं तावकस्य मे ॥११॥

हा नाथ ! हा जीवित के अधीश ! हा कमलदल लोचन ! जैसो उचित समझौ, वैसौ करौ। मैं जो आपकी हूँ, सो हमारी यही प्रार्थना है ॥११॥

अजनि रजनिः प्रादुर्भूत तमो विजनादिश–
स्त्वमसि चतुरा चाहं संगाभिलाषवती चिरात् ॥
तदपि तु यदप्राप्तिः प्रेष्ठस्य मे सुविचारितम् ।
प्रियसखी परिरंभारंभे विधेरविधेयता ॥१२॥

हे प्रिय सखी ! रात्रि भी आय गई, रात्रि कौ अन्धकार भी प्रकट है गयौ; सब दिशाएँ भी मनुष्यन से शून्य है गईं (एकान्त होय गई) हैं। सखि ! तुम भी प्रियतम कूँ, अच्छी-अच्छी बात कह करकें पधरायवे में अति चतुर हौ, और हम भी बहुत समय सों प्रियतम के संगम की अभिलाषा कर रही हैं। बहुतकाल सों प्रियतम सों विचार कियौ गयौ, तो भी प्रियतम की प्राप्ति नाहीं भई। परिरम्भन के आरम्भ में विधि की ही अवधेयता है ॥१२॥

त्वत्तो नान्यां प्रपश्यामि राधाबाधाविरोधिनी ।
तत्त्वं यथैव मत्प्राणो, मिलत्येव तथा कुरु ॥१३॥

हे राधा ! तुमसे अन्य बाधा को नाश करवे वारौ हमैं नाहीं दीखे है यासों जैसे प्राणनाथ हमको मिलें, ऐसौ आप करौ ॥१३॥

त्वदीयमधुसूक्तिभिर्व्रजजनेशसंगाशया ।
मनोजशरपीडिताः, कथमपि स्थिता मेऽसवः ॥

अतः परमये यदि, प्रियतमांगसंगो भवेत् ।
तदैव मम जीवितं, विरहितादशाहृत्करम् ।।१४।।

हे व्रजजनन के स्वामी ! आपके मधुर रस सम्बन्धी वाक्यों से आपके समागम की जो आशा भई है । वाही सूँ काम कौ वाण सों पीड़ित भी हमारे प्राण किसी तरह ठहर रहे हैं ।।१४।।

किं ब्रवाणि सखि प्रेष्ठ–विरहानलदाहिता ।
यज्जीवामि तदेवात्र निरपत्रपतास्पदम् ।।१५।।

हे प्रियतम ! अब याके पश्चात् विरहिता दशा कूँ निवृत्त करवे वारौ जो आपकौ समागम है, सो यदि होयगो तभी होयगो, अन्यथा नाहीं । हे सखी ! प्रियतम की विरहाग्नि से जलाई गई मैं कहा करूँ जो मैं जी रही हूँ । यह ही मेरी निर्लज्जता है ।।१५।।

सख्ये तल्लिखनीयं, त्वयातियत्नेन राधिका नाथः ।
कृपयिष्यत्यथवा मन्मनोरथैर्नैवजन्मनिर्वाहः ।।१६।।

हे सखी ! तुम या बात कौ प्रयत्न करकें लिखियों कि राधिकाजी के पति हैं, कहा हमारे ऊपर कृपा करेंगे कि मनोरथ करते-करते हमारौ जीवन बीत जायगौ ।।१६।।

व्रजेश त्वद्वियोगाग्निदाहोह्यप्रिय एव मे ।
त्वत्संगमवियोगे यद्बाधने नान्यथा क्वचित् ।।१७।।

हे व्रजेश ! आपकी वियोगाग्नि कौ जो दाह है, सो अत्यन्त अप्रिय है । आपके संगम के वियोग में ही बाधा करै है, अन्यथा कभी भी नाहीं करै है ।।१७।।

बलीयसी जीवनाशा, गोपीश विरहेऽस्ति हि ।
साम्प्रतं मे त्वमस्येका. यदार्तशरणा सखि ।।१८।।

कैसी बलवान् जीवन की आशा है कि गोपीश के विरह में भी जीव रहे हैं । हे सखी ! या समय में हमारी तुम ही एक रक्षक हौ ।।१८।।

तद्भावो नाथ सर्वेषां मुक्त्यादिफलकः स्मृतः ।
विरहाधिफलो जातः, स एव व्रजनाथ मे ।।१९।।

हे नाथ ! प्रापकौ जो भाव है, सो सम्पूर्ण प्राणीन को मुक्ति आदि फलन कूँ दैवे वारौ है । सो ही भाव हमकूँ केवल विरह के द्वारा मानसी क्लेश दैवे वारौ भयौ है ।१९।

त्वत्प्रिया पादरेणूनां, संचयो हृदये न चेत् ।
भवद्वियोगदावाग्निस्तदा किं ज्वालयेन्न माम् ।।२०।।

हे नाथ ! आपकी प्रिया के पादरेणु कौ संचय यदि हमनें हृदय में नाहीं कियौ है; तब आपके वियोगरूपी दावाग्नि कहा नाहीं जलावेगी; अर्थात् अवश्य जलावेगी ।।२०।।

त्वद्वियोगेऽपि मे प्राणास्तिष्ठेयुरितिनोचितम् ।
परं तत्सम्भवं दुःखं, तैर्विना नैव सन्ति ते ।।२१।।

हे नाथ ! आपके वियोग में भी हमारे प्राण ठहर रहे हैं, सो उचित नाहीं है; परन्तु उन प्राणन के विना तो वियोग सम्बन्धी दुःख कौ अनुभव भी तो नाहीं होयगो ।।२१।।

संतोषो जायते प्राणप्रियत्वल्लेखदर्शनात् ।
सर्वेषां मे तथा जाते, महाकष्टमिति किं वद ।।२२।।

हे प्राणप्रिय ! आपके लेख कौ दर्शन करवे सूँ सबकूँ सन्तोष होय है; ऐसे ही लेख दर्शन सूँ हमकूँ भी सन्तोष होय गयौ नाहीं महान् कष्ट है कहा कहें ।।२२।।

मदीयहृद्गतं ज्ञानरत्नं चिंतां बुद्धौ सखे ।
पातयित्वा स्वहस्तेन क्व गतः कंजलोचना ।।२३।।

हे सखो ! हमारे हृदय में रहवे बारौ ज्ञानरूपी रतन बाकौ हे कमल लोचन ! अपने हाथ सों चिन्ता के समुद्र में डारकें आप कहाँ चले गये ।।२३।।

त्वद्वियोगाग्निविज्वाला-विदग्धा अपि मेऽसवः ।
तिष्ठेयुरितिनोचित्रं यतोऽह निरपत्रपः ।।२४।।

हे नाथ ! आपकी वियोगाग्नि की ज्वाला सूँ जले भये भी हमारे प्राण ठहर रहै हैं । यामें कोई आश्चर्य नाहीं हैं । कारण मैं निर्लज्ज हूँ ।।२४।।

प्राणेशविरहक्लेशः प्राणस्तिष्ठति मे कथम् ।
वियोगाग्निविदग्धानामंतकोऽपि न संस्पृशेद् ।।२५।।

।। श्री गुसांईजी विरचित चतुर्थ विज्ञप्ति समाप्तम् ।।

प्राणेश के वियोग सूँ क्लिष्ट भी हमारे प्राण कैसे ठहर रहे हैं; कारण कि वियोगाग्नि सो जो जले भये हैं, उनकूँ तो यम अथवा मृत्यु भी स्पर्श नाहीं करै है ।।२५।।

।। पंचम विज्ञप्ति प्रारम्भः ।।

असमशरज्वरजर्जरदेहा, विरहाग्निजालसंतप्ता ।
त्वत्प्रणय सर्पदंष्टा, कं वा शरणं व्रजामीश ।।१।।

हे ईश ! काम के बाणन की ज्वाला सूँ जरजर देह वारी तथा विरहाग्नि की ज्वाला सूँ सन्तप्त और आपके प्रेम रूपी सर्प ने डस लियो हैं; ऐसी जो मैं हूँ, कोन शरण आऊँ ।।१।।

व्रजनाथतवाधरामृतंमेसकृदास्वादितामिन्दिरादुरापम् ।
अभवन्मरणायकिलकुर्या–दसकृत्पीतमिदं व्रजांगनाभिः ।।२।।

हे व्रजनाथ ! लक्ष्मीजी को भी दुराप (दुःख सै प्राप्त) करवे योग्य जो आपकौ अधरामृत, सो बाको हमने एक बार ही पान कियो, सो हमकूँ मृत्यु प्रदान करवे वारौ होंतो भयौ, सो वा अधरामृत कूँ व्रजांगनाओं ने निरन्तर पान कियौ, सो उनको कहा नहीं होतो होयगौ ।।२।।

शुभाशुभविनाशय, त्वदधरामृतास्वादनोद्‌गतप्रचुरमन्मथ-प्रथितबाणपूगव्यथाम् ।
कदंबनवमंजरी-कुसुममंजुकुंजोदरे, निजांगपरिरंभणा-मृतरसादि दानेन मे ।।३।।

हे सुन्दर हृदय वारे ! आपके अधरामृत के पान सूँ उत्पन्न भयौ प्रचुर काम वा काम सूँ चलायौ भयौ जो बाण समूह बाकी व्यथा कूँ कदम्ब की नूतन मजरी तथा पुष्प वाकौ मनोहर जो कुंज, बाके मध्य में अपने अंग कौ परिरम्भन आदि अमृत रस के दान सूँ विनाश (निवृत्त) करौ ।।३।।

कथमपिपुनरप्युदारलीला, प्रिय परिशीलय खेलनं पुरेव ।
अमलकमलगर्भगंधवाहः, प्रसरति मारुत एष मारबंधुः ।।४।।

हे उदारलीला वारे प्रिय ! निर्मल कमल के भीतर की गन्ध कूँ प्राप्त करायवे वारौ काम कौ बन्धु यह वायु चल रह्यौ है । यासो किसी तरह से पुनः पहले की तरह से हमारे सम्बन्धी लीला करौ ।।४।।

परिरम्भणचुम्बनादिभावा, भवता श्रेष्ठकृता विमोहनं च ।
स्मरसुन्दर मोहनं परमव्यवशिष्टं न च ते मनोज्ञभावाः ।।५।।

हे प्रियतम ! हे काम सूँ सुन्दर ! आपकौ कियौ भयौ परिरम्भन-चुम्बन आदि तथा विमोह वामें सूँ केवल एक मोह ही अवशिष्ट रह्यौ है (बाकी रह्यौ है) अब आपके सम्बन्ध सूँ कामरस सम्बन्धी जो भाव हतौ वो सब लोप होय गयौ है ।।५।।

मदमंथरवारणेन्द्रलीला, यमुनाकूलनिकुंजदेशगा ।
व्रजजीवन या त्वया कृता, सा मरणायैव किमीश मेऽधुना ।।६।।

हे व्रजजीवन ! मदओं मन्थर गति वारौ जो श्रेष्ठ गजराज वो जैसे अपनी हथनीन के साथ लीला करै है; तैसी लीला जो श्री यमुनाजी के पुलिन में निकुंज देश में जो आपने हमारे साथ करी सो हे स्वामिन् ! कहा वह लीला या समय में हमारे लिए मृत्यु के लिए ही भई ।।६।।

किमर्थं पायिता मह्यं, निजाधरसुधासवः ।
श्रावितः श्रवणानन्दो, वेणोश्च कलनिस्वनः ।।७।।

हे नाथ ! आपके अधर सुधा रूपी मदिरा हमकूँ काहे के ताईं पान करायें और श्रवण कौ आनन्द देवे वारो वंशी कौ मधुर स्वर काहे कूँ सुनाये जो ऐसौ ही करनौ हतौ तो ।।७।।

दूरी कृता रुचिर्मे, निजवदनादन्यवस्तुतो भवता ।
तदपि न ददासि गोपीपरिवृढ़ ते मोहनं कठिनम् ।।८।।

हे गोपीजन के स्वामी ! अपने मुख कमल के अतिरिक्त वस्तु में सों हमारी रुचि दूर कर दीनी; तो भी अपने अधरामृत को दान आप नाही करौ हो; ये आपकौ कठिन मोह है ।।८।।

वितर वीर निजाधरसीधु मे, विरहकुंकुमितस्तनमण्डले ।
हरवियोगरुजं मम वक्षसि स्मरनिवासगृहे विलसप्रभो ।।९।।

हे वीर ! अपने अधरामृत कौ दातृत्व गुण सों ही आप वितरण (वारौ) हमकूँ करौ और वियोग सम्बन्धी व्याधि कूँ हरण करौ और हे प्रभो ! विरह सो पीरे जो हमारे स्तनमण्डल जामें होय रहे हैं; ऐसो जो काम कौ निवास स्थल जो हमारौ वक्षस्थल है, वामें विलास करौ ।।९।।

विषमो वियोगरोगस्तदज्ञजनता समागमश्चायम् ।
यदिह भवंतं भिषजं, विना मरिष्याम्यहं सत्यम् ।।१०।।

हे नाथ ! ये वियोग रूपी रोग बड़ौ विषम है और जो या व्याधि कूँ नाहीं जानें हैं, उन्हीं जनन कौ यहाँ समागम होय रह्यौ है । यासे हे नाथ ! आप यदि वैद्य बनकें नाहीं आओगे तो हम निश्चय ही मर जायेगी ।।१०।।

व्रजनाथ वदस्व किं नु कुर्यां क्वनुयामि क्व मनः स्थिरं मम स्यात् ।
वदनाम्बुजरुहं विना तवेमाः, ककुभः शून्यतमास्तमालनील ।।११।।

हे व्रजनाथ ! हे तमाल की वृक्ष की तरह से नील वर्ण वारे ! कहो—अब हम कहा करें और कहाँ जाँय; कहाँ हमारौ मन स्थिर होयगौ । आपके मुखारविन्द के विना ये सब दिशाएँ हमकूँ शून्य प्रतीत होय रही हैं ।।११।।

प्रेष्ठ त्वद्वदनांबुजं हृदि समा—गच्छेत्कथंचिन्मम ।
प्राणान्स्थापयतिस्वभावशिशिरस्निग्धालकालिश्रितम् ।।
नो चेत्त्वद्विरहेण दावदहन-ज्वालायितेन द्रुतम् ।
जीर्णाः पंचशिलीमुखान्तररुजागच्छेयुरेवातुराः ।।१२।।

हे प्रियतम ! स्वभाव सों ही शीतल स्निग्ध अलकावली सों युक्त आपकौ मुखारविन्द काहू रह सों हमारे हृदय में प्राप्त भयौ । याही सों हमारे प्राण रह रहे हैं; नाहीं तो आपके रह सों उत्पन्न जो दावाग्नि बाकी ज्वाला सूँ शीघ्र जरजर होकर और कामदेव के णन सों घायल होकर हमारे प्राण चले ही गये होते ।।१२।।

तांस्त्वन्मधुरालापांस्तगतिमोक्षांच तांश्च परिरंभान् ।
हसितान्यनुस्मरन्ती, जीवामि नहि म्रिये चाहम् ।।१३।।

हे नाथ ! पूर्व अनुभूत वो आपके मधुर भाषण तथा वो आपकी मधुर मन्दभरी चाल तथा वह स्नेह भरी निरीक्षण तथा आपसों किये भयौ परिरम्भन तथा मधुर हास्य इन सबन कौ ही स्मरण करकें हम जो रहो हैं, मरें नाहीं हैं ।।१३।।

भवदीयं यत्किञ्चित्, स्मरणपथारूढ़मंगमेगानि ।
अन्तश्चूर्णी कुरुते, हन्ति बिबेकत्रपाधैर्यम् ।।१४।।

हे अंग ! आप सम्बन्धी जो कछु भी क्रिया बिहारादि पूर्वानुभूत स्मरण में आयवे सूँ हमारे अंगन कूँ और अन्तःकरण कूँ चूर करै है, और बिबेक धैर्य लज्जा कूँ नाश करै है ।।१४।।

बियोगदुःखजाश्रूणां, निरोधो दुष्करः परः ।
प्राकट्ये ह्यज्ञजनता-लज्जेति करवाणि किम् ।।१५।।

हे नाथ ! वियोग सम्बन्धी दुःख सों उत्पन्न भयौ जो अश्रु वाकौ रोकनौं अत्यन्त दुष्कर है और प्रगट होयवे सूँ वा रहस्य कूँ नाहीं जानबे वारी जो जनता है, वासों लज्जा (होय) आवै है, सो हम कहा करें ।।१५।।

त्वद्वदनमुष्टहृदया, विहारमंदस्मितादि हृत्प्राणा ।
मग्ना बिरहसमुद्रे, जीवामि कथं बिना त्वाहम् ।।१६।।

आपके मुख सों चुरायौ गयौ हृदय जाकौ, और बिहार तथा मन्दमुस्कान सों हरण होय गयौ है चित्त जाकौ तथा बिरह समुद्र में निमग्न ऐसी मैं हूँ सो हे नाथ ! आपके विना कैसे जीवन धारण करूँ ।।१६।।

प्राणप्रिय त्वदनु-राग-समुल्लसद्भ्रू, मंदस्मितेक्षणविलक्षण-मोहनास्यम् ।
द्रक्ष्याम्यहं यदि न हन्त कथं, भविष्याम्यंग त्वदंगपरिरम्भणमुष्टचित्ता ।।

हे प्राणप्रिय ! हे अंग ! अनुराग सों शोभायमान जो आपकी भौंह तथा मन्दमुस्कान युक्त आपकी निरीक्षण तथा मन मोहिवे वारौ और विलक्षण आपकौ मुख कमल आपके अंग कौ आलिंगन सों चुरायौ गयौ चित्त जाकौ ऐसी जो मैं नाहीं देखूँगी तो बड़ो खेद की बात है, कैसे रहूँगी ।।१७।।

अंग त्वदंगसंगेन, विना विरहपीडिता ।
जन्म निर्वाहयिष्यामि, कथमेतद् व्रजाधिप ॥१८॥

हे अंग ! हे व्रजाधिप ! आपके अंग संग के विना विरह सों पीड़ित होय करके अपने जन्म कौ कैसे निर्वाह करूँगी ॥१८॥

नहीदमुचित नाथ, त्वदीया त्वयि सत्यपि ।
भवत्यनिशमिद्रिक्ता, त्वद्वियोगार्तिपीड़िता ॥१९॥

हे नाथ ! आपके रहते सहते आपकी वियोगार्ति सूँ पीड़ित हो करकें आपके जन अहर्निश दुःखी रहें यह उचित नाहीं है ॥१९॥

सिदकृप वदनसुधानिधि- मतिदीना येदुरंत दुःखेन ।
दर्शय मे निज विभ्रम-मोहितगोपांगनानिचयम् ॥२०॥

हे नाथ ! जाकौ अन्त नाहीं होय सके, ऐसे वियोग दुःख सूँ अत्यन्त दीन जो मैं हूँ, वाकौ एक बार भी अपने मुखचन्द्र कौ दर्शन करवाओ । मुखचन्द्र कैसो हैं, कि जाके विलास सूँ सम्पूर्ण व्रजांगनाएँ मोहित होय रही हैं ॥२०॥

वृन्दावने मिलनमाशु भविष्यतीते, चित्तेऽवलंबन मिद मम सर्वदासीत् ।
तत्रापि मे सपदिनाऽभवदीश यत्तत्, किं नो मनीषितमिद नु तव व्रजेश ॥२१॥

हे शत्रु को दमन करने वारे ! हमारे मन में सर्वदा यह अवलम्बन हतो, कि वृन्दावन में आपकौ शीघ्र मिलाप होय जायगौ । हे स्वामिन् ! वहाँ भी या समय में वह मिलाप नाहीं भयौ, सो हे व्रजेश ! यह आपकौ कौन सौ विचार है ॥२१॥

भवद्विलंबितमहाप्रहारदलिताशयाम् ।
प्रतिक्षणमहामोह-मग्नां जीवयिता नु कः ॥२२॥

हे नाथ ! आपके विलम्ब रूपी महा प्रहार सूँ विदीर्ण हृदय वारी तथा प्रतिक्षण महामोह में मग्न ऐसो जो मैं, ताको कौन जिवाइवे वारौ है ॥२२॥

अतीते परं प्राणप्रिय त्वत्संगमावधौ ।
जाने न शतधापन्नो, दलत्याशुमदाशयः ॥२३॥

हे प्राणप्रिय ! आपकी समागम की अवधि बीत जाने पर हमारौ हृदय सौ टुकड़ा होयकें शीघ्र विदीर्ण होय जायगौ, ये मैं नाहीं जानूँ हूँ ॥२३॥

भवानजभवादिभि-र्दुरधिगम्य वार्तः क्व वा ।
क्व मूढ़ हृदया विभो, पशुसमाह माभीरिका ॥
तथापि तव विभ्रम-स्मित विमोहितं मे मनः ।
त्वयि प्रियविश्रृंखलं, भवति किं करोम्यातुरम् ॥२४॥

हे नाथ ! आपकी वार्ता भी ब्रह्मा शिवादिकन सों भी दुरधिगम्य है, अर्थात् आपकी वार्ता करने के भी वो अधिकारी नाहीं हैं । हे विभो ! (सर्व समर्थ) ऐसे तो आप कहाँ और मूढ़ हृदय वारी तथा पशू के समान अहीरिनी हम कहाँ; तथापि हे प्रिय ! आपके विलास तथा मन्दमुस्कान सूँ मोहित हमारौ मन आतुर होय करकें आपमें विश्रृङ्खल होय हैं; अर्थात् स्वच्छन्द होयके आपको चाहे है सो मैं कहा करूँ ॥२४॥

प्रेष्ठ त्वयि प्रणयिता, ममास्तीत्यपिनो मतिः ।
त्वदंगसंगविरहेऽप्यंग जीवामि यद् वृथा ॥२५॥

हे प्रियतम ! हे अंग ! आपमें स्नेह युक्त हमारी बुद्धि है, ये भी नाहीं है, कारण कि आपके अंग संग के विरह में जो हम वृथा ही जी रही हैं ॥२५॥

॥ श्री गुंसाईजी विरचित पञ्चम् विज्ञप्ति समाप्तम् ॥

॥ षष्ठम् विज्ञप्ति प्रारम्भः ॥

क्षणमपि न वियुक्ता, जातु तस्माद्भविष्या-
म्यहमिति हृदयं मे, निश्चयः सर्वदाऽसीत् ।
व्यरचि यदि विधात्रा, केवलो विप्रयोगः ,
कथय किमथकार्यं, दुःखिता जीवितेन ॥१॥

अरि सखी ! हमारे मन में सर्वदा ये ही निश्चय हतौ,कि प्राणनाथ सों क्षणमात्र भी कभी भी अलग नाहीं रहूंगी; परन्तु ब्रह्मा ने केवल हमारे लिए यदि विप्रयोग हो रच दियौ तो कहो सखी ! या दुःख रूपी जीवन सों कहा करनों है ॥१॥

सखि बहुधापि निरुक्तश्चरणस्पृष्ठोऽपि जीविताधीशः ।
नो मनुते निजसंगममहह कथं तत्र किं कुर्मः ॥२॥

हे सखी ! तुमने प्राणनाथ सों बहुत कही, उनकौ चरण स्पर्श भी कीनौं परन्तु जीविताधीश ! अपनों समागम करायवो नाहीं चाहे हैं, बड़ी खेद की बात है, तहां अब कहा करें ॥२॥

लगि त्वया महानेव, प्रयत्नो मत्कृते कृतः ।
तथापि यत्तदप्राप्ति- स्तत्र ते किन्नु दूषणम् ॥३॥

हे सखी ! तैनें हमारे लिए महान् प्रयत्न किए; तो भी यदि उनकी प्राप्ति नाहीं भई तौ सखी ! अब तेरौ कहा दोष है ?॥३॥

सखि सा ऋतुः साच दिवसः सा, घटिकाहन्तसक्षणकोऽपि ।
भविता यस्मिन् व्रजपति-मादरपूर्वं समाश्लिष्यै ॥४॥

हे सखी ! बढ़ी खेद की बात है; वह कौनसी ऋतु है, कौनसौ दिन है, कौनसी घड़ी है, कौनसौ क्षण है, कि जामें व्रजपति को आदरपूर्वक आलिंगन करूंगी ॥४॥

दधौ कमपराधं वा, हृदये हृदयप्रियः ।
तन्नजाने यन्निजांग-संगंगीकरोति नः ॥५॥

हे सखी ! हृदय के प्यारे ने अपने हृदय मैं कौनसौ अपराध हमारो धारण कर लियो है, जासों अपनों अंग संग करायवौ अंगीकार नाहीं करें हैं। वाको मैं नाहीं जानूं हूँ ।५।

सखि वद यादवपुंगवमति-चिरविरहादहानि गणयेती ।
प्रणय-भुजंगमदष्टा, त्वधरसुधया परं जीवेत् ॥६॥

हे सखी ! यादवन में श्रेष्ठ श्यामसुन्दर सौं कहो, कि एक सखी बहुत काल कें विरह होयवें सूं अपने संयोग के दिनन को गिन रही है। तथा प्रेमरूपी सर्प ने वाकूं डस लियौ है। अब तो केवल आपके अधर सुधारस सौं जीवेंगी ॥६॥

नान्यद्वक्तुमहं शक्ता, किमपि प्राण वल्लभम् ।
जीवासु परमंभोज-नेत्रापांगाश्चिरं तव ॥७॥

प्राणवल्लभ सों हम कछु भी कहवे कूं समर्थ नाहीं हैं। अब केवल तुम्हारे कमल नेत्रन के कटाक्ष सों ही जीवेंगी ॥७॥

कदाचिद् गोपीशः, स्मरति यदि मामंबुजदृशां ।
सभायामत्यार्ति-प्रणयभरसंभावितहृदयम् ॥
तदा मन्ये धन्ये, प्रियमुखसरोजं स्वनयनैः ।
कदाचित्पश्यामि, प्रियविरहतप्तैरिति सखी ॥८॥

हे सखी ! श्री गोपीजन के स्वामी कभी कमल नेत्रवारी जो श्री गोपीजन, उनकी सभा में अति आरती तथा प्रेम के विवशता सों द्रवीभूत हृदय वारी जो मैं सो कहा मेरो स्मरण करे हैं ? हे सखी ! यदि करें हैं, तो हम अपने को धन्य मानें हैं। प्राणनाथ के मुखकमल को कभी हों देखूँगी (दर्शन करूँगी) ॥८॥

सत्स्वपि सरस्सु विमले-ष्वलिहंसालीविनोदमधुरेषु ।
अम्बुदविमुक्तपाथसि चातक ते दुराग्रह कोऽयम् ॥९॥

हे चातक ! हंस भ्रमरादिकन कौ सुन्दर मधुर ध्वनि सों जा विनोद होय रह्यौ है; ऐसे विमल सरोवर के रहते भी वृष्टि करकें निवृत्त होय गैयो जो मेघ वामें तुम्हारौ यह दुराग्रह क्यों होय रह्यो है, कि स्वाति नक्षत्र कौ ही जल पीवेंगे ॥९॥

तं न पश्यामि यं श्याम-सुन्दर दर्शयेत् सखि ।
यद्वाहृत्तातापहृत्कृष्ण-संदेशं कथयेदपि ॥१०॥

हे सखी ! वाकूँ मैं नहीं देखूँ हूँ; जो श्यामसुन्दर कौ दर्शन करावें अथवा हृदय के ताप को हरण करवे वारौ जो श्रीकृष्ण कौ सन्देशो भी कोई आयकर कहै, वाकूं भी नाहीं देखूं हूँ ॥१०॥

भवदुक्तिसुधाधारा-शिशिरीकृतमप्यहम् ।
क्षणमप्याशयं शक्ता, न स्थापयितुमातुरम् ॥११॥

हे सखी ! तिहारे कथन रूपी सुधा की धारा सूँ शीतल करी भई भी मैं प्राणनाथ के लिए अपने आतुर हृदय कौ स्थापन करवें कूँ क्षणमात्र भी समर्थ नाहीं हूँ ॥११॥

कर्त्तव्यमेव तव तावदग्रे कथंचित्-प्राणेशसंग-विरहाकुल-मानसायाः ।
प्रेष्टावलोकनयवे सकृदप्यनंग, कोटिस्मयापिह मुखाम्बुजमुष्टदृष्टेः ।१२।

हे सखी ! प्राणेश के समागम कौ जो विरह वासों व्याकुल हृदय वारी जो मैं, तथा काम के गर्व कौ दूर करवे वारौ जिनको मुख कमल, ऐसे मुखकमल सों चुराई गई है दृष्टि जिनकी ऐसी जो मैं ताकूँ काहु तरह सूँ प्रियतम को अवलोकन होय जाय ऐसी कृति करौ, यही तिहारौ कर्त्तव्य है ।।१२।।

ग्रीष्मेऽप्युदग्रतापे, नवनीरददर्शनाशयारहिते ।
आर्तश्चातकविहगो, नाशां त्यजति प्रियेजीवनम् ।।१३।

अति उग्र जामें ताप होय रह्यौ है, जामें नूतन जलधर (मेघ) के दर्शन की भी आशा नाहीं हैं; ऐसे ग्रीष्मकाल में भी जो विचारो चातक पक्षी सो अपने प्रिय में जीवन की आशा लगाय रह्यौ है । आशा त्याग नाहीं करै है ।।१३।।

दूरे जलास्वादकथा, यत्र नाप्यभ्रदर्शनम् ।
तथापि चातको जीवत्यहो कठिनता हृदः ।।१४।।

जहाँ कि मेघ के दर्शन भी नाहीं हैं, और जल के आस्वादन की कथा दूर रहीं तथापि चातक जीवे है । ओहो ! कितनों कठिन हृदय है ।।१४।।

इदमेव बहुत्वेन, जानामि ननु चातकः ।
मुहुः स्वप्रेष्ठनामापि, कण्ठे यदनुवर्त्तते ।।१५।।

मैं तो इतने को ही बहुत करके जानूँ हूँ, चातक नाहीं जानें है कि क्षण-क्षण में अपने प्रिय कौ नाम वाके कण्ठ में विद्यमान रहे है । क्षण-क्षण में अपने प्रिय के नाम की रटन कियौ ही करै है ।।१५।।

प्रिया वामानिता याति, यद्यपि प्रमदा मदात् ।
तथापि तामनन्यन्यास, नेष्टे नाथ उपेक्षितुम्।।१६।।

हे नाथ ! यद्यपि प्रिय सों अपमानित होय करकें स्त्री अपने यौवन के मद सूँ चली भी जाय तथापि अनन्य मति वारी जो मैं हूँ, सो वाकी उपेक्षा करनों उचित नाहीं है ।।१६।।

यथा कथंचित् तामेव, सनाथो कुरुते वशे ।
तत्प्राणा सापि तेनैव, पूर्णा भवति नान्यतः ।।१७।।

जैसे तैसें अपने वश में करकें वाकूँ सनाथ करनों चहिए । कारण वाके प्राणन की पूर्ति अपने प्रियतम सों ही होयगी ।।१७।।

चातकी यदिमहानिलवेगा-प्राप्तवत्यचलतो मरूदेशम् ।
कस्तदा जलमुचो ननु दोषः,प्राणिनीयमिदमेव चित्रम् ।।१८।।

यदि विचारी चातकी महा पवन के वेग की झकोरन सों मरुदेश में प्राप्त होय गई, तो मेघ कौ कहा दोष है । प्राणिन कौ जैसौ प्रारब्ध होय है; वैसौ ही होय है; यही आश्चर्य है ।।१८।।

ज्ञानिनो विगतरागिणो मनो, रोधका वदत बोधका नृणाम् ।
प्राप्तमुक्तिहरिभक्त्योऽस्ति किम्, गोत्रनाथचरणंविना रणम् ।।१९।।

हे ज्ञानियों ! हे वैरागियों ! हे मन को वश में करवे वारों ! हे सब मनुष्यन कूँ उपदेश करवे वारों ! हे प्राप्त मुक्ति वारों ! हे हरि भक्ति वारों । तुम सब लोग मिल करकें कहो कि श्रीगोवर्धननाथजी के चरणारविन्द के बिना कहूँ शरण नाहीं है ।।१९।।

गोवर्धना-चलसिरोमणिरेष यावन्, मत्स्वामिनी-हृदय-कुंकुमपङ्किलांगः ।
मन्मूर्द्धिनमद्-हृदय पंकजमण्डलेषु, संशोभते, न भयमस्ति कुतोऽपि तावत् ।।२०।।

हमारी स्वामिनी श्रीगोपीजन के हृदय केशर सूँ युक्त (लिप्त) अंग वारे श्रीगिरिराज जी के शिरोमणि श्यामसुन्दर जब ताईं हमारे मस्तक पर बिराजमान हैं, तथा हमारे हृदय कमल के मण्डल में शोभित होय रहे हैं; तब ताईं हमकों कहा सों भय है । अर्थात् कहीं से भय नाहीं है ।।२०।।

कृतज्ञता कृपालुत्वं-विश्रामस्य प्रियस्य मे ।
प्राप्तिस्तत्कृपयैवालि, भाविनीति मतिर्मम ।।२१।।

हे आलि ! कृतज्ञता तथा कृपालुता को स्थानभूत हमारे प्रियतम की प्राप्ति तुम्हारी कृपा सों ही होयगी; ऐसी हमारी मति है ।।२१।।

अनाज्ञप्तैवाहं प्रियतममनोवाक्कृतिभिर-प्यभाग्यैरद्याहं प्रचलितवती यत् प्रियपदात् ।
न तच्चित्रं दुःखं,भवति भवतात् किं तु कथम-प्युदारं तद्वक्त्रं,नयनपथ आस्तामचिरतः ।२२।

हे सखी ! प्रियतम ने मन सों, चाहें वाणी सों, चाहें कृति सों, कोई प्रकार सों अपने पास सों आइवे की आज्ञा नाहीं दिये, मैं अपने मन्दभाग्य सों ही प्रियतम के चरणारविन्द के समीप सों चली आई; यासूँ हमकूँ जो दुःख होय है, यामें आश्चर्य नाहीं है किन्तु अब तो काहूँ प्रकार सों उदार जो उनकौ मुखकमल सो शीघ्र ही हमारे नेत्रन के विषय हों अर्थात् हमारे नेत्र उनको दर्शन करें ।।२२।।

प्रतिगच्छत्विह लोकः, परलोकाशापि सर्वथैवाद्य ।
मा त्यजतु मामनन्यां, जातु परमं गोकुलाधीःश ।।२३।।

हे सखी ! अब तो यह लोक हमारो भले ही चल्यौ जाय और परलोक की आशा हू भले ही नष्ट हो जाय; परन्तु अनन्य गति वारी जो मैं ताको गोकुलाधीश कभी त्याज्य नाहीं करेंगे ।।२३।।

यादृशो तादृशी नाथ, त्वत्पादांबुजकिंकरी ।
त्वद्वक्त्रं कथमप्याशु, कुरु दृग्गोचरं मम ।।२४।।

हे नाथ ! मैं जैसे तैसे आपके ही चरणारविन्द की किंकरी हूँ; यासूँ अपनों मुखारविन्द काहु भी प्रकार सूँ शीघ्र हमकूँ दृष्टिगोचर करो ।।२४।।

यदवधि गोपीनाथो दृग्विषयोऽभून्ममापि मंदाया ।
तदवधि शिवमेवासी-दग्रे किं वा विधास्यतिप्रेष्टः ।।२५।।

हे सखी ! मन्दभाग्य वारी जो मैं ताको जब ताईं श्रीगोपीनाथ दृष्टिगोचर रहे तब ताईं मोकूँ शुभ रह्यौ, अब आगे न जाने प्रियतम कहा करेंगे ।।२५।।

।। श्री गुंसाईजी विरचित षष्ठम् विज्ञप्ति समाप्तम् ।।

।। सप्तम् विज्ञप्ति प्रारम्भः ।।

प्रतिक्षण नवं मुदा, मुहुरहर्निशं यत्पिव—
स्यसिप्रियमुखाम्बुजा–सवमतोऽसिधन्या सखि ।

कदाचिदतिसुन्दर–स्मितमुखः सुखेनास्थितो
भवत्सदसि मत्प्रियः, स्मरति मां कृपावारिधिः ।।१।।

हे सखी ! प्रतिक्षण नूतन-नूतन पल्लव प्रतीत होयवे बारौ प्यारे के मुखारविन्द कौ मकरन्द ताकूँ तुम रातदिन हर्ष सों पान करौ हो ! यासों हे सखी ! तुम धन्य हो ! तुम्हारी सभा में सुख सों विराजमान हमारे प्रियतम अति सुन्दर मन्द मुस्क्यान करते भये कृपा के समुद्र हमारो स्मरण कभी करें हैं ।।१।।

प्रियवदनाम्बुजदर्शन—कातरचितां तथापि संविग्नाम् ।
तत्सखी नोजानेऽहं, किंनुविधास्यत्ययं प्रेष्ठः ।।२।।

हे सखी ! प्रियतम के मुखारविन्द के दर्शन की अभिलाषा सों कातर चित्तवारी तथा सविग्न होय रही हूँ । ऐसे हमारे प्रति वह प्रियतम कहाँ विधान करेंगे; वाकूँ मैं नाहीं जानूँ हूँ ।।२।।

वियुक्ते नाथे यद्विविपदनुपदं तत्समुचितं ।
वियोगस्तेनायं मम समुचितोऽन्यत्र तु परम् ।।

तथापि श्रीराधे–हृदयमणिरत्यन्त कृपया ।
स्ववक्त्रेन्दुं गोपी–पतिरचिरतो दर्शयतु मे ।।३।।

हे सखी ! नाथ सूँ वियोग होयवे में जो प्रतिक्षण विपद की प्राप्ति है, सो उचित है, तासूँ हमकूँ वियोग सम्बन्धी जो दुःख प्राप्त भयौ है, सो उचित ही है; अन्यथा अन्य को अपने नाथ के वियोग में अन्य दुःख प्राप्त होय है । हममें वियोग रूपी दुःख प्राप्त भयौ है, तथापि हृदय के मणिरूप श्री राधिकाजी की अत्यन्त कृपा सूँ श्री गोपीजन के पति अपने मुखारविन्द को दर्शन, शीघ्र हमको करावें ।।३।।

किं बहुना सखि पान्थोऽप्येतद्वार्ता सविघ्नकर्तैव ।
तत् किं करोमि मग्ना, दुःखाब्धौ तत्प्रियः शरणम् ।।४।।

हे सखी ! बहुत कहवे सूँ कहा है (बहुत कहा कहें) कोई भ्रान्त है मार्ग चलवे वारौ सो वाहूँ सो यदि यह वाणी कहें तो विघ्न ही करें हैं, यासूँ दुःख के समुद्र में निमग्न जो मैं हूँ, सो कहा करूँ । या समय में प्रियतम जो हैं, वे ही रक्षक हैं ॥४॥

प्रियनिकटेसखिकाचिद्यदिमांकृपयास्मरिष्यति प्रीता ।
तत्क्षण एव मनोरथनिचयान्यश्याम्यहं सत्यम् ॥५॥

हे सखी ! प्रियतम के समीप में यदि कोई सखी कृपा सों हमारो स्मरण करेगी, तो वाही क्षण में हमारे मनोरथ को जो समूह है, वाको मैं सत्य देखूँ हूँ । अर्थात् सत्य होय जायगो ॥५॥

परिजनहसनद्वेषै–दुःखितमप्येतदातुरं चेतः ।
न जहाति तत्स्वभावं, तत्साधु न वेति नो विद्मः ॥६॥

अपने कुटुम्ब के हास्य रूपी द्वेष सूँ ये दुःखी भी हमारो आतुर चित्त वा स्वभाव कूँ नाहीं छोड़े है । सो यह अच्छी है अथवा नाहीं याकूँ मैं नाहीं जानूँ हूँ ॥६॥

यावत्स्वकार्यं तावत्त्, कृतमेव सखि त्वया ।
मद् भाग्योन्नतिकाले सा, स्वयं मे कृपयिष्यति ॥७॥

हे सखी ! तुम्हारो जितनों कार्य हतो वाकूँ तुमने अच्छी भाँति सौं कीनों, अब हमारे भाग्य कूँ जब उन्नति को समय आवेगो, तब प्रियतम स्वयं कृपा करेंगे ॥७॥

न सुखमापरमा न च चातुरी, मयि मनोभवयुद्धविदग्धता ।
न मधुरोक्तितथो न रसश्च कोऽप्यपि कथं भविता प्रियसंगमः ॥८॥

हे सखी ! हमारे में कोई परम सुखमा भी नाहीं है, अर्थात् कोई श्रेष्ठ सुख की सामग्री भी नाहीं है, न हमारे में चातुर्यता है । कामरूपी संग्राम में लड़वे को निपुणता भी नाहीं है, और मधुर भाषण भी नाहीं है; न और ही कोई रस हमारे में है, कैसें प्रियतम को समागम होयगो ॥८॥

रतिपतिमंगलकलशौ, कुचकुम्भौ मीनकेतुरसपूर्णौ ।
कमलावरकरकमल—स्पर्शौ भवता वृथवेमौ ॥९॥

कामदेव के मंगल कलश रूप हमारे दोनों कुच रूपी कुम्भ कामदेव के रस सों पूर्ण, जिन कुचन कूँ लक्ष्मीजी के पति श्यामसुन्दर ने अपने श्रीहस्त सों स्पर्श कियो है; सो यह उनके सम्बन्ध के विना व्यर्थ होय रहे हैं ॥९॥

गता बुद्धिः शुद्धिर्जगति विरुणद्धि स्वपतिर
येलज्जागुर्वी, गुरुपतिसुतानां न गणिता ।

यदर्थं तत्संगं, सखि न भविता यद्यचिरतर——
तदा नाहं पश्या——म्यह हमरणादन्यदरणम् ॥१०॥

हे सखी ! जिनके लिए जगत् में हमारी बुद्धि भी चली गई, तथा शुद्धि भी चली गई, अपने पति को विरोध भी कीयो, तथा गुरुजन पति-पुत्रन की श्रेष्ठ लज्जा की गणना भी नाहीं कीनी । यासूँ हे सखी ! यदि शीघ्र ही उनको समागम नाहीं होयगो, तब बड़ी खेद की बात है, मृत्यु के सिवाय दूसरो शरण नाहीं दीखै है; अर्थात् मर जानों ही अच्छौ प्रतीत होय है ॥१०॥

वरं नेत्रे मुद्रा, न पुनरितरालोकनमपि,
वरं शून्यारण्यं, स्थितिरिह वरं नान्य मिलनम् ।

वरं मुकीभावो, न पुनपरा काचन कथा
वरं प्राणत्यागः, क्षणमपि न तत्संगविगमः ॥११॥

हे सखो ! नेत्र बन्द कर लेनों अच्छौ, परन्तु अन्य को देखनों अच्छो नाहीं; गूंगों होय जानों अच्छौ, परन्तु अन्य सों भाषण करनों अच्छौ नाहीं । प्राण छोड़ देनों अच्छौ, परन्तु क्षणमात्र उनको वियोग होनों अच्छौ नाहीं है ॥११॥

भगवत्पदपंकजरागजुषो, न हि युक्ततरं मरणेपितराम् ।
इतराश्रयणं गजराजगतो, नहि रासभमध्युररीकुरुते ॥१२॥

भगवान् के चरणाविन्द के मकरविन्द कौ जो सेवन करवे वारौ है, उनको मृत्यु

रूपी दु:ख के समय में भी अन्य को आश्रय करनो अच्छौ नाहीं । जैसे हाथी की असवारी करवे वारौ गर्दभ की सवारी स्वीकार नाहीं करै है ॥१२॥

अनन्यगोकुलस्वामिन्ननन्यीकृत गोकुल ।
मां कुरुष्व दयासिन्धो, त्वत्पादाम्बुजरेणुषु ॥१३॥

हे आनन्द ! श्री गोकुल के स्वामिन् आपने ही गोकुल को आप अनन्यता युक्त कियौ है ! यासूँ हे दया के समुद्र हमकूँ भी अपने चरण कमल को रेणु में ही स्थापन करौ ॥१३॥

स्वत: कृता कृपानाथ, किशोर मयि या त्वया ।
सा किमाशालतावृद्धि—फलिकैवोतसत्फला ॥१४॥

हे नाथ ! किशोर अवस्था में स्वयं आपने जो हमारे ऊपर कृपा करी सो वह हमारी आशारूपी लता बढ़करकें सुन्दर फल कूँ उत्पन्न करवे वारी होवेगी कहा ॥१४॥

भवतीति न जानामि, सर्वसामर्थ्यसंयुता ।
त्वदीयास्मि त्वदीयास्मि त्वदीयास्मि व्रजाधिप ॥१५॥

या बात कूँ मैं नाहीं जानू हूँ; कारण कि वो आपकी कृपा सर्वसामर्थ्य संयुक्त है । हे व्रज के अधिपति ! हम अपाकी हैं; हम आपकी हैं, हम आपकी हैं; हम आपकी हैं ॥१५॥

यादृशांस्तादृशस्त्वं तु, मा त्यजास्मान् दयानिधे ।
एतावदेव विज्ञाप्यं, सर्वथा सर्वदैव न: ॥१६॥

हे दया के निधि ! जैसी मैं हूँ, तैसी को आप त्याज्य मति करो, हमकूँ सर्वदा निश्चय करकें इतेक ही प्रार्थना करनी है ॥१६॥

स्वल्पेनैवापराधेन, महता वा व्रजेश्वर ।
अस्मानुपेक्षसे त्वं तु, स्वकीया किं ब्रुवे तदा ॥१७॥

है व्रजेश्वर ! थोड़े चाहें बहोत अपराध सूँ यदि हमारी उपेक्षा करोगे, तो आपके जन आपको कहा कहेंगे ॥१७॥

त्वदीयत्वं निश्चितं नस्तव भर्तृत्वमप्युत ।
कालकर्मस्वभानामीशितृत्वमपि प्रभो ॥१८॥

हे प्रभो ! निश्चय ही हम आपकी हैं, और आप हमारे पति हैं यह भी निश्चय है और काल कर्म स्वभाव के भी आप स्वामी हैं, यह हूँ निश्चय है ॥१८॥

अत: कालादिजं दु:खं, भवितुं, च न नोऽर्हति ।
अपराधेप्युपेक्षा तु, नोचिता सेवकेषु ते ॥१९॥

यासों काल, कर्म एवं स्वभाव सों उत्पन्न भयौ दु:ख, मेरे कूँ होनों उचित नाहीं; कारण अपराध होयवे पर हूँ, अपने सेवकन की, अपने दास की उपेक्षा करनी आपको उचित नाहीं है ॥१९॥

उपेक्षयैव कालादिक्षर्भयत्यन्यथा न हि ।
बहिर्मुख्यात्कालजातं, दु:खं चेत्सहजं हि तत् ॥२०॥

आपकी उपेक्षा करवे सूँ ही कालादिक भक्षण करें हैं, अन्यथा नाहीं और आपकी बहिर्मुखता होयवे सूँ ही काल सों उत्पन्न भयौ दु:ख सूँ तो सहज ही होय है ॥२०॥

तद्वैपरीत्यं कृपया, भाविन्यै वान्यथा न हि ।
दोषाश्रयत्वं सहजं, ज्ञात्वैव ह्युररीकृति: ॥२१॥

अब याकी विपरीतता अर्थात् कालादिक भक्षण न करें, और बहिर्मुखता न होय यह सब आपकी कृपा सूँ ही सम्भव है, अन्यथा नाहीं, हमारे में दोष को आश्रयत्व सहज ही है, या बात कूँ जानकें ही आप अंगीकार किये हो ॥२१॥

अतो दोषक्षयोपेक्षा, कृपालौ त्वयि नोचिता ।
उपेक्षां किंतु सहजप्रभुत्वेन करोषि वा ॥२२॥

यासूँ हमारे दोष की निवृत्ति के तांई हमारी उपेक्षा करनी कृपालु जो आपसों उचित नाहीं है, अथवा सहज प्रभुत्व आप में है, यासूँ उपेक्षा करौ हो ॥२२॥

दण्डं स्वकीयतां मत्वे त्येवं चेदिष्टमेव न: ।
अस्मासु स्वीयतां मत्वा, यत्र कुत्र यदा तदा ॥२३॥

हे प्रभो ! हमकूँ आपनों मानकें आप जहाँ कहूँ पर जब कबहू दण्ड देउगे, तो वो हमें अच्छौ ही है ॥२३॥

यद्यत्करिष्यत्यखिलं, तदस्तु प्रतिजन्मनि ।
इदमेव सदा प्रार्थ्यं, त्वदीयत्वं व्रजेश्वर ॥२४॥

हे व्रजेश्वर ! आप जो कछु करें, सो हमकूँ प्रतिजन्म होय,, परि सदा यहै ही प्रार्थना, कि हम आपके हों ॥२४॥

दुःखासहिष्णु स्वत्तोऽहम् तथापि प्रार्थये प्रभो ।
तथैव सम्पादय नो, नापराधो यथा भवेत् ॥२५॥

हे प्रभो ! आपके वियोग सौं प्राप्त भया जो दुःख सो असहिष्णु है, अर्थात् सहन नाहीं होय है । तथापि हम आपसौं ये हीं प्रार्थना करें हैं कि आप हमारे प्रति यही सम्पादन करो, कि जामें हमारे हाथ सूँ अपराध हीं नाहीं बनें ॥२५॥

॥ श्री गुंसाईजी विरचित सप्तम् विज्ञप्ति समाप्तम् ॥

॥ अष्टम् विज्ञप्ति प्रारम्भः ॥

अपराधेषि गणना, नैव कार्या व्रजाधिप ।
सहजैश्वर्यभावेन, स्वस्य क्षुद्रतया च नः ॥१॥

हे व्रज के अधिपति ! हमारे अपराध की गणना करनों आपको कर्तव्य नाहीं है; कारण कि आपमें सहज ईश्वर धर्म है, और हमारे में जीव धर्म है, सो सहज ही क्षुद्रता है ॥१॥

त्वदीयत्वं यन्नस्तदतिशयितं भाग्यमतुलं,
समीपस्थानामप्यहह न विलासे क्षणमिदम् ।
अभाग्यं वात्युच्चं, सपदि गणयामः किमधिकं—
वचोभिः सर्वस्वं, त्वमसि यदि गोविन्द मनुषे ॥२॥

हे गोविन्द ! हम जो आपकी हैं, सो अतुल हमारे भाग्य हैं, और आपके हीं समीप में रह करकें बड़े ही खेद की बात है कि आपको विलास पूर्वक जो निरीक्षण है वाको दर्शन नाहीं होयवे सूँ इससे अधिक वाणी सूँ अभाग्य की गणना या समय में हम कहा कहें, आप मानों तो हमारे आप ही सर्वस्व हों ॥२॥

सर्वे परिगृहीताःस्मो, गोकुलस्वामिना वयम् ।
न त्यक्षति दयासिन्धुरस्मानन्यायिनोऽपि हि ॥३॥

श्री गोकुलेश के स्वामी सूँ ही हम सब लोग अंगीकार किये गये हैं, तासों दया के सिन्धु, जो प्रभु सों हम अन्यायी भी हैं, तो भी हमको त्याज्य नाहीं करेंगे ॥३॥

स्वकृत्याभिभवत्येव, तथापि करवाण किम् ।
तथापि गतिरस्माकं, स एवेति न भीरपि ॥४॥

अपनी कृति सूँ ही ऐसौ होय है, तथापि हम कहा करें । तथापि हमारी गति रूप वो प्रभू ही हैं, यासूँ हमको भय नाहीं है ॥४॥

यथा वयं तदीयाः स्मस्तथा सोऽपि निसर्गतः ।
अस्मत्प्रभुरतश्चिन्ता, नैहिके पारलौकिके ॥५॥

जैसे हम उनके हैं, वैसे ही वो भी स्वभाव सूँ ही हमारे प्रभु हैं, यासूँ या लोक तथा परलोक में हमें कुछ चिन्ता नाहीं है ॥५॥

चिकीर्षितं कारयित्वा, शीघ्रमानेष्यति प्रभुः ।
अस्मानतोनचिन्ता वः, कार्या सर्वात्मना प्रियाः ॥६॥

हे प्रिये ! प्रभु कूँ जितनों कार्य करनों है, सो हमसे उतनों ही करायकें शीघ्र ही उनके पास हमको बुलाय लेइंगे, यासू हे प्रिय सखियों ! कोई बात की चिन्ता तुम मत करियो ॥६॥

एतेषामहमेवास्मि सर्वस्वमिति सुन्दरम् ।
जानास्यस्माकमज्ञानेऽप्यतः कर्तास्वतोऽखिलम् ॥७॥

इनको तो सर्वस्व और सुन्दर हम ही हैं। इस बात को सखी तुम जानती हो; यासूँ हमारे अज्ञान में भी स्वतः सम्पूर्ण के कर्त्ता वो ही हैं ।।७।।

अंगीकृतजनजनिताऽपराधकूटक्षमाविनोदस्य ।
अंगीकृतिश्चनित्या, वदन्तु कोऽन्योस्यसाम्यमियात् ।।८।।

अंगीकृत जन सम्बन्धी अपराध के समूहन को भी क्षमा करवो जिनको खेल है, और जिनकी अंगीकृति भी नित्य ही है, अर्थात् वो जिनकूँ अंगीकार करें हैं, तिनको छोड़ें नाहीं हैं; तब कहो सखी ! इनकी बराबरी कौन कर सके है ।।८।।

न स्वाध्यायबलं न यागजबलं नोवा तपस्याबलं,
नो वैराग्यबलं न योगजबलं, नाप्युक्तभक्तेर्बलम् ।
नैव ज्ञानबलं न चान्यदपि यत्—किंचिद्बलं मेऽस्ति किम् ।
त्वद्वश्योपि यदा तदा तव कृपा कृतेक्षणं मे बलम् ।।९।।

न तो वेदाध्ययन को ही बल है, न तो यज्ञ सों ही उत्पन्न भयौ बल है। न तपस्या को ही बल है, न वैराग्य को ही बल हैं न योग सों उत्पन्न भयौ बल है । शास्त्र में कही भई जो भक्ति वाको भी बल नाहीं है, न ज्ञान को ही बल है, न अन्य कोई दूसरो बल मोमें है, किन्तु आज चाहें कल जब कृपा कटाक्ष सों बुलाओगे वह ही हमको बल है ।।९।।

तुच्छी कृतास्त्वत्कृपातः, पूर्वं कालादयो मया ।
स्मृत्वा तद्वैरमधुना, बाधन्ते त्वत्कृपां विना ।।१०।।

हे नाथ ! पहले आपकी कृपा के बल से कालाद्रिकन को तुच्छ कर दिये थे, सो उस बार की याद करकें इस समय में आपकी कृपा की शून्यता जान करकें कालादिक हमकूँ बाधा करें हैं ।।१०।।

यस्य देयो लोभ एव, तस्यौदार्यस्म का कथा ।
सर्वस्वदानशीलत्वं चित्रं पात्र परं परम् ।।११।।

जिनको दैवे में लोभ होय है, उसकी उदारता की कौनसी कथा है; अर्थात् वो कहाँ से दे सके हैं ? परन्तु हे नाथ ! आप सर्वस्व दानशील हो ! अर्थात् अपने को भी दे देओ हो। ऐसे होकर भी यदि आप पात्र कौ विचार करो; दान करवे में तो महान् आश्चर्य है ।।११।।

ततः काचिदनंगाग्नि—तप्ता त्वं यदवीवदत् ।
मत्पुरस्तच्छृणुष्वेति, वद यादवपुंगवम् ।।१२।।

हे सखी ! काम रूपी अग्नि से सन्तप्त जो मैं होय रही हूँ, सो तुम जो मेरे से कह रही हो, सो पहले मेरी बात सुनकर तुम जाइकें यादवन में श्रेष्ठ श्यामसुन्दर सों कहो ।।१२।।

शिशिरत्वं शशिनस्त्वत्कृपावलोकनकृतं मन्ये ।
नो चेद्गतवति भवति प्रचण्डकिरणाः कथं सपदि ।।१३।।

चन्द्रमा में जो शीतलताई है, सो आपके कृपा पूर्वक अवलोकन करवे सूँ ही है, ऐसो मैं मानूँ हूँ, नाहीं तो वो कृपा अवलोकन के चले जाइवे सूँ या समय में वो चन्द्रमा की किरण क्यों तीक्ष्ण प्रचण्ड होय रही है, हमको जलाय रही है ।।१३।।

त्वदधरसुधा—पानेन श्रीमुखाम्बुजशोभया,
तुहिनकिरणस्तुच्छीभूतो, बभूव परं प्रिय ।
सपदि मम तद्वैरंवैर तर स्मृत्वा—शुशुक्षणि संनिभैः,
मदनदहनो दग्धुं ह्येतद्दुनोति निजांशुभिः ।।१४।।

हे प्रिय ! आपके अधर सुधा के पान करवे सूँ तथा आपके मुखारविन्द की शोभा सूँ चन्द्रमा की किरण को भी हमने तुच्छ कर दियौ हतौ। या समय में वा वेर कौ स्मरण करके अग्नि के सदृश अपनौ तीक्ष्ण किरणों से वह चन्द्रमा; एक तो हम कामदेव सों हो जल रही हैं, और भी वो हमको जलाइवे कूँ कम्पायमान कर रह्यौ है ।।१४।।

यदि कृपयति राधा बाधिता शेष बाधा ।
किमपरमवशिष्टं, पुष्टमयदियोर्मे ।।
वदति यदि कथंचित्, स्मेरहासोदित श्री ।
द्विजवरमणिपंक्त्या, मुक्ति शुक्त्या तदा किम् ।।१५।।

यदि श्रीराधा कृपा करें तो हमारी सम्पूर्ण बाधा नष्ट होय जाय, और पुनः हमको पुष्टि तथा मर्यादा में कहा बाकी रहेगो ? जबकि आपकी कृपा होय गई और जब कृपा करकें कछु हमसे भाषण करेंगी तो वा समय में आपके मन्द मुस्क्यान से उत्पन्न भई जो शोभा सों युक्त जो मणि पंक्ति रूप आपकी दन्तावली के दर्शन होंयगे, तो मुक्ति रूपी सीप से हमें कहा प्रयोजन है ।।१५।।

स्त्रीरत्नहास—प्रभयाखिलांगे, तच्चुंबनैस्तत्—प्रतिबिम्बतैश्च ।
तासां कटाक्षैश्च चतुर्युगयि रूपाणि, धत्से क्षणंसो व्रजेश ।।१६।।

हे व्रजेश ! आप सम्पूर्ण अंगों में एक क्षण में ही चारों युग सम्बन्धी रूप धारण करौ हो, कैसे कि स्त्रियों में रत्नरूपा श्री गोपीजन, वो श्री गोपीजन आपके समीप आइकें जब हास्य करें हैं, तो वा हास्य की कान्ति आपके श्री अंग में पड़े है; सो वा समय में सतयुग सम्बन्धी श्वेतवर्ण आप हो जाओ हो; तथा आपको चुम्बन करै है, लो उनके अधर ओष्ठ की लालिमा सों त्रेता सम्बन्धी आपकौ लालवर्ण हो जाय है, तथा विपरीत रमण में जब उनको प्रतिबिम्ब आप में पड़े है, तो द्वापर सम्बन्धी पीतवर्ण आप को हो जाय है, और उनके कटाक्ष पड़वे सूँ कलियुग सम्बन्धी कृष्णवर्ण हो जाय है ।।१६।।

त्वमीश्वरोसि गीतं ते, क्षुद्रोऽहं कि वदामि हि ।
यादृशोऽसि हरे कृष्ण, तादृशाय नमो नमः ।।१७।।

हे नाथ ! आप ईश्वर हैं, हम क्षुद्र आपके गति कौ कैसे वर्णन करें; यासों हे हरे ! हे कृष्ण ! जैसे आप हौ, तैसे आपको नमस्कार है ।।१७।।

स कोऽपि सखि सानन्द—नन्दाद्युत्संगलालितः ।
करोति सुसमासीमा, मन्मथोन्मथितादिशः ।।१८।।

हे सखी ! नन्दादिकों के उत्संग (गोद) में आनन्द के सहित लालित अर्थात् जिनको आनन्द के सहित यशोदा जी तथा नन्दराय जी लालन कर रहे हैं । ऐसौ वह कौनसौ आनन्द है, कि जो कामदेव की व्यथा सों उन्मथित भी दिशाओं की सुखमा (सुख सम्बन्धी आनन्द) की सीमा किये दे है । अर्थात् जिस समय में काम की व्यथा सों समस्त दिशाएँ हमको विपरीत मालूम होय हैं, फिर उनके संगम सूँ सुखमय प्रतीत होय है ।।१८।।

अधरांजनदीप्तिमत्सुनासापुट, मुक्ताफलभूषणं तवास्यम् ।
सदृशं भवतीतिगोपिगुंजाफल, मुक्ता उरसीन्द्रिये विभर्ति ।।१९।।

आपके अधर के ऊपर श्रीगोपीजन के अञ्जन की कान्ति प्रकाशित होय रही है, और सुन्दर नासिका पुट में मुक्ताफल को भूषण धारण किये हैं । ऐसो जो आपको मुखारविन्द शोभित होय रह्यौ है, और (श्री गोपीजन को गोद में लिये हैं, वो ही मानों गुञ्जाफल धारण किये हैं) गुञ्जाफल माला रूप श्रीगोपीजन को धारण करे हैं हृदय में ।।१९।।

रूपं तवैतदतिसुन्दर नीलमेघ—
प्रोद्यत्तडिन्मदहरं व्रजभूषणांगी ।
एतत्समानमिति पतिवरं दुकूलम्—
उरावुरस्यति विभर्ति सदा सनाथः ।।२०।।

ये अति सुन्दर जो आपको रूप है, सो नील मेघ के मद को हरण करै है तथा आपके हृदय में विराजमान जो व्रज को भूषण रूप श्री गोपीजन सों वीजुरी के मद को हरण करे है; और वीजुरी के समान पीतरंग कौ जो श्रेष्ठ पिताम्बर उसको भी वो नाथ सदा हृदय में धारण करे हैं ।।२०।।

पुरो बात प्रावृट्समय विरहे मेघ विरहात् ।
सुतप्ताहं गन्तुं, पदमपि न शक्ता तदिह चेत् ।।
समानो यो मेघः, पुनरपि कृपा शक्त्यखिलकृत् ।
ततो मामेव त्वं नय निजगृहं तस्य झटिति ।।२१।।

पहले जामें वायु चलै है, ऐसौ जो वर्षा समय कौ विरह में मेघ रूपी श्यामसुन्दर के विरह सूँ अत्यन्त सन्तप्त जो मैं सो एक पाँव भी चलवे में समर्थ नाहीं हूँ; यासूँ हे वर्षा सम्बन्धी वायु ! मेघ के समान जों श्यामसुन्दर पुनः कृपाशक्ति सूँ सम्पूर्ण बात के करवे बारे, उनके पास शीघ्र हमको ले चलौ, चाहे हमारे घर में उनको शीघ्र लाओ ।।२१।।

नाथेऽनुकूलतां याते, सर्वं यात्यनुकूलताम् ।
तस्मिंस्तदविपरीते तु, सर्वमेव भवेत्तथा ।।२२।।

जब नाथ अनुकूल होय हैं, और उनके विपरीत होयवे सूँ सब ही विपरीत होय जाय है ॥२२॥

यदि प्रिय सखीजनो, मयि कृपां करोति स्वयम् ।
विरुद्धशतमप्यहं, न गणये तथापि क्षणम् ।
मनोरथलताश्रये, व्रजवधुवृतेस्मिन्नपि ।
व्रजाधिपतिरेव मे, शरणमस्तु दास्याः सदा ॥२३॥

यदि प्रिय सखीजन हमारे ऊपर कृपा करें तो सैकड़ों भी विरोधों की हम गणना नहीं करेंगी । तथापि (मनोरथ के लता रूपी) व्रजवधून सों आवृत इस मनोरथ के लता रूपी आश्रय में हम जो दासी हैं; ताके सदा व्रजाधिप ही रसक हों ॥२३॥

अपि कापि सापि संप्रति, वरिर्वात सखि व्रजाधिपः प्राणा ।
या नन्दसूनु मुरलीतरलं चेतः समादध्यात् ॥२४॥

हे सखी ! व्रजाधिप के प्राणरूप ऐसी श्रेष्ठ सखी इस बाबत कौनसी है; जो नन्दनन्दन को मुरली सों चञ्चल चित्तवारी उनको समाधान करे ॥२४॥

आविर्भूतानुरागा वा, किं वाऽनंगनवांकुरः ।
समुच्चय पदं वेति, न स निश्चयभूरभूत ॥२५॥

वह प्रगट भयौ अनुराग है, कि वा बृक्ष कौ नवीन अंकुर है, अथवा समुच्चय पद है, सो कछु निश्चय ज्ञात नांहि होय है ॥२५॥

॥ श्री गुंसाईजी विरचित अष्टम् विज्ञप्ति समाप्तम् ॥

॥ नवम् विज्ञप्ति प्रारम्भः ॥

स देशः कोऽन्वभूद्यत्र, रमणं ते सखीजनैः ॥
स कालोऽपि यदा नास्ते, समाहूता स्वावेणुना ॥१॥

हे नाथ ! वो कोनसौ देश हे, जामें सखिन के साथ आपको रमण भयौ तथा

वह काल भी कौनसो है, जामें रमण भयौ, जा समय में आपकी वंशी की ध्वनि से बुलाई भई हमलोग अपने घर में नाहीं रहीं, आपके पास चली आईं ॥१॥

यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिर्यमवादीदिति श्रुतिः ।
तं प्रपन्नस्य मेऽद्यापि, कथं दुःखं न वेद तत् ॥२॥

जो सर्वज्ञ हैं, और सर्वशक्तिमान है, ऐसी वेद को श्रुति जिनको कहें हैं, तो ऐसे भी दयालु प्रभु हम जो उनकी शरण में प्राप्त भई हैं, सो या समय में वो हमारे दुःख को क्यों नाहीं जानें हैं ॥२॥

हरे त्वन्नाम निर्वक्ति, यथा श्रुतरहं सदा ।
गृह्णामि यद्यदा नाथ, तत्तथैवास्तु नान्यथा ॥३॥

हे हरे ! आपके नाम को अर्थ है, वाको जैसी वेद की श्रुति कहे हैं, और हम वा नाम कूँ सदा ग्रहण करें हैं, सो जैसौ श्रुति कहें हैं, वैसौ हो हो, अन्यथा मत हो, अर्थात् श्रुति कहा कहें हैं, कि भगवान् के नाम को लैवे वारो सब दुःखन सो छूट जावै है ॥३॥

कथं स भुंक्षे सस्नेहमद्यत्वं प्रत्यहं यथा ।
इति पृष्टस्मितः पातु, हरिश्चौर्यभुजिस्मृतिः ॥४॥

अब भगवान् की माखन चोरी लीला की स्मृति आयवे सूँ श्री गुंसाईजी कहें हैं, एक सखी के घर पर ठाकुरजी पधारे हैं । कोई कहै है, कि श्यामसुन्दर कैसे भोजन करे हैं. वाकौ उत्तर, स्नेह सहित करें हैं । तो फिर कोई पूछे हैं, कि या समय में आप हमारे घर में कैसे छिपके खाय रहे हो ? तो आप कहे हैं, जैसे प्रतिदिन खाय हैं, वैसे आज भी खाय रह्यौ हूँ । इस प्रकार सूँ पूछवे सूँ श्यामसुन्दर हँस दिये; तो माखन खाइवे की विरियाँ जो मन्द मुस्कान भयो, सो मन्द मुस्कान की स्मृति हमारी रक्षा करे ॥४॥

किमिदं कुरुषे वत्स, मृत्सासंवृन्मुखाम्बुजम् ।
स्वलंकृतं गंधतैलकज्जलैः कंजलोचन ॥५॥

फिर दूसरी लीला की सुधि आई, कि यशोदाजी श्रीठाकुरजी से कह रही है,

कि हे वत्स ! हे कमल लोचन ! गन्ध तेल तथा काजल सों अलंकृत अपने मुख में धूल क्यो लपेट रहे हो (धूल से आवृत क्यों करो हो) ।।५।।

किं नाश्रावि त्वया वेणु — स्वरः स्मरविकस्वरः ।
सदागतिगतिस्तम्भोः नगस्थिरगतिर्यतः ।।६।।

हे नाथ ! काम को उत्पन्न करवे वारो अपनो वेणु के स्वर आप क्यों नाहीं सुनावो हो; जाके सुनवे सूँ जो गतिमान होय जावै है सो वृक्षवत् होय जाय है, और जो वृक्षवत् हैं, वह गतिमान् होय जावै हैं, अर्थात् मधुधारा चुचाइवे लग जाय है, रोमाञ्च हो जाय है ।।६।।

किं त्वया मृग्यते कुंजे, तमः पुंजेम्बुजेक्षणे ।
त्वन्मनोमणिहर्ता यः स इदानीं वनान्तरे ।।७।।

हे कमलनयनी ! जामें घोर अन्धकार व्याप्त होय रह्यौ है; ऐसे गहवर कुञ्ज में तुम क्या खोज रही हो, तुम्हारे मन रूपी मणि कौ हरण करवे वारौ जो है, सो इस समय में दूसरे वन में है इसमें नाहीं है ।।७।।

करोति कमलाकान्तः, कामिनां करुणाकरः ।
यत्कृतं विकृतं नैव, कदाचिदपि कस्यचित् ।।८।।

कामियों पर भी कृपा करवें बारे कमलाकान्त ही करें हैं, और जिनकौ कियौ भयौ, काहू समय में काहू पर भी विकृत नाहीं होय हैं, अर्थात् अखण्ड एक रस रहैं है ।।८।।

सोऽस्मानवतु सर्वत्र, ददात्वभिमतं सदा ।
यः प्रार्थितो भक्तजनैः, पपौ वह्निं दधौ गिरिम् ।।९।।

ऐसे प्रभु सर्वत्र हमारी रक्षा करें, तथा सदा हमारे अभीष्ट को प्रदान करें, जो प्रभु भक्तों की प्रार्थना सों दावाग्नि कौ पान किये तथा गिरिराज को धारण करकें भक्तन कूँ इन्द्र की करी भई वृष्टि से बचाये ।।९।।

स्वविश्रान्तिस्थानं त्रिजगतविचिन्वन्त्यतिचिरा—
दतिश्रान्ताशीतानिलमभिलषत्यालि सुषमा ।

शनैर्या नासायामकृत तदयं स्वेदजकणः—
स्त्वदग्रे मुक्तावद्—विधुमुखि चकास्तेऽपिपतिषु ।।१०।।

हे चन्द्रमुखी सखी ! तीनों जगत् में बहुत काल सों अपने विश्रान्ति कौ स्थान ढूँढ़ती भई अति श्रान्त हो गई हूँ; यासूँ हे अलि ! शीतल सुखद वायु की अभिलाषा करती भई तुम्हारी नासिका के समीप में अपनों मुख कियौ सो हमारे मुख पर पसीना कौ विन्दु तुम्हारो आगे ऐसौ प्रतीत होय है, जैसे सीप में मोती शोभित होवै है । अर्थात् हमारे मुख के ऊपर पसीना के जो विन्दु मानो मोती हैं, और तुम्हारी नासिका है, सो सीप है ।।१०।।

गणये कुचयोरेव, त्वत्परायणतां प्रिय ।
त्वत्करस्पर्शसमयं ज्ञात्वैवास्तां बहिस्फुटौ ।।११।।

हे प्रिय ! हमारे जो दोनों स्तन हैं, सो हम इनकी ही आपमें परायणता पूरी रूप सों गिनूँ हूँ; कारण कि आपके कमल को स्पर्श को समय जान करकें ये दोनो बाहर प्रगट होय गये नाहीं तो तहाँ ताईं भीतर ही छिपे रहें है ।।११।।

प्राय: सत्पात्रतोत्कर्षो, यच्छोभाऽयादुदारताम् ।
दातर्यप्यत एवासीदनन्ते देयमुत्तमम् ।।१२।।

उदारता की शोभा तथा उत्कर्ष सत्पात्र में दान करवे सूँ ही प्राप्त होय है, और अनन्य जो दाता होय है, उनमें जो देय पदार्थ रहै है, जाकौ दान कियौ जाय है, वो भी उत्तम हो रहे हैं ।।१२।।

प्रादुर्भवति वकारस्त्वदधरपीयूषदशनसंयोगा ।
तेनामृतबीजत्वं, युक्तं प्राणप्रिये तस्य ।।१३।।

हे प्राणप्रिय सखी ! तुम्हारे अधरामृत जब श्यामसुन्दर के दाँत कौ संयोग होयवे सूँ जो विकार प्रगट होय है, यासूँ ही वा विकार को अमृत को बीज रूप दोनों युक्त ही है ।।१३।।

मुहुर्गता गतज्ञानस्नेहभावेषु तत्किणे ।
व्याप्तेष्वात्मादिषु व्रीडा, मृद्वीतिष्ठेत्कथं वद ।।१४।।

स्नेह भावों में क्षण -क्षण में आयौ तथा गयौ, जो ज्ञान के कण से व्याप्त जो आत्मादिक वामें व्रीड़ा (लज्जा) मृदवो कैसे रहती है कहो ? ॥१४॥

यथा यथा प्रियापांग—सरपातस्तथा तथा ।
तदाभिमुख्यं भजसेव्रजेशक्षत्रियोऽसिकिम् ।१५॥

हे व्रज के स्वामी ! जैसे-जैसे प्राणप्यारी का कटाक्षरूपी वाण आपको लगै है, तैसे-तैसे उनके सन्मुखता को ही आप स्वीकार करौ हो, सो कहा आप क्षत्री हो ? जैसे क्षत्री को जो संग्राम में वाण लगे हैं, सो आगे ही बढ़े हैं, पीछे नाहीं हटे हैं, तैसे ही आप भी प्राणप्यारी के सन्मुख ही बढ़ो हो ॥१५॥

प्रिय त्वदधरामृतादतिविलक्षणा किं नु सा—
सत्यहो नयननीलनीरजयुते मदीयेतु र त् ।
यदेव मम लोचने, त्वदधरं सुसंगच्छते,
तदेव मधुपावृतो, भवति नान्यदा सुन्दर ! ॥१६॥

हे प्रिय ! अंजन लगायवे सूँ नीलवर्ण के अजन सूँ युक्त जो हमारे दोनों नेत्र सों आपके अधरामृत सों अति विलक्षण सो इनको कौन शासन करवे वारौ है। जब हमारे नेत्र और आपके अधर कौ संयोग होय है हे सुन्दर ! तब ही आपके अधर भ्रमरण सों आवृत होय है, अन्य समय में नाहो ॥१६॥

श्रुत्युक्ता सान्सथा नैव, कर्त्तु शक्येति चेत्तदा ।
कंसादिकालवच्छक्या, तवैवेतिवदाम्यहम् ॥१७॥

यदि श्रुतियों का कहा भया अन्यथा करवे कूँ शक्य नाहीं है, तब कंसादिकों के भी कालरूप अन्यथा करवे कूँ आप ही शक्य हो, ऐसौ में कहूँ हूँ ॥१७॥

विजातीयजनाक्रान्ते, निजधर्मस्य गोपनम् ।
देशे विधाय सततं, स्थेयमित्येव भासते ॥१८॥

विजातीय जनों से व्याप्त जो देश है, अर्थात् जो देश में कोई भी अपने समान धर्म वारौ नाहीं है, ऐसे देश में धर्म को गुप्त ही रखकर निरन्तर रहनों चाहिये, ऐसौ भासमान होय है ॥१८॥

सुस्थिरे नीलजलदे, स्थिरसौदामनीयुते ।
स्थिरंमनो यदि भवेत्स्थिरं भाग्यं तदैवहि ॥१९॥

सुस्थिर जो श्यामवर्ण कौ मेघ है, अर्थात् श्यामसुन्दर और सुस्थिर ही बिजुरी सों युक्त हैं; अर्थात् प्रियाजी रूपी बिजुरी सों युक्त हैं अर्थात् यह मेघ और वाकी बिजुरी दोनों चंचल नाहीं हैं। यदि ऐसे सुस्थिर मेघ और बिजुरी में मन स्थिर हो जाय, फिर वाकौ भाग्य भी स्थिर हो जाय है, अर्थात् जाकौ मन ऐसे श्री ठाकुरजी श्री प्रियाजी में स्थिर हो जाय हैं, फिर वाकौ भाग्य कभी चंचल नाहीं होय है, सदा अखण्ड हो जाय हैं ॥१९॥

निवेदितात्मभिन्नेषु, सदौदासीन्यमाचरेत् ।
प्रवाहिकास्तेऽपिचेत्स्युरुपेक्षैवोचिता तदा ॥२०॥

जिनको आत्मनिवेदन नाहीं भयौ है, उनमें सदा उदासीनता कौ ही व्यवहार करनों चहिए । यदि प्रवाहिक हौ केवल संसरात्मक हो तो उनकी उपेक्षा करनी उचित है ॥२०॥

श्यामकंचुकनिदर्शनेन मन्मानसेऽप्यणुतरेपिमहान्सः ।
गोकुलैकजनजीवनमूतर्मास्यति स्व कृपयैव कृपालुः ॥२१॥

गोकुल वासिन की एक जीवन रूप ही है मूर्ति जाकी, ऐसे वह कृपालु अपने श्याम कंचुक को निदर्शन कराके अत्यन्त सूक्ष्म भी (अणु भी) हमारो मन यामें वो महान् भी होकर के अपनी कृपा सूँ ही निवास करैंगे ॥२१॥

शश्वत्पिपासितापांगध्यानावस्थितचेतसा ।
प्राप्त तन्निजरूपाय, गोविन्दाय नमो नमः ॥२२॥

निरन्तर अपनी प्राणप्यारी के कटाक्ष के ध्यान सों युक्त चित्त होयवे सूँ जो श्याम रूप को प्राप्त होय गये हैं; ऐसे जो गाय, गोपी, गोप सबन के राजा जो गोविन्द उनको बारम्बार नमस्कार है ॥२२॥

सख्यादिवांबुजाश्लिष्ट, प्रियापांगैरिवार्चितः ।
परिधाय बभौ नीलकंचुकंगोपिकापतिः ।।२३।।

जैसे मित्रता सूँ कमल के ऊपर भ्रमर आइके लिपट जाय है, तैसे श्री गोपिका के पति श्यामसुन्दर जब नीलकंचुकी (बाघा) धारण करें हैं, तब ऐसी शोभा होय है, कि कमल रूपी श्यामसुन्दर प्रियाजी के कटाक्ष रूपी भ्रमर सों पूजित होय रहे हैं ।।२३।।

राधागुणैः सहाविष्टे, माधवान्त हृदि स्मरे ।
तत्र गन्तुमशक्ततद्दितद्यानं कर्णाविलंब्यभूत् ।।२४।।

जब श्री राधिकाजी के गुणों के सहित कामदेव ने श्यामसुन्दर के हृदय में प्रवेश कियौ; तहाँ जावे को अशक्त उनकी यात्रा कर्ण अवलम्बी भई ।।२४।।

ज्ञानेनसाधनैश्चान्यैः, शून्यानस्मान्मुदास्वयम् ।
अनुगृह्णातिसोऽस्माकं, प्रभुश्रीविठ्ठलेश्वरः ।।२५।।

ज्ञान सूँ अथवा अन्य साधन शून्य जो मैं सो मेरे ऊपर स्वयं हमारे प्रभु श्री विठ्ठलेश्वर प्रसन्नता सूँ अनुग्रह करेंगे ।।२५।।

एकेकर्मप्रवृत्ताः, सततमिहपरेभक्तिपूर्णार्द्रचित्ताः ।
केचिज्ज्ञानैकवित्ताः, प्रभुचरणनमस्यार्तवृतौघवित्ताः ।।
तत्तन्निष्ठाविहीनं, जगदुदधिपयः, संसृतौदीनामीनं ।
मा कश्चित्कृष्णहेतुः, कृपयितु मिहिते, वल्लभीया ममेति ।।२६।।

इस संसार में कोई जीव जो ऐसे हैं जो कर्म मार्ग में हो निरन्तर प्रवृत्त भये है; और कोई ऐसे हैं जो भक्ति सों ही पूर्ण तथा आर्द्र चित्त होय रहे हैं, और कोई ऐसें हैं, जो ज्ञान रूपी धन सूँ ही सुखी होय रहे हैं, तो कोई प्रभु चरण में नमस्कार करके ही आर्द्र वृत्ति सूँ सुखी होय रहे हैं। इन सब निष्ठाओं सों विहीन तथा दीन मलीन रूप पड़े हुए जो हम हैं, सो कोई भी कृष्ण की कृपा कौ हेतु नाहीं है। कारण कि आप पहिले आज्ञा कर चुके हैं, कि वल्लभीय जन मेरे हैं। यासूँ ही प्रभु कृपा करेंगे ।।२६।।

।। श्री गुंसाईजी विरचित नवम् विज्ञप्ति समाप्तम् ।।

।। श्री हरिः ।।

卐 श्री कृष्ण रस 卐

श्रीमद्वल्लभाचार्य चरणं 'पञ्च पद्यानि' नामक ग्रन्थ में आज्ञा करते हैं—

"श्री कृष्ण रस विक्षिप्त मानसारतिवर्जिताः ।
अनिर्वृता लोकवेदे ते मुख्याः श्रवणोत्सुकाः ।।"

इस श्लोक की टीका में गोस्वामी श्री नृसिंहलालजी महाराज आज्ञा करते हैं, "श्री कृष्ण को जो भजनानंद रूप रस ता करि कें जिनको मन विक्षिप्त होय गयौ है...।" श्री कृष्ण रस अर्थात् भजनानंद-रस। परम भगवदीय भक्तवर श्री सूरदासजी के शब्दों में, "भज सखि भाव, भाविक देव, कोटि साधन करै कौऊ तऊ न मानै सेव ।" अर्थात् उस भाविक देव अथवा भावना प्रधान अथवा भावात्मक प्रभु का भजन (सेवा) सखि भाव से ही होता है। अन्य करोड़ों साधनों के द्वारा किए गए भजन अथवा सेवा को वे मानते नहीं हैं।

'श्री यमुनाष्टकम्' में श्री मद् आचार्य चरण आज्ञा करते हैं,

"तवाष्टकमिदंमुदा पठति सूरसूतेः सदा
समस्तदुरितक्षयो भवति वै मुकुंदे रतिः ।"

हे सूर्य सुपुत्री श्रीयमुनाजी आपके इस अष्टक का पाठ जो हर्ष पूर्वक नित्य करता है तो निश्चय पूर्वक उसके सब पाप नाश होते हैं, मुकुन्द भगवान् में प्रीति होती है, जिससे सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं इस प्रकार भगवान् को प्रिय श्रीमद्वल्लभाचार्यजी कहते हैं।

'श्री भुजंगप्रयाताष्टकम्' ग्रन्थ में श्री मद्विठ्ठलेश प्रभुचरण श्री गुसांईजी आज्ञा करते हैं:—

"रतिस्तस्य कृष्णे भवत्याशु नित्या ।
किमन्यैः फलैः फल्गुभिः सेवकस्य ।।"

जो इस भुजंगप्रयाताष्टक के अनुसार शेषशायी भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति

करता है उसकी प्रीति भगवान् श्रीकृष्ण में सदा बनी रहती है। अतः भक्तों को इसके अतिरिक्त व्यर्थ नश्वर फलों से क्या प्रयोजन है? अर्थात् भक्तों के लिये यह परम आवश्यक है कि उनका प्रेम सदा श्रीकृष्ण में विद्यमान रहे।

सखि भाव के लिए हृदय में 'रति' का होना परमायश्यक है। रस की दृष्टि से रति शृंगार रस का स्थायी भाव है। अतः मुकुन्द भगवान् श्रीकृष्ण में रति हो जाने पर शृंगार रसात्मक भजनानंद की प्राप्ति होती है।

प्रश्न यह है कि मुकुन्द में रति हो कैसे? यदि जीव के प्रयास से ही हो जाती तो श्री मद्आचार्य चरण श्री यमुनाष्टक का सदैव आनन्द पूर्वक पाठ करने की आज्ञा क्यों करते? श्री मद्विठ्ठलेश प्रभुचरण श्री 'भुजंगप्रयाताष्टकम्' के पाठ करने की आज्ञा क्यों करते।

'सेवाफलम्' की टीका में गोस्वामी श्री नृसिंहलालजी महाराज आज्ञा करते हैं, "अलौकिक सामर्थ्य होय इतने केवल सर्वात्मभाव सूँ हि प्राप्त होयवे वारो जो भजनानंद है ताकौ अनुभव होय सो अलौकिक फल है सो अपने किये भये कोटि साधन सूँ प्राप्त होय ऐसौ नाहीं है ताके अनुभव कौ योग्यता करिवेवारौ जो अधिकार है सो अलौकिक सामर्थ्य कह्यौ जाय है, भगवान् के विप्रयोग कूं सहन कर सकै सो अलौकिक सामर्थ्य ऐसौहू कोऊ टीकाकार कौ अभिप्राय है।"

कहने का अभिप्राय यह है कि पुष्टि पुरुषोत्तम की शृंगार रसात्मक लीलाओं का अनुभव अर्थात् सर्वात्मभाव से प्राप्त होने वाला भजनानंद अलौकिक सामर्थ्य है। श्रीमद् आचार्यचरण की आज्ञानुसार—"अलौकिकस्य दाने हि"—इस अलौकिक सामर्थ्य का दान होता है अर्थात् आप के द्वारा दान दिया जाता है, यह साधन साध्य नहीं है। इसीलिए भगवद्विषयक शृंगार रसात्मक लीलाओं को लौकिक समझने से अनिष्ट होता है।

श्री मद्आचार्यचरण की आज्ञानुसार, "क्रिया सर्वापि सैवात्र परं कामो न विद्यते।"

"इस रमण लीला में वे सर्वक्रियाएं हैं जो रस शास्त्र में रस को प्रकट करने के लिए नृत्य, बंध आदि की जाती है किन्तु उन क्रियाओं के होते हुए भी इसमें काम (लौकिक व्यभिचार) नहीं है।"

परम भगवदीय श्रीयुत नंददासजी रासपंचाध्यायी ग्रन्थ के सम्बन्ध में आज्ञा करते हैं:—

"नाहिन कछु शृंगार कथा इहि पंचाध्याई।
सुन्दर अति निरवृत्त परा तें इतो बड़ाई॥
जे पंडित शृंगार ग्रन्थ मत यामैं सानैं।
ते कछु भेद न जानैं हरि को विषई मानैं॥"

अतः अलौकिक शृंगार रस लौकिक दृष्टि से वर्णित शृंगार रस से सर्वथा भिन्न है। वास्तव में तो अलौकिक शृंगार अथवा श्री कृष्ण रस ही शृंगार रस है, लौकिक शृंगार रस तो रसाभास मात्र है। वे प्रभु तो रस ही है। अतः रस का क्या स्वरूप है यह विचारणीय है।

श्री हरिराय महाप्रभु आज्ञा करते हैं:—

"रसो वै सः इति श्रुत्या कृष्णो भावात्मको मतः।
तथा तदास्यं मन्तव्यं भक्तानुभवतोऽनुगैः॥"

"प्रभु श्री कृष्ण रस रूप हैं इस श्रुति के अनुसार श्री कृष्ण भावात्मक हैं। उसी प्रकार आपके मुखारविंद स्वरूप श्री वल्लभाचार्य जी को भी भावात्मक जानना चाहिए क्योंकि आप श्री के भक्तों को आचार्यजी के भावात्मक स्वरूप का अनुभव हुआ है।"

श्रीमद् गोकुलनाथजी बीसवें वचनामृत में आज्ञा करते हैं, "पाछें कुंज की भावना करनी, सो अत्यन्त दुर्लभ है। और अपनों मन लौकिक आसक्ति में होय तो न करनों। और यह कहै जो श्रीमहाप्रभुजी अपनो दास जानिके कृपा करेंगे। या प्रकार की भावना करनी।"

चाहे अलौकिक सामर्थ्य कहिए, चाहे सर्वात्मभाव कहिए, चाहे श्री कृष्ण रस कहिए चाहे रास लीला रस कहिए चाहे निकुंज लीला रस कहिए बात एक ही है। यही श्री कृष्ण रस वास्तविक शृंगार रस है जिसका रसास्वादन श्रीमद् आचार्य चरण की कृपा पर आधारित है।

भक्तवर महाकवि सूरदासजी ने भ्रमरगीत में लिखा है,

"ऊधो ! भली करी अब आए ।
विधि कुलाल कीने काँचे घट ते तुम आनि पकाए ।।"

ब्रह्मारूपी कुम्हार ने जो शरीर रूपी कच्चे घड़े बनाए थे उन्हें विरह की आग से पकने का सौभाग्य प्राप्त हो गया । वे उस रस के ठहरने योग्य पात्र बन गए । विरहाग्नि रूप श्री महाप्रभुजी हैं । अतः श्रीकृष्ण रस का आस्वादन करने से पूर्व पात्रता का विचार परमावश्यक है ।

"क्रिया सर्वापि सैवात्र" के अनुसार रस शास्त्रानुसार सब क्रियाओं का वर्णन है । अतः शृंगार रस और उसके विभिन्न अंगों के विषय में भी थोड़ा विचार करना समीचीन होगा ।

काव्य में शृंगार, हास्य, वीर, रौद्र, करुण, भयानक, वीभत्स, शान्त तथा अद्भुत नौ रस प्रमुख रूप से माने गए हैं । प्रत्येक रस से सम्बन्धित भाव, विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव होते हैं । प्रत्येक रस से सम्बन्धित मूल भाव को स्थायी भाव कहते हैं । यह भाव जिसके मन में होता है उसे आश्रय कहते हैं । विभाव के दो भेद होते हैं—आलम्बन तथा उद्दीपन । आलम्बन पर ही आश्रय के मन का भाव अवलम्बित होता है । उद्दीपन विभाव द्वारा भाव प्रबल अर्थात् उद्दीप्त होता है । आश्रय की शारीरिक चेष्टाएं अनुभाव कहलाती हैं । आश्रय के मन में रसानुभव करते समय जो अनेक क्षणिक अथवा अस्थायी भाव गर्व, लज्जा, विषाद, हर्ष आदि आते रहते हैं वे संचारी अथवा व्यभिचारी भाव कहलाते हैं ।

जिसके मन में भाव आश्रित रहता है उस व्यक्ति को भाव का आश्रय कहा जाता है । आश्रय के साथ-साथ जिस दूसरे व्यक्ति या वस्तु की आवश्यकता हुआ करती है वही वास्तव में भाव का आलम्बन कहलाता है । आलम्बन की चेष्टाएं, क्रियाएं भाव को उद्दीप्त करती हैं । अन्य प्राकृतिक वातावरण आदि परिस्थितियां भाव को उद्दीप्त करती हैं वे उद्दीपन विभाव कहलाती हैं । आलम्बन विभाव से प्रभावित एवं उद्दीपन विभाव से उद्दीप्त जब आश्रय के मन का स्थायी भाव रस का परिपाक करता है । अर्थात् रसानुभूति की स्थिति में आता है तब रसानुभूति करने वाले अथवा आश्रय के अश्रुपात होने, स्वरभंग होने, रोमांच होने आदि-आदि की जो क्रियाएं होती हैं वे अनुभाव कहलाती हैं तथा स्थायी भाव के साथ मन में आने वाले धैर्य, मद, संतोष आदि आदि अनेक भाव संचारी या व्यभिचारी भाव कहलाते हैं ।

भाव, विभाव, अनुभाव तथा संचारी भाव प्रत्येक रस के परिपाक के लिए आवश्यक हैं । इसी आधार पर यहां शृंगार रस पर थोड़ा विचार करना समीचीन रहेगा । भक्तवर महाकवि श्री सूरदासजी के भ्रमरगीत से एक पद उद्धृत है—

"अति मलीन वृषभानुकुमारी ।
हरि स्रमजल अंतर तनु भीजे ता लालच न छुआवति सारी ।।

अधोमुख रहति उरध नहिं चितवति ज्यों गथ हारे थकित जु आरी ।
छूटे चिहुर बदन कुम्हिलानी ज्यों नलिनी हिमकर की मारी ।।

हरि संदेस सुनि सहज मृतक भई इक विरहिन दूजे अलि जारी ।
सूर स्याम बिनु यों जीवति हैं ब्रजबनिता सब स्याम दुलारी ।।

शृंगार रस को इसीलिए रसराज माना जाता है कि अन्य रसों की तुलना में उसका क्षेत्र अधिक व्यापक एवं विस्तृत है । शृंगार रस के संयोग तथा वियोग दो पक्ष होते हैं । वियोग शृंगार को विप्रलम्भ शृंगार भी कहते हैं । उपर्युक्त उदाहरण वियोग शृंगार का है ।

यहां वियोग शृंगार रसानुभव कराने वाली वृषभानुकुमारी अथवा श्रीस्वामीनीजी 'आश्रय' हैं जिनके हृदय में रति स्थायी भाव है । रति शृंगार रस का स्थायी भाव है । श्रीकृष्ण आलम्बन हैं । वियोग-स्मृति आदि उद्दीपन विभाव हैं । नीचे मुखारविन्द करके रहना, ऊपर नहीं देखना, बिखरे बाल आदि अनुभाव हैं तथा दैन्य, ग्लानि आदि संचारी भाव हैं । इस प्रकार विप्रयोग शृंगार रस का पूर्ण परिपाक हो रहा है ।

भक्तवर महाकवि नंददासजी का एक पद और उद्धृत है:—

"चंचल, लै चली री चित चोर ।
मोहन को मन यों बस कीनो ज्यों चकई संग डोर ।।
जो लौं नहिं देखत तव मूरति तौ लौं पलकन लागत ओर ।
'नंददास' प्रभु प्रेम मगन भये नागर नंद किशोर ।।"

यहां आश्रय श्री मदनमोहन प्रभु हैं । आलम्बन श्री स्वामिनीजी हैं । चंचलता आदि
उद्दीपन विभाव हैं । पलक न लगना आदि अनुभाव हैं । श्री ठाकुरजी के हृदय में श्री
स्वामिनीजी के प्रति विद्यमान स्थायी भाव रति का संयोग शृंगार रस के रूप में परि-
पाक हो रहा है ।

इस प्रकार रस का रसास्वादन करने वाला आश्रय तथा जिसके आधार पर वह
रसास्वादन किया जा रहा है आलम्बन कहलाता है । मनुष्य के मन में असंख्य भाव
विद्यमान होते हैं । काव्य शास्त्र में स्थायी भावों के अन्तर्गत मुख्य मुख्य भावों को ले
लिया गया है । मन में विद्यमान स्थायी भाव ही अनुकूल परिस्थितियां पाकर रस-रूप
ग्रहण कर लेता है ।

शृंगार रस का स्थायी भाव रति है । रति भाव की यह विलक्षणता है कि वात्सल्य
एवं भक्ति को भी इसी में अन्तर्भूत किया जा सकता है । महानुभाव श्री सूरदासजी ने
भगवान् की बाल लीलाओं को लेकर इतना लिखा है कि वात्सल्य काव्य के क्षेत्र में अलग
से रस बन गया है । श्री मद्वल्लभाचार्यचरण के पुष्टि भक्ति मार्ग में प्रभु की बाल भाव
की सेवा से लेकर निकुंज लीला तक सर्वत्र रति भाव विद्यमान है अरति की स्थिति
वर्जित है ।

होरी, चोरी, दान आदि शृंगार के नौ❀ अंगों तथा संयोग एवं वियोग दो पक्षों के
अतिरिक्त शृंगार रस के क्षेत्र में नायक, नायिका तथा दूती का अपना अपना महत्त्व है ।
दूती का नायक तथा नायिका का मिलन कराने में विशेष योग रहता है ।

मान की अवस्था में भी नायक तथा नायिका का मिलन कराने का पूर्ण प्रयास दूती
अथवा सखि द्वारा किया जाता है । महानुभाव श्री नंददासजी का एक पद उद्धृत है:—

"दौरी-दौरी आवत, मोहि मनावत, दाम खरचि मानो मोल लई री ।
अचरा पसारि कैं मोहि खिजावत, तेरे बाबा की का हौं चेरी भई री ।।
जा री जा सखि भवन आपुने, लाख बात की एक कही री ।
'नंददास' प्रभु क्यों नहिं आवत, उन पांयन कछु मेंहदी दई री ।।"

यहां श्री स्वामिनीजी ने सखि को अपने घर चले जाने की आज्ञा देते हुए कहा है कि
श्री ठाकुरजी स्वयं क्यों नहीं पधारते, उनके पांवों में क्या मेंहदी लगी हुई है ?

❀ नवहि अंग शृंगार के, होरी, चोरी, दान ।
छलय करन, रति, बन गमन, विरह, मिलन अरु मान ।।

पुष्टिमार्गीय भक्त न मुक्ति चाहता है और न सांसारिक भोग । वह तो सेवक के रूप
में भगवद् सेवा एवं भगवद् रस का रसास्वादन करना चाहता है । श्रीमद्आचार्यचरण की
आज्ञानुसार, "**भगवद्रूपसेवार्थं तत्सृष्टिर्नान्यथा भवेत्**" पुष्टि सृष्टि केवल भगवद्रूप की
सेवा के लिए ही बनाई गई है । भावात्मक पुष्टि पुरुषोत्तम के रूप की सेवा भी भावात्मक
है । शृंगार रसात्मक भाव के भावन हेतु अनेक प्रकार की नायिकाओं की भावना को
गई है । नायिकाएं भी भावात्मक हैं । नायिका भेद का अभिप्राय यदि भक्तिमार्ग में अनेक
भावनाओं से भगवद्रूप की सेवा माना जाए तो अत्युक्ति न होगी ।

महाकवि भक्तवर श्रीयुत नंददासजी कृत रसमंजरी में विभिन्न प्रकार की नायिकाओं
तथा नायकों का विशद वर्णन किया गया है । व्रज सीमतनियों के भाव से भावित रसिक-
जनों के लिए निकुंज नायक श्री नाथजी की लीलाओं का रसास्वादन करने की दृष्टि इस
ग्रन्थ का विशेष महत्त्व है । यहां सम्पूर्ण ग्रन्थ मूल रूप में पृष्ठ २८९ पर उद्धृत किया है:—

उपरोक्त 'श्रीकृष्ण रस' के लेखक प. भ. गोपेश शरणजी शर्मा एम.ए.एम.एड. आचार्य
भरतपुर निवासी ने रस-राज शृङ्गार रस के विशद् स्पष्ट विवरण से पाठकों को अवगत
कराने का सफल प्रयास किया है । आप लेखक ही नहीं कवि भी हैं और राजस्थान के
कवि समाज के एक माननीय सदस्य हैं, कविता में आपकी छाप 'आतुर' है ।

'रस' के भेद

ऐसा सुना है कि रस के तीन प्रकार हैं और इस रस निकुंज ग्रन्थ में उन सब ही का
संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक प्रतीत होता है । "आधिभौतिक रस" की अनुभूति देह को
रसना जो मुख में है उसके द्वारा होती है यह पदार्थ मीठा है, खट्टा है, नमकीन है, चरपरा
है, कड़वा है, अथवा कसैला है । इन छ रसों का ज्ञान जीभ के स्पर्श से हम लोगों को होता
हैऔर उससे हर्ष, शोक, का हम अनुभव करते हैं विश्व के सब ही खाद्य पदार्थ इन एक
अथवा अधिक रसों के मिश्रण से ही प्राप्त होता है । कुछ पदार्थ ऐसे भी है जिनमें एक
ही रस मिलता है जैसे मिश्री (चीनी) इसमें केवल मीठा रस ही है इसी प्रकार लालमिर्च
में केवल तिक्त (चरका) रस ही है करेले में कटु रस कड़वापन अधिक है आवले में कसैला
अधिक है खट्टे रस की कई किस्मे हैं नींबू, अमचूर केत, कोकम, इमली, सभी खट्टे होते
हैं परन्तु हर एक के स्वाद में अपनी विशेषता है नमक का स्वाद खारापन पर होता है वह
कड़वे रस से अलग रस है । देह का पोषण इन विविध पदार्थों से ही होता है और आयु-
र्वेद इन पदार्थों से पित्त, कफ और वायु का होना मानता है प्रत्येक पदार्थ किस अनुपात में

लेना चाहिए और प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति देख कर लेने से हम स्वस्थ रह सकते हैं इस की जानकारी हमको अपने अपने अनुभव से कर लेनी चाहिए औषधियों का अधिक सेवन एक व्यक्ति को स्वस्थ नहीं बना सकता है एक औषधि कुछ समय तक आराम देती है फिर उसकी मात्रा बढाये बगैर उसका कुछ असर नहीं होता है। इसलिए ऐसी औषधि को कुछ समय के लिए छोड़ देना चाहिए। आध्यात्मिक रस का कुछ परिचय उपरोक्त लेख से मिल ही गया है आधिदैविक रस के विषय में श्रुति कहती है कि पर ब्रह्म कृष्ण रस रूप है उन प्रभु का प्रत्येक भाग रस रूप (आनन्दप्रद) है। और इस पर कई ग्रथों की कई महापुरुषों ने रचना की है इस सारे ग्रंथ का मुख्य आशय भगवान् के रस रूप होने का वर्णन ही है श्रुति कहती है "रसोवय:स" यही आधिदैविक रस है जिसकी अनुभूती अन्त:करण के द्वारा होती है और वह सर्व श्रेष्ठ है निरन्तर हृदय चिन्ता रहित होकर उस परब्रह्म परमेश्वर के मधुर रस के आनन्द का अनुभव करता रहे इसी में जीवन की सार्थकता है और इसी से उस जीव की संसार-प्रपंच-प्रलय से मुक्ति हो सकती है।

'आधिदेविक रस' गुप्त था जिसे श्रीमद्भागवत की सुबोधिनी टीका के द्वारा सनातन धर्म के आचार्य श्रीमद्वल्लभाधीश ने समझाया हैं। भगवद् स्नेह मार्ग को प्रकट करने की आपने कृपा की है—

रति पथ प्रकट करवे कों प्रकटे करुणानिधि श्रीवल्लभ भूतल।
हुलसे सकल दैवीजन के मन, साधन बिन हम पावेंगे फल ।।१।।

मायामत कौ तिमिर नसायो पन्थ दिखायो वेद वचन बल।
यह मारग जो दृढ तिनको हरि मेलत मुख में पत्र कुसुम जल ।।२।।

सींचत वचन सुधाकर सेवक मारग रिपु दाहे वचनानल।
सेवा रस सागर प्रकटायो वदन अनल ते अतिशय शीतल ।।३।।

उपजत ताप छिनक सानिध में, देत बिरह आनन्द रस केवल।
देखो सन्त विचार चारु चित्त ये गोकुलपति हैं यहि निश्चतन ।।४।।

द्वै चरणोदक दोष निवारे सूधे किये काल कलि के खल।
रसिक भजत नित्य श्री वल्लभ पद ते बड़ भाग्य सदा मन निर्मल ।।५।।

गो॰ श्री हरिरायजी महाप्रभु

रसमंजरी

दोहा—नमो नमो आनंदघन. सुन्दर नंद-कुमार। रस-मय, रस-कारन, रसिक, जग जाके आधार ।१। **चौपाई**—है जो कछू रस इहि संसार। ताकहुं प्रभु तुम ही आधार ।। ज्यों अनेक सरिता जल बहै। आनि सबै सागर मैं रहै ।। जग मैं कोउ-कवि बरनौ काही। सो जसु-रस सब तुम्हरो आहौ ।। ज्यों जलधर तैं जलधर जल लं। बरषै हरषि आपनैं कलै ।। अगनि तें अनगन दीपक बरैं। बहुरि आनि सब तिन मैं ररैं ।। ऐसेहि रूप प्रेम रस जो है। तुम तैं है तुम ही करि सोहै ।। **दोहा**—रूप प्रेम आनंद रस, जो कछु जग में आहि। सौ सब गिरिधर देव कौं, निधरक बरनौं ताहि ।।७।। **चौपाई**—एक मीत हम सों अस गुन्यो। मैं नाइका-भेद नहिं सुन्यो :। अरु जु भेद नाइक के गुनें। ते हू मैं नोके नहिं सुनें ।। हाव भाव हेलादिक जिते रति समेत समझावहु तिते ।। जब लग इनके भेद न जानै। तब लग प्रेम न तत्व पिछानैं। जाको जहं अधिकार न होई। निकटहि बस्तु दूरि है सोई ।। मीन कमल के ढिग ही रहै। रूप रंग रस मधुलिह लहै ।। निकटहि निरमोलिक नग जैसैं। नैन हीन तिहि पावै कैसैं तासौ 'नंद' कहत तब ऊतर। मूरख जन मन मोहित दूतर ।। बात अवर कछु अवरहि बूझै। अलप ग्यान गुनि अनमन दूझै ।। अब सुनि लै मूरख मन जैसौ। बरनि सुनाऊं तो कहुं तैसौ ।। महानक्र-मुख जो मनि होई। ताही कर करि काढ़ै कोई ।। कुपित भुजंगम सिर पग धरै। हाथनि पाथ-रासि पुनि तरै ।। तेल लहै करि धूरि की घानी। मृगतृष्णा तै पोवै पानी ।। खोजि ससा के शृंगनि पावं। पै मूरख मन हाथ न आवै ।। तू तौ सुनि लै रसमंजरी। नख सिख परम प्रेम रस भरी ।। **दोहा**—रसमंजरि अनुसार कै, 'नंद' सुमति अनुसार। बरतन बनिता-भेद जहं, प्रेम सार बिस्तार ।।२४।। **चौपाई**—जग में जुवतो त्रय परकार। करि करता निज रस-बिस्तार ।। प्रथम स्वकीया पुनि परिकाया। इक सामानि बखानो तिया ।। ते पुनि तोन तीन परकार। मुग्धा, मध्या, प्रौढा बिहार ।। मुग्धा हू पुनि द्वै बिधि गनी। ज्यों उत्तर उत्तर रस सनी ।। प्रथमहि मुग्ध नऊढ़ा होय। पुनि बिश्रब्ध नऊढ़ा सोय ।। **मुग्धा नवोढ़ा** जिहि तन नव जोबन अंकुरै। लाज अधिक तन मन संकुरै ।। अलि आधीन होय रति जाकैं। भूषन रुचि तैसी नहि ताकैं ।। प्रीतम जब कर-पंकज धरै। बल करि सेज निवेसित करै ।। कोड़ी करि सब अंगनि गहै। तदपि सुतिय वह गवन्यो चहै ।। तन करि भागै मन करि रमै। कहि न जाय जस बैसँधि समै ।। जो पारिदि कहुँ कर थिर करै। सो नऊढ़ बाला उर धरै ।। **विश्रब्ध-नवोढ़ा**—अँग अँग जोबन जोति संचरी। कचन ढरो मनो नग जरी ।। उपजी कछुक दृगनि आतुरी। लज्जित जहँ खंजन चातुरी ।। तन लावन्य झलक परि ऐसी। मुक्ताफल नव पानिप जैसो ।। पिय सँग सोवति अति छबि लहै। कर करि कलित कुचस्थल गहै ।। नोबी बंधन दृढ़ कैं धरै। ऊरू जमल बाँधि इक करै ।। अर्ध मुन्दित नैनन छबि पावै। मृग छौनहिं मनौ औंघ सी आवै ।। कोमल कोप कबहुँ जो गहै। कूप छाँह जिमि हिय ही रहै ।। इहि परकार परखिये जोई। है बिश्रब्ध नवोढ़ा सोई ।। **दोहा**—गाढ़ालिगन पीय सौं, दै न सकै तिय सोय। नव अनंग अंकुर हिये, डरति भंग जिनि

होय ॥४४॥ **अज्ञात यौवना**—सखि जब सर-स्नान लै जाहीं । फूले अमलनि कमलनि माँहीं ॥ पौंछें डारति रोम की धारा । मानति बाल सिबाल की डारा ॥ दीरघ नैन चलति जब कोनें । सरद कमल-दल हू तैं लौनें ॥ तिनहिं श्रवन बिच पकरयो चहै । अंबुज-दल से लागे कहै ॥ इहि परकार तिया जो लहिये । सो अज्ञात जौबना कहिये ॥ **ज्ञात यौवना**—सहचरि के उरजन-तन चहै । अपने चहै मुसकि छबि लहै ॥ सखो कहै बलि तुव कुच नये । इकठे उभय संभु से भये ॥ सो सुकृती वह निज नख धरि है । इन कहुँ चंद्रचूड़ जो करिहै ॥ मुसकि सखी कौं मारै जोई । ज्ञात जोवना कहिये सोई ॥ **मध्या**—लज्जा मदन समान सुहाई । दिन दिन प्रेम चोप अधिकाई ॥ पिय सँग सोवत सोय न जाई । मनमत इमि सोचै सुखदाई ॥ सोयें प्रीतम सोहन मुख की । हानि होय अवलोकनि सुख की ॥ सोइ न सकै न जागन कहै । त्रति मध्या सु नवोढ़ा अहै ॥ **प्रौढ़ा**—पूरन जोबन है गहगोरी । अधिक अनंग लाज तिहि थोरी ॥ केलि कलाप कोविदा रहै । प्रेम भरी मद-गज जिमि चहै ॥ दीरघ रैनि अधिक कै भावै । भोर कौं नाम सुनत दुख पावै । अति प्रगल्भ बैनी रस रैनी । सो प्रौढ़ा प्रीतम सुख दैनी ॥**अन्यभेद**—तहँ केई धीरा केह अधोरा । केइ धीराधीरा रस भीरा ॥ मुग्धा मैं धीरादिक लच्छिन । प्रगट नहीं पै लखैं बिचच्छिन ॥ ज्यों सुन्दर तरु अंकुर माँहीं । दल फल फूल डार सब ताहीं ॥ मध्या मैं ते प्रगट जनावैं । पल्लव कली फूल होय आवै ॥ **मध्या धीरा**—सापराध पिय कौं जब लहै । बिंगि कोप के बचननि कहै ॥ जगत-निकुंज-पुंज मैं मोहन । तुम अति श्रमित भये पिय सोहन ॥ बैठहु बलि काहे कौं खीजौ । नलिनी दल बिजना करि बीजौ॥ रंचक भौंह करेरो लहिये । सो तिय मध्या धीरा कहिये। **मध्या अधीरा**—जागे तुम निसि प्रानपियारे । अरुन भये ये नैन हमारे ॥ अधर सुधा सब पिय तुम पियो । घूमत है इह हमरो हियो ॥ प्रखर नखन सर लगे तिहारै । पीर होत पिय हिये हमारै ॥ बन मैं श्रीफल बनि गये तुमकौं । काम कूर मारत है हमकौं ॥ बचन अबिंगि कहै रिस भोय । है अधीर मध्या तिय सौय ॥ **मध्या धीराधीरा**—प्रीतम कौं जब सागस लहै । ब्यंगि अब्यंगि बचन कछु कहै ॥ अहो अहो मोहन सोहन पिया । नव अनुराग चुचात है हिया ॥ चतुर-सिरोमनि नंद के लाला । नव जोबन गुन रूप रसाला ॥ यौं कहि दृग भरि आवै जोय । धीराधीरा मध्या सोय ॥ **प्रौढ़ा धीरा**—सागस जानि साँवरे पिया । गूढ़ मान करि बैठी तिया ॥ प्रीतम तासों बिनय जु करैं । बार बार कर-अंबुज धरैं ॥ बोलति क्यों न सुधा सी धारा । डोलति क्यो न रूपसी डारा ॥ केतकि कुस मग रभस प्रगोरी । सेज मान लाजसि क्यों भोरी ॥ भृकुटि भ्रमर जिमि भ्रमनि जु लहिये । सो तिय प्रोढ़ा धीरा कहिये ॥ **प्रोढ़ा अधीरा**—पिय उर मुकुर समान सुहाय । तामैं निरखि अपनी भायँ ॥ अन तिय की जिय संका मानै । रंचक पिय सों रूठन ठानै ॥ पुनि अवधारै को पुनि हारै । हँसि हँसि ता प्रतिबिंबहि मारै ॥ इहि परकार परखिये जोई । है अधीर प्रोढ़ा तिय सोई ॥ **प्रौढ़ा धीराधीरा**—सागस जानि रसीले लाला । कोमल मान गहै बर बाला ॥ प्रेम भरे सुनि बचन पिया के । हँसहि कपोल सलोल तिया के ॥ राते दृग रिस रस सों भोये । मानहुँ मीनमहावर धोये । कछु मन दिढ़ कछु अदिढ़ लहीये । **प्रौढ़ा धीराधोरा** कहिये ॥

सुरतिगापना—सखि सौं कह सखि उाह गृह अंतर । अब ते हौं सोऊँ न सुनंतर ॥ सासु लरौ मैया किन लरौ । भैया जो भावै सो करौ ॥ आंषु धरन हित दुष्ट मँजारो । मो परि उचरि परी दइमारी ॥ दै गई तीखन नख दुखदाई । कासौं कहौं दरद सो माई ॥ इहि छम छतनि छिपावं जोई । परकिय सुरतगोपना सोई ॥ **परकोया वाग्विदग्धा**—अहो पथिक अति बरसत घांमा । रंचक कहूँ करो बिश्रामा ॥ इहँ तें निकट कलिंदी तीर । सीतल मंद सुगध समीर ॥ गहबर तरु तमाल है तहाँ । प्रफुलित बल्ल मल्लिका जहाँ ॥ छिनक छाँह लीजै रस पीजे । बहुरयो उठि मारग मन दीजै ॥ पियहिं सुनाय पथिक सों कहै । वाक् विदग्धा परकिय सु है ॥ **लक्षिता परकोया**—लच्छन चिहनन जो लछि पाई । बुधि बल छल न छिपाई जाई ॥ सतर भौंह गुरजन की सहै । जो पूछै तासौं इमि कहै ॥ जु कछु भई सुभई गति भली । हौंनी आहि सु ह्वै है अली । अरु जु होति है होहु सु सिरपर । पेट पातरै नहिंन बचै सर । निधरक भई कहति इम लहिये । सा परकिया लच्छिता कहिये ॥

नायिका भेद—प्रोषितपति का अरु खंडिता । कल हंतरिता उत्कंठिता ॥ अबर बिप्रलब्धा नाइका । वासकसज्जा अभिसारिका ॥ पुनि स्वाधीन-वल्लभा गुनो । नवमो प्रीतम-गवनी सुनी ॥ **प्रोषितपतिका**—जाको पति देसांतर रहै । अति संताप विरह जुर सहै ॥ दुर्बल तन मन ब्याकुल होई । प्रोषितपतिका कहिये सोई ॥ **मुग्धा प्रोषितपतिका**—मुग्धा बिरहबिथा हिय सहै । सखि जन हूं सौं नाहिंन कहै ॥ सीतल सेज सँवारि बिछाव । सोय न सकै लाज जिय आवै ॥ गद्गद् कंठ रहै अकुलानी । नैनन माँह न आन पानी ॥ जामिनि सँग मनसिज दुख पावं । सो मुग्धा प्रोषिता कहावै ॥ **मध्या प्रोषितपतिका**—मध्या पिय जब बिरह जुर दहै । इहि परकार सखी सों कहै ॥ सखि हो वहै कर बोलै ॥ ऐपरि कर करिये नहिं चलं [illegible] बसन तेई कटि किंकनि सोई । छिन छिन आधि अधिक क्यों होई ॥ कबन समय आयो इह सजनी । इंदु अनल बरषै सब रजनी ॥ इहि परकार कहति जो लहिये । मध्या प्रोषितपतिका कहिये ॥ **प्रौढ़ा प्रोषितपतिका**—प्रिय परदेस धीर नहिं धरै । पीर भीर कछु सुधि नहि परै ॥ तरुन अनग तरुन दुख बढ़यो । अग अंग महा गरल जिमि चढ़यो ॥ बिरह लहरि जब उठि मुरझावै । बाहु की बलय ढरकि कर आवै । जनु इह बलय नाड़िका लहै । जियति है किधौं मार गई अहै ॥ **परकीया प्रोषितपतिका**–प्रानपियारे पियहिं न पेखै । सो तिय सब जग सूनौ देखै ॥ आन की ढिग उसास नहिं लेई । मूंदै मुख तिहि ऊतरु देई ॥ तपत उसासन जो कोउ लहै । पराकय बिरहिनि कातव कहै ॥ सखि जौ कमल फूल पकरावै । हाथ न छूवै निकट धरावै ॥ अपने कर जु बिरह-जुर ताते । मति जरि जांहि डरनि तिय याते ॥ अंवा अगनि जिमि अंतर दहिए । सो परकोया प्रोषित कहिए । **दोहा**—प्रेम मिटै नहि जनम भरि उत्तम मन को लागि । जौ जुग भरि जल में रहै, बुझै न चकमक आगि ।।१२६।। **खंडिता**—प्रीतम अनत रैनि सब जागे । अंग अग रति-रस-चिन्हन पागे ॥ भोर भयें जाके गृह आवै सो बनिता खंडिता कहावै । **मुग्धा खंडिता**—अंकन पिय उर उरज पछानै । कुंभ चिन्ह से कछु जिय जानै ॥ नख छत छती वित चकि रहै । ते प्रीतम कौं पूछयौ चहै ॥ पिय हँसि ताहि कंठ लपटावै । सो मुग्धा खंडिता कहावै ॥ **मध्या खंडिता**—

प्रीतम-उर कुच-चिन्हन चहै। जानै परि कछु बैन न कहै।। पुनि तिन मैं नख रेखै देखै। साँस न भरै कनाखिन पेखै।। चपरि चखनि तें जो जल आवै। इहि परकारि तिया जु जनावै।। मुख धोवन मिस ताहि मिलावै। इहि प्रकार तिय प्र ति जनावै।। सा मध्या खडिता कहावै। सुनै सुनावै सो सुख पावै।। **प्रौढ़ा खंडिता**––भोर ही आये मोहन लाल। तिय-पद-ज ावक अंकित भाल।। नैन नीर नैनन अवधारै। प्रात अमंगल तें नहिं डारै।। दर्पन लै पिय आगै धरै। व्यंगि बचन बोलै नहिं डरै।। ढँकहु छती नख दिखि इत ऐसौ। राति प्रीति कौ अंकुर जैसौ।। ऐंपरि इमि दिखि इत रंग भरचो। गाढ़ालिगन टूटि है परचो।। इहि परकार कहति रिस सानी। सो प्रौढ़ा खडिता बखानी।। **परकीया खंडिता**–––पिय कर कंकन मुद्रा लहै। गंडनि श्रम-कन पुनि पुनि चहै।। नमित बदन कै ठाढ़ी रहै। प्रीति-भंग भय कछुव न कहै।। दूती-तन करि नैनन नारै भरइ उसास दुसासन डारे।। टपक टपक दृग अँसुवा परै कमलदलनि जनु मोती झरै।। इहि परकार प्रेम रस सानी। सा परकिय खंडिता बखानी।। **दोहा**––सब काहू सों देखिये लाल तिहारी प्रीति। जहाँ डारिए तहँ बढ़ै अमर बेलि की रीति।।१५१। **कलहांतरिता**–– प्रथमहि पीय अनादर करै। पीछै फिरि पछितावै भरै।। सांस भरै उर अति सताप। अरुझै मुरुझै करै प्रलाप।। सोचति सीस धुनति जब लहिए। सो तिय कलहतरिता कहिए।। **मुग्धा कलहांतरिता**—प्रीतम अनुनय करि कर गहै। वह लजि लपटि न तासों रहै।। पाछै मलय पवन जब बहै। तब पिय. उर घुरि सोयो चहै।। मन मन सीस धुनति जो लहिये। मुग्धा कलहांतरिता कहिये।। **मध्या कलहांतरिता**–– रवन आनि अनुनय अनुसरै। रूप कै गरब अनादर करै।। पाछै वह दुख कहत लजाई। कहें बिना हिय पोर न जाई।। चकित भई सहचरि सौं कहै। बात आन अधरन मैं रहे।। बैठि अधौमुख साचै जाई। मध्या कलाहतरिता सोई।। **प्रौढ़ा कलहांतरिता**–आये जब मोहन रंग भरे। क्यों मो नैन तरारे करे।। क्यों कुछ छुवत कलह मैं करो।। अली अदिष्ट नष्ट बड़ कोई। पाई निधि जिहि कर तै.खोई।। इहि परकार प्रलापति लहिये। प्रौढ़ा कलहतरिता कहिये।। **परकीया कलहांतरिता**—जाकै लिये पतिन मैं पेषे। गरुए गुर हरुये करि देषे।। धीरज धन मैं दीन्ह लुटाई। नीति सहचरी सो बिरराई।। लाज तिनक जिमि तोरि हो दीनो। सरिता-बारि बुंद सरि कोनो।। सुपिय आज मैं अति अत्रमाने। सखि अब बिधि बिकूल पै जानै।। इहि बिधि बिलपति प्रलपति लहिये। सा कलहतर परकिय कहिये।। **दोहा**—रसहूं लगि कल कंत सौं. कलह न कीजै काउ। का नहिं जो ऊनौ करै, सा सानौ जरि जाउ।।१७१।। **उत्कंठिता**–उहि सकेत पीव नहिं आव। चिता करि तिय अनि दुख पावै।। आरति कप संताप जुड़ाई। तनु तारति अरु लेत जंभाई।। भरि भरि नैन अवस्था कहै। उत्कंठिता नाइका सुहै।। **मुग्धा उत्कंठिता**—प्रानपियारे पिय जु न आये। हूं जानौं किन ही विरमाये।। लाज तें सखि कौं नाहिन बूझै। चिता करि मन ही मन मूझै।। चकित भई घर आँगन फिरै। कौंने जाय उसासनि भरै।। दुख ते मुख पियरी परि आवै। मुग्धा उत्कंठिता कहावै।। **मध्या उत्कंठिता** करि बिचार मन ही मन भई। क्यों नहिं आये प्रीतम दई।। कै इह सखो गई नहिं लैना।

कै कछु डरपे पंकज नैना।। भरि आवे जब लोचन पानी। धूम परचो तब कहै सयानो।। सोचति इमि जल मोचत लहिये। मध्या उत्कठिता सु कहिये।। **प्रौढ़ा उत्कंठिता** प्रीतम अन आये जब लहै। ठाढी कुंज-सदन मैं कहै।। अहो निकुंज. भ्रात इत सुनि धौं। हे सखि जूथि बहन मन गुनि धौं।। हे निसि मात, तात अंधियारे। पूछति हौं तुम हितू हमारे।। हो तमाल. हों बधु रसाला। क्यौं नहिं आये मोहन लाला।। ऐसे बिलपति प्रलपनि लहिये। प्रोढा उत्कंठिता सो कहिये।। **परकीया उत्कंठिता**—जिहि मनमोहन पिय-हित माई। अकिली बन घन बनि न डराई।। कवन कवन तप मैं नहिं कियो। बारि दवारि अन्हैबौ लियो।। मनसिज देव सेव दृढ़ कीनी। लाज तहां मैं दछिना दोनी।। सुपिय आज दृग अतिथि न भये। भोरे किनहू भोरे लये।। यौ मन मैं मन मैं दुख पावै। परकीया उत्कंठिता कहावै।। **विप्रलब्धा नायिका**—पिय संकेत आप दुख पावै। तहं प्रीतम कहुँ नाहिन पावै।। साँस भरै लोचन जल भरै। प्रिय सहचरि सौं झुकि झुकि परै।। मन बैराग धरै दुख पावै। जुवति बिप्रलब्धा सु कहावै।। **मुग्धा विप्रलब्धा**–**कपट** सौंह करि करि सखि जाकौं। लै आवहु निकुंज मह ताकौं।। तह प्रीतम कौं नाहिन पावै। छुभित होय छबि नहिं कहि आवै।। सतर भौंह मौरनि झहरावै। मुग्धा बिप्रलब्ध सु कहावै।। **मध्या विप्रलब्धा**–पिय सकेत आय बर बाला। पावै पियहि न रूप रसाला।। अध मूंदित नैनन चकि रहै। आधो बात बदन छवि चहै।। आधो बोरी दसनन धरै। ठाढी गूढ उसासन भरै।। कछु इक मन बैरागहि पावै। मध्या विप्रलब्ध सु कहावै।। **प्रौढ़ा विप्रलब्धा**–कुंज सदन सूनौं जब देखै। सखि जनहू कौ संग न पेखै।। कुटिलो कामदेव तें डरे। बामदेव सौं बिनती करै।। भो संभो सूलिन सिव संकर। हर हि करधर उग्र भयंकर।। मदन-मथन मृड़ अंतरजामी। त्राता होहु जगत के स्वामी।। भरि भरि नैन त्रिनैन मनावै। प्रौढ़ा बिप्रलब्धा सु कहावै।। **परकीया विप्रलब्धा**––धीरज-अहि कं सिर पग धरै। लज्जा तरल तरंगिनि तरै।। तिमिर-महागज हाथनि ठेलै। पति-डर-नाहर पाइन पेलै।। इहि बिधि कुंज-सदन चलि आवै। तहं मनमोहन पियहि न पावै।। लता कर धरै चिता करं। सांस भरै लोचन जल भरै।। इहि परकार परषिये तिया। सु है बिप्रलब्धा परकिया।। **दोहा**––धीर सघन बन मांझ है गुर-डर गैबर ठेलि। पति डर नाहर पेलि पग करै कवर सों केलि।।२१३।। **बासकसज्जा**–– पिय आगमन जानि बर बाला। सुरत समग्री रचै रसाला।। दूती पूछै सखि सौं हंसै। करै मनोरथ बिकसै लसै।। नैननि निपट चटपटो लहिये। सा तिय बासकसज्या कहिये।। **मुग्धा बासकसज्जा**–छिपी हार गूंथं छबि पावै। छल करि कटि किंकिनी बनावै।। दीपहि बारि सदन मैं धरै। तिन महिं तेल अधिक नहिं करै।। सखि कहुं सेज बिछावति लहै। घूंघट पट मैं मुझकै चहै।। छिन छिन प्रीतम को मग जौहै। मुग्धा बासकसज्या सोहै।। **मध्या बासकसज्जा**––पुहुप हारि गुहि सखिहि बतावै। कहइ कि मो सम ताहि न आवै।। मिस ही मिस पट भूषन धरै। सहचरि के अभरन सौं अरै।। द्वार चित्र देख नमिस बाला। पिय मग देखै रूप रसाला।। जाके चरित बिलोकि मनोज। हसि हसि चूमै बदन सरोज।। इहि प्रकार हिय हुलसति लहिये। मध्या बासकसज्या कहिये।। **प्रौढ़ा बासकसज्जा**––प्रगटहि अंगनि अभरन सजै। सखि जन तें रंचक नहिं लजै।। सेज बसन सब धूपित करै। सौरभ कारि दुर्दिन सौं अरै।। सखि.

सों सबै मनोरथ कहै । प्रौढ़ा बासकसज्या सो है ।। **परकीया वासकसज्जा**--छल करि सुमुखि खास कौ स्वावै । छल ही छल गह दीप सिरावै ।। सोवत छल कै बचन सुनावै । ता प्रिय कहु संकेत जनावै ।। बार बार हंसि करवटि लेय । जौन्ह सौ बदन दिखाई देय ।। सेज परो नूपुर रुनकावै । कर के कल कंकन कुनकावै ।। इहि परकार जुवति जो लहिये । परकिय वासकसज्या कहिए ।। **अभिसारिका**---समय जोग पट भूषन धारै । पिय अभिसारि आप अभिसारै ।। रूप अधिक बुधि की अधिकाई । अधिक चोप तं अधिक सुहाई ।। उठि चलै कहति पिया पै जोई । अभिसारिका कहावै सोई ।। **मुग्धा अभिसारिका**--बोलनि आई दूती दामिनि । चलिहै सग सहचारी जामिनि ।। भूत भविष कौं जाननिहारा । कहतु है बन सुभ गवन को बारा ।। झींगुरि मुख करि रटान अधारा । मगन ह्वै है करि न बिचारा ।। त्रप मु च मुखे अभिराम । अभिसर बलि जह सुंदर स्याम ।। इहि विधि ताहि सखी लै आवै । मुग्धा अभिसारिका कहावै ।। **मध्या अभिसारिका**--निरखि सुमुखि अभिसार को बारा । सखि संग गवने रुचिर बिहारा ।। तिमिर मैं नील निचोल बनावै । बदन चद पट बाट दुरावै ।। मग के सपन तें नहि सकै । तिन ही फनि मनि हाथ न ढकै ।। चद उदै चंदन तन धरै । जौन्ह सो आपुहि हँसि हँसि परै ।। रीझि मदन जा तिय के बानै । सो पुनि कुंद कुसुम सर तानै ।। इह परकार जुवति जो लहिए । मध्या अभिसारिका सु कहिए ।। **प्रौढ़ा अभिसारिका**– एकाकी पिय पै अभिसरै । धनुधर मदन सहाइक करै ।। रजनी कौं बासर सम जानै । तामैं धन तिहि दिनसनि आनै ।। तिमिरहि तरनि-किरनि सम देखै । गहवर बन सुभवन करि लेखै ।। दुर्गम मगहि सुगम करि जानै । मदन मत्त डर को को आनै ।। इहि बिधि कुंज सदन बलि आवै । प्रोढ़ा अभिसारिका कहावै ।। **परकीया अभिसारिका**--उरज भार भंगुर गति जाको । परिहै टूटि लटी काट ताकी ।। चल नहि सकति प्रम कै भारा । डारति काढ़ि मुक्त को हारा ।। धमिल खोलि सखि कहुं पकरावै । केलि कमल गहि दूरि बगावै ।। जब अति सिथिल होत सुकुमारा । टेकत चलै बारिधर धारा ।। जौन मनोरथ रथ तहं होई । क्यों पहुँचै पिय पैं तिय सोई ।। इहि बिधि मोहन पिय पै आवै । परकिय अभिसारिका कहावै । **स्वाधोनपतिका**---जाकौं पारिस पिय नहिं तजै । दिन दिन मदन महोत्सव सजै ।। नव नव अंबर अभरन धरं । बन बिहार रुचि पिय संग करें ।। सत्र मनोरथ पूरन लहिये । सा स्वाधोनवल्लभा कहिये ।। **मुग्धा स्वाधीनपतिका**---मो कटि तैसो कृस नहि भई । अंग कांति कछु अति नहि लई ।। उरजनि नहिन गरिमता तैसी । बचन चातुरी फुरी न वैसी ।। गति न मंद कछु भई सुहाई । नैनन नहिन बक्रिमा आई ।। ऐसरि पिय मनम हो कांहो । कारन कवन सुजानति नांहीं ।। इहि बिधि सखि प्रति बरसै सुधा । है स्वाधीनवल्लभा मुग्धा ।। **मध्या स्वाधीनपतिका**---हौं कछु रति उत्सव नहि करौं । अंक धरत धरनो पर परौं ।। संग सोवत नीबी गहि रहौं । चुंबन करत लाज जिय गहौं ।। मेरो बात अमी जिमि भावै । माहि गद्‌गद स्वर बात न आवै ।। तदपि न पिय पासि तजि जाई । तो कहि कहा करौं री माई ।। अरग अरग इमि सखि सों कहै । मध्या स्वाधिनवल्लभा इहै ।। **प्रौढ़ा स्वाधीनपतिका**—हे सखि अवरन के जे पिया । बात सुनहिं स्वकिया परकिया ।। मो प्रीतम मोहीं कहु जानै । आन जुवति सुपिनै न पिछानै ।। इहि परकार कहै रस बोढ़ा । सा स्वाधीन बल्लभा प्रौढ़ा ।।

परकीया स्वाधीनपतिका—प्रीतम के घर बहुत सुकीया । मोहीं सों हित मानत पिया ।। मधुबैनी बारिज-बर वैनी । हास बिलास राम रस रैंनी।। ऐपरि बन पुर अटा अटारी । पिय की दृष्टि न मों ते न्यारी ।। इहि परकार कहै जो तिया । है स्वाधीनपिया परकीया ।। **दोहा**—अंजन मंजन पट पहिरि गरब करौ जिनि कोय । अवरै प्रेम सुलच्छिनौ जिहि प्रीतम बस होय ।।२७९।। **प्रीतम गमनी**—जाको प्रीतम गवन्यो चहै । भीत भई कछु बैनहि कहै ।। गवन बिघन कहुँ मन मन सांचै । लोचन तें जल नाहिन मोचै ।। चित ही चित चिंता परि लहिए । सो तिय प्रीतम गवनी कहिए।। **मुग्धा प्रीतमगमनी**–गवन बात पिय की जब सुनै। सुनतहि मन मैं घुन ज्यों घुनै।। ताकी सखो गुपत भई डोलै। कुंजनि कल कोकिल ह्वै बोलै ।। रूप लता सी मुरझत लहिए । मुग्धा प्रीतमगवनी कहिए ।। **मध्या प्रीतमगमनी**—पिय कहुँ चलत जानि बर बाला । बोलै नहिं कछु रूप रसाला ।। भरइ न दीरघ स्वाँस सयानी । नैनन माँझ न आनै पानी ।। धरि रहै हाथ माथ कै धोरै । मनहुँ आप अक्षर टकटोरै ।। इहि परकार परखिये जोई । मध्या प्रोतमगवनी सोई ।। **प्रौढ़ा प्रीतमगमनी** हो श्रीपति पति पूछति तोहि । सत्य कहो सदेहै मोही ।। तन त्यागे हूँ जुवति न कहिया । इह बियोग जारत किन हिया ।। अरु ए कुसुमित वोर पटीर । देत जु बंधु मरे कहुँ नोर ।। जो परलोक हु गरल समान । क्यौं है देत बंधु अज्ञ न ।। ऐसै कहिकै चुपकै रहै । प्रौढ़ा प्रीतमगवनी सु है ।। **परकीया प्रीतमगमनी**—प्रानपिया कहुँ गवन जु लहै । पति रहसि पाय पिय सौ इमि कहै ।। तुम हित कौन दुकृत नहिं किए । पन्नग-फन परि मैं पग दिये ।। पति द्विज देव-सेव सब तजी । नीति तजी कुल लाज न लजो ।। तिनके फल ते नरक बताये । ते सब मोकहुँ जोवत आये ।। तपन जाचना आई तन कौं । कुंभीपाक पराभव मन कौं ।। महाघोर रौरव जु बतायो । क्रोध रूप ह्वै नैनन आयो।। जुगत आहि पिय गवनत तोहि। क्यों न होय ऐसी गति मोहि ।। इहि परकार कहत तिय जोई । परकिय प्रीतमगवनी सोई ।। **दोहा** —चलन कहत है काल्हि पिय, का करिहौ मेरो आलि । बिधना ऐसो करि कछू,जैसे होय न काल्हि ।।३०३।।

नायक भेद—नाइक बरनें चारि प्रकार । प्रमदा प्रेम बढ़ावनहार।। एक धृष्ट,इक सठ एक दच्छिन इक अनुकूल सुनहि अब लच्छिन ।। **धृष्ट नायक**—करि अपराध प्रिया ढिग आवै । निधरक भए बात बहरावै ।। ताकहुँ प्रिया कटाछिन तारे । हारनि बाँधे कमलनि मारे । मारि बिठारि द्वार पहुँचावै । सोवति जानि बहुरि फिरि आवै ।। जो पिय कनक कहूँ करुनावै । पाटी तरे परयो तिहि पावै चपरि सेज पर सौवै जोई । नाइक धृष्ट कहावै सोई ।। **सठ नायक**---बाल-भाल में तिलक बनावै । गुहि गुहि फूल माल पहरावै ।। मकर पत्रिका रचै कपोल । बोलत जाय भावते बोल ।। किंकिनि बंधन मिस करि टोरै । छल करि नीबी बधन छोरै ।। इहि बिधि रमनी-रमन जु होई । कहत है कबि सठ नाइक सोई ।। **दक्षिण नायक** जब ललना मंडल मैं आवै । अति अनुराग भरचो छवि पावै ।। कहतु किए अनेक छबि ऐना । मेरे अनगन है बिबि नैना ।। कित कित हुव निवेसि तकीजै । बदन बदन सुख कैसे लोजै नैन मूँदि तब तिन मैं रहै । भीतर ही सब मुख सुख लहै।। रोमांचित तन दिखिये जाकै । दच्छिन नाइक लच्छिन ताके।। **अनुकूल नायक**–नित ही

तिय के रस बस रहै। अवर सुंदरी सपन न चहै।। करकस ठौर प्रिया जब चलै। तिहि दुख ताकौ हिय कलमलै।। ज्यों श्रीराम चले बन घन मैं। सिय कें चलत कहत यों मन मैं।। हे अवनी तुम मृदु तन धरौ। हे दिनकर तुम तपति न करौ।।अहो पवन तुम तृन न बहाऊ। रे नग मग तें बाहरि जाऊ। रे दंडक बन नियरो आय। चलि न सकति सिय कोमल पाय। इहि परकार रहै रससान्यो। सोइ नाइक अनुकूल बखान्यो ।।

भाव—प्रेम की प्रथम अवस्था आई। कवि जन भाव कहत हैं ताई। भाव बढ़्यो क्यों जानिए सोई। अवर वस्तु कहुँ ठौर न होई।। **हाव**- नैंन बैंन जब प्रगटैं भाव। ते भल सुकवि कहत हैं हाव।। **हेला**–खन खन बाँन बनायौ करै। बार बार कर दर्पन धरै।। अति शृंगार मगन मन रहै। ताकहु कवि हेला छबि कहै।। **रति**—जाके हिय मैं रति सचरै। निरस वस्तु सब रसमय करै।। जैसें निबादिक रस जिते। मधुर हौंहि मधु मैं मिलि तिते।। जदपि बिघन आवहिं बहु भारे। जारति रस के मेटनहारे।। तदपि न भृकुटी रंचक मटकै। एक रूप चित रस कहुँ प्रगटै।। स्तंभ स्वेद पुनि पुलकित अंग। नैंननि जलकन अरु स्वरभंग।। तब बिबरन हिय कंप जनावं। बीच बीच मुरझाई आवै।। इहि प्रकार जाकौ तन लहिए। सो वह रंग भरी रति कहिये।।

दोहा

इहि विधि यह रस मंजरी, कहि यथा मति 'नँद'।
पढ़त बढ़त अति चौप चित, रसमय सुख को कंद ।।३३९।।

× × × ×

टिप्पणी—

कठिन अप्रचलित शब्दों का अर्थ—

प्रत्येक पृष्ठ पर जहां शब्द आया है उस पंक्ति की अंक से संख्या बताई गई है।

पृष्ठ—२८९

१ आनन्दघन—आनन्द के बादल, आनन्द की वर्षा करने वाले अर्थात् देने वाले।
रसमय—रस से भरे हुए।
रस–कारण-रस को पैदा करने वाले।
रसिक–रस का आनन्द लेने वाले।
४ जल-धर—बादल, समुद्र।
कलै—अवसर इच्छा।
अनगन-अगणित।
५ ररै—रलै, मिले।
९ पिछौना—पहिचानें।
१० मधुलिह—शहद की मक्खी।
निरोमिलक—अमूल्य, बहुत दाम का।
११ दूतर-दुस्तर, कठिन।
१२ दूभैं—दुःखी करै।
१३ कर करि—हाथ से।
पाथरासि—समुद्र।
१६ वनिता—भेद-नायका-भेद।
१७ स्वकीया-अपनी विवाहिता स्त्री।
परकीया—दूसरे की स्त्री
१८ सामान्या—साधारण वेश्या आदि।
मुग्धा—कैशोर अवस्था की स्त्री युवती।
मध्या—पूर्ण युवती जिसमें पति के प्रति लज्जा तथा वासना समान हो।
प्रौढ़ विहार—प्रौढ़भा, प्रगल्भ,कामकेलि में दक्ष।
१९ नऊढ़ा—(नवोढा) तुरन्त की ब्याही हुई, पति समागम से संकोच करने वाली।
बिश्रब्ध नऊढा—पति पर कुछ प्रेम तथा विश्वास रखने वाली।
२० अंकुरै—अंकुरित हो,स्पष्ट हो।
संकुर-संकुचित हो,सिकुड़ी रहै।
अलि—सखी।
२२ निर्वासित करें—बैठावे।
क्रोडी करि—गोद में लेकर।
२३ बैसंधि-वयः संधि, बाल्य तथा कैशौर का मिलन काल।
पारिदि—पारा।
२४ ढरी—ढाली हुई।
२५ मुक्ताफल—मोती।
पानिद—पानी,चमक।
२७ जमल—यमल, युग्म
औंघ—ऊँघना।
बलसि—बलि. बल, पेट की सिकुड़न।

पृष्ठ—२९०

६ चन्द्रचूड़—शिव।
५ सुकृती—पुण्यात्मा।
८ सोहन—शोभन, सुन्दर।
मध्यास्तु-मध्याः+तु,मध्या।
९ गहगोरी-गह+गोरी,प्रसन्नता के कारण जिसका गौरवर्ण खूब खिला हुआ है।
१० कोविदा—दक्ष, कुशल।
११ प्रगल्भ बैनी—बोलने में तेज।
रसरैनी—रस+रमणी, रसिका।
१३ बिचच्छिन--विलक्षण, चतुर।
१४ सापराध--दोष सहित।
विंगि—व्यंग, टेढा-मेढा।
१६ नलिनिदल—कोई के फूल का पत्ता।
बिजना—पंखा
बीजौ—पंखा हाँको,हवा करो।
रंचक—थोडा
करेरी-टेढा।
२० अव्यंगि—अव्यंग्य,स्पष्ट।
रिस मौख—क्रोध मिश्रित।
२३ सागस—सामने पास।
कुश—काँटा।
२५ प्रगोरी—अत्यन्त गोरी।
२७ अवधारै—विचार करें।
प्रतिबिंब—छाया, चित्र।

पृष्ठ २९१

१ अंतर—भीतर।
सुतन्तर—स्वतन्त्र, अकेली।
२ आंषु-चूहा।
मंजारी-बिल्ली।
उपरि परी—उछल कर कूद पड़ी
दइमारी—दैव की मारी, अभागी।
३ छतनि—घाव।
सुरति गोपना—पर-पुरुष के समागम को छिपाने वाली।
५ बल्लि—लता।
७ वाक विदग्धा-बात करने में चतुरा।
लछिपायी-प्रगट हो गया छिप न सकी।
८ सतर—टेढी।
९ पेट पातरै—हलके पेट में।
१० लछिता-लक्षिता जिसका रहस्य छिप न सका।
१३ देसांतर—दूसरे देश में विदेश।
विरह-जुर-विरह का ताप।
१४ प्रोषित पतिका, प्रोषिता—जिसका पति विदेश

गया हो।
१८ वलै–वलय कडा।
१९ आधि–चिंता दौर्बल्य।
२२ बाहु की वलय–बरेखी, जोसन आदि।
नाडिका–नाडी।
२३ जीति है–जीती है।
२६ अँवा-अगिनि–मिट्टी के बर्तनों को पकाने की
आँवा की आग।
२८ चकमक–चकमाक, एक प्रकार का कड़ा पत्थर जिस पर लोहा रगड़ने से चिनगारी निकलती है।
खंडिता-जिसका पति पर स्त्री के पास रात्रि बिताकर सवेरे गृह लौटे।

× × ×

पृष्ठ २९२

६ ऐंपरि–इस पर
९ दुसासन-उसास का उल्टा, स्वांस छोडना।
११ कलहंतरिता–प्रिय से पहिले लड़ बैठे और पछताकर रोवे।
१४ घुरा-घुसकर चिपककर।
१६ रवन-रमण,पति।
१८ तरौरे-टेढा।
१९ अनखि-क्रोध करना।
२१ हरुए-हलके।
गुर-गुण।
२२ बिरराई-भगा दिया।
२३ अपमाने-अपमान किया।
बिकूल-प्रविटाकूल उलय।
२५ ऊनौ करै-छोटा करें हानि पहुँचावै।
उत्कंठिता--संकेत स्थान में प्रिय को नपा कर व्यग्र।
२८ बिरमायै-बहला लिया, रोक रखा।
मूझै-मुर्झाय,कष्ट पावे।
मोरे लये-बहला लिया रोक लिया।

× × ×

पृष्ठ २९३

विप्रलब्धा-विरहिणी।
१६ वामदेव-महादेव
शूलिन-हिमकर धर-महादेव
१७ मृड्-शिव।
१८ त्रिनेन-शिव।
१९ तरंगिनि-नदी।
२२ गैबर-गजवर, बडा हाथी।
कवर-केशों का गुच्छा।
२३ सुरति-प्रेम-समागम।
२४ वासक सज्जा पति-आगमन जानकर उसके सत्कार की तैयारी करने वाली स्त्री।

× × ×

पृष्ठ—२९४

२ सिरावै-ठढा करे, बुझावे।
३ जोन्ह-चांदनी।
४ अभिसारिका-प्रिय से मिलने के लिए जाती हुई नायिका।

॥ श्री हरिः ॥

विरहमंजरी

दोहा—परम प्रेम उच्छलन इक,बढ़्यो जु तन मन मैन। ब्रजबाला बिरहिनि भई, कहति चंद सौं बैन ॥१॥ अहो ! चंद रस-कंद[1] हो, जात आहि उहि देस। द्वारावति नँदनंद सौं, कहियो बलि[2] संदेस ॥२॥

चौपाई—चले चले तुम जैयौ जहाँ। बैठे होंहि साँवरे तहाँ॥ निधरक कहियो जिय जिनि डरौ। हो हरि अब ब्रज आवन करौ॥ तुम बिनु दुखित भई ब्रजबाला। नागर नगधर नंद के लाला॥ प्रसन भये किधौं सुंदर स्यामा। सदा बसौ वृंदावन धामा॥ याकै बिरह जु उपज्यो महा। कहौ नंद, सो कारन कहा॥ नंद समोधत ताकौ चित्त। ब्रज कौ बिरह समुझि लै मित्त॥ ब्रज मैं बिरह चारि परकारा। जानत हैं जो[3] जाननहारा॥ प्रथम प्रतच्छ बिरह तू गुनि लै। तातैं पुनि पलकांतर सुनि लै॥ तिसरौ बिरह बनांतर भए। चतुरथ देसांतर कै[4] गए॥ प्रतछि बिरह के सुनि अब लच्छिन। चकित होत तहँ बड़े बिच्छिन॥ **प्रत्यक्ष-बिरह वर्णन**—ज्यों नवकुंज सदन श्री राधा। बिहरति पिय सँग रूप अगाधा॥ पौढ़ी पीतम अंक सुहाई। कछु इक प्रेम लहरि सी आई॥ संभ्रम भई कहत रस बलिता। मेरे लाल कहाँ री ललिता॥

दोहा—भूत छिये, मदिरा पिए, सब काहू सुधि होय।
प्रेम-सुधा-रस जो पिए, तिहि सुधि रहै न कोय ॥१०॥

पलकांतर बिरह—सुनि पलकांतर बिरह की बातैं। परम प्रेम पहिचानत तातैं॥ सोभा-सदन बदन अस लोनौ। कोटि मदन छबि करि नहिं होनौ॥ सो मुख ब्रज अवलोकन करै। तब जु आइ विचि पलकैं परै॥ ब्याकुल ह्वै भारी ब्रजनारी। तिहि दुख देत बिधातहिं गारी॥

दोहा—बड़ौ मंद अरबिंद-सुत, जिहि न प्रेम पहिचानि।
पिय-मुख देखत दृगन, कै पलक रची बिचि आनि ॥१३॥

वनांतर बिरह—बिरह वनांतर कौ सुनि लीजै। गोपिन के मन मैं मन दीजै॥ जब बृंदाबन गोगन गोहन। जात हैं नंद-सुवन मनमोहन॥ तब की कहि न बनति कछु बात। इक इक पलक कलप सम जात। इक टक दृगनि लिखी सी डोलै। बोलै जब जनु पुतरी बोलै॥

दोहा—नैन बैन मन श्रवन सब, जाय रहत पिय पास।
तनक प्रान घट मैं रहै, फिरि आवन की आस ॥१६॥

देसांतर बिरह—सुनि देसांतर बिरह-बिनोद। रसिक जनन मन बढ़वन मोद[5]॥ नंद सुवन की

---

[1] प्रति ख में 'सुखकंद तुम'।
[2] प्रति ख में 'जाइ'।
[3] प्रति ख में 'उहि जे'।
[4] प्रति ख में 'बिरह देसांतर गए'।
[5] प्रति ख में पाठा०—'रसिकनि मनहिं बढ़ावन मोद।

लीला जिती । मथुरा द्वारावति बहु भँती ।। सुमिरत तदाकार ह्वै जाहीं । इहि वियोग इहि विधि ब्रज माहीं ।। ज्यों मनि कंठ बाँधि कै कोई । बिसरै बन बन ढूँढै सोई ।। सो यह बाला रूप रसाला । साँझ मिले हैं मोहनलाला ।। पियहि फूल माला ही दीनी । सुंदर अंग राग रस भीनी ।। ताहि पहिरि कै कनक अटारी । पौढ़ि रही भरि आनँद भारी ।। रही हुती रजनी कछु थोरी । जागि परी जु सहज बर गोरी ।। द्वारावति लीला सुधि भई । ताही छिन जु बिकल ह्वै गई ।। दृष्टि परि गयो चंदा गैन । लागी ताहि संदेसा दैन ।। द्वादस मास बिरह की कथा । बिरहिनि कौं दुखदाइक जथा ।। छिनक माँझ बरनी तिहि बाला । महाबिरहिनी है तिहि काला ।।

दोहा—निपट अटपटौ चटपटौ, ब्रज कौ प्रेम वियोग ।
सुरझाएँ सुरझै नहीं, अरुझै बड्डे लोग ।।२३।।

सोरठा, बारहमासा, चैत्र—चैत चलौ जिनि कंत, बार बार पाँ परि कहौं ।
निपट असंत बसंत, मैन महा मय मंत जहँ ।।२४।।

चौपाई तदपि न रहे चलेई चले । कहियो चंद भले जू भले ।। तब ही कुहुक कोकिला कियौ । सुनतहि दहकि बहकि गयो हियो ।। जनु किलकार मैन मोहि दई । जु कछु कहत ही सोई भई ।। मदन जाल गोलक से भौंरा । फिरि गए उपरि ठौर ही ठौरा ।। सुखद जु हुतौ तुम्हारै संग । सो वह बैरी भयो अनंग।। नव पुहुपन के धनुष बनावै। मधुप-पाँति तिनि तंति चढ़ावै।। नूत के नूतन अंकुर बाना। तकि तकि भरम[1] करत संधाना ।। अरु इह त्रिगुन पवन कितहू कौं । पुहुप पराग लिये कर बूकौ ।। फागु सो खेलत बन मैं फिरे । रस अनरस सब काहू भरै ।। पचबान के प्रान समान । तिन अति चंचल किये परान ।।

दोहा—जलचर ज्यों जलभीर मैं, जानत नाहिन पीर[2] ।
बिछुरी परै जब नीर तैं, सच सचु जानै नीर[3]।।३०।।

सोरठा बैशाख—आवहु बलि बैसाख, दुख-निदरन सुख-करन पिय ।
उपज्यो भन अमिलाष, बनै बिहरनै गिरिधरनै सँग ।।३१।।

चौपाई—कुसुम धूरि धूँधरी सुकुंजै । मधुकर निकर करत तहँ गुंजै ।। गुहि गुहि नवल मालती-माला । मोहिं पहराहु मोहनलाला ।। ललित लवंग लतनि की छाँही । हँसि बोलौ डोलौ गहि[4] बाँही ।। पुलिन कलिंदी कौ अति रम्य । त्रिगुन पवन ही को तहँ गम्य ।। किसलय सयन सुपेसल कीजे । सिर तर सुमन उसीसा दीजे ।। इक पट वोट वोटि सुख कीजै । आवहु बलि छिन छिन छबि छीजै ।। द्रुमनि सौं लपटि प्रफुल्लित बेली । जनु मोहिं हँसति है देखि अकेली ।। जौ कवहूँ पिय ध्यानहि धरयो । परिरंभन चुंबन पुनि करयो ।। रंचक सुख बहुरचों दुख भारो काहि बिससिये दसा हमारी ।।

---

[1] पाठा०—'मार मकर' ।

[2] प्रति ख में पाठा०—'परसति नहिं तन पीर ।'

[3] प्रति ख में पाठा०—'तब जान्यौ सचु नीर ।'

[4] प्रति ख में पाठा०—'गर' ।

दोहा—इहि बिधि बलि बैसाख इह, बीत्यो दुख सुख लागि ।
सँड़सी भई लुहार की, खिन पानी खिन आगि ।।३७।।

सोरठा, ज्येष्ठ—रही न तनक अमैठ, तुम बिन नंदकुमार पिय ।
निपट निलज इह जेठ, धाय धाय बधुवनी गहै ।।३८।।

चौपाई—बृष की तपति तपति अति बई । घर बन अनलमई सब भई ।। तैसिय बिरह बिथा तन नई । अगिन मैं अगिन और ज्यों दई ।। चंदन चरचे अति परजरै । इंदु-किरनि घृत-बूँद सी परै ।। चंदन चंद तौ तिनकौं सियरे । जिन तैं नंदसुवन पिय नियरे ।। अहो चंद, मो दुख तन झाँकौ । मंद मंद ए मृग जिनि हाँकौ ।। झमकि जाय हरि पियहि सुनाई । करिहौ कहा बहुरि ब्रज आई ।। दावानल जु पान हो करयौ । सो वह बहुरि बिपिन संचरयो ।। अरु कहियो सब ही दुख पायो । काली फिरि कालिंदी आयो ।। बेगि जाहु ब्रज-बिपतिहिहरौ । गुन अवगुन कछु[1] जिय जिनि धरौ ।।

दोहा—छीर-समुद के मीन जिमि, बसत चंद ढिग आहि ।
चंदहि मंद न जानहीं, जलचर मानत ताहि ।।४४।।

सोरठा, आसाढ़—बिपत न बरनी जात, दई जु मास आसाढ़ मोहि ।
औचक आधी राति, पीव पीव पपिहा करयौ ।।४५।।

चौपाई– वह दुख वह रजनी ए जानै । कासौं कहौं कहें को मानै ।। कौनहि भाँति भोर जब भयो । दुख ही मैं दुख उपज्यो नयो ।। पावस-सैन मैन लै चढ्यो । बिरही जन मारन रिस बढ़यो ।। बदर बनैत चहूँ दिस धाये । बूँद बान धन बरसत आये ।। घन मैं चमकति अति दामिनि । भौन मैं भाजि दुरति है भामिनि ।। घेरी मैन-सैन दुखदाइक । तुम बिन कौन छुड़ावन लाइक ।।

दोहा—मोर सोर नसि सुंदरी, डरी खरी सुनि ताहि ।
काहू बिरहिनि पर मनौं, मैन परयौ रतत्राहि ।।४६।।

सोरठा, श्रावण—हो, मनभावन पीब, सावन आवन कहत सब ।
अवगुन कवन जु तीय, आयो नहीं जु खन भवन[2] ।।५०।।

चौपाई—अब देखिव उमगी धनमाला । जनु मदमत्त मदन की ढाला ।। छुटे जु बंधन तोरि मरोरी । धनुष धने जनु पँचरँग डोरो ।। बगनि की पाँती बड्डे दंत । धुरवा मद के पटा बहंत ।। गरजनि गूँजनि सुनि सुनि महा । दलकत[3] हिय दुख कहिये कहा ।। भरि भरि सुंडनि डारत पानी । डारत मोहि करत नकवाँनी ।। घूमत चलत महा मतवारे । ढाइत पिय के अवधि-करारे ।।

दोहा– अवगुन होय जो मित्त मैं, मित्त न चित्त धरंत ।
केतकि-रसबस मधुप जिमि, दुख-कंटक न गनंत ।।५४।।

---

[1] प्रति ख में पाठ०—'हि कछू जिय धरौ' ।

[2] प्रति ख में पाठा०—'नहिं जु खन भवन' ।

[3] प्रति ख में पाठा०—बरकत ।

सोरठा, भाद्रपद—भादौं अति दुख-ऐन, कहियो इदु गोविंद सौं ।
घन अरु तिय के नैन, होड़नि बरसत रैन दिन ।।५५।।

चौपाई—गति विपरीत रची तब मैन । गरजै धन बरसै तिय नैन ।। सींचत भुज-मूलनि दृग नाई[1] । छिन छिन[2] बिरह-बेलि अधिकाई ।। भादौं रैन अँध्यारी भारी । तिन मैं तिय अति होति दुखारी ।। घन हर घारै पवन झकोरै । दादुर झींगुर काननि फोरै ।। आँगन बीज करत मनु चोटैं । घर मैं अति अँधार घट घोटैं ।। इकली देहरी ठाढ़ी रहै । बढ़ि गई रैंनि घटन नहिं कहै ।। अहो चंद गतिमंद न गहौ । सुंदर गिरिधर पिय सौं कहौ ।। इंद्र कोप कीनौं पुनि अबै । जल-ब्याकुल गोकुल है सबै[3] ।। आवहु बलि विलंब जिनि करौ । वहुर्यौ फिरि गोबरधन धरौ ।।

दोहा—प्रान रहे घट आय इमि, जिमि जब अंकुर तोय ।
अन आवन जु प्रबल पवन, उर पर है पिय सोय ।।६१।।

सोरठा, आश्विन—कहियो उडुप उदार, सुंदर नंदकुमार सों ।
अस कछु[4] कीनी कॉर, हार भार तें डारि दिय ।।६२।।

चौपाई—खंजन प्रगट किये दुख दैना । संजोगिनि तिय के से नैना ।। निरमल जल महँ जलजहु फूले । तिन पर लपट अलि कुल झूले ।। सुधि आवत वा मोहन-मुख की कुटिल अलक जुत सीवाँ[5] सुख की ।। मोरनि नव तन चंदन धारे । देखि दृग होत दुखारे ।। आवहु बलि वै सिर पर धरौ । पंख पुरातन व्हाँ ते करौ ।। साँझ समै बन तैं बनि आवो । गो-रज-मंडित बदन दिखावो ।। वा छबि बिन ये नैन हमारे । जरत हैं महा बिरह-जुर जारे ।।

दोहा—और ठौर की आगि पिय, पानी बुझाय ।
पानी मैं की आगि बलि, काहे लागि सिराय ।।६७।।

सोरठा, कार्तिक—प्रीतम परम सुजान, कातिक जौ नहिं आयहौ ।
तौ ये चपल परान, पिय तुम ही पै आयहैं ।।६८।।

चौपाई—अहो चंद बलि चलि जिनि मंद । जाहु बेग जहँ पिय नँदनंद ।। समौ पाय कहियो अरुगाई । जैसे बलि उनहिं सुहाई ।। आई सरद सुहाई राती । प्रफुलित बलित मल्लिका जाती ।। उदित उहै उडुराज सदा कौं । रहत अखडित मंडल जाको ।। छुटि रहि ज्योति बिमल चंदिनी । सुभग पुलिन कलिंद-नंदिनी ।। सीतल मृदुल बालुका सच्यो । जमुना सुकर तरंगनि रच्यो ।। कलपत कत[6] रे मंजुल मुरली । मोहन मधुर सुधा रस जुरली ।। ठाढ़े ह्वै पिय बहुरि बजाओ । ताकरि ब्रज सुंदरी बुलाओ ।।

---

[1] प्रति ख में पाठा०—जाई ।

[2] प्रति ख में पाठा०—त्यों त्यों ।

[3] प्रति ख में पाठा०—जालगि ब्याकुल गोकुल सबै ।

[4] प्रति ख में पाठा०—कुस ।

[5] प्रति ख में पाठा० ग्रीवा ।

[6] प्रति ख में पाठा०—तरु तरे' ।

मिलि खेलौ चलि[1] रास बिलासा । परिरंभन चुंबन परिहासा ।। सहज सुगंध रावरी बाहु । कंठनि मेलि मिटावो दाहु ।।

दोहा—अजरि परत अब अंग सब, चोबा चंदन लागि ।
विधि-गति जब विपरीत तब, पानी ही मैं आगि ।।७४।।

सोरठा, मार्गशीर्ष—अगहन गहन समान, गहियत मोर सरीर-ससि ।
दीजै दरसन दान, उगहन होय जु पुन्यबल ।।७५।।

चौपाई—बिछुरन जोग बनि गयो आय । बिरह-राहु को बनि गयो दाय ।। पूरब बैर सुमिरि रिस भर्यौ । मो तन-चंद आनि कैं धर्यौ । दिये जु दंत बिधुंतुदु गाढ़े । ते[2] क्यों हूक कढत नहिं काढ़े ।। बहत न रहत नयन इकसारा । ते जनु चलत अमृत को धारा । पिय दरसन जु सुदरसन आही । रंचक आनि दिखाबहु ताहि ।। हो ससि जौ पिय नंदकिसोर । अवगुन कहन लगै कछु मोर । तौ तुम तिन सों कहियो ऐसैं । बहुरि कहूँ न अभ्यासै जैसे ।।

दोहा—मित्त जु अवगुन मित्त के, नहिंन अनत भाषंत ।
कूप छाँह जिमि आपनी, हिय ही मधि राखंत ।।८०।।

सोरठा, पौष—बिपति[3] परी इहि पूस, अहो चंद नँदनंद बिन ।
सबै तापनौ फूस, बिन घुरि सोए स्याम उर ।।८१।।

चौपाई—बड़ी रैन तनक से दिना । क्यों भरिए पिय प्यार बिना । महाबकी जिमि आवति राति । झट दे मोहिं लीलि है जाति ।। मदन दाढ़ बिच दै दै चँपे । तिहि दुख ताकौ तन मन कंपे । रवि जौ तनक न लेय छुड़ाई । तौ मोहि निसा-बकी गिलि जाई ।। मास दिवस के हे जब पीय । तब तुम हती हुती इह तोय । अब तो बलि बलवंत पियारे । कंस केसि चाँनूर सँघारे ।।

दोहा—अहो चंद ब्रजचंद बिनु. परे सबै दुख आय ।
सदन अघासुर से भये, तिन तन चह्यो न जाय ।।८५।।

सोरठा, माघ मकर जु दारुन सीत, कहियो ससि पिय सों रहसि ।
घर आवहु हरि मीत, छिन छिन छति सौं लागि कैं ।।८६।।

चौपाई—कपि गुंजा लौं जनत बनावै । तिन तें अधिक अधिक दुख पावै । बेदन आन औषधी आन । क्यों दुख मिटै जान-मनि जान ।। दिन अरु रजनी परै तुसारा । सीतल महा अगिनि की झारा । मृदुल बैलि सी ब्रज की बाला । सुरभि चलों हो गिरिधर लाला ।। अरु कहियो बलि हरि सौं ऐसै । देखे जात दुखहि तुम जैसे ।। जौ कबहूँ हठि नींद अनैये । साँवरे पिय सुपने मैं पैयै ।। तदपि न सुख तहँ

---

[1] प्रति ख में पाठा०– 'बलि'

[2] प्रति ख में पाठा०—'ताही पै आत कढ़त न काढ़े' ।

[3] प्रति ख में पाठा०—'विपरीतनि इहि द्यौंस' ।

परिये जागि । प्रजरत महा आगि ते आगि ।। ज्यों चकई निज झाँई चाहि । मुदित होत पति मानत
ताहि ।। प्रबल पवन पुनि आय डुलावै । चकई बिलपि परम दुख पावै ।। तैसौ इह कहिये अब[1] कौन ।
दाधे पर जस लागत लौन ।।

दोहा—मास मास के दिवस[2] करि, मास रह्यो नहिं देह ।
साँस रह्यो घट लागि कैं, बदन चहन कै नेह ।।९२।।

सोरठा, फाल्गुन—जौ इह फागुन पीय, फाग न खेलहु आय ब्रज ।
कै हौं कै इह जीय, कोउक तुम पै आय है ।।९३।।

चौपाई—मोहि तौ लै चलि चंदा मंदा । जहँ मोहन सोहन नँदनंदा । कहा करैंगे गुरुजन मेरो ।
दुरजन क्यों न हँसो बहुतेरो ।। जाकैं अंग रोग है महा औषध खात लाज है कहा ।। इह बिधि घरि इक
रही चटपटी । बात प्रेम की निपट अटपटी ।। बहुरयो ब्रज लीला सुधि आई । जामैं नित्य किसोर
कन्हाई ।। सुपनै कोउ दुख पावत जैसे । जागि परे सुख पावत तैसै ।। तबही कान्ह बजाई मुरली ।
मधुरमधुर पंचम सुर जुरली। गैयाँ मिलवन मिस उठि भोर । गहगोरी गवनी उहि बोर।। ठाढ़े निकसि
कुँवर वर पौरी । बन[3] हरि भाल चँदन की खोरी । लटपटि पाग कछुक धुकि रही । सो छबि परति
कौन पै कही ।। आरस रस भरे चंचल नैन । जिनहि निरखि मुरझत मन मैन ।। इकले प्रानपियारे
पाये । देखि हरष भरे नैन सिराये ।। ताकौं निरखि नैन अरबरे । सुंदर गिरिधर पिय हँसि परे ।।
समाचार जाने तिहि तिय के । अंतरजामी सबके हिय के ।। इहि परकार बिरह मंजरी । निरवधि परम
प्रेम रस भरी ।। जो इहि सुनैं गुनैं हित लावै । सो सिद्धांत तत्व कों पावै ।।

दोहा—अवर भाँति ब्रज को बिरह, बनै न क्यौं हू 'नंद' ।
जिनके मित्र विचित्र हरि, पूरन परमानंद ।।१०२।।

---

[1] प्रति ख में पाठा०—दुख ।

[2] प्रति ख में पाठा०—कदन ।

[3] प्रति ख में पाठा०—बनि रहि निसि की चंदन खौरी ।

× × ×

।। श्री हरिः ।।

विरहमंजरी

टिप्पणी

कठिन शब्द जिस पंक्ति में है उसकी संख्या दी गई है । पृष्ठ २९९ से प्रारम्भ है

१–उच्छलन–उमड़ना ।
मैन–कामदेव, प्रेम ।
७–समोधत–सांत्वना देते हैं ।
८–प्रतच्छ–प्रत्यक्ष, सामने रहते ।
पुलकांतर–अप्रत्यक्ष, आंखों की ओट ।
११–संभ्रप–भ्रमवश ।
१२–बलिता–भरी हुई, युक्त ।
१३–छिए–छूने पर, लगने पर ।
१८–अरबिंद–सुत-कमल से उत्पन्न, ब्रह्मा ।
२२–पुतरी–पुतली ।

पृष्ठ नं० ३००

१–तदाकार–उसी रूप का, वैसा ही ।
५–गैन–गगन ।
८–अटपटौ-गूढ़ ।
११–असंत–असाधु, दुष्ट ।
मयमत–मत्त ।
१२–कुहुक–मीठी बोली ।
१३–किलकार–हर्ष ध्वनि ।
१५–तंति–ताँत की डोरी ।
नूत–(सं० नूद) शहतूत ।
१७–पंचबान–कामदेव ।
२३–धूंधरी–धूमिल, छाई हुई ।
२४–लवगलता–एक प्रकार की बेल ।
२५–सुपेसल–मुलायम ।
२६–उसीसा-तकिया ।
२७–परिरंभन–आलिंगन ।

पृष्ठ नं० ३०१

३–अमेठ–ऐंठ ।
४–बधुवनि–बहुओं को ।
५–तपति–ताप मर्मी ।
बई–बड़ा दी ।
७–सियेर–ठढ़ा ।
२०–रतबाहि–डाँका ।
२४–धुखा–बादल ।
पटा–बिना धार की तलवार का खेल ।
२६–नकवानी–सताना ।
अवधि–आने का दिया हुआ समय ।

पृष्ठ नं० ३०२

२–होडति–बाजी लगाकर ।
५–बीज-बिजली ।
११–उडुप–चन्द्रमा ।
१५–चंदव-चन्द्रयुक्त पंख ।
१७–जुर-ज्वर, ताप ।
२२–अरुगाई–एक एक बात समझाकर ।
२३–जाती–मालती पुष्प ।
२५–कलिद नदिनी–जमुना ।
सुकर–सुंदर ।

पृष्ठ नं० ३०३

३–प्रजरि–प्रज्वलित ।
६–उगहन–उग्रह छुटकारा ।
७–दाय–दाव ।
८–विधुंतुह–राहु ।
९–इकसारा–एक समान, बराबर ।
१६–महाबली–पूतना राक्षसी ।
१८–गिलि जाइ–निगल जाय ।
२२–मकर–एक राशि, शीत काल ।
रहीस–प्रसन्न होकर ।
२५–मानमनि–ज्ञानी ।
२७–अनैये–लाती हूं ।

पृष्ठ नं० ३०४

३–दाधे–जल ।
१५–अरबरे–चंचल हो गए ।

"आनन्द कंद नन्द कुमार"
राग (सारंग)

आनन्द की निधि नंदकुमार ।
पर ब्रह्म नट भेष नराकृत जगमोहन लीला अवतार ।।
स्त्रनि आनँद मन मँहि आनँद लोचन आनँद आनँद पूरति ।
गोकुल–आनँद गोपी-आनँद नद-जसोदा आनँद–मूरति ।।
सब दिन आनँद धेनु चरावत बेनु बजावत आनँद–कंद ।
नृत्तत-हँसत-कुलाहल आनँद राधा-पति वृंदाबन चंद ।।
सुर·मुनि आनँद संतनि आनँद निज गुन आनँद रास-बिलास ।
चरनकमल–मकरंद-पान के अलि आनँद 'परमानँददास' ।।

कान्ह ! कमल-दल नैन तुम्हारे ।
अरून बिलास बंक अवलोकनि हठि मनु हरति हमारे ।।
तिनि पर बनी कुटिल अलकावलि मानहुँ मधुप झँकारे ।
अतिसै रसिक-रसाल-रसमसे चितते टरत न टारे ।।
मदन कोटि रवि कोटि-कोटि ससि ते तुम ऊपर वारे ।
'परमानंददास' की जीवनि गिरिधर नंददुलारे ।।
नैन कुरंगी रति रस माते फिरत तरल अनियारे ।
नवल किशोर श्याम धन तन बन, पाये हैं नव निधि बारे ।।
नाना बरन भये सुख पोखे श्याम सेत रतनारे ।
'चत्रभुज' प्रभु गिरिधरन कृपा रंग, रंग, रंगि रचि रुचिर संवारे ।।

कुंज भवन के आंगन बैठे मोहनलाल गोवर्धन धारी ।
रति रस केलि विलास करत अति अंग-अंग रंग भयो भारी ।।
रस भरे पिय प्यारी गावत पंचम राग तान तरंगनि पारी न्यारी ।
'कृष्णदास' प्रभु रसिक मुकटमनि, श्याम तमाल कनक बेलि प्यारी ।।

कुंज भवन में बैठे श्यामा श्याम ।
आस पास मालती माधवी विविध कुसुम बन्यौ धाम ।।
सखी सहचरी ललिता विशाखा करत मधुर स्वर गान ।
अति आनन्द मुदित मुख निरखत, ज्यों चकोर रति मान ।।
क्रीडा रस बस भये मगन (दोउ), मनसिज गयौ लजान ।
'कृष्णदास' प्रभु गोवर्धन धर, ब्रजजन जीवन प्रान ।।

।। श्री हरिः ।।

इस्क चिमन

भक्तवर श्री महाराज नागरीदास जी कृत —

इस ग्रंथ का रचना संवत अनिश्चित है; किन्तु यह माना जा सकता है कि वह सन् १७२५ एवं १७४५ की अवधि में बना हो। पिछले सन् की पुष्टि में नागरीदास जी के ग्रंथ **पदमुक्तावली** की पाण्डुलिपि प्रमाण है । उसकी पुष्पिका में दिया गया सम्वत् १८०३ है जिसका सन् १७४७ होता है । उसमें इस्क चिमन भी सम्मिलित है । फलतः वह इस सन् से पूर्व हो बन चुका था । सन् १७२५ में नागरीदासजी २५ वर्ष के थे । इसके पूर्व उनकी तिथि सहित प्राप्य प्रथम पुस्तक **मनोरथ मंजरी** है जिसमैं सवत् १७८० दिया है जिसका सन् १७२४ होता है । इस ग्रंथ के पूर्व भी नागरीदास जी के कुछ ग्रंथ प्रणीत हो चुके थे, और इस्क **चिमन** की कल्पना और उसके कुछ दोहे भी उस सन् के लगभग संभव है हुए होंगे । १७२४ के पूर्व ग्रंथों और उनमें इस्क चिमन का भी स्थान था इसकी विवेचना अपेक्षित है ।

नागरीदास जी ७-८ वर्ष की आयु से ही मुगल दरबार से निकटतम रूप में सम्बन्धित थे । मुगल वातावरण में अरबी फारसी का प्रचलन एवं मुसलिम मजहब का अनुशीलन अनिवार्य था । नागरीदासजी का जन्म किशनगढ़ के पुष्टिमार्गीय राज घराने में हुआ । उनके संस्कार पूर्ण-रूपेण उसी की परम्परानुसार थे; किन्तु पुष्टिमार्गीय प्रोढ़ता उनके काव्य में २४ वर्ष की आयु तक सम्भव समझना असंगत होगा । साथ ही साथ यह मानना असमीचीन नहीं होगा कि इस आयु तक मुगल प्रभाव उन पर अधिक रहा । **इस्क चिमन** उसी की देन कही जायगी । ग्रंथ में सूफी तत्त्व ये हैं:—

१. अरबी फारसी शब्दों का प्राचुर्य एवं उनका शुद्धतम प्रयोग;
२. सूफी विचार धारा का प्रति पादन जिसमें आशिक-माशूक, जुल्म की अदालत, अमल मस्तो, इश्क की कैफ एवं आग आदि उपकरण वर्णित हैं; लैला-मजनूँ का संकेत दृष्टव्य है;
३. जुगुप्सा उत्पन्न करने वाले कतिपय वर्णन; यथा चस्म चोट से सिर का उड़ना धड़ का शाबाश बोलना, इश्कबाजी का केवल जांबाजी से सम्भव होना; शीश काट कर पृथ्वी पर धरना और उसपर पैरों का रखना, जिगर में जख्मों का होना एवं खून का कीचड़ उनके कारण प्राप्त होना आदि ।

इन तथ्यों के आधार पर नागरोदास जी को यदा-कदा सूफी मत से प्रभावित कह दिया जाता है जो नितान्त अनुचित है । कविता में किसी भी प्रकार के तत्त्व आ सकते

हैं, किन्तु वे कवि की आस्था के भी द्योतक हों यह धर्म के क्षेत्र में सम्भव नहीं, आस्था,
आस्था है, कविता, कविता। हाँ, नागरीदासजी का व्यक्तित्व समन्वयात्मक अवश्य था,
तथापि पुष्टि मार्ग में उनकी पूर्ण आस्था सदा ही रही। इन भक्त शिरोमणि की पुष्टि
मार्गेतर धार्मिक विचारों में संलग्नता केवल उनके विशाल-हृदयत्व का प्रमाण है और वह
भी केवल अपवाद स्वरूप। स्वयं **इस्क चिमन** में इसकी पुष्टि है—एवं उनके अन्य ग्रंथ
इसके प्रमाण हैं।

इस्क चिमन इस्क प्रधान ग्रंथ है, उसमें इस्क की तीव्रतम अवस्था का वर्णन है।
मैं इसे नागरीदास जी के पुष्टिमार्ग में आस्था की तात्त्विक भूमिका के रूप में देखता हूं।
जिस पुष्टि जीव को प्रभु उस मार्ग में निष्णात करना चाहते हैं उसमें, शास्त्रानुसार, सर्व
प्रथम प्रेम भाव उत्पन्न करते हैं। **इस्क चिमन** में शारीरिक स्तर की प्रेम-वृत्ति की प्राप्ति
स्थूल देहाध्यास के रूप में किन्हीं उपकरणों द्वारा भले ही प्राप्त हो, किन्तु है वह अवश्य
आसक्ति का पूर्व चरण एवं पुष्टि मार्गीय आगे आने वाली व्यसन दशा का पूर्णमास
जिसकी चरम उपलब्धि सर्वात्म भाव है। **इस्क चिमन** का प्रथम दोहा ही सर्वात्म वाद
की व्याख्या के अतिरिक्त और है ही क्या—

इस्क उसी की झलक है, ज्यों सूरज की धूप।
जहाँ इस्क तहाँ आप हैं, कादर नादर रूप॥

और यह 'आप' एव 'कादर नादर रूप' स्वयं भगवान् श्री कृष्ण हैं।
इस्क चिमन की उत्कट आसक्ति श्री कृष्ण में निगूढ रसानुभूति का द्योतक है।

अब ग्रंथ की कलात्मक उपलब्धि की ओर कुछ निवेदन करना है, जिस पाण्डुलिपि
का लेख के प्रारम्भ में वर्णन है उसमें नागरीदास जी के लिखित **इस्क चिमन** के अतिरिक्त
उसका स्वरूप-गत चित्र भी है जिसकी फोटो-प्रति यहां दी जाती है नागरीदास जी की
भावना ने उसमें जिन आँखों को स्थान दिया है वे मात्र पुष्टि मार्गीय है। उनसे वे पुष्टि
मार्गीय भक्त सिद्ध होते हैं। उनसे ग्रंथ ने 'न भूतो न भविष्यति' वाला रूप ग्रहण किया
है। मैंने उसका उल्लेख किशनगढ़ शैली की आँखों के सम्बन्ध में अपने अन्य लेखों में किया
है। फोटो-प्रति से प्रतीत होगा कि उसमें चिमन (उद्यान) चित्रित है। २१ बराबर-बराबर
खाने उसकी क्यारियां हैं, उनमें लिखे हुए दो-दो दोहे पौधों एवं पुष्पों के प्रतीक कहे जा
सकते हैं। चमन की सिंचाई का उपकरण क्या ही अनूठा है। साधारण जल को अनुप
युक्त जान कर नागरीदास जी ने प्रेमी की अश्रु धारा से उद्यान की क्यारियों को सींचा
है। धन्य नागरीदासजी और सबसे महत्वपूर्ण एक और बात जो नागरीदास जी को पुष्टि-

मार्गीय भक्त सिद्ध करती है वह है फोटो-प्रति की बीच वाली क्यारी जिसमें नागरीदासजी
स्पष्ट घोषणा करते हैं "श्री कृष्ण चंद्र जयतु"।

इसी पाण्डुलिपि में **इस्क चिमन** से सम्बन्धित एक दोहा और उपलब्ध है—

उसहो की सुन सिफत कूँ, किसी जुबां में होय।
कादर नादर हुस्न का, कृष्ण कहाया सोय॥

यह दोहा नागरीदासजी के विशाल हृदयत्व का प्रतीक है। पुष्टि मार्गीय प्रमाण
स्वरूप कृष्ण का समावेश पुनः उपस्थित है।

ऊपर दोहा १ एवं पाण्डुलिपि वाले अप्रकाशित अन्य दोहों की टिप्पणियों में
नागरीदास जी की आस्था पुष्टिमार्ग एवं श्री कृष्ण में प्रदर्शित की गई है। यहाँ मैं **इस्क
चिमन** को महाप्रभु श्री मद् वल्लभाचार्य चरण के मतावलम्बन का एक उपकरण होने की
बात कहूँगा। शांकर मत में ब्रह्म 'सत्यं जगन्मिथ्या' द्वारा जगत् को मिथ्या माना है; किन्तु
आचार्य चरण के शुद्धाद्वैत मतानुसार जगत् सत्य है क्योंकि कर्ता सत्य हो तो कार्य भी
सत्य ही होगा। इतना ही नहीं; भगवान् का जगत्‌रूप कार्य अस्तित्व में आता है—माया
ही के द्वारा। 'प्रपंचो भगवत्कार्यस्तद्रूपा मायया अभवत्'। अलबत् शुद्धाद्वैतानुसार
जीव-कृत वस्तु—संसार—अविद्या का फल है। प्रपच (जगत्) का लय नहीं होता; संसार
का होता है। संसार-भ्रम से मुक्त होने की प्रत्येक पुष्टिमार्गीय भक्त की चेष्टा रहती है।

इस्क चिमन में नागरीदास जी उसी ओर सचेष्ट हैं, ऐसा प्रतीत होता है। पुस्तक
में विध्वंसकारी उपकरणों का प्राचुर्य है। वे हैं— सीस काटना, उसे पाँवों से कुचलना, तीर
खंजर का प्रयोग, जखमी करना, घाव होना आदि। नागरीदासजी इनके द्वारा श्री राधा
एवं कृष्ण की लीलाओं में बाधक तत्त्वों को ही मानो अशेष करने के प्रतीक प्रस्तुत कर
रहे हैं; और दोहा ४१ में **इस्क चिमन** में बाधक तत्त्वों के निरास के पश्चात् लीला-दर्शन
की अपनी उत्कट अभिलाषा एवं आस्था का वर्णन करते हैं—

मजा अजायब हुस्न का, चक्खें चस्म सुबान।
इस्क चिमन रक्खें सोई, आवादान सुजान॥

कहना नहीं होगा कि 'सुजान' शब्द लोला पुरुषोत्तम कृष्ण का ही वाचक है, संकेतकर्त्ता
है। एक बात और व्रजभक्तो (गोपियों) ने जिस आत्म निवेदन-भाव की पराकाष्ठा द्वारा श्री
कृष्ण को अपना सर्वस्व माना उसमें आत्माभिमान की निःशेष वृत्ति भी सक्रिय रही। **इस्क
चिमन** में नागरीदासजी को सामयिक साहित्यिक उपकरणों के माध्यम से उसी इष्ट प्राप्ति

की ओर अग्रसर समझा जा सकता है—आत्माभिमान को समाप्त कर आत्मनिवेदन की प्राप्ति के लिए इस्क **चिमन** के दोहों का भावार्थ भी देना समीचीन होगा। एक ही भाव वाले दोहे, सुविधार्थ, एकत्र वर्णित हैं—

दोहा २ से ६ तक इस्क के पात्र की पहिचान का द्योतक है। आशिक के लिए प्रयोग-पटु, निंदा से सर्मिदा नहीं होने वाला, मस्ती में भूला हुआ, इस्क के नशे में चूर, एवं उसके प्रभाव का अनुभवी होना आवश्यक है।

दोहा ८–१० में आशिक की योग्यता में अनिवार्य बातें हैं–जान पर खेल सकना (अपने इष्ट पर सर्वस्व न्यौछावर की क्षमता); कठिनतम तप सह सकना; एवं असम्भव को भी स्नेह मार्ग में सम्भव बनाना। ये भाव, बंधत्व-निवृ ति मूलक होने के फल स्वरूप, पुष्टिमार्ग सम्मत 'निरोधो महाफल-' के प्रकाशक कहे जा सकते हैं।

दोहा ११, ३३, ३४ एवं ३५ लैला मजनूँ की प्रसिद्ध दास्तान की ओर संकेत है।

दोहा १२, ४३ एवं ४५ में इस्क-चिमन में आने के पूर्व की चेतावनी उसमें आने का निमन्त्रण एवं वहाँ वास करने वालों की रिझवारी बतायी हैं।

दोहा १३ एवं ४३ में इस्क चिमन की हकीकत है–वहां जाने पर मृत्यु हो सकती है, और जिसे वह प्राप्त न हुआ वह बौरा (पागल) सा फिरता है।

दोहा १४-१६ एवं २०-२१ में बताया है कि महबूब (प्रियतम) कैसा होता है–जुल्म की अदालत का अधिष्ठाता बे पीर (अन्य की व्यथा से अनभिज्ञ, निगुरा), अन्यायी, प्राण हर्ता, प्रेम जाल में फँसाने वाला।

दोहा १७, १८, १९, २२, २३, २४, २६, २७, ३१ एवं ३२ आँखों के विषय में है। उनके वर्णन में नागरीदासजी का विशेष अधिकार है। उन्होंने आंखों पर जितनी कविता की उतनी कदाचित् ही किसी अन्य कवि ने की हो। नेत्रों की विशेषता क्रमशः है (दोहा १८ के अतिरिक्त) लड़बावरे आसिक सिर की व गेंह सों खेलने वाले; अपनी चोट से (आसिक का) सिर उडाने वाले; धार्मिक उपकरणों में व्यवधान उत्पन्न करने वाले; कहर (क्रोध) जहर के तीर; उर में घाव करने वाले; मरणपर्य्यंति पीड़ा दायक; जंजाल रूप जिनसे छुटकारा पाना असम्भव; इश्क की आग के धुएँ से धूसरित, हुस्न (की शराब) का प्याला पीने वाले।

दोहा १८ अनुपम है। उसमें का भाव अछूता एवं अन्यत्र अलभ्य है। उसमें महबूब आंखें लाल रंग की होने का अनूठा कारण दिया है। नागरीदासजी कहते हैं कि महबूब ने आशिक को देखा। उस प्रक्रिया में आंखों के (प्रकाश के) तार आशिक के शरीर में

प्रविष्ट हुए और जब वापस निकले तो उनका (खून से भरने के कारण) लाल होना अनिवार्य था (और तब से या उसी प्रक्रिया के फल स्वरूप) वैसे ही लाल बने हुए हैं।

दोहा २०-२१ आशिक को सहनशील बतायी, वह लट-रूपी पाशों से बँधने को विवश है।

दोहा २५ में प्रेमी (आशिक) को इश्क की कैफ (नशे) के रोगी की परिस्थिति में बताया है। तबीब (वैद्य-हकीम) आता है, नब्ज देखता है। नागरीदासजी उसके कार्य को अबस (बेकार) बताते हुए उसे घर लौट जाने का परामर्श देते हैं, क्योंकि रोग उसकी समझ से बाहर होने के अतिरिक्त (यावज्जीवन) असाध्य भी है। वे विश्वास पूर्वक कहते हैं कि इश्क की कैफ (नशा) तो केवल सर के साथ ही उतरने योग्य है। उससे पूर्व नहीं।

(मीरां ?) में भी इसी भाव का, किन्तु हलके रूप में वर्णन है—

बाबल वैद बुलाइया, पकर दिखाई मोरि बाँहि।
वैद तो मरम न जानियो, करक करेजे माँहि॥

दोहा २८, २९ एवं ३० इश्क के चिन्हों को छुपाना असाध्य–कटार आदि के घाव छुप सकते हैं, अग्नि का प्रज्वलन छुपाया जा सकता है, बारूद के प्रभाव भी छुप सकते हैं, किन्तु इश्क के घाव, इश्क की आग एवं इश्क की लपटें छुपाने पर भी छुप नहीं सकती

दोहा ३६-३७ में किसी हरीदासजी नामी सिद्ध का संकेत है। नागरीदासजी ने उन्हें चेटक (श्री कृष्ण लीला सम्बन्धित) रूप दिखाने का श्रेय दिया है।

दोहा ३८ एवं ४१–३८ के साथ एक कथा जोड़ी जा सकती है। जब भगवान् रामचंद्र जी लक्ष्मणजी के साथ, धनुष-भंग के पूर्व जनकपुर की वाटिका में पुष्पचयनार्थ गए तब सीताजी की एक सखी उनके दर्शनों से कृतकृत्य हुई। अन्यत्र उपस्थित सीताजी एवं अन्य सखियों के पास वह गई उस सम्बन्ध में तुलसीदासजी ने उसके द्वारा ये शब्द कहलवाए–

स्याम गौर किमि कहहूँ बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

अपनी भावना तीव्रता के कारण नागरीदासजी कुछ और बात भी कहते हैं। चौपाई में वर्णित है गिरा एवं नयन। नागरीदासजी के दोहे में आधार है दिल। यह अनूठी सूझ है। दोहा ४१ उससे भी आगे बढा। जहाँ पहले में वक्तृत्व शक्ति है वहाँ दूसरे दोहे में आँखों को चखने की शक्ति दी गई है। धन्य हो।

दोहा ३९-४० में कहा गया है कि इश्क का अनुभव केवल भुक्त-भोगी के ही वश की बात है और उसका स्वाद कठिन लग्न पर आधारित है।

डा. फैयाज अली खां एम. ए. (हिन्दी अंग्रेजी) किशनगढ (राजस्थान)

॥ श्री हरिः ॥

❋ इश्क चिमन ❋

१. इस्क उसी की झलक है, ज्यों सूरज की धूप ।
जहां इस्क तहां आप है, कादर नादर रूप ॥

२. कहूं किया नहीं इस्क का, इस्तैमाल संवार ।
सो साहेब सों इस्क वह, करि क्या सकैं गँवार ॥

३. सरमिंदा होई इस्क सौं, सो देवैं सब खोई ।
निंदा सहदानें बजें, सोई चुनिंदा होई ॥

४. दुनियांदार फकीर क्या हैं सब जितनी जात ।
बिगर इस्क मस्ती अरे, सबकी किस्ती बात ॥

५. सादे जे प्यादे सबै जद्यपि धन अनपार ।
इस्क अमल-मस्ती लियैं, सो हस्ती असवार ॥

६. सब मजहब सब इल्म अरू, सबैं ऐस के स्वाद ।
अरे इस्क के असर बिन, ए सब ही बरबाद ॥

७. आया इस्क लपेट में, लागी चस्म चपेट ।
सोई आया खलक में, और भरइया पेट ॥

८. जरबाजी बिन खलक के, काम न संवरै कोई ।
एक इस्क-बाजी अरे, ज्यां-बाजी सों होइ ॥

९. सीस काटि कै भू धरैं, उपर रक्खैं पांव ।
इस्क-चिमन के बीच में, ऐसा हैं तो आव ॥

१०. जिन पांवों सौं खलक में, धलैं सुधरि मति पाव ।
सिर के पाऊं सौं चला, इस्क चिमन में आव ॥

११. कोई न पहुँचा उहाँ तलक, आसिक नाम अनेक ।
इस्क चिमन के बीच में, आया मजनूं एक ॥

१२. अरे इस्क के चिमन मैं, सम्हलि कैं पग धरि आव ।
बीच राह के बूडना, ऊबट माहिं बचाव ॥

१३. इस्क चिमन महबूब का, जहाँ न जावे कोइ ।
जावे सो जीवे नहीं, जीवे सु बौरा होइ ॥

१४. मारे फिरि फिरि मारिये, चस्म तीर सौं खूब ।
किये अदालत जुलम की, जहां बैठा महबूब ॥

१५. आसिक पीर हमेस दिल, लगैं चस्म के तीर ।
किया खुदा महबूब कौ, सदा सखत बे पीर ॥

१६. आसिक सिर अपना अरे, धरि दैं पैरूं त्याय ।
बेइनसाफ महबूब कैं, करैं दूरि अनखाय ॥

१७. खून करे लड़ बावरे, महबूबों के नैंन ।
आसिक सिर की गेंद सौं, खेलैं तब हि चैन ॥

१८. सुरख चस्म महबूब नैं, खंजर किये संवार ।
निकले लोहू सों रंगे, आसिक पंजर पार ॥

१९. इस्क खेत सौं नहि टलैं, आवैं बे उस बास ।
चस्म चोट सौं सिर उडैं, धड़ बोलै स्याबास ॥

२०. खलक किया खालिक अरे, हसनें हीं कौं खूब ।
सहने को आसिक किया, मारन कौं महबूब ॥

२१. चस्मौं सौं जखमी करैं, रस गस्बों बिच खेल ।
लट तस्मौं सौं बांधि कैं, दिल वस्मौं करि लेत ॥

२२. पंडित पूजा पाक दिल, ए दिमाग मति ल्याय ।
लगे जरब अंखियान को, सबैं गरब उडि जाय ॥

२३. पाव सकें नहि ठहरि कैं, बुरो चस्म को पीर ।
जो जानें जिसके लगैं, कहर जहर के तीर ॥

२४. तीर निगाहों के लगैं, दरद मुकररा होय ।
जरराह भी जरराह सों, मिलें न डर के घाय ॥

२५. ऐ तबीब उठि जाहु घर, अबस छुवैं क्या हाथ ।
चढी इश्क की कैफ यह, उतरे सिर के साथ ॥

२६. कस्मों तुम्हें करीम की, सुनियो सबैं जिहान ।
चस्मौं की लागी गिरह, छूटें छूटें ज्यान ॥

२७. क्या राजा क्या पातसा, क्या गरीब कंगाल ।
लागें तें छूटें नहीं, नैंनन‍ि बडो जंजाल ॥
२८. लगा तीर जमघर छिपैं, छिपैं छिपाई सेफ ।
नहिं उतरैं नांहि छिपैं, हेफ इस्क की केफ ॥
२९. अरे पियारे क्या करों, जाहिर हौ हैं लागि ।
क्यों करि दिल बारूद में, छिपैं इस्क की आग ॥
३०. आतस लपटैं राग की, पहुंचैं दिल बिच जाय ।
दबी इस्क बारूद की, भभकनि लागी लाय ॥
३१. उठैं आगि उर इस्क की, जलैं ऐस आराम ।
चलैं न केफी चस्म बिच, घुटैं धुयें के धाम ॥
३२. गिरे रहे भीजे रहें, भुतलक भी सम्हलैंन ।
हुस्न पिलाया पीय कें, हुये हैं मदवै नैंन ॥
३३. गिरे तहां ही गिर रहे, पल भो पल उघरैंन ।
पूरे मदवे हुस्न के, मजनूं ही के नैंन ॥
३४. चली कहानी खलक मैं, इस्क कमाया खूब ।
मजनूं से आसिक नहीं, लैंली सी महबूब ॥
३५. मजनूं कौं कहैं सब असल, और नकल के भाय ।
कछु हो दिल में असल तब,सकैं नकल भी लाय ॥
३६. नकल सांच सौं सरस करि, करि लीनें दिलदस्त ।
हरिदास के हाल मैं, दर दिवाल भी मस्त ॥
३७. इस्क साग साचा किया, दिल कौं दिया छकाय ।
हरिदास सब कौं गया, चेटक रूप दिखाय ॥
३८. इस्क हुस्न को बात क्यौं, सकैं सुखन मैं आय ।
दिल चस्मों के जुबां होंय, तब कछु कहैं सुनाय ॥
३९. कही जाय कहां इस्क की, कहैं न माने कोय ।
जानैं सो जानैं अरे, जिस सिर बीती होय ॥
४० खलक न मानें एक भी, अबस कियें बकबाद ।
खूब कमावैं इस्क कौं, तब कछु पावें स्वाद ॥

४१. मजा अजायब हुस्न का, चक्खैं चस्म जुबान ।
इस्क चिमन रक्खें सोइ, आबादान सुजान ॥
४२. चस्मों के चस्मां झरे, झरना आब फिराक ।
इस्क चिमन तब सब्ज रहें, दिल जिमीन होय पाक ॥
४३. इस्क चिमन आबाद करि, इस्क चिमन कौ गांव ।
नागर घर महबूब के, इस्क चिमन में आव ॥
४४. जिगर जख्म जारी जहां, नित लोहू का कीच ।
नागर आसिक लुटि रहे, इस्क चिमन के बीच ॥
४५. चलै तेग नागर हरफ, इस्क तेग को धार ।
और कटैं नहिं वारसौं, कटैं कटे रिझवार ॥

इस ग्रंथ के रचयिता भक्तवर नागरीदासजी के निकुंज विलास ग्रंथ की भूमिका में 'रस' जिस पर यह ग्रंथ 'इश्क चिमन' अर्थात 'प्रेम वाटिका आधारित है उसको संक्षिप्त व्याख्या निम्न प्रकार से दो गई है ।

नागरीदासजी ने अन्य पुष्टिमार्गीय भक्तों के समान निकुंज विलास लीला का भी वर्णन किया है । सूरदासजी ने अपने सिद्धान्त प्रति पादक प्रसिद्ध पद में व्यवहृत किये हैं, उसकी प्रथम पंक्तो में ही इन शब्दों का शोर्ष स्थान है–'सदा एक रस एक अखंडित'– रस शब्द ही रस मार्ग का प्रतिपादक है, और 'रस' सिंगार हो तो है जिसकी चरमावस्था दाम्पत्य विहार ही में प्राप्त होती है, और वह भी उस विषय–वासना रहित दाम्पत्य विहार में जो प्रकृति के नैसर्गिक वातावरण में हुआ हो । अतः निकुंज लोला पुष्टि मार्ग में स्वतंत्र रूप से मान्य है यह स्वीकार करने में कुछ भी संकोच नहीं होना चाहिए। अखंड शब्द उस धारणा को खंडित कर देता है जिसके आधार पर यह कहा जाता है कि पुष्टि मार्ग में शृंगार भावना तो केवल सखा अथवा वात्सल्य भाव से ऊपर उठने का उपक्रम मात्र थी । यही शब्द वास्तव में नित्य विहार का परिचायक है । जब भगवान की प्रत्येक लीला ही शाश्वत् है तो फिर नित्य विहार शब्द के ऊपर मत विशेष के अनुसार जोर डालकर उसे अन्य मतों से श्रेष्ठ या उस पर अन्य मतों को आधृत करने की चेष्टाएं अनआवश्यक हैं ।

वास्तव में श्रीमद् भागवत, जो पश्चाद्वर्ती सभी वैष्णव सिद्धान्तों का मूल है, किसी भी मत को अन्य मत का पूर्ण पथ प्रदर्शक अथवा निर्देशक ठहराने के अयोग्य सिद्ध करती है । हां, अपनी अपनी श्रद्धा और भावना के अनुकूल मत प्रवर्तन हो रहे हैं, किन्तु उन सबमें वस्तुतः कोई मौलिक भिन्नता नहीं है ।

शब्द कोष

(दोहा-क्रमानुसार)

१. कादर–सर्व समर्थ
नादर–अनोखा
२. इस्तैमाल–प्रयोग अनुभव,
३. सरमिदा–संकोची
सहदानें–शुभ संगीत
चुनिदा–वैशिष्ट्य युक्त चुना हुवा
४, किस्ती–व्यर्थ, निम्न कोठि की
५, प्यादे–पैदल चलने वाले
अमल मस्ती–प्रेमानंद
हस्ती–हाथी
७, लपेट–पकड़
चस्म–नेत्र
८, जरबाजी–धन के प्रयोग
खुलक-संसार
इस्कबाजी–प्रेम व्यापार
ज्यांबाजी–प्राण न्योछावर करना
९. इस्क चिमन–प्रेम वाटिका
११. मजनूं–एक प्रसिद्ध आशिक
महबूब–प्रियतम
बौरा–विक्षिप्त पागल
१२. ऊवट–अटपटा मार्ग
१४. चस्मतीर–नयन बाण
१५. पीर–पीड़ा-कष्ट
हमेस–सर्वदा
के पीर–कठोर हृदय
१६ बेनिसाफ–अन्यायी
अनखाय–खीज-कोध
१७. लड बावरे–लडने को आतुर
१८. सुरख चस्म–अरुण नेत्र
खंजर–एक प्रकार का छुरा
१९ बे उसवास–नि: संकोच
२०. खलक–संसार
खालिक–भगवान
२१ रस गस्वो–प्रेम पाश
लट–तस्मौं-अलक पाश
बस्मौं–वश में
२२. दिमाग–हृदय (अथवा मस्तिष्क) में
जरब–चोट
२३. कहर–जहर–क्रोध का विष
२४. निगाहूं–दृष्टि
मुकरी–फिर फिर बारम्बार
जरीह–शल्य चिकित्सक
२५. तबीब–वैद्य
अबस–व्यर्थ में
कैफ–नशा, आनंद
२६. करीम–भगवान
जिहान–संसार (के लोग)
गिरह–गाँठ
छूट ज्यान–प्राणान्त होने के समय
२८. जमधर–कटार (का घाव)
सैफ–तलवार (का घाव)
२९. हैफ-लागि-(प्रेम की) लग्न
३०. आतस–आग
लपटंराग–(प्रेम की) लपटें
३२. हुश्न पीयाला–प्रेम का पेय
मदवै–मस्त, आनंद मग्न
३४. लैली-एक प्रसिद्ध प्रिया (मजनूं की)
३५. भाय–समान
३६. करि लीने दिल दस्त–वश में कर लेना
हरीदास–एक सूफी साधु जिससे नागरीदास कदाचित
किञ्चित प्रभावित हों।
३८. सुषन–वाणी
४२. चस्मा–सोते-स्त्रोत
आब फिराक–वियोग वारि
४४. जिगर जख्म–कलेजे के घाव
कीच–कीचड़
४५ तेग–तलवार
हरफ–शब्दों को
रिझवार–प्रेमी-(आशिक)

भक्तवर श्री नागरीदासजी के ग्रंथ
इस्क चिमन को स्वरूपगत फोटो प्रति

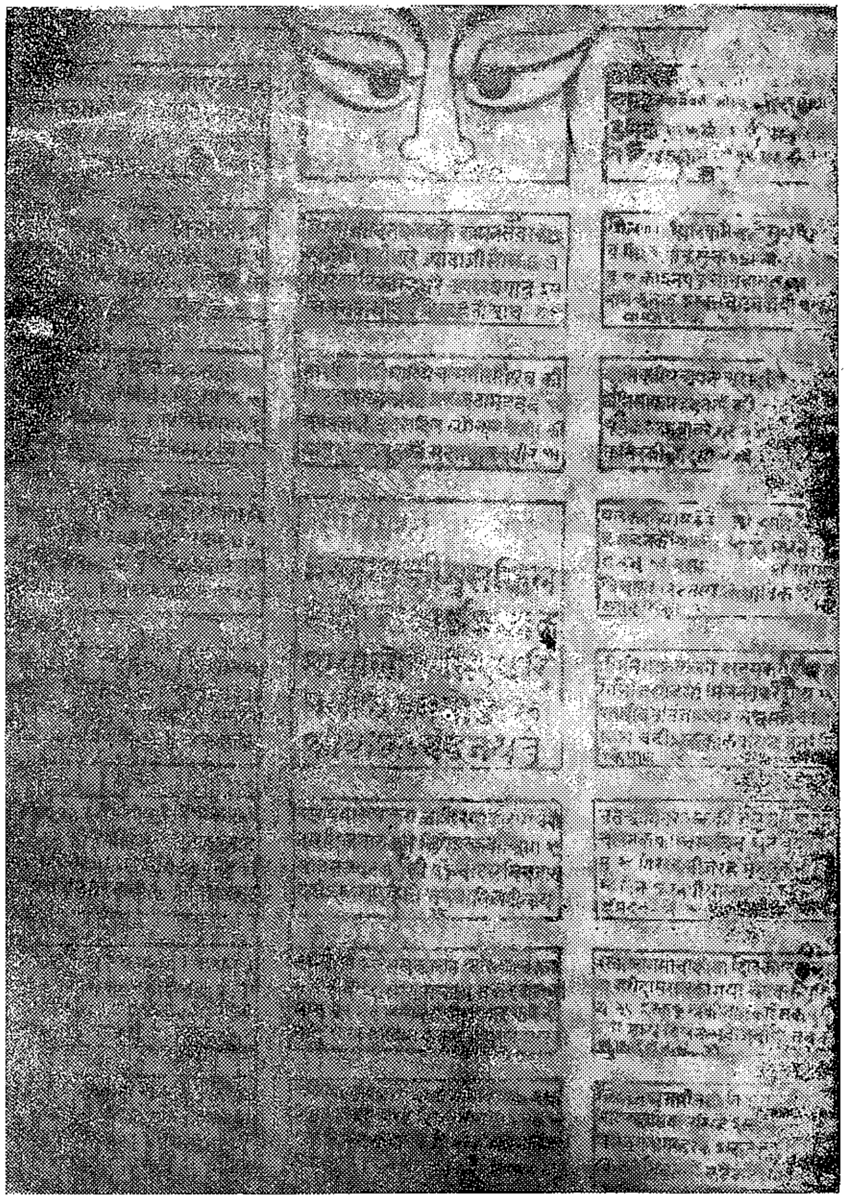

।। श्री कृष्णायनमः ।।

।। श्री गोपीजनवल्लभायनमः ।।

।। श्री मदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ।।

अथ श्री मधुराष्टकम्

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।१।।
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।२।।
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपनेरखिलं मधुरम ।।३।।
गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।
रूपं मधुरं तिलक मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।४।।
करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं रमणं मधुरम् ।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।५।।
गुञ्जा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा ।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।६।।
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरम् ।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।७।।
गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा ।
दलितं मधुरं फलित मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।८।।

। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण प्रकटितं श्रीमधुराष्टकं संपूर्णम् ।

।। श्री मद्वल्लभशरणम् ।।

मधुराष्टक की प्रस्तावना

भगवान् के वदनावतार श्रीमद्वल्लभाचार्यजी के तीन स्वरूपों का मार्ग के ग्रंथों में वर्णन आता है। आचार्य रूप से भक्तिमार्ग का उपदेश प्रदान कर आधिभौतिक स्वरूप का कार्य आपने प्रकट किया है। तथा अणु भाष्य, तत्वदीप निबन्ध, भागवत की श्री सुबोधिनी तथा षोडश ग्रंथो की रचना आध्यात्मिक स्वरूप से वाणी द्वारा दैवी जीवों के उद्धार का कार्य किया। आधिदेविक स्वरूप स्वामिनी भाव से प्रभु के विप्रयोग का अनुभव किया है।

श्री महाप्रभुजी के स्वरूप तथा गुण उस कार्य का निरूपण श्री मद्विठ्ठलेश प्रभु सर्वोत्तम स्तोत्र, श्री वल्लभाष्टक तथा स्फुरत कृष्ण प्रेमामृत में करते हैं। 'सौन्दर्य' पद में उनके आधिदेविक स्वरूप का वर्णन है। जो प्रभु और स्वामिनीजी के साथ की लीला का साक्षी भूत है। श्रीवल्लभाष्टक में बताये अनुसार श्री महाप्रभुजी के श्री अंग में श्री वृन्दावन चन्द्र कृष्ण भगवान् ने जो गोपीजनो को निरवधि आनन्द का दान रासादि लीला से किया उस लीला रूपी अमृत के जलधि से ओज उछल रहा है। महाप्रभुजी के प्रत्येक अंग में प्रभु के की हुई रासलीलाओं का आनन्द भाव उछल रहा है। एक भी श्री अंग ऐसा नहीं है कि जिस में वह भाव निरन्तर आनन्द से भरा हुवा न हो। आप श्री को विप्रयोग में जो आनन्द और अनुभव हुवा वैसा अनुभव अन्य भक्तों को भी होय उस के लिये ही आप का प्राकट्य होने से उस भाव को सुबोधिनी टीका में आपने प्रकट किया। सुबोधिनी टीका के दशम स्कन्ध की निरोध लीला में से एक ही तत्व सार रूप आपने प्रकट किया और वह है 'स्त्रीभाव', स्त्री भाव का ही दूसरा नाम है पुष्टिमार्ग जिसमें प्रभु के लिये स्त्री का प्रेम हो वही पुष्टिमार्ग है फिर चाहे वह पुरुष देह धारी हो या स्त्री देह धारी हो। परन्तु उसका हृदय स्त्री प्रेम से भरा हुवा हो। जैसा सत्पत्नी को अपने पति के लिये प्रेम होता है। वैसा प्रेम प्रभु को अर्पण करने में आवे वह प्रेम आत्म निवेदन पूर्वक प्रभु की सम्पूर्ण शरणागति वाला हो देह इन्द्रिय अन्त.करण के साथ आत्मा का प्रभु में सम्पूर्ण विनियोग पूर्वक होय। इतना ही नहीं परन्तु उसमें संत्यज्य सब विषयों का सन्यास होय। सांसारिक पदार्थों से विमुखता और प्रभु के साथ सन्मुखता की भावना प्रपंच विस्मृत्ति पूर्वक प्रभु में ही आसक्ति, इस प्रकार के निरोध को स्त्री भाव कहते हैं और वही पुष्टिमार्ग का मर्म है। श्री मदाचार्य चरण का हृदय स्त्री गूढ भाव से पूर्ण था इसलिये श्री प्रभु की रसात्मक लीला का अनुभव आप करते और उस लीला का अनुभव दैवी जीव भी करें उसके लिये सुबोधिनी में उन लीलाओं के भावों को समझाया कि जिससे लीलाओं की भावना करने से रसात्मक स्वरूप का अनुभव दैवी जीव करें।

"मधुराष्टक" जो कि छोटा सा पद्यात्मक ग्रन्थ है तो भी उस में प्रभु के स्वरूप और लीला का अनुभव श्री महाप्रभुजी ने अपने भक्तों के लिये प्रकट किया है स्वयं आचार्य होते हुए भी 'प्रिया

गोपी भर्तु' गोपीजन के भर्ता श्री कृष्ण की प्रिय स्वामिनी स्वरूप थे। श्रीकृष्ण भगवान् के निरन्तर स्फूर्यमान प्रेम रूप अमृत रस से पूर्ण श्री अंग वाले स्वय व्रजपति के विहार रूपी रस समुद्र में विहार करते थे। चौरासी तथा दो सौ बावन जैसे भाग्यवान वैष्णवों को ऐसे स्वरूप के दर्शन हुए ऐसे पद्मनाभदासजी एक पद में बताते हैं कि—

वृन्दावन रम्यक अवनी रस उर सम्पुट तै कोउ न पावे।
पद्मनाभ गिरधर रस लीला वेणुनाद की बतियाँ भावे॥

श्री महाप्रभु जी के हृदयरूपी सम्पुट में वृन्दावन रूपी भूमि का रस अर्थात् श्री ठाकुरजी विराजते हैं उनको कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता हैं। श्री ठाकुरजी की रास लीला तथा वेणुनाद की लीला आपको बहुत प्रिय है अर्थात् उस प्रकार की लीला को भावना आपके हृदय में खूब भरी हुई है। प्रत्येक क्षण उसका ध्यान करके प्रभु के रसात्मक रूप का अनुभव आप श्री करते हैं। षोडश ग्रंथ अधिक भाग में सिद्धान्तात्मक ग्रंथ है उसके कृष्णाश्रय ग्रंथ में निःसाधन जीवों का आश्रय भगवान् श्रीकृष्ण हैं, इसलिये अनन्य भाव से उसका आश्रय करना यह आप बताते हैं। परन्तु मधुराष्टक तो रस से ही पूर्ण भरा हुवा ग्रंथ है। प्रभु के अंग का प्रत्येक अवयव उसकी कृति का माधुर्य सौंदर्य इसमें बताया गया है।

उपनिषदों में ब्रह्म को सत् ज्ञान और आनन्द रूप अर्थात् सच्चिदानंद रूप का वर्णन है। जगत् यह भगवान् का सद्रूप हैं। जीव यह सच्चित् रूप अक्षर सच्चित और गणितानद रूप भगवान् श्रीकृष्ण का शुद्ध आनन्द रूप ही है। उसको रस भी कहते हैं। या रसात्मक स्वरूप कृष्ण हैं और वह ही पुष्टि मार्ग का सेव्य या प्राप्य प्रभु है। व्रज सीमन्तनियों जैसी प्रेम लक्षणा भक्ति की स्नेह आसक्ति और व्यसनावस्था में थीं, वैसे प्रकट हुयी तन्मयता की दशा वाले ही उसके अधिकारी हैं। मुक्ति मार्ग वाला भी उसका अधिकारी नहीं है। यह वस्तु समझने वाला ही इस मधुराष्टक का रहस्य समझ सकता है। ऊपर बताये हुये उच्च भावना वाले को ही प्रभु अपनी लीला के अनुभव का दान करते हैं।

यह लघु ग्रन्थ षोडश ग्रंथ के पाठ की पुस्तक में मुद्रित हुआ है। परन्तु उसका रहस्य प्रकट करने वाला व प्राचीन टीका युक्त ग्रंथ अभी अप्राप्य होने से बम्बई के पुष्टि मार्गीय युवक परिषद् ने टीकाओं सहित पुनर्मुद्रण करके संप्रदाय की महत्वपूर्ण सेवा करी है। श्री महाप्रभुजी के ग्रंथों की उनके वंशजों ने अनमोल टीकाएँ लिखकर संप्रदाय के साहित्य का गौरव बढाया है। श्री महाप्रभुजी के ग्रंथो तथा उनके ऊपर की टीकाएं, यह संप्रदाय का वास्तविक धन है। उनका रक्षण निधि स्वरूप की तरह ही हृदय से करनी चाहिये। वह ही महाप्रभुजी की शुद्ध भक्ति है। नाम सेवा बिना आधुनिक समय में स्वरूप सेवा का भाव समझना तथा हृदय में उतारना अशक्य है। संप्रदाय को इस बाबत उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। प्रत्येक धर्म का साहित्य, यह ही उसके आस्तित्व को स्थाई कर सकता है। पुष्टि मार्ग का साहित्य रक्षण यह ही पुष्टिमार्ग को बहुत समय तक स्थिर रखने का अमोघ बल है। यदि उस बल को हम गुमा बैठेगें तो उसके साथ ही पुष्टिमार्ग भी हमेशा के लिए चला जायगा। इस दृष्टि से यह पुष्टिमार्गीय युवक परिषद् की ग्रंथ प्रकाशन प्रवृति आदरणीय है। और साधन सम्पन्न वैष्णव को इसका पोषण करना चाहिये।

इस ग्रंथ में छ संस्कृत भाषा की टीकाऐं और एक व्रज भाषा की टीका साथ में प्रकट हुयी है। व्रज भाषा में उसका रहस्य दिया गया है इसलिए संस्कृत टीकाओं का गुजराती भावार्थ नहीं दिया गया है संस्कृत भाषा में नीचे की टीकाऐं प्रसिद्ध हुई है।

१. श्री विठ्ठलेश प्रभु चरण (श्री गुसांई जी) की विवृत्ति।
२. उसके ऊपर गो. श्री घनश्याम जी की टिप्पणी।
३. गो० श्री बालकृष्ण जी का विवरण
४. गो० श्री वल्लभ जी कृत विवरण
५. गो० श्री रघुनाथ जी कृत विवरण
६. श्री हरिराय जी विरचित मधुराष्टक तात्पर्य और व्रज भाषा की टीका।

श्री विठ्ठलेश प्रभु चरण प्रारम्भ में श्री मद् आचार्य चरण को नमस्कार करके विवृत्ति को प्रारम्भ करते हैं और बताते हैं कि दैवी जीवों के उद्धार के लिये श्री महाप्रभु जी के प्रकट होने से और व्रज में स्थिति करने से अपने हृदय में निगूढ अपना सर्वस्व धन रूप अलौकिक अनुभव किये हुए अपने अनुभव से निज दैवी जीवों के उद्धार के लिए यह ग्रंथ प्रकट किया है। ऐसा करके मधुराष्टक का प्रत्येक 'मधुर स्वरूप' लीला का रहस्य बताता है। इस टीका में श्री विठ्ठलेश जी का काव्यत्व अनुपम प्रकार से झलकता है। श्री घनश्याम जी की टिप्पणी, श्री विठ्ठलेश प्रभु की विवृत्ति को विशुद्ध करने में उपयोगी होता है। जो कि संपूर्ण मधुराष्टक पर नहीं है केवल चौथे श्लोक पर्यंत है। श्री घनश्याम जी, श्री गुसांई जी के पुत्र थे। श्री गुसांई जी की विवृत्ति गद्य जैसा कादम्बरी का गद्य है वैसे ही शब्द लालित्य से पूर्ण होने के कारण विद्वानों को भी मनन करना पड़ता है। इसमें शब्द लालित्य,भाव लालित्य तथा शैली की चमत्कृति तथा मनोहारिता वास्तव में अवर्णनीय है। श्री महाप्रभु जी ने जो भाव'मधुर'इतने ही शब्द से गूढ रीति से बताया है उसे श्री गुसांईजी ने इस शब्द द्वारा व्यक्त किया है। इतना ही नहीं परन्तु अलंकार से सुशोभित किया है। मधुराधिपतेरखिलं मधुरं यह प्रत्येक श्लोक के अंत में दिये हुए चरण का भाव भी नवीनता से आप श्री उपस्थित करते हैं। 'मधुर रस के अधिपति' इस शब्द को मधुरान्। अधिपति अर्थात् 'श्रीमद्राधा तथा अधर सुधा

इतना रमणीय अर्थ जितना कि आप श्री करते हैं कि उससे वास्तव में भक्तों का हृदय भी शब्द और उसके माधुर्य से नृत्य करने लगता है अंत के श्लोक में कहते हैं कि नंद के गृह के क्यारे में ऊगा हुआ और श्रीमद् गोपीजनो के प्रेम की सिंचाई से बढ़ा हुआ जैसे कल्पवृक्ष का पर्ण (पत्ता वैसे ही कली इत्यादि सब मधुर है। वहाँ पर मधुरिमा की सीमा आती है इसमें भगवान् को कल्पवृक्ष कहा है और उनके अंगो तथा लीलाओं को उस वृक्ष के अलग अलग भागों के साथ समानता बताई है रस रूप प्रेम स्वरूप भगवान् का प्रत्येक अंग और उसी प्रकार लीला निर्दोष है एवं मधुर है।

श्री वालकृष्ण जी श्रीमद् विठ्ठलेश प्रभु चरण के आत्मज का विवरण स्वतंत्र रीति से बनाया हुआ है। वह मधुराष्टक के भावों का विवरण है। प्रारम्भ में उन्होंने श्री आचार्य चरण को नमस्कार करके अपनी टीका की रचना करते हुए यह बताया कि इस ग्रंथ का प्रादुर्भाव किस प्रकार से हुआ है श्रावण मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन प्रभू ने जब प्रकट होकर श्री आचार्य चरण को ब्रह्म संबंध द्वारा दैवी जीवों के उद्धार का आदेश दिया उस प्रसंग में उनको जो दर्शन का अनुभव ठाकुरजी के श्री अंग से हुआ कि उनका प्रत्येक अंग मधुर है तथा उनके द्वारा कार्य भी 'मधुर' यह बताया गया है। उस समय भगवान् का उद्दीपन आलम्बन तथा विभावादि रसांतपाति सब सामग्री वाला है तथा लीला गुण से विशिष्ट उदबुद्ध रसात्मक स्वरूप का जिस प्रकार से अनुभव हुआ उसका वर्णन यहाँ करने में आता है। भगवान् के रूप का यह वर्णन किया कि उनका सब कुछ मधुर है। आपने स्वयं शृंगार रूप होते हुए भी वीर भयानक इत्यादि रसों की भी लीला करी है परन्तु वे सब शृंगार रस की पोषक हैं उसमें अन्तर्भूत होने से ये भी मधुर है।

जिस प्रकार राजा के परिधान करने के अलंकार स्वर्ण के होते हैं उसी तरह प्रभु की लीला के सब उपकरण भी मधुर है। अंत में लिखते हैं कि श्रंगार रस भगवान् के संयोग और उसी तरह विप्रयोग दोनों अवस्थाओं की लीला मधुर है। एक भी लीला ऐसी नहीं थी कि जो मधुर न हो। अद्भुत रस और वीमत्सरस रस की लीला भी मधुर है। ये टीका भी सरल भाव को विशुद्ध करने वाली हृदयंगम है।

श्रीवल्लभ जी की टीका भी स्वतंत्र है और वह विस्तार पूर्वक भी की गई है। हरेक भाव को एक रीति से समझाते हैं आप श्री को संतोष न होने से अथवा शब्द लिखकर दूसरी रीति से भी समझाते हैं और इस टीका में दशम स्कन्ध की भगवान् की रस लीला भाव का सौंदर्य प्रगट किया है। इसका विस्तार जैसे जैसे करने में आया उस उस प्रकार से हृदय की तृष्णा बढ़ती जाती है। भगवान् के दर्शन की आर्ती वाली उत्कंठा को यह सुधा समान शीतलता देती है इस ग्रंथ का प्रयोजन समझाते हुए आप श्री कहते हैं कि व्रज गोपीओं के साथ भगवान् ने रास किया और संयोग सुख दिया परन्तु उनको मान भाव होने से भगवान् तिरोभूत हो गए तब उन श्री गोपीजनो ने उन भगवान् की लीला का अनुकरण किया तथा गुणगान किया तब प्रभु प्रगट हुए और रास सुख का आनन्द प्रदान किया ये उभय प्रकार की लीला का अनुभव श्री महाप्रभुजी को हुआ और उसका वर्णन मधुर शब्द से करते हैं।

प्रभु के विप्रयोग की अवस्था में प्रभु के स्वरूप का गुणगान ही स्वास्थ्य प्रदान करता है विप्रयोग दशा में एक क्षण भी करोड़ों युगो जैसा तापक्लेश से असह्य बनता है। विप्रयोग की दशा में महाप्रभु जी ने मधुराष्टक की रचना करी है। इसके बाद श्री मद् विठ्ठलेश प्रभुचरण के पंचम आत्मज श्री रघुनाथजी कृत विवरण और अंत में श्री हरिरायजी कृत मधुराष्टक ग्रन्थ तात्पर्य है चित्त के निरोध के लिए श्री वल्लभाचार्य जी ने सेवा प्रणालिका की योजना करी है। सेवा द्वारा प्रभु के संयोग सुख को प्राप्त किया जाता है परन्तु सेवा के बाद के समय में चित्त में निरोध के लिए मानसी सेवा कही है। सेवा इस देह और धन से करनी है मानसी सेवा में भाव मुख्य है इस भावना की स्थिरता पोषण और वृद्धि के लिए श्री हरिरायजी ने स्वरूप भावना लीला भावना तथा भाव भावना का प्रकार बताया है। स्वरूप भावना 'योग' की तरह प्रभु का चिंतन करना चाहिए परन्तु इस चिंतन में प्रभु के दर्शन न होने से जो आर्ती होती है वह आर्ती उसमें मुख्य है। इसके बाद प्रभु की लीला का चिंतन करें इस लीला भावना से हृदय में स्वस्थता आती है। इस भावना में लीला रूप भक्त बन जाता है बाद की अवस्था उस भाव भावना के आने से प्रभु के स्वरूप और लीला में आसक्ति होती है और लीला सम्बन्धी सुख का अनुभव होता है जैसे भूख लगने पर अन्न रस का अनुभव होता है वैसे ही भाव भावना से लीला और स्वरूप के सुख का अनुभव होता है श्री महाप्रभु जी को भाव भावना मधुराष्टक ग्रन्थ में बताई गई है प्रभु की विप्रयोग दशा में जब प्रभु का स्वरूप तथा उनके प्रत्येक अंग से की हुई लीला की भावना, इस ग्रन्थ का तात्पर्य है। विरह के बीच में ताप भाव वाले भक्तों से नहीं रहा जाता है तब स्व (अपने) समान भाव वालों के समक्ष पूर्व अनुभव में आए हुए स्वरूप का निरूपण करते हैं गोपीजन ने जिस जिस रसात्मक स्वरूप का अनुभव किया है उसका विरह में फिर से अनुभव करते हैं अलग अलग गोपांगनाएं श्री अंग के जुदे जुदे अवयवों के सौंदर्य का अनुभव करती हैं और अपने अपने अनुभव जुदी जुदी प्रकार से वर्णन करती हैं एक सखी अधर का वर्णन करती है तो दूसरी मुख का तो तीसरी नेत्र का। श्री महाप्रभुजी भी गोपीजनो के उस स्वभाव का स्मरण करके प्रभु के स्वरूप तथा लीला के मधुर भाव का वर्णन करते हैं। इस प्रकार निरूपण की हुई भावना करने से प्रभु की वे, वे भावनाएं सिद्ध होती है और रस स्वरूप की प्राप्ति होती है।

व्रज भाषा की टीका स्पष्ट होने से यहाँ पर उसका खास उल्लेख नहीं किया गया है।

श्री प्रभुजी द्वारा की हुई लीलाओं और प्रभु के मधुर स्वरूप के अनुभव का दान निज जनो को होय ।

भावात्मक पुष्टिमार्ग में प्रभु भावात्मक है और उनका स्वरूप तथा लीला ये भी भावात्मक है उनका रात दिन चितन ध्यान करना जरूरी है यह हो पुष्टिमार्गीय योग है यह साधन से लभ्य नहीं है किन्तु प्रभु की कृपा हो तभी होता है । इस कृपा का पात्र वह तभी बन सकता है जब ब्रह्म संबंध प्राप्त करके प्रभु सेवा परायण बन जावे ।

इस ग्रंथ का मुद्रण कराके श्री पुष्टिमार्गीय युवक परिषद् ने सम्प्रदाय की उत्तम सेवा की हैं जिसके लिए वह धन्यवाद के पात्र हैं । वह संस्था ऐसे अन्य ग्रन्थ भी प्रगट करे ऐसा मनोरथ मैं व्यक्त करता हूँ । परिषद् के उत्साही मंत्री श्री गिरधरलाल जगजीवन शाह ने इस प्रस्तावना को लिखने के लिए मुझे सूचित करके जो शुभावसर दिया है उसके लिए उनका आभार मानता हूं और इस ग्रंथ के संस्कृत विभाग को शुद्ध रीति से छपाने के कार्य में शास्त्री जी केशव राम भाई ने जो सेवा की है उनका भी आभार मानना आवश्यक है ।

जेठालाल गोवर्धनदास शाह

टिप्पणी परम भगवदीय जेठालाल जी गोवर्धन दास जी शाह एम. ए. रिटायर्ड प्रिंसिपल अहमदाबाद ने गुजराती भाषा और अंग्रेजी भाषा में अनेक पुष्टिमार्गीय ग्रन्थो की रचनाएँ करके सम्प्रदाय की एक उच्च कोटि की साहित्य सेवा सम्पादन की है और इस प्रकार अपने शुभनाम को उन्होंने अमर कर दिया है जो सम्प्रदाय में चिरस्मरणीय रहेगा ।

श्रीमान् शाह संस्कृतज्ञ साहित्य विद्वत मंडल के सदस्य थे जिसने सम्प्रदाय के अप्रकाशित संस्कृत साहित्य का अन्वेषण शोधन करवाकर मुद्रण करवाया । कुछ लोग सम्प्रदाय के प्रवर आचार्य जो सद्गृहस्थ हैं और उनके अनुयायियों का धन-वैभव देखकर मोहित हो गये और निज स्वार्थ सिद्ध करने वाले एक दो वैष्णवों को साथ लेकर उनने ईसाई मत के अंग्रेज पादरी डा. विल्सन का सहारा लेकर सम्प्रदाय को दूषित, विलासी, बताते हुए मिथ्या बदनाम करने का असद् प्रयत्न किया परन्तु महाप्रभुजी की कृपा से जो शुद्ध हृदय सम्प्रदाय के विद्वान् थे वे इसको सहन नहीं कर सके और उन्होंने सम्प्रदाय के सिद्धान्तो को शुद्ध और पवित्र प्रमाणित करने के लिए स्व मार्गीय ग्रंथों की खोजकर मुद्रण करवाकर महत्वपूर्ण सेवा की । वे उच्च कोटि के संस्कृत एवं अंग्रेजी भाषाओं के विद्वान थे उनके कुछ शुभ नाम हैं—मगनलालजी शास्त्री प्रोफेसर, मूलचंदजी तेलीवाला, एडवोकेट धीरजलालजी सांकलिया दीवान पटवारीजी, श्री गोविन्दलालजी भट्ट, जेठालालजी शाह उनमें से अब केवल केशवरामजी शास्त्री विद्या वाचस्पती विराजमान हैं ।

।। श्री हरिः ।।

।। श्री कृष्णाय नमः ।।

।। श्री गोपीजन वल्लभाय नमः ।।

❀ श्री मधुराष्टक का माधुर्य ❀

श्रीमद् वल्लभाचार्य प्रणीत 'मधुराष्टक' स्वमार्गीय साहित्यिज्ञ महानुभावों से अपरिचित नहीं है । श्रीमद् महाप्रभुजी को विप्रयोग दशा में विविध लीला रसात्मक रासेश्वर की, जो कुछ अलौकिक लीलाओं का निगूढ अनुभव उपलब्ध हुआ था उस सब की निज जनो पर अनुग्रह की वर्षा करने के लिए श्रीमहाप्रभुजी ने मधुराष्टक' में व्यक्त किया है। इस रचना की मोहक गम्भीरता चिन्तनीय है। सन् १९२६ में श्री प्रभु के चरणाविन्द को प्राप्त वैष्णव मूलचंन्द्र तुलसीदास तेलीवाला ने इस मधुराष्ट्क की छ टीकाओं का शोधन करके मुद्रण कराई है इसलिए उसकी सहायता से—श्री मधुराष्टक के माधुर्य का विद्वान मन में सरस चर्वण कर सकते हैं वस्तुतः श्री मधुराष्टक के माधुर्य नाम से स्पष्ट है श्री मद् विठ्ठलेश प्रभुचरण की ललित विवृति ने तो इस माधुर्य को विशेष माधुर्य पूर्ण बना दिया है । आपकी विवृत्ति की शैली महाकवि बाण की कादम्बरी के समान मननीय और रमणीय है । मैं इसी विवृति के आशय को गो० श्री घनश्यामजी की टिप्पणी के आधार पर लिख रहा हूं ।

यह निर्विवाद है कि अपने सम्प्रदाय का ऐसा सर्वांग सुन्दर और सर्वोत्कृष्ट साहित्य मूर्ख विषयाक्रांत लोगों के लिये नहीं है । इस प्रकार के साहित्य के अवलोकन में अधिकार परम लक्ष्य है अतःश्री मद्विठ्ठलेश प्रभुचरण स्पष्ट अधिकार का निरूपण करते हैं कि-

"पार्थये रसिकाः स्वरै पश्यान्तिन्वद महर्निशम् ।
एतद्रसानाभिज्ञास्तु भाद्राक्षीदपि वैष्णवाः ।।"

अर्थात्—हे रसिकों ! साम्प्रदायिक साहित्य में आप लोग स्वच्छंदता से विहार करो किन्तु एक प्रार्थना है—जो भगवान् की कृपा रस से सिंचित न हो जो लौकिक विषयों से निवृत्त न हुए हो ऐसे माला तिलक धारी अहंमन्य वैष्णव ये उपरोक्त प्रकार के दिव्य साहित्य का अवलोकन न करे ।

मैं इसी आज्ञानुसार प्रिय वाचक वृन्द को विनती करता हूं कि श्री मद् प्रभुचरण की उक्त अनुज्ञा के ध्येय को हृदयारूढ करके ही इस दिशा में संचरें ।

"भक्तेच्छा पूरक स्वामी, निगूढ हृदयवली ।
श्री मदाचार्य ने वन्दु, गुप्तलीलाति मोहन ।"

श्री महाप्रभुजी को व्रज अत्यन्त प्रिय है आप देवोद्धार प्रयत्नात्मा हैं आप के हृदय में निगूढ स्थित (रहा हुआ) अनुभव वस्तुत: श्री महाप्रभुजी का जीवन है इन सब अलौकिक अनुभवों को निज जनो को कृतार्थं करने के लिए महाप्रभुजी श्री मधुराष्टक में निरूपरा करते हैं ।

'मधुरा' अर्थात् श्री मद् राधा और अधर सुधा इन दोनों के अधिपति ने ही मधुराधिपति' । श्री कृष्ण का प्रागट्य श्री मद् राधा के अधर सुधा का पान करने के लिए ही हुआ थां लालसा से सुधा ग्रहण में तदेकपरता होती है। जैसे सुधादेव भाव को उद्बोधिका है। वैसे ही यह मधुर सुधा रस भाव की उद्बोधिका है श्री मद् राधा सिद्धि रूपा होकर उसमें प्रवेश हुई सुधा इस सर्वसिद्धि की सम्पादिका स्वत: सिद्ध ही है इस प्रकार का माधुर्य अन्यत्र कहीं भी नहीं है। इस प्रकार की लीला के साथ वर्तमान श्री कृष्ण ही श्री महाप्रभुजी के सर्वस्व है ।

मधुवृत्ति से गुंजायमान सुवर्ण यूथिका इत्यादि कुसुमों से रचो हुई केलि शयनकली, प्रिय सखिएँ ये विविध ताम्बूल, अंगराग यावक अंजनपात्र सिन्दूर कंत्रुकी आदि मणियुक्ता द्वार जिनके मध्य भाग में है ऐसे, और जहाँ मधुर सुन्दर वेणुनाद के पीछे नूपुर के मंद स्वर हो रहे हैं ऐसे कोई एक लता कुंज में (लतान्तर में से अन्य सखियों से छुपकर) श्री मद्राधा कृष्ण के रसावेश को ही नितमर्यादा रहित लावण्य विभवों की श्री विरह वन्हि का बारम्बार स्मरण करने का वर्णन है–

"अहीं ततश्च कृष्णो पवने जल स्थले"

इस प्रतोक में निरूपित मर्यादाराहित्य समझें कैसे वन में ? श्री मद्प्रभुचरण उसके लिए वन का वर्णन करते है लीलोद्बोधक मधुपो (भ्रमरों) के निरंतर गुंजन से लीला कुंज का ज्ञान हो सकता है अ यथा नहीं । अत: अनेक सुगन्धित मालाओं तथा रतिश्रम जलादि पुष्प शैयाओ से सुरभि प्रमत्त बने हुए मोद लंपट भ्रमर लीला का स्मरण कराते हुए वहाँ गूंज रहे है लीलोपवन में उद्बोधक पदार्थों के आनयन के दो कारण है । प्रथम स्नानंत में पुन: शृंगार के लिए और द्वितीय विपरीत रति में प्रभु का शृंगार करने के लिए प्रभु कुंज के मध्य में मुरली का मीठा रव (शब्द) करते हैं जिससे पधारी हुई स्वामिनियों के चरण मंजीरो की ध्वनि उसमें लीन हो गई तब ही भक्तों के आगमन का ज्ञान किसी को नहीं होता ऐसे महारस की सान्निधि में किसी की भी स्थिति असंभव है इसलिए अन्य सखिएँ रति समय में अपनी स्वामिनी के विजय की प्रेरणा करती हुई संतोष प्राप्त करने के लिए दूसरी लताओं में से शकाशील हुई दर्शन करती हैं ।

इस लीला के समय श्री मद्राधा कृष्ण के वदन कमल कैसे शोभित होते हैं अतएव श्री मद्प्रभुचरण प्रथम श्री मद्राधा वदन के माधुर्य का विवेचन करते हैं ।

अर्धलज्जा से मिचे हुए नेत्र कटाक्ष से निरीक्षण करता हुआ दंतक्षत दान के सुषमा से रमणीय दिखता हुआ गाढ चुंबन के अवसर पर ताम्बूल आदि से चित्र विचित्र हुआ गंड द्वय युक्त विशाल मुक्ताफल की अवली से शोभित कर्णालंकार से संगत (साथ) लीलामणियुक्त और अरूण-मणि से शृंखलित अलकावलि से दैदीप्यमान हुआ अगरूसार, कस्तुरी तथा कुंमकुंम मणियों के बिन्दुओं से अलंकृत भाल प्रदेशान्वित माने कुपिता ने ही जहां भ्रूभृंग की रचना करी है वैसा विविध बंध लीला से व्यस्त हुवा श्रीअंग रचनाभुत अन्योन्य गंड द्वय के संगन में रतिश्रम सीत्कारों से आर्द्र श्री कृष्ण के गंडस्थ तिलक रचना की प्रतिकृति से कमनीय ऐसा मुक्तालंकार भूषित सुनासापुर संयुत श्री मद् वृषभाननदिनी का वदन माधुर्यमय है ।

विजित बिंबाधर युक्त कनक सूत्र से सूचित विशाल सुभग निर्मल मुक्ताफल से सुन्दर दृष्यमान श्वास से ऊँचा नीचा होता हुआ नासापुटयुत त्रिभुवन विजय व्यग्न नयनो से मधुर कुटिल भ्रूहों से मन मोहित करने वाला कभी कभी हास्य से विगलित होता हुआ विमल सोरभ से द्विरफो को मुग्ध करता हुआ मल्लिकादि कुसमो से खचित केशपाश से युक्त उज्जवल उच्च चिबुक से युक्त हीरकादि मणिमय अलकावलि से मधुर दव्य प्रत्येक क्षण वृद्धिगत होता हुआ प्रेम सीतकार वाला मकर कुण्डल मणि गंटमण्डल से प्रोदभाषित कभी कभी चकित नेत्रों से सुशोभित श्री रासेश्वर नंद नंदन का वदन मधुर भरा हुआ है ।

गुंजामणिहारों से शोभित श्याम कञ्चुकी सें अच्छादित मृगमद पत्र से अंकित कुंम कुंम रचना से रंगा हुआ लावण्य का सरोवर उत्तम उतुंग उरोजों से संलिष्ट रतिश्रम के बिंदुओं को पौंछने से आर्द्र विचित्र वसन के आंचल से ढकी हुई कनक यूथिका कुसुम मालाओं से दर्शनीय दिखती हुई अति गोर विविध महामणियों से जड़ी हुई कनक मुद्रिका से अलंकृत श्री कृष्ण को उंगली से सदंशित क्रीड़ा में दूर हुई कंचुको अवकाश वाली श्रीमद्राधा का हृदय माधुर्य के मार्दन से भरा हुआ है ।

कंठाभरण से भूषित उसके पीछे मुक्ता माला की परंपरा से सुशोभित पिनोन्नत श्रीमद् राधा के आलिगन से विमर्दित माला वाला स्वर्णमणियों से जटित वेणु से दीप्यमान दक्षिण कर वाला क्षण क्षण में श्री वृषभान को आलंगित, शिथिल उत्तरीय वालों कोटिकंदर्प लावण्य श्री मद्राधाकांत का हृदय माधुर्य मय है ।

विशेष अवसर में अतरण सखियों द्वारा विज्ञापित सूरम्य विविध रूचिर पूलों की मीठी सुगंध लोलुप भ्रमरों से गुंजित कोकिलाओं के कूंजनों से कजित रचित शैया वाले अन्य लता गृह में रमणेच्छु श्री मद् राधा कृष्ण मार्ग के बीच में आते हुए पुष्प, पक्षी और सखी आदि मध्य में अपांगों का मोचन करते हुए चुम्बन आश्लेशादि लीलाओं का आचरण करते हुए पुष्पों के गुच्छों को उछालते हुए गजेन्द्र लीला का यह अनुसरण करते हुए यह सासक्त बाहुओं से लीला, कमल से क्रीड़ा करते हुए

ताम्बूलों का चर्वण करते हुए, कल गीतों का ज्ञान करते हुए मृदु लताओं को प्रेम से निवारित करते हुए गमन करते थे। श्रीमद् राधा कृष्ण के ऐसे अवर्णनीय मधु गमन में श्री महाप्रभुजी को जिस माधुर्य का अनुभव हुआ जिसका मधुराष्टक में आप श्री ने मधुरं स्मरण गान किया है । इससे आगे श्री मद् राधा कृष्ण की निरवधि रसात्मक लीलाओं में श्री महाप्रभुजी तन्मय होते हुए वर्णन करने में अशक्त होने के कारण मधुराष्टक के प्रत्येक पद्य के अंत में मधुरेष्टवर का सब कुछ बहुत अधिक मधुरं ऐसी रहस्य भरी मधुर पूर्ण आज्ञा करते हैं ।

इसी प्रकार के समय विशेष में उद्भव हुआ स्वप्राण भूत अनुभव मधुराष्टक के अन्य पद्यों में श्री महाप्रभुजी ने निरूपण किया है ।

श्रीकृष्ण चन्द्र के प्राण प्रिय व्यर्थ में क्रोधित, स्व कुंजन से कोकिक कूंजन को जीतने वाले कुटिल भ्रू-वल्ली वाले सुशोभित अधर वाले अनंग भार से गर्विष्ट और स्नेह आर्द्र अपांग नीरीक्षणों से श्री कृष्ण के मुख सरोज को देखते हुए श्रीकृष्ण की रस समवलित लीलाओं से दूर हट गये वस्त्र नियत्रण वाले श्री कृष्ण से परिपीड़ित पिनोन्नत स्तन वाले, छल से की हुई और हस्त से ढकाये गये सर्वांग चुम्बन के अमोद से प्रत्यंग पुलकिता कपोलांचन से व्यवहित हुई वचन रचना वाली स्मित सुमन बखेरते हुए समीप रहे हुए श्रीकृष्ण के मुख कमलादि का अंगुष्ठाभरण में पड़ते हुए प्रतिविम्ब से रस के आवेश से प्रमथ मेरा ही चुम्बन करना चाहिये ऐसा विचार कर अंगुष्ठाभरण का चुम्बन करते हुए विपरीत रति के वचनादि रस से भ्रमण करते हुए केलि शयन में मुग्ध भाव से चचल होते हुए श्री मद्राधा के मधुराधिपति संबंधी वचन चरित वसन, वलति, चलति भ्रमति ये सब मधुर है । इसी प्रकार से श्री कृष्ण के इस मधुरेश्वरी संबंधी ये सब माधुर्य रस के झरने हैं ।

मित्रों को दिखाने के लिए ही प्रभु गायों को देखते हुए पर्वत पर चढ़े थे किन्तु इनका यह उद्देश्य नहीं था। दूर से स्वप्रियाओं के सौंदर्य गति विलास को आर्ती युक्त होकर विचित्र वस्त्राभरण को वैसे ही चकित अवलोकपनादि को देखने के लिए प्रभु गिरि-शृंग पर पधारे थे। परन्तु गोप समाज को इसका जरा भी ज्ञान नहीं था तो ऐसे मानते थे कि अनेक कुसुमों से कुसुमित सुस्वाद फलों से फलित लता द्रुम निकुंजों से समृद्ध हुए श्री गोवर्धन पर्वत पर प्रभु गोचारण में प्रवृत हुए हैं श्री कृष्ण के लिए श्रीमद् गोपीजन गोरस बेचने के बहाने से विविध वस्तुओं को लेकर सहचरियों से अज्ञात अपने आने को सूचित करती थी । कालिन्दी तट स्थित रस निकुंज को ज्ञापित करते हुए वेणुरव को सुनकर वहाँ गई । श्रीकृष्ण के आलिंगन को प्राप्त रति श्रम जल से आर्द्र कुँमकुँमांकित स्वकीय उत्तरीय से अल्कों में रही हुई गौरेणु को पोंछने की अभिलाषा से पोंछते समय रेणु में और वेणु में श्रीकृष्ण का हस्त स्पर्श से पुलकित अवयवों वाली पूर्व रचित विविध सुमनों से विनिर्मित शयन में विराजे हुए श्रीकृष्ण के चरण सवाहन परायण में मस्त भक्ति वाले श्रीकृष्ण के चरण कमल में आसक्ति श्रीमद् गोपीजनों को दूर से देख प्रतीक्षा करती । श्रीकृष्ण शिखर के ऊपर

रसात्मक नृत्य कर अपने अनुराग को प्रकट करने लगे ।

प्रभु ने वेणुरव में तीन स्वर कीये । निकट निकुंज सूचक संकेत रूप मंद स्वर थोड़ी दूर सूचक मध्यम स्वर और सुदूर निकुंज सूचक तार स्वर ऐसे स्वर भेद से श्रीकृष्ण ने वेणु द्वारा भक्तों का अंतरंग भक्तों का आव्हान किया था यदि प्रभु स्वर भेद वाली वेणु ध्वनि न करें तो मित्रों को संकेत का बोध हो जाये । अतः यहां नाद भेद से रसात्मकता सूचित होती है । जैसे मयूर मयूरनी की प्रेरणा कर रसाविष्ट बन सर्वांगत रस को एकत्रित करने के लिए तथा मयूरनियों को इच्छित दान देने के लिए मोरनी सहित नृत्य करता है उसी प्रकार मयूर मुकुंद मयूरनी भानुका के साथ नृत्य करते हैं ।

वैसे ही रस निकुंज में श्री मद्राधा गायन करती है । रसावेश होकर परस्पर अधर रस सुधा का पान करती है । अपनी अभिलाषा को प्रकट करते हुए श्रुत दुग्ध मोदकादि सामग्रियों का श्रीमद् गोपीजनों की लाई हुई का भोजन करते हैं । तदन्तर कुसुम शैया में श्रीमद् गोपीजनों की सब अभिलाषाओं को प्रभु शयन द्वारा पूर्ण करते हैं ।

प्रभु का यह शयन पूर्व संचित विविध वंध मनोरथों से उद्भावित रस विशेष का पान करना ही था उसके बाद रसवेश से प्रकट की हुई मर्यादा रहित के क्रीडन से प्रभु ने स्वामिनीयों आदि के किए हुए रूप को अंगीकार किया । इस प्रकार अभिलाषा पूर्ण करने के बाद व्यस्त शृंगार में अमार्द्रता से उभयांकित तिलक रचना का माधुर्य वदनार्विदों में श्री महाप्रभु जी ने जो अनुभव किया उसी का महाप्रभुजी यहां निरूपण करते हैं ।

मन में निश्चित किये हुए दिन सदा विहार की इच्छा में से निकले हुए वेणुग्रथित वकुल मालती करबक आदि कुसुमों के परिमल मंद भ्रमर गण से आकुल केशपाश वाले स्मित विकास युक्त विभ्रम से द्रवीभूत लावण्य मुख वाले हीरकादि मणि गण से रचित मृग मदा-दिनी को त्रियंक रेखाओं से शोभित भाल विन्दु वाले नसापुट से सुंदर मुक्ताओं से शोभायमान समाविष्ट उरोजों पर तरलित होते हुए हार वाले विचित्र वसनान्तर से दीप्यमान होता हुआ अखिलवेश रचना वाले अलक तक रागाक्ति वदांगुली विराजित विविध नूपुर वाले स्थिर ग्रीवा से दधिकलिशकओं को मस्तक पर लेकर जाते हुए श्रीमद् गोपीजनों ने ब्रजाधिपसुत श्रीकृष्ण को मित्रों के साथ जाते हुए रोका समीप आये हुए चकित नयन गोपांगनाओं से चित्त को खो बैठे हुए वदनेन्तु सुषमा से अनेक बधुओं को मुग्ध करते हुए दूर गई गायों का नीरीक्षण करने के बहाने से मित्रों को स्थानांतर करते हुए वक्रोक्ति और कपोल उरोजादिक से कंदर्प को आविर्भूत, करते उत्तमांग रहे हुए दधि भाजन का ग्रहण करते हुए विविध मणि मय कांचीपट प्रसूनों को एक ही हाथ से ग्रहण करते हुए विविध रचित प्रसून

प्रेदभूत निर्मल परिभलों से मस्त मधुव्रतों के गुंजन से गुंजित लता गृह में घाष नन्दिनीओं को लाकर श्रीकृष्ण ने जो अनेक लीलाएं करी उन्हें अनेक अलौकिक लीलाएं करी प्रेमाब्धि का तरण सम्पादित किया। मर्यादा रहित रमण किया। हास्य मालादियों का जो वभित किया। सूद्र घटिकाओं को शमन किया। इन समग्र का स्मरण करके श्रीमद् महाप्रभु जी मधुराष्टक में उनका वर्णन करते हैं।

इस प्रकार कभी वकुल आम्र कदंव आदि द्रुमों से गिरे हुए मंद वायु से सुवासित केली योग्य तरण तनया के कूल में स्नानादि के व्याज से पधारी हुई श्री मद्राधा के साथ मकर कुंडल से मन्डित गन्ड मण्डल से अखिल भुवव प्रकाशित करते हुए कमल दल लोच। मुरलीधर गुंजा मणि के हारों से वक्षस्थल को शोभायमान करती हुई श्रीमद्राधा वदन का अवलोकन निखिल मनोरथ स्वरूप से प्रादर्भूत हुए प्रभु ने आश्लेशादि लीलाएं करी थी। श्री यमुनाजी में जलक्रीड़ा वैसे ही कमल क्रीडन किया। तदनर कुंजो से निकलती हुई पुष्पावली रचित केलि शयन से उद्भव हुई श्रम जन्म से भीगे हुए मुख पद्म वाले प्रिय से दिये हुए कमल से क्रीड़ा करते हुए राधिका के साथ जाने के अनेक मार्ग स्फूटि भूत होने से जहाँ तक मार्ग विभजन होय तहां तक प्रिया को अर्पण की हुई माला ने उर स्थल को दैदीप्यमान करने के लिये रहे हुए मन्द गति वाले क्षण क्षण में आश्लेशादि लीलाए करते हुए घूर्णायमान नयक सुषमा अवलोकन में परायण कभी आगे कभी पीछे और कभी बाहुबद से गहन लताच्छादित कुंज मार्ग में यथा सांकर्य जाने लगे। मार्ग संधि के आने पर परस्पर दृष्टि से ही जाएंगे ऐसी अनुज्ञा प्राप्त कर अनोन्य गुंजामणि हारों का विनिमय कर पधारते। श्रीमद्राधा कृष्ण में श्री महाप्रभुजी ने जैसे माधुर्य का अनुभव किया उसको गुंजा मदुरा से शिष्ट मधुर पर्यन्त श्री मधुराष्टक में वर्णन किया है।

ऐसी अनेक लीलाएं करने के बाद श्रीकृष्ण गोपसमाज में प्रवेश होते हैं। गेह गमनान्तर गोप वधुएँ सांयकाल में प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा करती हुई गोष्ठ में रही थीं गोप समाजस्थित गोप गीत कीर्ती वेणुवादन परायण गोरजच्छुरित कुंतल प्रभु ने व्रजस्थिओं तथा गायों के दिन ताप का नाश करने के लिए उद्यत हुये प्रभु विचित्र यष्टि ग्रहण से तथा गायों को वर्णादि भेदों से किए हुए आवाह्नन करते हुए अपने समीप दर्शानार्थ आये हुए विचित्र वसन भूषित श्री गोपीओं के सर्व गोचर कटाक्ष स्पर्शादि के संकेत से प्रमुदित करते हुए ऐसे निखिल माधुर्य रस पूर्ण श्री कृष्ण चन्द्र को महाप्रभुजी को दृष्टि गोचर हुए और वैसी माधुर्य भरी सृष्टि में मधुरम भरे हुए वे कई अनुभव प्राप्त हुए उसका वर्णन 'गोपा मधुरा' के सृष्टि मधुरापर्यन्त श्री महाप्रभु जी ने किया है। मधुराष्टक में मुख्यत्व श्रीकृष्ण के सर्वांगता का वर्णन है श्रीमद् प्रभुचरण ने विवरण में श्री मद्राधा के वर्णन की ध्वनि मुखाने की रचना की है। इनके श्रीमद् राधा और श्रीकृष्ण इन दोनों की लीलाएं ललित

मधुर रसपूर्ण और अकथनीय है।

श्री महाप्रभुजी वर्णन करते करते माधुर्य रस महासागर में निमग्न होते हुए श्री मधुराष्टक के अंत में दलितं मधुरं फलितं मधुरं प्रतिपादन करते हैं। श्री नंद गृह के क्यारों में उगे हुए श्री मद् गोपीजनों के राग (स्नेह) सिचन से संवृद्ध हुए शृंगार कल्पद्रुम के सब दलितं फलितादि में माधुय की पराकाष्टा है।

श्री रघुनाथजी श्री बालकृष्णजी और श्री गोकुलनाथजी इन ने भी श्री मधुराष्टक पर स्वतंत्र विवृति विवरण लिखे हैं। श्री बालकृष्णजी और श्री गोकुलनाथजी की विवृत्तियां भाव में गंभीर है उपक्रम तथा व्याख्या में प्रत्येक विवृतियों में विलक्षणता दिखायी है श्रीमद्प्रभु चरण की विवृति तो भाव प्रकट है श्री घनश्याम जी का टिप्पण भी उस पर अच्छा प्रकाश डालता है। मधुराष्टक के अन्य संस्करणों में श्री मद्प्रभुचरण की विवृत्तियों का पाठ भेद प्राचीन ग्रंथों से प्राप्त कर प्रकट करने में आवे तो अभ्यास करने वालों को बहुत सरलता हो। भानुभावी श्रीमद् हरिराय चरणकृत मधुराष्टक तात्पर्य में तो वस्तुत: माधुर्य निझर्ता है। श्रीमद् प्रभु चरण की विवृति का आशय मैंने यथा मत ही ऊपर उसका उल्लेख किया है परन्तु निगूढ विवृति को निगूढ विवृति से संभव है कि कोई स्खलन हो गया हो तो उसकी विद्वद्वृन्द अवश्य उपेक्षा करेंगे इस अभिलाषा से मैं विश्राम करता हूं।

राधाधर सुधा पातु किमन्यन्मधुरायितम्।
यन्निवेद्यं तदप्येतन्, नाम संबंध तो भवेन्॥

(कार्तिक कृष्ण ९ वि० स० १९८८ गुरुवार ता. ३-१२-१९३१)

नि. ली. पूज्यपाद गोस्वामी श्री ६ श्री व्रजनाथलालजी महाराज

आवश्यक नोंध—श्री पुष्टिमार्गीय युवक परिषद प्रणेता पोषक उत्तेजक और मार्ग दर्शक प्रात:स्मरणीय श्री मद्वल्लभ कुल कोस्तुभ नित्य लीलास्थ पूज्यपाद गोस्वामोजी श्री व्रजनाथलाल जी महाराज श्री ने सन् १९३२ में लिखा हुआ मधुराष्टक का माधुर्य लेख श्री मधुराष्टक की संस्कृत छ टीकाओं तथा व्रजभाषा अनुवाद सहित के प्रकाशन में प्रकट कर आनंदानुभाव करते हैं। पूज्य महाराज श्री ने परिषद की प्रगति में प्रेरणा का पीयूष का पान कराकर जो सुंदर भाग लिया है उसका स्मरण कर कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

प्रकाशक-**श्री पुष्टिमार्गीय युवक परिषद बम्बई**
गिरधरलाल जगजीवनदास शाह मानद मंत्री

ये दोनों लेख गुजराती भाषा में मधुराष्टक की पुस्तक में दिये हुए हैं जिनका अनुवाद करने में जो त्रुटि रही हो उसको पाठक महोदय क्षमा करेंगे और "नीर क्षीर" न्याय से इन से आनन्द प्राप्त करेंगे, ऐसी सदैन्य प्रार्थना है।

।। श्री कृष्णायनमः ।।

।। श्री गोपीजनवल्लभायनमः ।।

।। श्री मदाचार्यचरणकमलेभ्यो नमः ।।

अथ श्री मधुराष्टकम्

अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरम्
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।१।।
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरम् ।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।२।।
वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः पादौ मधुरौ ।
नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।३।।
गीतं मधुरं पीतं मधुरं भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरम् ।
रूपं मधुरं तिलक मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।४।।
करणं मधुरं तरणं मधुरं हरणं मधुरं रमणं मधुरम् ।
वमितं मधुरं शमितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।५।।
गुञ्जा मधुरा माला मधुरा यमुना मधुरा वीची मधुरा ।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।६।।
गोपी मधुरा लीला मधुरा युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरम् ।
दृष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।७।।
गोपा मधुरा गावो मधुरा यष्टिर्मधुरा सृष्टिर्मधुरा ।
दलितं मधुरं फलितं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरम् ।।८।।

। इति श्रीमद्वल्लभाचार्यचरण प्रकटितं श्रीमधुराष्टकं संपूर्णम् ।

।। श्री कृष्णाय नमः ।

।। श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ।।

।। श्रीमदाचार्य चरणकमलेभ्यो नमः ।।

अथ श्रीमधुराष्टकको टीका लिख्यते

अब श्रीगुसांइजी प्रथम श्री आचार्यजी कों नमस्कार करते हैं काहेतें यह जो मधुराष्टक ग्रंथ हैं सो श्री आचायजी आपु प्रगट भऐ हैं सो अत्यंत मधुर रस रूप हें जिनमें मधुप जो सिंगार रस हें सो सो यह सब मधुराष्टक के भाव में भरयो हैं। ताहीतें श्रीआचार्यजी आप मधुर रस के भोक्ता हें सो आप भोग सदा इंद्री करत हैं। और लोकन में प्रगट नही किये हैं। सो रसकों गोप्य राखकें माधुर्य भाव मधुर-मधुर सबनकों बरनन कीऐ हें। सो ताकें भाव प्रकास करवे में अनुभव करिवे के योग्य हैं। सों श्रीगुसांइजी आप प्रगट कीए हैं। तातें जो प्रकार यह मधुराष्टक ग्रंथ श्री आचार्यजी महाप्रभू आप प्रगट कोये हैं सो मंगलाचरन के श्लोक में श्रीगुसांइजी आप बरनन कीऐ हैं। सों तामें यह कहे हें। जो श्री आचार्यजी महाप्रभून के चरणकमल के आश्रय बिना यह माधुर्यरस की प्राप्ति न होय। जो श्रीआचार्यजी महाप्रभून के चरण कमलको असों प्रताप हें बातें प्रथम मंगलाचरणकों श्लोक कहत हैं।

श्लोक—नमो हुतासिने मधुर प्रकाशन परायणः।
रमा लीलमना योऽसि भाव नैकहितप्रदः ।।१।।

अर्थ—अब प्रथम श्रीप्रभून के चरनकमल को नमस्कार श्री आचार्यजी महाप्रभून के चरणकमल कों नमस्कार करत हैं सो कहत हैं। जो नमो हुतासने सो ताकों अर्थ तो यह हैं। जो श्री आचार्यजी महाप्रभून के स्वरूप विप्रयोगात्मक आधिदैविक जो अग्नि हैं तिनमें सों गुण यह हैं जो संयोग रस अम्रत ताकी प्राप्ति होत हैं। तातें जो कोई की विप्रयोगात्मक अग्नि महाताप रस जों श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप हृदय मेंते नाही आये। तहाँ ताई संयोगात्मक अमृतरस पुष्टिमार्गकों फल ताकी प्राप्ति नाहीं हैं। ताते विप्रयोगात्मक अग्नि के आश्रय संयोगरस हैं। सो रसरूप श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु हैं। सों तातें मधुर अग्नि कहें सो काहे ते जो जीतनी मधुर सामग्री होत हैं। सो अग्नि के संबध बिना तो सिद्धि नाही होत हैं। सो तैसेंई सयोगात्मक माधुर्यरस विप्रयोग रस के आश्रय बिना प्राप्ति नाहि होत हैं। सो एसें श्री आचायजी महाप्रभू आपु विप्रयोगात्मक मधुर मधुर हैं सो जिनके आश्रय ते लीला के भाव रूप संयोगात्मक रसकी प्राप्ति होत हैं। सो ताहीतें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप तो अलौकिक अग्निरूप हैं। तातें यह पुष्टिमार्ग परमरस रूप माधुर्य रस जामें हैं। व्रजभक्तन के भावरूप

अमृत सों अपने सेवकनकों दान करिवे के निमित्त यह रस प्रगट कीयो हैं। और श्री आचार्यजो महाप्रभू आपतो सदां लोलारस अमृत समुद्र हैं सो ता प्रेम सो भऐ हैं। सो विहार करत हैं। सो ताहीतें श्रीआचार्यजी महाप्रभून के कोये ग्रंथ तो महारसरूप हैं। सो काहे तें और जो वाणी है सोतो चतुराई करिकें है तथा कोंई जोवकी वानी देवतान के आश्रय करिकें है। सो तिनमें रसतों नाही है सो काहेते जो उनकों लोला रसकों अनुभव नाहो हैं। और श्रीआचार्यजी महाप्रभून के कोऐ ग्रंथ हैं सो आप श्री ठाकुरजी के संग सदाँ लीला करत हैं। सोई वचनामृत द्वारा दैवो जीवन के लोयें वर्णन कोए हैं सो तातें अत्यंत स्वरूप वचन हैं सो तत्कारनफल सेवकनकों सिद्ध होत हैं सो तामें यह मधुराष्टक ग्रंथ हैं सो प्रेम के रसकरिकें मत् होय हृदय में तें रस उमग्यो है सो तों वाहिर प्रगट भयो हैं। सो तातें महागूढ रस सो एसो मधुराष्टक ग्रंथ है सो या प्रकार सों प्रगट भयों हैं। सो श्रीगुसाँईजो आप वरनन करत हैं। श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप श्रीगोवर्द्धननाथजो श्रीगोवर्द्धन पर्वत के ऊपर जहाँ आदि श्रीवृंदावन तहां रस रूपसों श्रीयमुनाजो सहित सदा विराजत हैं। तहां नोत्य लोला प्रगट हैं। सो तहाँ श्रीगोवर्द्धननाथजी को मंगला आरती करिकें ता पाछें ता दिन श्रीस्वामिनो जा के जन्म उत्सव की अष्टमी हती। तातें अभ्यंग अस्नान करवायकें जन्माष्टमी कों सिंगार जा दिन करत हैं और अत्यंत रसमय सो उमग्यों प्रम में विवस होयकें सगरें श्री अंगकों अनुभव हतों सो श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु हृदय में कोऐ हैं। सो बाहिर गुप्तरीति सों कहे हैं सो आगें मधुरस के प्रसंग में कहेंगे। सो तातें यह तो मधुराष्टक जो ग्रथ हैं सो ताकों अपने हृदय में गोप्य ए स्वभाव सहित पाट करें तो याका भाव श्रीआचार्यजो महाप्रभून को कृपातें सिद्धि होय सो तात अपने मनके विचार करिकें देखें जो मेरो मन स्वास्थि पाया हैं एसों विचारकें रस के ग्रथनकों भाव विचारें तो परम हितकों पावें नहीं तो भृष्ट होय जाय सों ताहोतें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु सिक्षा के ग्रथ वोहोत प्रगट कोए हैं। श्रीकृष्णाश्रय। नवरत्न भक्ति वर्द्धनो विवेक धैर्याश्रय। जलभेद ईन ग्रंथन कों पढ़े तो याकें विगार सर्वथा न होय। या प्रकार मंगलाचरन करिकै दैवो जीवन कों सिक्षा दीये। अब श्रीगुसांईजी आपु मधुराष्टक के प्रथम श्लोक को भाव लिखे हैं सों अब अर्थभाव रहित हैं सो कहत हैं।

श्लोक—अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरं।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरं।

याको अर्थ—अब प्रथम कहें जो अधर मधुर तामें नानां प्रकार के भाव हैं। श्रीठाकुरजी के अधर केसें हें अरुन सोभदित हैं। सो तिनकी छवि देखिकें बिवाफल लज्या कों पावत हैं। एसें बिबाफल कों देखिकें सुक जो नासिका रूप सो ऊपर आयके वैठ्यो हैं परंतु एसी बिबाफल की छबि है जिनकों देखिकें सुकजो हैं सो अपनो देहानुसधानु भूलि गयो है सो बिबाफल को छबि देखिकें मानों ठगि रह्यो है सो

उठि नाहीं सकत। सो मानों बिबाफल की रक्षा करिवे कों बेठि रह्यों है। मति कहूं दूसरो शुक आयके बिबाफल कों न लेय। एसों अधर अद्भुत सरूप हैं और अधर अद्भुत स्वरूप हें ओर अधर के ऊपर नासिका में वेसर हें सो श्री ठाकुर जी के अधर ऊपर विहार करत हैं सो अत्यन्त सुंदर उज्वल हैं सो तिनकी अपार छवि हैं सो मानों मुक्ताफल नाँही हैं सो मानों वक परम सोभायमान आयो हैं सो दूरितें मनकों देखिकें अपनों भोजन जानिकें आये सों ताही समय चतुर धनुष जो भृकुटी हैं और नेत्रन के कटाक्षरूपी जे वाँण है ताकों वक के हृदय कों वेधे सोई वेसरिके मोंती में मॉनों कचन परचौ हैं जो या प्रकार वंककों हृदय वेधिकें नासिका रूपीकों खंभ हैं तहां वकरूपो चोरकों कंचनरूपी जेवरोसों बांधे हैं अथवा दूसरो भाव सुकजो अधर तिनकी रक्षा करत हें तिनतें अपने मनमें विचार्यो जो मति कहूं मेरो भोजन बिबाफल लेयगो तातें सुकनें वककोंहृदय वेधिकें अपनो चोंचको वेधि वांधि राखे। अथवा बक जो हैं सो नासिकारूप पोरियाके पायन परत हैं जो में अधुर रूप दरवाजे के भीतर हैं तहां मोंको जान दे में तोकौं कंचन देतहों सो सुक कंचन लेत नांही हैं सो परस्पर वातें करत हैं। और अथवा बिबाफल जो अधर हैं। और करण में मकराकृत कुंडल हैं। सो दोऊ जने मनमें भय पावत हैं। सो बिबाफल तो यह जान्यो जो सुक मेरो बेरो आयो हैं। और मकराकृत कुंडलनें सुककों और वककों कंचनरूप जेवरी करिकें बांधे हैं। ता पाछें कूप हैं। जो नासिकाकों रध्ररूप तामें डारें और कूपको मुख छोटो और सुक वक बड़े सो दोऊ बांधे हैं। सो तातें उडिहू नाही सकत और कूपमेंहू नांही पडि सकत सो कूप ऊपर बेठि रहे है सो एस सुक बंकको उपमा कही जों अब कहत हैं। सो फेरि अधर कंसे हैं। जिनको छबि देखिकें श्रीस्वामिनीजीकों स्नेह परमोतम उतम निर्विकार सोंई मांनो मुक्ताफल उज्वल हैं सो श्रीठाकुरजी के अधरामृतकों पान करिकें ता पाछें मृत्य होंयकें गिरिवे लगे सो तब नासिकारूप जो खूटी हैं सो तिनकों पकरिकें घूमत हैं अथवा अधरामृत रसपान करे तिनकें तों मत ता होय सों तब खूटी पकरिवेको सुधि कहां तहां अब कहत हैं। जो श्री स्वामिनोजी तब मुक्ताफल रूप होय अधरामृतकों पांन कीयों तब देहानुसंधानु भूलि गई। सो तब श्रीठाकुरजी दयाकरिकें नासिकारूप जो अधर हें सो तहां बैठारि राखे तामें श्रीठाकुर जो श्रीस्वामिनीजी सौं यह जताई जो तुम्हारी अधरामृतकों पान कीयो हैं सो तिसकों त्याग में कैसें करो तामें मेरी अधररस मोसिज्या हैं। नासिकरूप घरसों तामें तुम सदांई विहार करो। और श्रीठाकुरजोनें श्रीस्वामिनीजीसों यह जताई जो तिहारे अधरामृत रसकों पान मोहूंको करनों हैं सों तातें मोंकों तिहारे विना एक क्षणहूं कल नाही परत हैं। तातें यह मेरे नासिकारूप जो घर हैं सो तामें तुम सदाँई विराजो यह भावसु चित कीयो सों या भातिसों कहिकें नासिकामैं श्रीस्वामिनीजीकों भावरूप परम उज्वल नासिकामें राखिके अपने अधररूप जें सैया हैं सो तहां विहार करावत हैं सों एसे अधर हैं। और एक समय श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप श्री गोवर्द्धननाथजीकों सिंगार करत हें। सो श्रीगोवर्द्धननाथजी हँसि हँसिकें जेसो मनोरथ कहे वस्त्र आभूषण कहे जो ताही भाँतिसों श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप धराऐ हैं। सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी श्रीआचार्यजी महाप्रभून सों कहें। सो व्रजभक्त मोंकों अति सुख देत हैं। जो तातें मोकौं प्राणप्रिय हैं। तेंसे तुम

मोंकों बोहौत ही सुख देत हों सों ताही प्रकार तुम मोंकों सुख देतहौं । तातें तुम्हारे बिना ओर व्रजभक्तनके बिना एकक्षण हूं रहि नाहो सकत हूं सो तब श्रीआचार्यजा महाप्रभू आप यह सुनिके मंद मुसकायके अत्यत स्नेह करिकें श्रीगोवर्द्धननाथजीके कपोलकों परसकरिकें ता पाछें श्रीगोवर्द्धननाथजी आपु श्रीस्वाँमिनीजी की ओर दुरिते कटाक्षकरिकें देख तब श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप देखें सो काहेतें जो आपुहू श्रीस्वामिनीजी के भावरूप हैं । सो श्रीआचार्यजो महाप्रभूकों देखतई मानों कोई कंचनकी अद्भुत सत्ता श्रीअंगकों चाकचिक मानों कोटि-कोटि कंदर्प कोटि-कोट दामिनी कोटि-कोटि रतिलज्जाको पावत हैं । कमलाजो लक्ष्मी सचि जो सीय जो श्रीरघुनाथजोकी प्रिया ईत्यादिक सब लजाकों पावत हैं एसे रसरूप तों श्रीस्वामिनीजो पधारे हैं सो मांनों कोई सिंगाररस आपुहू स्वरूप धरिकें मानों मत्त गजराजकी रीतिसों मत्त होयकें धूमत लटकत तांबुल श्रीमुखभरे धीरे-धीरे आभूषणकों गुढाकरिकें श्रीगोवर्द्धननाथजी की दृष्टिसों बचायकेंपाछेंतें आयकें श्रीगोवर्द्धननाथजी के श्रीमुखकमलकों चुबन कीयेसो पीककी छाप कपोलन ऊपर दोऊ ओष्टमें जो रस ताको दोय लोकको छाप लागी हैं । तामें छिदलात्मक स्वरूपकों दोऊ लिक प्रगट करिकें जताये सो रसरूप श्री गोवर्द्धननाथजी के कपोलमें कृपा देखिकें श्रीस्वामिनीजो आपुहू प्रेमसों विवस होय रहीं और श्रीगोवर्द्धननाथजी हूं चक्रित होयकें निहार रहे । रसके भरकरिकें ऊपरते रचक हूं लजित भए । हृदयके भोतर तो परमरसको आनदकों समुद्र हैं मो उमापोसों तब यह छवि देखिक श्रीआचार्यजी महाप्रभूजी के हृदयमें परम आनंद भयो सो प्रेमकों अनुभव करिकें भीतर सब रसको अनुभव करिकें ता पाछें रस बाहिर उमग्यों तब श्रीआचार्यजी महाप्रभू यह कहे अधर मधुरनाम अधर व्रज भक्तनके अनुभव में अत्यंत मधुर हैं सो सब रस कें भोक्तातो श्रीआचार्य महाप्रभू आपु हैंसो काहेते जों अधरतों मधुर अमृतरससों भर्‍यों सदाँही है परंतु आजु अत्यत माधुर्यरस सहित सब लीलाकी स्मरण करावत हैं सो सोभा देत हैं फेरि श्रीआचार्यजो महाप्रभू आप अपने मनमें विचारे जो तिनके अधरकी सोभा देखेतें एसों सुख उपजत हैं सा अधरको पांन जो करत हैं सों तिनकों आनंद कह्यो न जायसों एसें हृदयमें विचारकें प्रेम दिसमैं विह्वस होइकें आपुश्री आचार्यजी महाप्रभूश्री गोवर्द्धनगाथजीकों सिंगार करत भोतर तों आपहू श्रीस्वामिनीजी रूप हैं सों तातें इनहूतें रह्यो न गयो सो श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपुहू अधरणकों चुंबन कीयों सों आपहूं अधरामृत के अनुभव करिकें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप श्रीमुख तें कहे जो अधर मधुर जेसे कोई मधुर वस्तु को खाय है तिनके अंगों में भावात्मक रस है तिनको श्रीआचार्यजा महाप्रभू के वचन सब अधरामृतरसरूप ही जानिकें कहिये सुनिये । सो तब श्रीगोवर्द्धननाथजी आप मुसिकायकें श्रीआचार्यजी महाप्रभून के हृदय में लटपि गऐ सो श्रीगोवर्द्धननाथजी आपुको अधरबिंब सदाई मधुर हैं परन्तु श्रीस्वामिनी जी के मुखारविंद के रसकी पीक तिनकी छाप जो अधरबिंब मे लगी ों तातें अधरबिंब अत्यत सोभा देत हैंसो श्रीस्वामिनी हू नित्यई श्रीगोवर्द्धननाथजी के सिंगारमें पधारत है सों अपने मनको जो मनोरथ हैं सोई सिंगार श्रीआचार्यजी महाप्रभू द्वारा धरावत हैं और सिंगार भोग की सामग्री हैं सोऊ श्रीस्वामिनीजी के मनोरथ की हैं तातें श्रीस्वामिनीजी तो नित्य पधारिकें मध्यांन समय कों संकेत श्री गोवर्द्धननाथजो कों जना-

बत हैं तातें आजु यह अपने मनमें आई जों आपुने मुखमें जो तांबुलरस सोई सुंदररस रंग भयो और श्रीमुखारविंद जा अपनो हें सों ईछारूप मुखकमल तांबूल रसरूप रंग मैं भरिकें श्रीगोवर्द्धननाथजी कें अधररूपो कागद हैं सो तामें छाप मोहोर दीनी हैं सा तामें यह भाव सूचित कीऐ हैं जो राजभोग पीछें गाय चरावनकें मिसि करिकें निकुंजमें पधारियो जो में हू तहां आऊगा जा या प्रकार हू संकेत जनावत हैं । अथवा श्रीस्वामिनीजानें जान्यों जो श्रीठाकुरजी जो हैं सों अनेक कोटानकोट युथ प्रति जो ब्रजभक्त हैं सो तिनके मनको हरण कीऐ हैं एसों अपने मनमें विचारकें सब व्रजभक्तनकों यह जताये जो श्रीठाकुरजी आप हमारे बस हैं और के अनुभव में वेगो आवेंगो नाहो हैं एसें तिहारे बस नांही हैं कदाचित कोंऊ व्रजभक्तन के घर प्रेम वस तों श्रीठाकुरजी आप पधारत हैं सो ताहू में श्रीस्वामिनीजो बिना तो रहत नाहीं और द्विधा सरूप करिकें सबनकों दान हैं सा तातें ललित त्रिभंग ग्रथ में श्री गुंसाईजी आप लिखे हैं जो यह ललित त्रिभंग स्वरूप परम रस रूप हो हैं तों तिनकों अनुभव एक श्रीस्वामिनीजी ही जानत हैं । ओर आपुन हित करत हैं । जो उनहीके अनुभव योग्य हैं । उनहीकें लीए यह रस प्रगट भयो हैं तातें ओर जो व्रजभक्त हैं तिनको श्रीस्वामिनीजो के चरणकमलको सेवन करें तो ईनके आश्रयतें सेवनके रसको प्राप्ति होय । सो या प्रकारतें अधरं मधुरं मधुरकों व्याख्यान कोए । अथवा अब मधुर पदक हैं सा ताकों अर्थ यह हैं जा सकल इद्रीनको स्वाद होय परम संतुष्ट पावें सों ताकों मधुरपद कहिए । जेसें कोई भूखो होय ओर सुंदर महाप्रसादकों मिलें सो तब वाकी सकल इद्रीय संतुष्ट होय तब यह सब सामग्रीन कों वासीन कीयो जाय । यह अत्यंत मधुर कहूं तेसें श्रीआचार्यजो महाप्रभू आपु श्रीगोवर्द्धननाथजीकों स्वरूप देखिकें वारंवार प्रेम में विवस होयकें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपश्री अंगकें वरणन करिवेकी सुधि तो रहत नाही हैं । सों अपार जिनकी सौंदर्यता तिनकों श्रीआचार्यजो महाप्रभू आप पांन करिकें नेत्रद्वारा जा श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु श्रीगोवर्द्धननाथजीकों परम रसरूप हैं ताकों पान करिवेसों अत्यत मधुर साम मिष्ट हैं । यह रसतातें सब इद्रीय श्रीआचार्यजी महाप्रभूनकी सीतल भई हें । सो ताहोतें जो श्रीगोवर्द्धननाथजीके जो श्रीअंग हैं तिनको मधुर मधुर करिकें वरनन करत हैं सों तामें प्रथम कहे जो अधरं मधुरं सो तामैं तों अनेक भाव हें । सो काहेते जो प्रथम अंगवस्त्र छोड़िकें श्री आचार्यजी महाप्रभू आपु अधरं कहे तों ताकों अभिप्राय कहा सो अब कहत हैं जो अधर में तों अनेक भाव हैं प्रथम तो दर्शन ता पाछें परसन ता पाछें चुंबन ता पाछें अधर रसकों पान हैं । सो या भांति सों प्रथम अधर रसकों वरनन करत हें सो काहेते जो प्रथम जब श्रीगोवर्द्धननाथजीकों दर्शन श्रीआचार्यजो महाप्रभू आपुनें कीयों सो तब प्रथम ही मुखारविंदकों दर्शन भयों सो तामें प्रथमतो अधरनके ऊपर दृष्टि गई सो प्रथम श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु अधर मधुरम ही कहें । सों अधर श्रीठाकुरजी केसें सुंदर हैं जीवको देखिकें बिंबाफल लज्जाकों पावत हैं और बधूक जो हैं दुपहरियाकों फूल सो लज्जा पावत हैं । मानों प्रातकालकें सूर्य ऐसी अरूनमा हैं सो प्रथम श्रीयसोदाजी हें मों प्रातकाल सेजसों उठायकें अपनी गोदमें ले श्रीमुखारविंद देखत हैं सौ ता पाछ अधर चुंबन करत हैं पाछें मंगलाभोग परम प्रीतिसों अरोगावत हैं । पाछें व्रज-

भक्त आवत हैं सो श्रीमुखकों दरसन करत हें। तव रात्रि अजन अधरनमैं लगि रह्यों हैं सो देखिके अत्यत सुख पावत हैं अनेक भांतिसों रक्षादित हास्यादिक करत हैं ता पाछें तेल लगाइकें मांन श्री ठाकुरजोकों करावत हैं ता पाछें सिगार करिकें सिगार भोग अरोगावत हें सों ता पाछें ग्वालभोग आरोगीकें पाछें जब राजभोगकों समय होत हैं तब राजभोग आरोगकें गाय लेकें वनमें पधारत हैं सीतवंत हो छाक श्रीयसोदाजो पठावत हैं सों आरोगकं श्रीठाकुरजी आपुनिकुंज मंदिरमें सेंन करिवेकों पधारत हैं। सो तहां अनेक भांतिनसों व्रजभक्तनकों सुखदेत हैं सो तव अधरजो हैं श्रीठाकुरजी के तिनके स्पर्श करिकें चुंवन करत हैं। ता पाछें परस्पर जों अधर रसकों पान सों पर प्रीतिसों करत हैं। सो तामें जो उनमत होत हैं सो कछू दोऊ सरूपकों सरार को सुधि रहेत नाहो हैं सो काहें तेजो परम प्रेमके वस होयकें अधररसकों जो अमृत हैं सो ताकों पान करत हैं। ताहीतें श्रीआचार्यजी महाप्रभूप्रथम अधरनकों देखिकें भांति भांतिके भावकी स्फुरती भई हें ताहीतें हृदयमें ते प्रेमका अधिक जो उमग्यो तामेंकु स्फुरती भई हें ताहीतें हृदयमें ते प्रेमको कछू सरीरकी सुधि रहा नहो सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप इतनों ही कहे। अधरं मधुरं। जो में अबमें कहां तांई वरनन करो। अपरंपार हें जो सोभा जाकी असौ अधरं मधुरं और एक समय श्री आचार्यजी महाप्रभू अपने प्रातकाल श्रीठाकुरजीके दशन कोए सो परम गदगद हृदय होय आयो। सों ता समय श्रीआचायजी महाप्रभू आप यह सोभा देखे सो श्रीठाकुरजी के तो आरक्त नेत्र हैं। निकुंज मदिर तें भोर उठिकं चले हें सो अधरन में मानों बीज भक्त हें सो तिनकों अंजन लग्यों सो आरक्तता ओर स्यामता हैं सो मानों परम अनुराग की सुजनता करत हें जो या भांति को अद्‌भुत सोभा श्रीठाकुरजो को देखिक प्रेम के आवेस में कहे। जो अधरं मधुरं यह कहे जो या भांति सों निरुपन भयो अब आगे ओर हूं कहत हैं। जो वदनं मधुरं कहे जो याको तो अर्थ यह है जो वदन कहिये मस्तक समस्त मुखारविंद को नाम है। सो जेसें चंद्रमाकों सूर्यकों देखिकें कहियें जो यह चन्द्रमा सूय हैं परंतु चंद्रमा सूर्य के मुख नासिका करन कछु दोसत ही हैं। सों काहेते जो कीरण में तेज होत हें सों तेंसें यहां कोटि कंदर्प लावन्य जिनकी छवि पर कोटि चंद्रमा सूर्य को वारिमैं। असें श्रीठाकुरजी के श्रीमुखारविंदकों भक्तजन देखिक विवस होत हैं जो यह तो सुद्धताही रहत हें जो न्यारे-न्यारे अङ्गनकों अविलोकन करि सकें सो तातें समस्त श्रीमुखारविंदकों देखिकें कहे जो वदनं मधुर और एक समय श्रीआचार्यजो महाप्रभू आपु पृथ्वो परिक्रमा करत श्रीगोकुलकों पधारे सों तहां श्रीगोविंदघाट हैं सों तहां छोकर पोपर के वृक्ष तो भगवद स्वरूप हो हैं सो तहां एक समय श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो पोढे हते सों जीवन केउद्धार के लोये चिंता करत हें सो अर्द्धरात्र के समय आप श्रीठाकुरजी कोटि कंदप लावन्य साक्षात् मनमथ के मनमथ एसे प्रगट होयकें श्रीआचार्यजी महाप्रभूनकों आग्या दोये जो तुम जीवनकों ब्रह्मसबंध करवावो सो श्रीमुखकमल को दर्शन करिकें ता पाछें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप "वदनं मधुरं" कहे। अथवा वदन कमल की अलकावली कपोल चुंबक गंडस्थल इनके मध्य में वदनं मधुरं के भीतर तो सब भाव कहे तहां चिबुक जो श्रीचंद्रावलीजी के श्रीअंग के भाव सों विराजत हें सो त होतें चिबुक ऊपर हीरा को आभूषण श्रीगोवद्धननाथजी आपु धरत हैं सो श्रीचद्रावली जो सेत उज्वल लोये श्रीअंग हें सो ऊपर कहे हैं। श्रीठाकुरजी बेसर धरे हैं नासिकामें सो तो श्रीस्वामिनोजी के भाव हें सो ताकों अभिप्राय कहत हैं जो मुख अधरामृतको रसको अनुभव करिवेके जोग्य हें सो ऊपर वरनन कोए सो तिनते उतरतो मुख्य चंद्रावलो हैं सो तातें श्रीस्वामिनोजी अधरके ऊपर विराजत हें नासिकाके वेसररूप ओर श्रीचंद्रावलोजो अधरके नीचें विराजत हें सो ताकों भाव तो यह हें जो श्रीस्वामिनीजोके पांन करें ता पाछें श्रीचंद्रावलीजोकों रसपांन करिवेकी योग्यता हें सो काहेते जो सर्व अधरामृतकों अनुभव श्रीस्वामिनी करत हें सो पांन करतमें रसके अधिक करिकें जो श्रीठाकुरजी के मुखकमलमेते रस बहत हैं सो चुबुकपर आवत हैं तातें इनमैं यह भाव विचारनों जो मुख्य श्रीस्वामिनीजी तातें उतरकें मुख श्रीचंद्रावलोजी हैं तिनतें उतरते ओर भक्त हें तिनकों आगें निरूपन करत हें जो कपोल धर श्रीस्वामिनीजी तातें उतरिकें मुख्य श्रीचंद्रावलीजी स्यांम अलकनमैं अविर्भाव जाननों सो काहेते जो श्रीस्वामिनीजी के मुख कमल हैं। तिनमें भ्रमर नाना प्रकारके गुंजार करत हें तें सेंई यहां श्रीठाकुरजीको मुखकमल हैं। अधरामृत भीतरसोंई रस तहां अनेक भक्त भ्रमर अलकावली रूप विलास करत हैं रसपांन करिवेके लोयें सेंई श्रीयमुनाजो अलकावलीरूप होय मुखकमलमें विहार करत हैं तहां श्रीयमुनाजोमें प्रीति आदि करत हैं तहां श्रीयमुनाजी सो तेसेइं यहां अलकावलीके निकट मकरादिकुल अनेक आभूषण हैं असे वदनकमलों देखिकें वदनं मधुरं कहे सों तामें तो अनेक भांतिके भाव हें सो काहेते जो वदन कहियें सो मुखारविंदकों नाम हैं सो श्रीमुखारविंदमें केसों प्रभाव हैं। सो जहां रासपंचाध्याईमें श्री ठाकुरजो आप अंतरध्यान लोला कीऐ हें ता पाछें श्रीगोपीजन ढूंढत-ढूंढत पुलिनमें आयके रुदन कीयों हैं। सों तहां श्रीठाकुरजीतों आप प्रगट भऐ सो साक्षात् मनमथ एसों परम सोभासंयुक्त हें सो व्रजसुंदरी उठिकें अपुने वस्त्र वेहो श्रीयमुनाजीकी पुलिनमें छिपाय दोयें। तापर श्रीठाकुरजी व्रजभक्तनक प्रेमके वस हें तातें विराजे ब्रजभक्तन के अनेक जूथ हें सो श्रीठाकुरजी कों घेरिके चारचो दिसा वेठें ता समय एसो श्रीमुखारविंद परमसोभा संयुक्त हें सो परम प्रभाव हें। जो सव व्रजभक्तन के सनमुख श्रीमुखारविंद हैं सो व्रजभक्त श्रीमुखारबिंद की शोभा देखिकें विवस होत हैं सों तातें मुखारविंद परम मधुर हें और श्रीठाकुरजी आप जब गाय लेंके सांझ समय ब्रज में पाव धारत हैं तव श्रीयशोदाजी गोरज जो श्रीमुखारविंद पर लागो हें तिनकों झारिक अंचल सों, पोंछें मुख चुंबन करत हैं सो ता समय मुखारविंद को शोभा अत्यंत प्रिय होत हें सो काहेतें जो गाइलेंकें श्रीठाकुरजी वनमें गए हते सो विरह हतों त त जब देखें तब नित्य नौतन अनुराग श्रीयशोदाजी कों होत हैं और सगरे श्रीअंग में मुखारविंद श्रेष्ट हैं जो परम शोभायमान हैं सो तातें अत्यंत मधुर हैं जो श्रीमुखकों दरसन करत हें तिनकों तीनों ताप निवर्त होत हैं और श्रीमुखारविंद केंसो हैं जामें व्रजभक्तनकों मनरूपी जो कोई भ्रमर हें सो श्रीमुखरूपी जो कमल हें तामें लुभ्यायकें पान करत हें जों या भांति सों वदनं मधुरं कों अर्थ निरूपन भयो आगे अब ओरहूं कहत है। जो नयनं मधुरं तामें तो भांति-भांति के अनेक भाव हें कोइक समय श्रीठाकुरजी वेनु वजावत हें ता समय नेंन की परम सोंभा होंत हैं और कबहूंक तो वेनुकी ओर दृष्ट परत हैं और कबहूंक तों कटि

पर दृष्ट परत हैं और कबहूंक तों कटि पर दृष्ट परत हैं और कटिपर कबहूं बनमाला पर दृष्ट परत हैं कबहूंक तिरछी चितवनि करिक ब्रज भक्तनकें ऊपर दृष्टि जात हें सौ कहतें जो वेनु वजात हें तासमें श्रीठाकुरजी टेडे होत हैं औरत्रिभग स्वरूप हें सो श्रीठाकुरजो के नेत्र कमल अत्यत अनिर्वचनीय हैं मनसों और वचन सों अगोचर हें सो काहेते जो एसो सोभा नेत्र कमलहें सो सब रस मनसों सगरो कहां तांईलिख्यो जाय असे छोटों पछी है सो समुद्ररूपी रसकों कहां तांई पान करें ओर इतनी बुद्धि कहां तांई जो नेत्र कमल की सगरो सौंदर्यताका वर्णन करें सो तातें मन वचन बुधितें अगोचर हें तातें उन नेत्र कमल के रसकों अनुभव करिवेकें जोग एक व्रजभक्त ही हैं जो और तों दूसरो कोई नहीं हें सो काहेतें नेत्रकमलमैं ते कोईक लावन्यांमृत झरत हे सो रसकी माधुर्यता कौ भरहें सो ताकों तब अनुभव होई तव व्रजभक्त सुंदरीन के नयन भीतर होय देखियें तब नेत्र कमल की सौंदर्यता को सोभाको अनुभव होय सो काहे ते व्रज सुंदरीन कों हृदय कमलरूप हैं सो मांनों कोई कटोरा हें जोये नेत्र द्वारा श्रीठाकुरजो के नेत्रकमलनको जो रस हैं सो ताको पीकें अपने हृदयरूप जो कटोरा हें सों तामें धरत हें एसों प्रेम ब्रजसुंदरीनकों और इतनों काहू को सामर्थ कहा हैं जो श्रीप्रभूजी के रस को पान करें ताइतें श्रीठाकुरजी आपु श्रीव्रजसुन्दरीन के वस हें सो एसो उत्तम प्रेम व्रजभक्तनको है। फेरि नेत्रकमल केसे हैं जो नेत्रके गर्भ असंख्य वधाजही कहें सो कंदर्पके भावसूचक रससों भरे हैं। और नेत्रकमल केसे हैं अत्यंत तरल चंचलतम हें सो तिनकी चंचलता मीन देखिकं लज्जा पावत हें। जो एसे चंचल परमरस सहित हैं उनको उपमा जो दीऐ सो वेलिरस है। और जड़ है सो जहां रस नहीं है। और श्रीठाकुरजी के नेत्रकमल हें सो तो परम रसरूपी हैं सो एक श्रीस्वांमिनोजी को मुखारविंद रूपी जो कमल हें तिनकों देखिके चंचलता भूलि जात हैं। उनकों मुखकमल देखिकें विवस होयके थकित होत हैं। और पलकहू परत नाही हैं। जो या भांतिसों टकटको लगायके श्रीस्वांमिनीजी कों जो मुखकमल है सो तहां भ्रमर की नाँई सुभाय के रसपान करत हें फेरिके श्रीठाकुरजी के नेत्र कमल केसे हें परम सचिकन निर्मलसो हें सो मानो नेत्रद्वारा प्रगट होत हें। सो एसी सोभा संयुक्त नेत्र कमल श्रीठाकुरजी के हें फेरि श्रीठाकुरजी के नेत्रकमल केसे हें सो श्रीठाकुरजी आप जब वेणु वजावत हें सों तव अनेक भांति को तांन लेत हें सोई ता भांत के समुद्र हें ओर नेत्र तामें चारचो ओर परम सोभा पावत हें जोई मागनो भांति भांति की तरनी चड चहो सो एसों नेत्र को अंजलता समय होत हैं। ता समय श्रीठाकुरजी के नेत्र कमल कर चंचल हैं के अथवा स्थिर हैं जो या बातको निरधार करिवेकों कोऊ सामर्थ्य नांही है। सो काहेतें जो जा समय वेनु बजाऐ हैं श्रीठाकुरजी आप ता समय श्रीयमुनाजी कों प्रवाह थकित ह्वै रह्यों हैं। और श्रीगोवर्द्धन जो हे सो प्रेमसों पुलिकत होत हैं और आदि जो पशु हैं जो अन नाहीं खात हैं और देवांगना जो हें सो तो मूर्छित होत और पवन तो नाहीं वहत हैं जा चद्रमा सूर्य रथ तो नाही चलि सकत हें और ब्रजभक्तनकों तो सरोर की सुधि नाहीं है जो उलटे आभरण वस्त्र पहरत हैं जो ता समय निश्चय करें जो श्रीठाकुरजीके नेत्र तो चंचल हैं के स्थिर हैं ऐसै

जांनिकें धारणाशक्ति काहुंमें नाही हैं सो जेसें अधाधारन फिरकी फिरत हें के अथवा ठाढ़ी हैं सों तेसे ही वोहोत वेग करिकें अचल की तरल ताई ने जांनिवेकों सामथ्य तो काहूंको नाही हैं कैं अंचल स्थिर हें के अथवा चचल हें एसें नेत्र परम मनोहर सोभायमांन हें फेरि श्रीठाकुरजोके नेत्रकमल केसे हैं। मंद हांस्यामृत चतुर होय जाई सो लिखिही जाई जो एक ताद्रस धर्मयुक्त नेत्र कमलकेसे हैं। जो स्मितामृतकों भर जोकोंई व्रजभक्तनकें आत्मा तों एक श्रीठाकुरजी हैं। एताद्रस व्रजभक्तनकें प्राणनकें पोषण एहि नेत्र कम हैं। जब जब परम विरह व्रजभक्त करत हैं सो तबही नेत्रकमलकों स्मरण होत हैं सोई मानों पोषण करत हैं जो ऐसे श्रीठाकुरजो के नेत्रकमल हैं सो प्राण और श्रीस्वांमिनीजोके प्राण हृदयके हरणहार ता पाछें परम रसरूप अमृत हैं सो तामें लीन होत हें सौ तहां साधन हं सो कहत हें जों एकतो भृकुटिरूप जो कोई परमसुंदर धनुष हें सों तहाँ नेत्र कमलरूप जो कोई महातीछन बान है सो ब्रज भक्तनको मनरूप जो कोई पंछो हैं सों ताकों हरि लेत हें तहाँ भृकुटीरूप धनुषकों ओर नेत्ररूपकों स्वकहुं दया नाही है सो काहेते जितनी व्रजकी स्त्री हैं सो जब घरके काम काजकों बाहिर निकसत हे तब श्रीठाकुरजीकें भृकुटीरूप जो धनुष हैं और नेत्ररूप जों कोई महातिछन बांनहें तिनकों व्रज सुंदरीनकों कटाक्षनसों मारत हें सो ब्रजवधू घायल होयकं विवस होत हैं सों तातें भृकुटीकों और नेत्रकों दया होत नांही है जो ए दोऊ निदई हें एसें नेत्रकमलमें तो परमगुण हें फेरि श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल कैंसे हें जो जामें परम रसरूप चारि समुद्र हैं। सो चारयों परम रसाल हैं सो तहां गंभीर हैं एकतो मंद हास्यामृतको रस समुद्र हैं ॥ १ ॥ तां ऊपर दूसरो कोटरमादि रस समुद्र ॥ २ ॥ तीसरो चापल्यामृत रस समुद्र हैं चोथों अरूणमामृत रसकों समुद्र हैं ॥ ४ ॥ एह चार धर्मरूपाभ्रत तिनके रस समुद्र विखें एकही बार डूब्यो होयतो ए ब्रजभक्त क्यों करिके जीवत होयंगें विन-विन ब्रजभक्तनकों तें सोई सहज सुभाव परि गयों है जो ताद्रस चार समुद्रके रसमें डूब रहे हे सो तातें जीवत हें जो क्षन एक बाहिर निकसें तो मीन की सी नाई मरिजाय एसें रसके चार समुद्र हें सो केसे हें तिनके रसपाँन करिवेमें ब्रजभक्त कहा सामर्थ हैं एसों ओर मे सामर्थ हैं नाही जो एसे श्रीठाकुरजोके नेत्रकमल हैं फेरि श्रीठाकुर जी के नेत्रहीकों बिसेशण कहत हैं जो श्रीठाकुरजी नेत्रकमलके विचमें स्याम तारा हैं तिनकें आसपास तो स्यांमडोरा हैं। दोऊकों नेनमें डोरा स्वेत नाही हैं सों तो कहा है ब्रजभक्तनकों परम निर्मल जो उज्वल भाब हैं सोई परम सोभायमांन है। तातें दोऊ नेत्र तो आरक्त परम सोभायमांन ही हैं ताते दोऊ कक्षपरम चंचल तासों सोभा देत हैं और श्रीठाकुरजोकें हृदयकमलमें जो परम सुंदर भाव है रसके समुद्रसों नेत्ररूप जो कोई दरवाजों हें सो तातें परम सौंदर्य झलकत हें और दाद्र ऊपरके पलकें पलकहैं सो तो द्वारके किवार हैं सो काहेते जो जारसकों दांन नही करावनो होय तव पलक रूप जो किवारनकों लगाइ लेत हैं। जेसें पुजाव सों तव श्रीठाकुरजी आप नेत्र मूदि लेत हैं सो काहेतें जो रसको पांन नही करावनो है। और ब्रजभक्तनके आगें पलक लागत नाही हैं जो दोऊ दरवाजे खुले रहत हैं सो कल परत नाहीं हैं तातें ब्रजभक्त परम सौंदर्यरूप जो रसहैं ताकों पान करत हैं जो एसें श्रीठाकुरजी के नेत्रकमल हैं एस नेत्र के सो तो नित हैं जो कमल हैं तिनको सोभाकों जीतिकें कमलकों तुच्छ करिके

डारे हैं और नेत्रमैं कांमरूप जो यहां सुंदर कंदर्प हैं सो ताहुंको जीतिके तुच्छ करिके डारे हैं तातें कमलतो जायकें मारे भयकेमारे तलावमें छिप्यो है और कंदर्प जो है सो तो मूरछाट नायकें धरतीमें गिर्‍यो हैं सो तब रति जो हैं काँमकी स्त्री हैं सो अपने घर ले आयकें अमृतपांन करवायकें फेरि जिवायो हैं सो तातें कामदेव तुच्छ हैं और खंजनकौं जीते हैं तो तातें खंजन जायकें वनमें छिपे हैं सो चहु वनतें हिय नाही हैं और मीनकों जीते हैं सों मीन लज्जाको पायके जलके भीतर छिप्योहै सो मारे भयकें वाहिर निकसत नांही हैं जो एसे श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल हैं सबकों जीतिकें आपु आनंदमें विराजत हैं जो फेरिकें श्रीठाकुरजाके नेत्रकमल के से हैं निकट देहके भरते सिध तासचिकनता और मुग्धता मुग्ध भावतो सुंदर हैं अपवासहज सुभावरूप हैं जो कोई परम चमृर्य हैं सों ता सहित विराजत हैं सो ताकों श्लोक कहत हैं ।

श्लोक—चातुर्यक निदान सीम चपला पांग छटा संथरं ।
लावन्यामृत विचलेन ललितं लक्ष कटाक्षी हुतं ॥१॥

कालिंदी पुलिनां गुणा प्राणयिनां कामावतारा करुं ।
जालानिलसमिवलं मधुरीमा स्वराज माराभृमः ॥२॥

कारुण्या कर्बूर कटा निरिक्षणेन तारुण्यं त्सवलित-
सेष्टवधे भवेउ आयुल्लता भुव जय भुताविमेन
श्रीकृष्णचंद्र शिशीर करु रोचनं ॥३॥

एतादृश परमकाष्टायमांन सौदर्य निधे हैं जो अनुभव करनहारो हू वर्णन करिवेकों सामर्थ्य नाही हैं और श्रीठाकुरजी के नेत्रकमल कैसे हैं जो श्रीगोकुलकी नवीन तरुनोनके नव तन अनेक भाव जो नित्य अनंग रस रमनते भाव उपजत हैं सो केसे हैं वे भावजो रतिरसरूप जो सुधा समुद्रमें नेत्रकमलमें पगे हैं जो तातें सहसहीमें तो लहरि रूप हैं सींड कोर करत हैं और श्रीठाकुरजीके नेत्रकमलकेसे हैं । सो सन्मुख देखनमें लीनहोंनकों भाव हैं और कटाक्ष करिकें तिरछे देखन हैं सो देखनमें मारजो कांमदेव ताकों चूरण भाव भयों हैं सो न्यारे-न्यारे दोय-दोय भांतिकें महारस हैं । जेसें सेत डोंरापर आरक्त सौभाग्य सौंदर्यसीवा रेखा हैं सों ता करिकें नेत्रकमल जनावत हैं फेरिके श्रीठाकुरजीके नेत्रकमलमें न्यारी आरक्त रेखाको वरनन करत हैं दोऊ नेत्रनके स्वेत ही गर्भ विच न्यारी-न्यारी शरु परे रेखा हैं सो ता करिकें जो कोऊ सोभा की सीमा अनिर्वचनीय प्रगट होत हैं सो ताद्रस सोभाको सीमां कहिवेकों लक्षमीहूंको सामर्थ्य नाही है सो कदाचितु कहोगे जो यहां लक्षमींजी को तात्पर्य कहा है सो तहां अब

कहत हैं जो श्रीठाकुरजीके नेत्र हैं सो कमल सदृश हैं सो लक्ष्मीजी कमल हैं सो तातें कमल लक्ष्मीको नाम है सो तातें कमल कोंसकों अनुभव लक्ष्मी करत हैं सो लक्ष्मी हू सोभा कहिवेको सामर्थ्य नाही हैं जो एसे श्रीठाकुरजी आपके नेत्रकमल हैं और नेत्रकमलमैं अनेक भांतिके भाव हैं सो श्री आचार्यजी महाप्रभू आपु नेत्रकमल श्रीगोवर्द्धननाथजीके देखिकें सोभाके समुद्र है तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप नयन मधुरं कहे । अथवा श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल केसे हैं अत्यंत मधुर हैं सो काहेते जो जा ब्रजभक्तनकों नेत्रकमलके से हैं अत्यंत मधुर हैं सो काहैंते जो जा ब्रजभक्तनकों नेत्र कटाक्ष करिकें अवलोकन करत हैं सो तिन ब्रजभक्तनके प्राण हरिलेतु हैं । जो याहीतें जो नेत्रकमलके कटाक्ष हैं सो तिनकों वांन करिकें वरनन करत हैं सो अब कहत हैं जो वांन हें सो जाकों लागत हैं सों ताकौं एसी पीर होत है सो भीतर साले हे सो ताकों कछू सुधतो नाही हैं सो तेसेईं यहां श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल कटाक्षरूपो जो वांन भृकुटि रूप जो धनुष तिनमें तीक्षण जो अवलोकन जो जा व्रजभक्तनकी ओर देखत हैं सो तिनके तन मन धन सबही हरि लेत हैं और कछूई तनकों सुध नाहीं रहतहें सो तातें नेत्रकमलकों वांन करिकें निरूपण करत हैं और श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल केसे हैं सो तामें लावण्यामृत झरत हैं । सो यह अब कोई जांने जो व्रजसुंदरीके हृदयकमल में जो मनकों प्रवेस कर सोई जानें और श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल केसे हैं श्रीस्वांमिनीजीके मुखकमलकों देखिकें थकित होय रहे हैं सो मानों श्रीस्वांमिनीजीको अनुगाही देखियत हैं और श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल केसे है मंदहास्यामृत भरि रहे हैं सो व्रजभक्त एकही जांनत हें सों कहत हैं जो श्रीठाकुरजीके नेत्रकमल केसे हैं जो श्रीठाकुरजीके नेत्रकमलमें रसके चार समुद्र हैं प्रथम तो मंद हास्यामृतको समुद्र है ॥ १. दूसरो कोटि लावन्यामृतको समुद्र है ॥ २. तीसरो चचल्यामृतरस समुद्र है ॥ ३. और चोथो अरुनमामृतरस समुद्र हैं ॥ ४ सोवाकों अव भाव कहत हैं जो कोटि लावण्यामृतको कहा भाव है जो टेढो नाम वक्र होय सो ताकों कहियें सों जैसें गजके ऊपर चक्र अंकुस रहत हैं सो ता करिकें गजवाके वस रहत हैं । सो तेसें व्रजभक्तनके मन रूप जो गज हैं ताकों श्रीठाकुरजी आपुने नेत्रकमलकों चक्र दृष्टसों मारिकें आपुने जे वस कीए हैं सो तातें वक्र लाजकों छोंड़िकें गोपीजन श्रीठाकुरजीके निकट रात्र समय सगरे घरको छोड़िके रासपंचाध्यायीमें आई हैं और दूसरो मंदहास्यामृत रसकों यह भाव हें सो प्रथम वज्रता करिकें तो व्रजभक्तनके मनकौं लूटिकें अपने पास लावे सो तापाछें अपने घर लायके कोऊनकों पोषन कर्‍यो चाहियें सो काहेंते जो यह तो श्रीठाकुरजीकों सहज ही धर्म हैं । सों सबनकी रक्षा करनी सों तातें व्रजभक्तनके मनको अपने पास राखकें मंदहास्यामृत करिकें पोषण कीऐ हैं । तातें फेरिकें व्रजभक्तनके मन उनके पास नाही हैं जो सदाही श्रीठाकुरजीके निकट रहत हैं सो काहेतें जो यह लोकहूं प्रेम सिद्धि हैं जो मधुर वस्तुकोऊ खात हें तिनको फेरिके छोड़िवेको मन नाही होत है । और यह तो मंदहास्यामृत जामें अधरामृत सो मिल्यो रस सो ताके निकट रहत है सो काहेतें यह लोकहूमें प्रसिद्ध है । जो मधुर वस्तुकोऊ खात हैं तिनको फेरिकें छोड़िवेको मन नही होत है । और यह तो मंदहास्यामृत जामें अधरामृत सों घोल्यो रक्त ताको पांन करिके भक्त भए हैं सो जायवेकी अपेक्षाहूं नाहीं कीऐ हैं सो एक रस सदा रही पांन करिके स्व-

रूपानंदको अनुभव कीए और तीसरों चापल्यामृत हैं ता करिकें व्रजभक्तनकों अनेक प्रकारके कांम है। भाव नेत्र द्वारा सूचन करत हैं सो तातें जो बोहोत चपल नेत्र होय तो एक व्रजभक्तनकों श्रीठाकुरजी आपनों अभिप्राय जताये जो सब व्रजभक्त जाने जो ताहीतें चपल नेत्रका तो यह भाव हैं जो जा व्रजभक्तनको जेसों अभिप्राय वनावनो है सोई अभिप्रायकौ जानें सो काहेतें जो चापाल्यामृत करिकें सब व्रजभक्तनके मनोरथन के पूर्णकरता हैं। और चोथो अरुणामृतको यह भाव है जो अरुन नाम तो अनुरागको है ता करिके यह जताए जो श्रीठाकुरजी आपु व्रजभक्तनके अधरामृतके रसको पान करवाए जो जा करिके लोक वेद दोऊनकी मरजादा छोड़िके अत्यन्त प्रीति करिके रसरूप सब भक्तनको कीये है। सो व्रजभक्तनको धीरज विवेक लज्जा सोई अपने नेत्रमें राखे हैं। तातें व्रजभक्त श्रीठाकुरजी आपके वस होइके रहे हैं। और श्रीठाकुरजीके नेत्रकमलको कमलकी उपमा दीये सों यातें जो कमल सदाई जलमें रहत है। सो यह कमलको यह सुभाव है जो जितनो जल बढे तितनो कमलहूं बढे सो तेसें श्रीठाकुरजी के नेत्रकमलहूं रससों भरे हैं और मोंहन वसीकरन इत्यादिक लक्षन नेत्रकमलमें हैं। ताहीते जो व्रजभक्तनकी और श्रीठाकुरजी आपु दृष्टि भरिकें कटाक्ष सहित अवलोकन करत हैं सो व्रजभक्त वसीकरन मन्त्रको नांई हैं। जो श्रीठाकुरजीके बस होय रहे हैं जो या प्रकार नेत्रकमलमें नांनाप्रकारके भाव हैं। ताहीतें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु कहे जो नेत्रके प्रसंगमें मन्द हंसनि मे कहे और जहां आगे कहेंगे। तहां मन्दहास्यनिकों वरनन जाननों और यहां हसितं मधुरं परस्पर व्रजभक्तनके प्रसंगमें निकुंज मन्दिरमेंके वि: हस्तसों हस्त तालि लेंत हैं प्रेम आनन्दमें आसक्ति होय आनन्दमें हंसि हंसि वातें करत हैं सो हसति यहां सुख वरणन है। और श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप जब श्रीगोवर्द्धननाथजी आपसों हसि हसिके बातें करत हैं और श्रीठाकुरजीके हसनि विषें अनेक प्रकारके भाव हैं। सों काहेते जो जब श्रीगोवर्द्धननाथजी आप गोचारण लीला को पधारत हैं सो तब सखानसों हसि हसिकें अनेक प्रकारकी वार्ता करतहैं ताके मिस करिके व्रजभक्तनकों नानाप्रकार के सुचन करत हैं ओर श्रीठाकुरजी हसि हसि आपु नाना प्रकारकी वार्ता करत हैं। आपु जे ऐस्वर्यको गोप्य करत हैं सो काहेते जो आप जे एश्वर्य वार्ता करत हैं आपु जे ऐस्वर्यको गोप्य करत हैं सोकाहेतें जो ऐश्वर्यको निरोध करे तो व्रजभक्तनसों मांनादिन लीला न होई सो कहेते जो माधुर्य रसको और ऐश्वर्यसों विरोध हैं। सो दृष्टांत कहत हैं सो श्रीयसोदाजीको भ्रम भयो जो यह कहां तब श्रीठाकुरजीनें विचार कीयो। जो इनको स्वय भाव प्रगट होयगो तो यह वात्सल्यरस जायगो जो मोकों बालक जांनिकें अत्यन्त स्नेह करत हैं सो जहां तांई स्वर जांनें तहां तें जेसें देवता स्तुति करत हैं सो ताही प्रकार होय जानें सो तातें हसिकें श्रीयसोदाजी सों बोले सों तब श्रीयसोदाजी तो यह जानें जो यह तो बालक हैं मोहिकों भ्रम भयो है। तैसे ही हसि व्रजभक्तनके मन हरेहैं ता करिके व्रजभक्त यह जानत हैं जो परम सौंदर्य रूप ए श्रीनन्दरायकुमार हैं सो हमारे परम प्रीतम हैं एसें जानिकें माधुर्यरसके बीच ये सर्व कारजहूं करत हैं कों आचरन करत हैं और श्रीठाकुरजी तो माधुर्य रसके बीच ऐस्वर्य कारजहूं करत हैं। त्रणावर्त्त सकट ईत्यादिक अग्निपांन करनो एसें चरित्र करिकें ता पाछें मन्द हसिकें सबनकें मनको मोहत हैं जो माधुर्यरसको सुख न जाय सो तातें श्रीठाकुरजीकों हसनो है सो माधुर्यरसकों पोषणकरत हैं सो श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु कहत हैं जो हसितं मधुरं अथवा जामें जो व्रजभक्त हैं तिनको परमरस होको दांन करत हैं सो काहेतें जो दानादिक लीला विषें अनेक प्रकारके हास्यादिक कटाक्षादिक होत हैं और स्पर्श आनन्द होत हैं तामें जब श्रीठाकुरजी आपु मुसिकायकें हसत हैं सो तब सुन्दर दन्तनको पंक्ति मानों दाडिम ही है परम सोभायमान है मानों आई अनिर्वचनीय जो कांमदेव हैं तिनको मानों छटारूप जो कोई वांन हैं सो व्रजभक्तनके मर्म ठोर आयके लागत हैं सो निकासिवेकों कोई सामर्थ नाही हैं जो या भांतिसों भाव सहित श्रीठाकुरजी आपु हंसत हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप हसितं मधुरं कहे। और श्रीठाकुरजी आपको हृदयरूप हैं सो अत्यन्त मधुर हैं सो तहां सुन्दर मोतीनकी माला वनमाला इत्यादिक विसाल हृदयमें विराजत हैं तिनकी सोभा कहिवेको कोई सामर्थ्य नहीं और जा हृदयमें व्रजभक्त आपनो घर करिके राख्यो हैं सो सदा व्रजभक्तनको श्रीठाकुरजी आपु आपनें हृदयकमलमें राखत हैं सों काहेतें जो श्रीठाकुरजीको हृदय परम कोमल हैं जहां कठोरता रंच सहमेंहीं हैं सो एसो जाको हृदयकमल कोमल है सो व्रजभक्तनकी आरतीको रंचकहू सहि नाही सकत हैं सो काहेते जो उनके प्रेमके वस हैं श्रीठाकुरजी तातें व्रजभक्तन समांन श्रीठाकुरजीकों और कोऊ प्रिय नाही हैं जो एसों श्रीठाकुरजीको हृदयकमल अत्यन्त कोमल है अपने व्रजभक्तनकी आरति नाही सहि सकत हैं और जो देवता हैं सो आपु स्वार्थी हें जो इनको स्वारथ न होय तो प्रसन्न होत नाही हैं और जीवको बुरो करें एसे श्रीठाकुरजी नाहीं श्रीठाकुरजीकी सेवामें जो अपराधहू पड़े तो आप बड़े हैं अपराध क्षमा करिकें जो जीवके ऊपर कृपा करें रासपंचाध्याईमें जब अन्तरध्यान भए हैं तव व्रजभक्तननें पहचान्यो जो श्रीठाकुरजी अन्तरध्यांन भए हैं सो काहेते जो श्रीठाकुरजीकों प्रगट न देखे ताते यह जाने जो और श्रीठाकुरजी बाहू समय उन व्रजभक्तनको रक्षा कीए सो काहेते जो गर्व मनमें भयो सो श्रीठाकुरजी अन्तरध्यान आपु होयके गर्व दूर करें तो आगे इनको रसकी प्राप्ति न होय सो जब अत्यन्त दैन्य भाव आयो विरह करिके दोष भस्न होय गए तब ताइ पुलिनमें प्रगट भऐ साक्षात् मनमथके मनमथता पाछें रासलीला करिकें सब व्रजभक्तनके मनोरथ पूर्ण कीए तात श्रीठाकुरजीको हृदय अत्यन्त कोमल है तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप हृदयं मधुरं कहे अब आगे औरहूं कहत हैं जो गमनं मधुरं कहे ताको अर्थ लीलाके अनुसार मुख्य अर्थ य है। जो गमन नाम चलिवेको है सो निकुंज मन्दिरमें श्रीस्वामिनीजीके संग परस्पर गलवांहां देके मन्दमन्द गमन करत हैं सो तब दोऊ स्वरूप अपने मनमें आनन्दको पावत हैं सो तहां सखीजन नाना प्रकारको केलि कलाकी सांमग्री लीये ठाडी हैं। बीडा मेवा पंखा और अनेक प्रकारकी रितानुसार तहां रितुको हू नियम नाही है जो इतने दिन इतने महिना रहे। जो सर्व इच्छाको कारण है। छहों ऋतु सदा सवदा आधिदैविक सेवन करत है जा समय जा लीलाकी इच्छा जो रितुकी इच्छा सो ततकाल सिद्धि होय रही है। अथवा गमन प्रवेस कों दुहे सो काहे कोटानकोट व्रजभक्त हैं। सो तिनको हृदयरूप मन्दिरमें प्रवेस कियो है। सो व्रजभक्त अपने मनमें य जानत नाही हैं जो हमारे हृदयमें श्रीठाकुरजी आप हें सो काहेतें जो जा समय व्रजभक्तनके मनमें आ

हैं और ब्रजके निकट अक्रूर आऐ हैं श्रीबलदेवजी सहित श्रीठाकुरजीको पधरायके मथुरा ले गऐ हैं जब पुरसोतम ब्रजभक्त यह जानें जो श्रीठाकुरजी मथुरा पधारे हैं। सो तव व्रजभक्तननें वीनती कीनी सो तब पुष्टिपुरुषोतम भावात्मक रसरूप जों हृदयमें हते सो व्रजभक्तनको विरह संयुक्त जाँनिके प्रगट होयक व्रजभक्तनको रसानुभव करवायके फेरि इनहीके हृदयमें रहे। सो या प्रकार सबरे व्रजभक्तनके हृदयमें बिराजे हैं जो याही आधारसों व्रजभक्तनकी देहकी अस्थित रही सो भावात्मक रसरूप ए विरह करिके अनुभव करिवेके योग्य है सो जहां ताई विरह न होय सो तहां तांई संजोग रसको प्राप्ति नाहीं जाँनिये। एसो विप्रयोगात्मक रसरूप श्रीठाकुरजी आपु ब्रजमें वृंदावनमें गोप्य रीतिसों विहार करत हैं सो तातें श्रीआचार्यंजी महाप्रभू आपतो गमन मधुरं कहे। जो जाको अर्थ यह है। जो जब श्रीठाकुरजी आप प्रातःकाल व्रजभक्तनके घरते निकुंज मन्दिरते पधारत हैं जौ जहां भांति भांतिकी सोभा होत हैं। लटपटी पाग हैं जो वसनतो पलटे हैं आभूषण कहुं के कहूं बनाए परम रसमें घूमतमें मन्दमन्द जो चलत हैं जो ता समय खण्डिता नायका अनेक प्रकारसों कटाक्ष सहित वचन कहे सो सुनिके मन्दमन्द श्रीठाकुरजी आप चलत हैं सो मुसिकात चलत हैं सो मन्दमन्द गमन करि व्रजभक्तनको उपजावनहारे हैं परमरस और जब रासादिक लीला करत हैं तब व्रजभक्तनके समूहमें सोई प्रतिरूप श्रीठाकुरजीको आपु धरत हैं। तब सब मिलिके ताल बन्धनके सहित निर्त सव करत हैं सो तहां अनेक व्रजभक्त हैं। तिन प्रति स्वरूप श्रीठाकुरजी धरत हैं सो रासलीलामें नाना प्रकारके भाव प्रगट होत हैं सो तहां रसमें मगन होयके व्रजभक्त श्रीठाकुरजी आपु मन्दमन्द गमन सहित चाल चलत हैं तातें श्रीआचार्यंजी महाप्रभू आपतो गमनं मधुरं कहे अब ओरहूं आगे कहत हैं। जो मधुराधिपतेरखिल मधुरं। ताकों अर्थ यह है। जो स्वर्गलोक तथा पाताललोक ओर सभा त्रिलोकमें जितनीक मधुर वस्तु हैं तिन सबनके अधिपति जिनमें अखिल अपार मधुरता एसें श्रीठाकुरजीतो आप हैं। यह पद दोय श्लोकमें है। सो संबंधन जो हैं श्रीठाकुरजी आपु समान ओर कोई नाही है। उपमा देवेको इन समान नहीं है सो काहेते जो जितनों सिंगार रस है सो सब इनहीमें ते प्रगट भयो है। ताते श्रीआचार्यंजी महाप्रभू मधुराधिपतेरखिलं मधुरं कहे ताकों आशय यह है। जो कोटि-कोटि सिंगाररस तो ईनतें प्रगट है। अखंड विरोध धर्माश्रय येक कालावच्छिन्न सर्व लीला करनमें सामर्थ है। साइन समानमें ओर अवतारण में हू कह्यो न जाय। तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप रखिलं मधुरं कहे अथवा जो या प्रकार मधुराष्टक में प्रथम श्लोकको अर्थ निरूपण भयो। अब दूसरो श्लोक कहत हैं ॥ १ ॥

'श्लोक—वचनं मधुरं चरितं मधुरं,
वसनं मधुर वलितं मधुरं।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ॥२॥

याको अर्थ—अब कहत हैं जो वचनं मधुरं ताको अर्थ यह है। जो श्रीआचार्यंजी महाप्रभूसों पूरण पुरुषोत्तम यह आग्या दीये जो तुम जीवनको अंगीकार करोगे तिनको ब्रह्मसंबंध करवावोगे तिनके सकल दुख दूरि होयगे सो यह मधुर वचन है। और रासपंचाध्याईमें जब मुरली बजायके सब ब्रजभक्तनको बुलाए है। परंतु भीतरते अत्यंत मधुरं सो एसे वचन श्रीठाकुरजी कहे जो तुम अपने घर जाऊ सो भीतर जो मधुर भाव हैं सो ताको जांनिवेमें व्रजभक्तनको योग्यता है। सो काहेते जो ऊपर कहि आऐ जो एसें रसरूप श्रीठाकुरजीके हृदयकमलके भीतर व्रजभक्तनकी स्थिति है। तातें ब्रजभक्त श्रीठाकुरजीके हृदयकमलके भीतरको अभिप्राय तासों जाने ऊपरके मर्यादा वचनको न मानें ता पाछें श्रीठाकुरजी आपतो यह विचारे जो मेरी आग्या ना मानें सो कहिते जो आपु मुरली बजायकें बुलाए हैं। आपुही ऊपरते कठिन वचन कहे सो व्रजभक्त यह जाने जो हमको घरही पठायवेकी आग्या होती है। बुलावते सो काहेको सो एसो जांनिकें घर न गए जातें श्रीआचार्यंजी महाप्रभू आप वचनं मधुरं कहे और निजमंदिरमें जब श्रीस्वांमिनीजी मांन करत है तब श्रीठाकुरजी आपतो छल सहित विनयके अनेक ऊपर दोष लगावत हैं। ते वचन अत्यंत सुनिवे के लिये क्षणक्षण में मांन होत हैं। सो ताते श्रीआचार्यंजी महाप्रभू आप वचनं मधुरं कहे अथवा बाललीला में तुतरायकें बोलनो। सो श्रीनंदरायजी श्रीयसोदाजी कों परस्पर सऊवन हरि हरि हैं। ओर दधि की चोरी लीला करिवे में व्रजभक्तन सों भांति भांतिके वचन के कटाक्ष होत हैं। तामें व्रजभक्तन कों परम रसके उपजावन हारे है। सो काहेते जो व्रजभक्तन के जीवन धन प्राण श्रीठाकुरजी आप हैं। तिनही को देखि देखिकें व्रजभक्त जीवत हैं। जो याहीतें श्रीआचार्यंजी महाप्रभू आप तो वचनं मधुरं कहे। अब आगे ओरहूं कहत हैं जो चरितं मधुरं ताकों अर्थ यह है। जो मुख्य तो यह है। सो तब गांव में मांन होत है सो तब श्रीठाकुरजी आप सखीकों भेस धरिकें नाना-प्रकार के चरित्र करत हैं सो मांन मनावत है। और मांखनचोरी लीला में गोपीन की कांनकों चोरी करवे को घर घर जात हैं सो गोपिकायें श्रीठाकुरजी को करें सो ता पाछे वह श्रीयसोदाजी के पास ले आई सो श्रीठाकुरजी तत्काल ही गोपिकांन की कन्या होय गई। तब श्रीयशोदाजी देखिके गोपिकानसों कहे जो या प्रकार सों कहे। जो या प्रकार सों मेरे पुत्र को नित्य ही झूंठे ही चोरी लगावत हो ताते देखि यह हमारो पुत्र है सो तब वह गोपीका देखिकें चक्रत होय रही। और एक समय श्रीठाकुरजी श्रीयसोदाजी के आंगन में रिंगन करत हैं तब आप जो प्रतिबिंब देखिकें आप होय करिवे कों दोरत हैं। सो तहां कोई एक गोपीजन आयकं श्रीठाकुरजीकों गोदीमें उठाइ लाये सो अपने निकुंज में पधारे। सो तहां श्रीठाकुरजी सों विज्ञप्ति करो जो हमारो मनोरथ सिद्ध करिवे के लीए तुम प्रगट भए हो सो करो और तुम ही सर्वकारण में सामर्थ हो जो यह हमको निश्चय है। सो तब आपु हसिकें प्रसन्न होयकें जब मनोरथ पूरण करत हैं जो एसे नाना प्रकार के चरित्र करिकें सगरे व्रजभक्तन को सुख देत हैं तातें श्रीआचार्यंजी महाप्रभू आप चरितं मधुर कहे। अथवा याको अर्थ यह है। जो भांति भांति के चरित्र जिनके हैं जो बाल चरित्र नवनीत श्रीहस्त मैं लीए श्रीनंदरायजी के आंगन में रिगन करत हैं

और व्रजभक्तन के घर चोरी करत हैं इत्यादि बोल चरित्र में श्रीनंदरायजी श्रीयशोदाजी को परम सुख उपजावत है । और दानादिक मानादिक रासादिक लीलामें व्रजभक्तनको भांति भांति के सुखको अनुभव जनावत है सो ऐसे परम मधुर चरित्र हैं जिनके ताते श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप चरितं मधुरं कहे जो अब और हूं आगे कहत हैं जो वसन मधुरं ताको अर्थ यह है । जो वस्त्र नाम सूतकों जितने होय तिनकों तथा पट वस्त्रहूं को कहत हैं । तिन सबन में मुख्य अर्थ यह जो एक समय निकुंज मंदिर में वसन हैं । सो अपनो पीतांबर श्रीस्वामिनीजी के पास रह्यो और श्रीस्वामिनीजी कों नीलांबर को ओढिके आप पधारत हैं । आलस सहित अंग अंग जागिकें होय गए हैं और श्रीठाकुरजीकों श्रीअङ्गसों सुंदर हैं जिनके संगत उन सबन हूं परम सोभा को देखत हैं । सो अत्यंत मधुर हैं सो याहीतें सखीजन जो जितनी हें सो सब महाप्रसादी वस्त्र पहरत हैं । सो काहे तें जो महाप्रसादी वस्त्र पहरत हैं सो यातें जो प्रसादी वस्त्रतें श्रीअङ्ग को संबंध होत है वे अत्यंत मधुर होत है । सो काहेते जो श्रीठाकुरजी श्रीस्वामिनीजी के संग नाना प्रकार की लीला करत हैं सो तब श्रीअंग के अंगराग अरगजा कुंम कुंम स्वेद इत्यादिक संबंध सब वस्त्र में होत है । सो ताहीतें प्रथमरूप सेवा तथा वस्त्रसें चाहूं तो मुख्य हैं सो जामें सब रसन को अनुभव है । तामें जो दासभाव श्रीठाकुरजी की सेवा में राखत हैं सो असाध्य वस्त्र नाही पहरे हैं । जो प्रथम श्रीठाकुरजी के आगे अङ्गीकार करवायकें पाछें वह आपु प्रसादी पहरियें जो ता को भाव यह है जो अनप्रसादी वस्त्र तो कबहूं नाहीं पहरत हैं जो प्रथम श्रीठाकुरजी के आगे अङ्गीकार करवाय के सो ता पाछें वह आपु पहरि जो जाको तो भाव यह है । तो प्रसादी वस्त्र मधुर कों पहरें तो अलौकिक देह याकी होय । तब श्रीठाकुरजी आपकी लीला को अनुभव करिवे को जोग्य होय सो तामें प्रसादी वस्त्र तो दासनकों पहरनो । और अनप्रसादी वस्त्र दासन को न पहरनो और वस्त्र जो हैं सो श्रीठाकुरजी रस को आभरण करत हैं । सो काहेते जो जब पीतांबर श्रीठाकुरजी आप पधारत हैं सो तब श्री अङ्ग को दरसन तो नाही होत हैं सो वस्त्र सों ढक्यो सरीर है सो वस्त्र मिल्यो है यातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप वसनं मधुरं कहें । सो ताको अर्थ यह है । जो भांति भांति के पीतांबरादि वस्त्र पहरे हैं श्रीठाकुरजी तो आप अत्यंत मधुर ही हैं । सो काहेते जो जा समय पीतांबर पहरकें व्रज भक्तन सहित निकुंज मंदिर में तहाँ नीलांबर वेष्टित होत हैं । सो तो भांति २ की सोभा देत हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप तो वसनं मधुरं कहे जो अब आप औरहूं कहत हैं जो वलितं मधुरं । जो ताको अर्थ तो यह है जो आपुही प्रमेय बल करिकें व्रज भक्तन कों पुष्टि रीति सों अंगीकार कीए । सो जेसें पूतना मारिके अपने भक्तन की अविद्या दूरि कीऐ सो ऐसें सब दैत्यनकों मारिकें व्रजभक्तन के दोष दूरि कीए हैं । और काली को दमन कीए जो याको मारे नाही सो काहेतें जो भक्तन की इंद्री को दमन ही कर्त्तव्य है । जो इंद्रीयनको मारे दूरि करें सो सगरे भोग को करे दर्शन करनों कथा कर्त्तव्य है । कीर्तन करनों कथा ऐसें इंद्रीयन कों दमन करिके लोकिक में से मन छुड़ाय के अपनें ओर लगाये सो यह कार्य तो पुरुषोत्तम बिना तो ओर सों न होय नहीं प्रेमवस

करिके कीऐ तेसे यहां श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप प्रसन्न सो प्रमेय बलसों ब्रह्मसंबंध करवायके सब इंद्री पदारथ कों दमन करिके सेवा के योग्य कीये सो काहेते जो प्रमेयमार्ग सो तो पुष्टिमार्ग जो आपुही भक्त की योग्यता करिकें ता पाछें ताको अङ्गीकार कीए सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप तो चलितं मधुरं कहे और श्रीठाकुरजी गोपीजनसों प्रमेय बल करिकें संकेत हूं करत हैं जैसे गाय चरायवे के मिस करिकें खेलवे के मिस करिकें श्रीनंदरायजी तथा मातृचरण श्रीयसोदाजीसों छिपकें जो जामें उन न जानें जो या भांति सों गोपीजन के निकुंज मंदिर में पधारत हैं और यह प्रण हें जो अपने व्रज भक्तन के कार्य करिवे में परम चतुर हैं जो सदा व्रजभक्तन की रक्षा करत ही आए हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप बलितं मधुरं कहे अथवा याको अर्थ तो यह है जो श्रीगुसाँइजी आप श्रीस्वामिनीअष्टक में कहे हैं । जब निकुंज मंदिर में स्वामिनीजी श्रीठाकुरजी आप विराजत हैं । ता समय श्रीठाकुरजी अपनी सिज्यापर बल करिकें श्रीहस्त करिकें तब नीचे सीतल करत हैं ताते श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप दलितं मधुरं कहे जो अब औरहूं आगे कहत हैं जो चलितं मधुरं जो ताको अर्थ तो यह हैं जो गोचारण लीला के रसमें भांति भांति के भाव सहित सखान के मंडल में चलत हैं सो व्रज भक्तन सों कह्यो नही जात हैं सो अपने अपने घरतें मिसकरिके कोऊ दधि बेचवे के मिसकरिके सब वन में आवत हैं सो तहां सकल मनोरथ सिद्ध होत हैं तहां और चलितं मधुरं कहिये जो मंद मंद श्रीठाकुरजी आप चलत हैं सो जब श्रीवृंदावन में पधारत हैं सो तहां श्री गोवर्द्धन में अनेक गह्वर निकुंज परम सोभायमान झरना झरत हैं जो अनेक पंछी भाव सहित बोलत हैं जो नाँना प्रकार के वृक्ष फल फूल सों भरिके नीचे को लटक रहे हैं अनेक लता तहाँ फैलि रही हैं मकरंद भरी सुगंध सहित त्रिविध वहत है जो श्रीठाकुरजी आपुके मनको मोहित करत रहे सो काँम भावकों पावत हे । तब श्रीठाकुरजी आपु चंचलता भूलिके मन्द मन्द रससूं मत्त होयकें चलत हैं सो तहां भाव को जाननों अनेक व्रजभक्तन के संग मंद मद गवन फूल बीनन विषें कुंज कों धारण के समे अत्यंत मधुर होत हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप चलितं मधुर कहे अब और हु आगे कहत हैं जो भ्रमितं मधुरं । ताको अर्थ तो यह है जो कछु आश्रय वस्तु को देखत हैं तब श्रीठाकुरजी को भ्रम होत हैं सो कहत हैं जो निकुंज मन्दिर में श्रीस्वामिनीजी और श्रीठाकुरजी आप विराजत हैं सो कबहूक कोई प्रेम की लहरि उठति हैं तब श्रीस्वामिनीजी कहत हैं जो अरी ललिता श्रीठाकुरजी आप कहां गए हैं जो यह प्रेम को पराकाष्टा देखिकें श्रीठाकुरजी को भ्रम होत है जो मरें मिलाप मैं तो एसों विरह है । जो और न्यारे भए ते कहां जानियें कहा होय और रासादिक लीला में श्रीस्वामिनीजी तीर पर वाधिक निर्त करत हैं । तथा गान करत हैं सो चातुरी देखिकें श्रीठाकुरजी आपु चक्रत होय के रहत हैं जो यह गुण तो मोमें नाहीं हैं जा यह भ्रम है सो ताते श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु भ्रमितं मधुरं कहे अथवा जो जा प्रकार ते अनेक भांति सों भ्रम श्रीठाकुरजी कों आपुको होत है सो भ्रमितं मधुरं कहे जो काहेते जो श्रीठाकुरजी आपुही श्रीपूरणपुरुषोत्तम रसिक सिरोमनि हैं सर्व वस्तु के जांनन वारे जो आपुही सर्वकर्ता हैं सो बालक जेसें आपुनो छाया देखिके भूलि रहत हैं सो

तेसेही व्रजभक्तन की छाया है। जो संगही सदा सर्वदा रहत हैं सो आपु व्रज भक्तन के चरित्र देखिकें आपु सर्वस्व आपुनो मन इनको देयके वस भए हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप अमितं मधुरं कहे अथवा वाकों यह अर्थ कहत हैं जो जब बाल लीला कीए सों तव सबन को भ्रम भयो जो यह कहा सो ता पाछें काली नाथे आए सों जब श्रीगोवर्द्धन पूजा की सिक्षा श्रीठाकुरजी सबनकों कीए ता पाछें इंद्र प्रलय के जलकी वृष्टि करी। तब श्रीठाकुरजो आप बांम भुजासों श्रीगोवर्द्धन धारण कीये जलसों सवन की रक्षा कीए। तब सव व्रजभक्तन को भ्रम भयो सो भ्रमहूं नंद यशोदाजो सयुक्त है ताते श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप अमितं मधुरं कहे। जो अब औरहूं आगे कहत हैं जो मधुराधिपतेरखिलं मधुरं सो ताको सम्बोधन जांननों जो इन समान और मधुरं कोई नाहीं हैं सो ऊपर कहे हैं जो वही भाव जाननों सो या प्रकार सों दोय श्लोक को अर्थ निरूपण भयो। अब औरहूं तृतीय श्लोक कहत हैं।

श्लोक—वेणुर्मधुरो रेणुर्मधुरः पाणिर्मधुरः।
पादौ मधुरः नृत्यं मधुरं सख्यं मधुरं
मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ॥ ३ ॥

याको अर्थ—अब प्रथम कहे जो वेणुर्मधुरं याको अर्थ कहत है। जो जब श्रीठाकुरजी आपु ललित त्रिभङ्ग को स्वरूप धारण करत हैं सो तब वांम परातल टेढे वेनुमें ऊंचे सुरसों गांन करत हैं सों अत्यन्त मधुर है सो काहेते जो ललित त्रिभङ्ग जो स्वरूप हैं सो ब्रज भक्तन के भोगार्थ हैं तेसेंई वेनुनादहू ता समय को अत्यन्त मधुर है। सो रासपंचाध्याई के भावसों जाननों सो काहेते जो सरद रात्र में वेनु वजाए है सो व्रजमें वृद्ध गोपी और सखा गोपको उनसुन्यों कोई उहां रात्रिसमें श्रीठाकुरजी पास आई तातें यह वेनु नाद सिंगार रस रूपही अत्यंत मधुर हैं। और सखान के सग वेनु वजावत हैं तथा श्रीनदरायजी श्रीयसोदाजी के आगे वेनु वालभाव सहित वजावत हैं उहां जायकें सुख देनार्थ सो काहेते जो अधिकार भेद जाननो इनको पुष्टि मर्यादा सहित सो यह है। तातें इनकों ऐसोई रसभोग करनी योग्यता है। सो काहेते जो रास पंचाध्याई में जो श्रीठाकुरजीनें वेनु बजाये हैं सों तव वेनुनाद सुनिकें गाय चक्रत होय कर्ण उठायकें रसपीत द्वारा श्रवण होय हैं सो मुख सिथल रहि गयो है। और वृक्षन में ते मधु की धारा बही चली जात है। और श्रीगोवर्द्धन द्रवीभूत भए हैं। सो अनेक ठोर चरण चिन्ह भए देवाङ्गना देवता सहित विमान हैं जो चंद्रमा सूर्य सबही मोहिके थकित होय रहे हैं और पशु पंछो सब मौन गहि रहे हैं जो या प्रकार सों वेनुनाद सुनिकें सबन को आनंद अधिकार अनुसार भए हैं। तामें संपूरणरस को तो अनुभव तो गोपीजनकों भयो है ता समें वेनु नौ तनक लावत ताकी अलाप चारमें उचें नीचे जो नादरस की लहरि उठात हैं और तेसी चरण कटिकी ग्रीवा की वक्रता श्रीहस्त कमल कोंमलता इनकें व्रजभक्तन के अंतकरणमें अतर जाकी कछु लज्जा ताप तथा धीरसों सबनकों छोरदें आनंदकें अनुभवकी वेनुद्वारा अधरामृतपांन करिकें जात भई। हृदय में जो अनेक काल करिकें जो भाव संचिकें एक ठोर करिकें राखे हते। सो वेनुनाद करिकं श्रीठाकुरजी प्रगट कीये है जेसें समुद्र मथन कीए हैं। तब तामें ते रतन प्रगट कीये। सों तेसें व्रजभक्तन के हृदय में रतनरूप जो भाव अनेक जन्म करिकें संचित करिके राखे हते सो वेनुनाद बजायके श्रीठाकुरजी आपु यह भाव रूपात्म प्रगट कीये। जो काहेते जो हृदयरूपी अगाध जल के भीतर रत्न तो कोंउ यह भाव जानत न हतों सो श्रवण द्वारा श्रीठाकुरजी भीतर आपु ही रसरूप होयके पधारे। सो यह रत्न प्रगट करिवे के लीए तातें यह जो व्रजभक्तन को रत्न भावात्मक सरूप हैं सो तिनके भाव सों श्रीठाकुरजी आपु वस होत हैं जो और उपाय तो श्रीपूर्णपुरुषोत्तम के मिलिवे को नांही हैं सो तातें वेणु अत्यन्त निकट ही राखत है। कटि में अधर में श्रीहस्तकमल में राखत हैं। सो काहेतें वेनु बजाए हैं। सो अत्यन्त मधुर हैं। तातें श्रीठाकुरजी के अनुग्रह विनां यह रसकी प्राप्त तो काहू को नाहीं है। ताते श्रीआचार्यजी महाप्रभू वेनुर्मधुरं कहें। और वेनु ये अत्यन्त चतुर हैं। जो जा व्रजभक्तन कों जहां संकेत की इच्छा होत है सो वेनुद्वारा सबको जनावत हैं सो काहेते जो प्रगट कीये तो सब कोऊ अभिप्रायकों जांनी जाय। तातें वेनुद्वारा सत्य को जनावत हैं सोई जानें और कोई तो जानें नाही। तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप वेनु मधुरं कहे। अब औरहुं आगे कहत हैं जो रेनुर्मधुरः याकों अर्थ तो यह है। जो श्रीठाकुरजी के चरण कमल की रज है सो त्रिलोकी में सवन कें वदनीय हैं सो प्रसिद्धि श्रीगीताजी श्रीभागवत में हैं सो वेद पुरांन में कहे हैं। सो काहे ते जो चरणारविंद को रजकें आश्रय बिना तथा सम्बन्ध बिना रसकी प्राप्त नाही हैं सो काहेतें जो जब पूतना व्रज में आई सो सतहजार वालकनकों मारिकें उनके प्राण अपने हृदय में राखकें श्रीनन्दरायजी के घर में आई सो श्रीठाकुरजी पूतना मारिकें प्राण सहित व्रजके बालक सबके प्राण श्रीठाकुरजो अपने हृदय में धरे। सोई सब वालकनकों श्रीठाकुरजी कों सम्बन्ध भयो परन्तु लीला रसकी प्राप्त नाहीं है। सो कृतार्थ न भए तातें व्रज की चरण को सब रज आपु खायकें उन बालकन कों चरण कमलकों सम्बन्ध करवायकें उनको भगवदरस की प्राप्त कीनी हैं और रासपंचाध्याई में जब श्रीठाकुरजी अन्तरध्यान भए तब व्रजभक्त खोजिवे को पधारे और प्रथम चरण कमलके चिन्ह को दर्शन भयो सों तब उनको वन्दन करण लागीं और वह रजकों माथे के ऊपर धरत भऐ। तातें श्रीठाकुरजी के चरणकमल की रेणु तों अत्यन्त मधुर हैं। यातें श्रीआचार्यजो महाप्रभू आपु रेणुर्मधुरः कहें। अथवा ताको यह अर्थ कहे जो रेणु हैं जो श्रीठाकुरजी के चरणारविंद की जो रज है सो परम आनन्दकी करण हारी हैं। सो काहेतें जो चरणारविंद हैं सो परम रसकों उपजावन हारे हैं। और जितनें व्रजभक्त है सो श्रीठाकुरजी के चरणारविंद कीं सेवन करत हैं सो काहेते जो चरणारविंद की जो रज है सो व्रजभक्तनकों सुख परम आनन्द देंनार्थ ही हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो रेणु मधुर ही कहें जो अब औरहूं आगे कहत हैं जो पांनिर्मधुरा सो ताकों अर्थ यह है। जो पांनि नाम श्रीहस्तकमल को है जो जब श्रीठाकुरजी श्रीगोवर्द्धन धारण कीए हैं सो तब सातदिनलों सरूपानन्दको अनुभव करवायो और वेनुनाद करवायो कीए सों तब सबन के मनकों हरे और वनमें श्रीहस्तकमल ऊंचो करिके गायको बुलावत हैं तथा

सखान कों बुलावत हैं । जा समें व्रजभक्तन कों अनेक भाव संकेतादिक सूचन करत हैं और निकुंज लीला को नाना प्रकार चोरासी बन्धादिक के भाव तो रसरूप जाननों सो अनेक प्रकार की लीला करत हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो पानिर्मधुरं कहे । अथवा याकों अर्थ कहें । जो पानी वाम श्रीहस्तकमल को हैं । सो परमरसरूप हैं । सो काहेतें जो जन श्रीहस्तकमल को दान करणकों स्पर्श करत हैं सो तिनके अंग अंग पुलकित हो जो परम रसकों उपजावत हैं और अपनो जो श्रीहस्तकमल हैं सो ताकी छाया के नीचे सब व्रजभक्तनकों राखत है सो काहेतें जो श्रीठाकुरजी को व्रजभक्त परम प्रिय हैं और श्रीहस्तकमल हैं । सों रसदान व्रजभक्तन कों अनेक भांति के भाव सों देत हैं ताते श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप पानिर्मधुरा कहें जो अबतो ओरहूं आगे कहत हैं जो पादो मधुरा ताको अर्थ तो यह है । जो ललितत्रिभंगमें वाम चरण कमलकों स्थापित सों तो सुद्ध पुष्टिरूप ताके आश्रित तो अत्यन्त वक्र परावृत दक्षिण चरणकमल तामें तो भाव यह हैं । जो पुष्टिकों स्थापन और मर्यादाकों ऊत्थापन सो अत्यन्त वक्रतामें व्रजभक्तनकों अनेक प्रकारकों भावकों उत्थापन करत हैं सो काहेतें जो सिंगार रसमें विहार स्पर्शमें कोकलामें चोरासी वंधादिकमें तथा असख्य वंधादिकमें दक्षिण चरणकमल अत्यन्त वक्र होत हैं सो तातें रसकेलिमें सखिजन तथा व्रजभक्त हूं देखत हैं । और तहां अति रंगमें सखी हैं जो अपने कुचकमलन पर दोऊ चरण धरिकें पलोटत हैं सो तब लीला ललितत्रिभंगके चरणकमलको दरसन करत सर्व लीलाकी सुध आवत हैं । सो तब भांति भांतिके विचित्र भाव उपजत हैं अत्यन्त वक्र दक्षण जांबू जासो रहे हैं जो मर्यादा धर्मतें पुष्टिवचनकों आश्रय करिके रहे हैं तहां दस लखचन्दको चाख चिक्य व्रजभक्तनके हृदयरसमें जो जात हैं सो केसें हमको मिलगे कैसें सो यह दूरिकें अब जानत हैं जो मैं तुम्हारे अनुभव करियें जो निज यह स्वरूप है सो प्रगटकीए हैं सो तव चरणकमलमें अनेक आभूषन घूघरू नखभूषन विछूवा पातल जे चरन पग पाँन नुपुर जे हरि इत्यादिक मधुर चालि करिकें जो सबद होतहैं जो सब व्रजभक्तनके मनकों हरिलेत हैं । सो जेसे कोई राजा विजय करिवेकोहु समें लराईमें जात हैं । तब अनेक वाजित्र वजावत हैं तैसें श्रीठाकुरजीके चरणकमलके आभूषणको सबद सुनिके जो मांनों कांमदेवकों निसांन बाजे सो मनको स्थित नाहीं होत हैं जो नाना प्रकारके विहार करत हैं जो अब कांमदेव केसो करेंगो कोंन प्रकार यह चरणकमलको सम्बन्ध होयगो सो श्रीठाकुरजी मधुरचालि करिकें अव्यक्त सवद करिके अभिसार करिके कुंजनमें पांव धरत हैं सो तहां सबनके मनोरथ पूरण करेंगे और श्रीठाकुरजीतो भूषणके भूषण हैं सो काहेतें श्रीआचार्यजी महाप्रभू ऐ कहें जो श्रीअङ्गकों सम्बन्धकरिकें उन भूषनकी सोभा भई । सो एसों जो ललित त्रिभंग स्वरूप हें तिनके अनुभवसों यह विगड़लों विरह करिके भावात्मक श्रीठाकुरजीको आप देखत हैं ता पाछें वह उछलत स्वभावात्मक स्वरूपके उछलत होयकें बाहिरहू रसको अनुभव करावेंगे । विरह करिकें भीतर रसदांन हैं । सो तब स्वरूपकी दर्शन करवायके उतरते रसभरे दोऊ विधि करकें रस इकट्ठो होयकें सो अन्तःकरणमें इकट्ठो भयो । जो श्रीस्वामिनीजीके कुच कुमकुम करिकें पूजित हैं सों तातें चहूं ओर द्रष्ट हैं और चरणकमल सुद्ध दोऊ स्थिति होय सों अरुनमा प्रगट दीसें सों तातें वक्र परावृत होय अरुणतलको तो यह भाव है

सो सगरे व्रजभक्तनके हृदयकों अनुराग इकट्ठो होयके चरणकमलमें मन लागि रह्यो है । तहां चरणमें चिन्ह है सो सब व्रजभक्तनके हितकारी है । एसी चरणकमलकी सौंदर्यता लावन्यता मधुरता कमनीयता तेसे सौंदर्यताकों अगाध समुद्र सा ताको सीमा देखिके दीनता आई कहां जो हमकों कक्षत हैं । जो परम प्रेम जो घनहै तहां यह चरनकमल प्रगट होत है । वृंदावनो सखि भूविवतनोति कीर्तिक स्वतन्त्रकों देखत अनुसन्धान करने । एताद्रस सौंदर्यताकों प्रेमवन्त व्रजभक्त अनुभव करतहैं । सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो पादो मधुर कहे । अथवा सोपद कमल है सो सर्वभाव हैं । तिनकों सिध करत हैं सो काहेतें जो जा समें सरदकालको रात्रमें ता समय ललित त्रिभंग सरूपकों धारन कीयो है । सो तातें उपर टेको करिके दक्षिण चरणारविंद धरे हैं । सो बाम चरणारविंदके आश्रय हैं सो तामें यह चरणारबिंद परम सोभासहित सोहत है सो व्रजभक्तनके भांति भांतिके भाव उपजत हैं । और श्रीठाकुरजीके चरणारविंद तो मंगलरूप हैं जो जिन चरणारविंदको स्मरण करें ताके सर्व अमंगल क्षणमें दूरि होय जातहैं । और जे उत्तम सुन्दर सोभाग्य जो मंगल हैं सो तिनको सीघ्र होई सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप पादौ मधुरं कहें अब औरहूं भाव में कहत हैं । जो नृत्यं मधुरं जो ताकों अर्थ तो यह हैं । जो यह तो प्रसिद्धि रासपंचाध्याई तामें है । तथा जहां नित्य लीला रासलीला आदि श्रीवृंदावनमें करत हैं । सो तहाँ नित्यलीलामें श्रीठाकुरजी अत्यन्त चतुर हैं । जहां नित्य समय सगरे आभूषण राग रागिनी सहित बाजत हैं । और अनेक बाजे आप वजावत हैं । सो सर्व सबद ईकट्ठोऐ होयके एक धुनि भई । और ऊपर देवता बाजित्र बजावत हैं । सोऊ स्वर मिलिकें एक स्वरूप एक रसतान बन्धान सहित महाअलौकिक रासभयो । जो जहां व्रजसुन्दरीनकों सर्व दिन भयो तामें नित्य सिद्धांतको तो सदाई क्षणक्षणमें करिकें रस पोषक है । रासलीला करिकें प्रथम तो नित्य सिद्धांतको रसदांन कीए । सो ता पाछे श्रुतिरूपानको दान कीये । ता पाछें अग्निकुमारिकाकों दान कीए । जो जा भांतिसों जाको जेसो अधिकार हैं जो ताको वाही रीतिसों दान कीए । और तुर्य प्रिय जो श्रीयमुनाजी तिनकों कछू विशेषदाँन है । जो जेसें नित्य सिद्धांतको कीए । सो काहेतें जो यमुनाजी श्रीठाकुरजीके अत्यन्त अनुकूल सेवा सामिग्रीमें है तातें इन पर कृपा तो अत्यन्त विशेष हैं । यह प्रसिद्ध हैं । जिनके ऊपर जितनी कृपा तिनकों तितनो दांन कीए । तातें और सो लीलामें श्रीवलदेवजी संगही हैं । जो श्रीठाकुरजीके सखाहू हैं । और यह तो रासादिक लीलाहैं सो तो व्रजभक्तनके भोगार्थ हैं । सो तातें अर्द्धरात्रके समें वन बिखें जो वेनु बजायके बुलाए हैं । सो तहां इनको दांन श्रीठाकुरजीकीये सों तो अत्यन्त रसरूप हैं । सो ताको अर्थ यह हैं । जो परमरसकों जो समुद्र हैं सो काहेतें जो जहां शरदकालकी रात्रहैं सों तहां अखण्डायमांन मनि चन्द्र रसात्मक प्रगट हैं सो तहां श्रीवृंदावनतो परम सोभायमांन हैं । सो जहां मल्लिका मालती केतकी भांति भांतिके फूल फूले हैं । सो परम सोभाकों अब देत हैं । सो जिनकी सुगन्धतो सगरे वृंदावनमें छाय रहो है । जहां भांति भांतिके भ्रमर हैं । सो गुंजार करत हैं । सो परम रसकों उपजावत हैं । एसे जो परम रस रूप श्रीवृंदावन हैं । तहां श्रीगोवर्द्धनधर परम सोभा देत हैं । तटपर श्रीयमुनाजी बिराजत हैं । जिनकों मन्द मन्द प्रवाह चलत है तिनकी पुलिनमें श्रीठाकुरजी वेनु वजायके

जो भांति भांतिकी रासलीला ब्रजभक्तनके साथ करिकें आए हैं । तातें श्रीठाकुरजीकों श्रीआचार्यजी
महाप्रभू आप नित्य मधुर कहें । जो अब आगे औरहूं कहत हैं जो सख्य मधुरे जो ताको यह अर्थ है जो
संख्य नाम परतम प्रीति सहित कोटिकाम छोड़िकें प्रेम होय । ताकों मित्र कहियत हैं । सोऊ रासपंचा-
ध्याईमें प्रकट दिखाऐ सो काहेते जो प्रथम मुरली बजायके ब्रजभक्तनसंग रासलीला कीये ता पाछें
श्रीठाकुरजीनें प्रीतिके लक्षण प्रगट कीये । यह विचारे जो अबहि इनको संयोगात्मक सुखको अनुभव
है । सो तातें पूरण को प्राप्त नाही हैं । सो संयोगमें तो वियोग रसदांन न होइ तातें आपु अन्तरध्यां-
नकों विचार कीए तब यह विचारे जो मैं अन्तरध्यांन होऊंगो तो इनकी सरीरकी स्थिति क्यों रहैंगी ।
तातें इनके ब्रजभक्तनके हितकी विचार अन्तरध्यांन होयके सों ता पाछें उनही के हृदयमैं प्रवेश करिके
फेरि भीतर रहे । तब बाहिर ब्रजभक्तनने देखें सो तों अत्यन्त विरह भयो सो भीतर श्रीठाकुरजी आप
हते सो तातें सरीरकी स्थिति रही । ओर प्रेम बढ़नौं तातें आपहूं श्रीकृष्ण होय गए विप्रयोग रसकों
अनुभव करत करत दुपहर भई जो पूरण रसको अनुभव श्रीठाकुरजीनें आपनो प्रीया जांनिके करवायौ
तब श्रीगोपीजनतो प्रथमहीतें तन मन धन सर्व समर्पन किए हैं सो तातें संख्य जो मित्र दोऊपरस्पर
श्रीठाकुरजी और ब्रजभक्तनमें हैं और एसों कोऊ नाही हैं अथवा सखा नाम तो मित्रको हैं सो श्रीठा-
कुरजीकी मित्रता है । सो सांची हैं और लौकिकमें मित्रता है सो तो स्वार्थकी है सो तांमें कछू फल
नाँही है सो काहेते जो लौकिक हैं और परम सुन्दर हैं तो कहां और लौकिकसों परम सुन्दरहैं । परम
प्रिय हैं श्रीठाकुरजी आपु मित्रताहैं सो तो सांची हैं और लौकिकमें मित्रता है सो स्वारथकी हैं । तामें
कछू फल नाही हैं सो काहेते जो लौकिक हैं और परम सुन्दर हैं तो कहां और लौकिक हैं सो परम
सुन्दर हैं और परम प्रिय हैं । श्रीठाकुरजो आपु मित्र हैं । सो काहेते जो एसो लौकिकके हितकारी
परलौकिक के हितकारी सौ तातें श्रीदामा आदि सखा हैं सो अष्ट प्रहर निसदिन रसमें छके ही रहत
हैं । तातें श्रीआचार्यजो महाप्रभू आपतो सख्य मधुरं कहे सों ता पाछे मधुराधिपतेरखिलं मधुरं कहे हैं ।
सो ऊपर प्रथम श्लोकके भाव सो जाननों । जो या प्रकारसों तीनश्लोकको अर्थ निरूपण भयो ॥ ३ ॥
अब चतुर्थ श्लोक औरहूं कहत हैं ।

श्लोक—गमनं मधुरं पीतं मधुरं,
भुक्तं मधुरं सुप्तं मधुरं ।
रूपं मधुरं तिलकं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ॥ ४ ॥

याको अर्थ—अब कहत हैं जो गीत मधुरं ताकों अर्थ यह जो श्रीठाकुरजी आपु गांन करत हैं
सो तो मधुर हैं । परन्तु कबहूं निकुंज मन्दिरमें श्रीस्वामिनीजी सहित मिलिकें गांन करत हैं सो
अत्यन्तही मधुर हैं । सो काहेते जो जब रासपंचाध्याईमें मुरली बजायकें गांन कीए तब त्रिलोक मोहित

भयो । ब्रह्मकों परियंत परन्तु श्रीस्वामिनीजीके धीरजको भंग न भयो और सर्व व्रजभक्त मोहित भए
सों ता पाछें जब श्रीस्वामिनीजीनें गानकीयों सो सब सुनिके श्रीठाकुरजीहूं चकृत होयके सराहना
करत हैं । तब तो अत्यन्त मधुररस प्रगट होत हैं । सो तो निकुंज अन्तरगिनी सहचरी हैं । सो
तिनके अनुभव करिवेके योग्य हैं तातं श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप गीतं मधुरं कहे जो श्रीठाकुरजी
आप तो गान करत हैं सो तो परम सुन्दर और परम मनोहर परम प्रीय आनन्ददायक हैं । सो काहेते
जो सब व्रजभक्त तो श्रीठाकुरजीको गांन करत हैं । जो शेषजी अष्टप्रहर उनहीको स्मरन करत हैं ।
जो वेदहूं नेति नेति करिकें गावत हैं । और जितने ब्रजभक्त हैं सों तो सब श्रीठाकुरजीकों गांन करत
हैं । सो तातें श्री आचार्यजी महाप्रभू आप गीतं मधुरं कहे जो अबतो ओरहूं आगे कहत हैं जो पीतं
मधुरं सो ताको अर्थ यह है जो यामें तो अनेक भाव है । परन्तु क्षणक्षणमें नौतन प्रीति प्रगट होत हैं
जो या प्रकार सदा सर्वदा एक रसत्व अमर्यादा रस समुद्र कोटि कन्दर्प लावण्य मोहित हैं । ऐसें रसरूप
भाव करिकें अनुभव कहे । और प्रीतिको अर्थ यह है जो दावाग्निको पांन कियो सोऊ सब ब्रजकी
रक्षा कीए और दुधाद्विक पांन कियो सो रसपांन कीये । सूचनका जनावत हे सो तातें श्रीठाकुरजी
आप जो लीला करत हें सो केवल व्रजभक्तनके सुख देनार्थही लीला करत हैं सो काहेते जो उनहीके
लीए श्रीपूर्णपुरुषोत्तमको प्रागट्य हैं । जो भांति भांतिके पीतवसन पहरे हैं । जो सुवर्ण आदि आभूषण
पहरे हैं जो श्रीठाकुरजी आप श्रीस्वामिनीजी सखिनसहित प्रीति उपजावत हैं सो तबतो परमआनन्दको
पावतहै तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु पीतं मधुर कहे जो अबतो औरहूं आगे कहतहैं जो भुक्तं
मधुरं ताको अर्थ यह है । जो नानाप्रकारकी सामग्रीके भोक्ता तो श्रीठाकुरजी आपुही हैं सब रसको
अंगीकार करतहैं सो काहेते श्रीगोवर्द्धनपूजनके मिस करिकें सब व्रजभक्तनके हाथ आपुही आरोगे ।
व्रजभक्तनको सात दिवसलों सरूपानन्दको अनुभव करवाए और व्रजभक्तनके भावरूप जो रस ताके
भोक्ता श्रीठाकुरजी आपुही हैं सो काहेते जो जेसें पुष्पमें मकरन्द रसरूप हैं ताहीकों पान करत हैं जो
तेसेई श्रीठाकुरजी आपु विप्रयोगात्मक और संयोगात्मक दोऊरसको पांन कीऐ हैं और भोग कीए और
व्रजभक्तनकी भाव रीति सो जो व्रजभक्त सेवा कीए तिनहूंको वाही भावसहित भोग कीये और भांति
भांतिकी सांमग्री सो श्रीयसोदाजी अरोगावतहै सो परम मधुर हैं व्रजभक्त भांति भांतिकी नित्य
नौतन आपु अपनो मनोरथ करिकें अरोगावत हैं । सो श्रीठाकुरजी आप परम प्रीतिसों परम स्वाद
अद्भुत सो मधुरं मधुरं कहे अब औरहूं आगे कहत हैं । सुप्तं मधुरं सो ताकों यह अर्थ है जो अपने जन
स्वामिनीजी तिनको विवेक और लज्जा और धैर्य इन तीनोके आपुने नेत्रके मन्द हास्य करिके सब
हरे । पाछे सबनकी रक्षामें आपु तत्पर भए हैं । सो काहेते जो उनकेमें चेतन्यातीमन हती तिनको तो
आपुही हरि लीयो है सो ता पाछें आपुही रक्षा कीए रूप तातें आपु ही महक है और कृष्णेनात्मसीत
कृत सो काहेते जो और जो जीव है तिनको श्रीठाकुरजीसों विछुरे अनेक काल भयो हैं सो मिलापतो
कोंनसों होय । तब विप्रयोगात्मक रस प्रगट होय सो तबही प्राप्त होय सो विप्रयोगात्मक प्रगट होय
जब श्रीपूर्ण पुरुषोत्तमको अंगीकार करिवेको विचारे सो तबही विरह होय सो ब्रजभक्तनको विरहहूको

द.न कोयो है और पुष्टिमार्गके साधनहू दीये सर्वात्मरूप सो तातें सब ठोर श्रीठाकुरजोकों जान जो या प्रकार सब व्रजभक्तनकी रक्षामें तत्पर हों और श्रीस्वामिनीजी निकुंज मन्दिर मैं मांनादिक करत हैं सो तब श्रीठाकुरजी आपको तो विरह प्रगट होत है सो तब भांति भाँतिका सत्परव वायकें और मांनादिक छुटायकें परम रसकों दांन करत हैं । प्रीतिसों प्रेमसों आनन्दसों श्रीठाकुरजीके रिझावत परस्पर सुख उपजावत हे तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप सुप्तं मधुरं कहे । अब ओरहू आगे कहत हैं जो रूपं मधुर सो ताको अर्थ यह है जो ललित त्रिभंग स्वरूप तो परम रसरूप है । सो वेदादिक सागम्य स्वतन्त्र वेदातित सरूपको वरणन करतहैं वेदको अंधकार सिगार रसात्मक लीलामें नाहो है सो तातें इतनो कहतहैं जो आनन्द मात्रकर पाद सुखोदरादि श्रीपूर्णपुरुषोत्तम साकार महारसरूप ही है। एसों सरूप स्वतन्त्र सुद्ध पुष्टिभावात्मक रसात्मक उतर दलात्मक नख मिखलौ रसरूप जीवनके देखेते सबनकों कामिनी भाव करिके भोग करिवेके योग है सो काहेते तिनहीको यह स्वरूपको अनुभव भयो । और मुख्यतो श्रीस्वामिनीजीके अनुभव करिवेके योग्य हैं । पूरण स्वरूपतों इनहोकों अनुभव हैं ता पाछें तथाधिकार एसे श्रीकृष्णसमान और रूप कोई तो नांही हैं और तातें अनेक भांति अनेक प्रकारके रूप हैं अनेक भाव हैं अनेक चातुर्य हैं और अनेक भांतिको सौंदर्य सो कहत हैं । अनेक भाव हैं । सों काहेते कोईक समय बालचरित्रमैं श्रीहस्त विखें नवनीत लिये श्रीनन्दरायजीके आंगन में विहार करत हैं । तत्र भांति भांतिकें घुंघरा बजावत हैं । एकतो अत्यन्त मिही उपरना पीरो ओढे हैं । और जब किलकि किलकिकें ऊपरन आनन्दसों श्रीयसोदाजीकी गोदमें पधारत हैं सों तब अत्यन्त शोभायमांन श्रीमुख होत हैं । एक सरूप यह जाको अनुभव श्रीनन्दरायजी श्रीयशोदाजो सहित गोपोजो सरूपको अनुभव करत हैं । और कोईक समय श्रीवृंदावनमें सरदकालकी रात्रमें व्रजभक्तनके समूह सो तहां स्थित हैं । मुकट परम सोभायमांनहैं सों जिनको देखत कोटि चन्द्रमा और विद्युत लज्जा पावत हैं जो एसें परम सोभायमांन मस्तक ऊपर विराजतहैं सो परम रसकों उपजावनहारहैं । और जब रासके समय लटकि निर्त करत हैं सो तब व्रजभक्तनकों मन हें सो ताकों हरि लेत हैं जो एसों सरूप तो परम रसरूप ही हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप रूपं मधुरं कहे सो अबतो ओरहूं आगे कहत हैं । जो तिलकं मधुरं सो ताकों अर्थ तो यह हैं जो तिलक हैं जो सकल सोभा मुखरविंदकी है सो ताके राखवेके लीये इकठोरे कीयेहैं सो श्रीस्वांमिनीजी अपनें श्रीअङ्गको वर्णनसों रूप ताकों तिलक दियो हैं जो मति कहूं काहूंकी द्रष्ट लागें सों तिलकमें यह गुण हैं जो जहां श्रीमुखकमलकों अवलोकन करत हैं सो द्रष्ट तिलकके ऊपर जायकें पड़त हैं सो ताके लीये केसरिकों तिलक कबहूं कस्तूरीको तिलक धरत हैं सों ताको तो हेतु यह है जो तुर्य प्रियाजी श्रीयमुनाजी अपने मनोरथसों धरत हैं सो तातें कस्तूरीको तिलक धरत है और कबहूं कुमकुमको तिलक धरत हैं । तिनमें समूह व्रजभक्तनकों भावरूप अनुरागहि जाननों तातें श्रुतिरूपा अग्निकुमारिका तथा ओरहू व्रजभक्त जो व्रजमें हैं सों तिनको अनुरागरूप और आरक्त वरता भावते कुमकुमको तिलक करत हैं जो या भांति करिके श्रीठाकुरजी आप अपने व्रजभक्त तिनकों जतावत हैं । जो तुम सबनको छोड़िकें मेरो आश्रय लीयो है सो तातें में हूं तुमकों या भांतिसों राखत हों तो तातें तिलक रसरूप हैं । और तों अनेक भांतिके भावहैं सोई प्रगट होत हैं सो काहेतें जो जब श्रीठाकुरजीको फुलेल लगायकें, फेरि उबटनों करवायकें उष्ण जलसों स्नांन करवायकें तापाछें शृंगार की चोकीपर पधरायकें व्रजभक्त भावसहित शृंगार करावत हैं । और कबहूंकतो मृगमदको तिलक देत हैं कबहूंक तिलक विच मृगमदको बिन्दा देत है । सो ताको भाव कहत हैं । जो मृगमद हैं सो श्रीयमुनाजीको स्वरूप है । और केसरीहै सो श्रीस्वामिनीजीको स्वरूप हैं तातें इन दोऊनके अनुसारकें श्रीअङ्ग वरणनहैं केसरी और मृगमद तिनहीकों शृंगार आपु करत हैं अथवा शृंगार श्रीठाकुरजीकों श्रीस्वामिनीजी ओर श्रीयमुनाजी आपु करत हैं सो तातें केसरके ओर मृगमदके मिस अपने श्रीअङ्गको अनुभव श्रीठाकुरजीकों करवावत हैं ता कसरिकों और मृगमद जो कस्तुरी तिनकों तिलक व्रजभक्त करत हैं सों तिन तिलककी अैसी सौंदर्यता होत हैं जो कोटि कांम देखके लज्जा पावत हैं और तिलक तो यातें जरूर ही करत हैं जो श्रीठाकुरजीको मुखारविंद परमसुन्दर ताकी निधि है । ताकें चुरायवे में व्रजभक्त बोहोत तत्पर हैं जो श्रीठाकुरजीकों जो पावें सो अपने घर ले जाय । सो तातें तिलक हें सो तों सगरी सोभा हैं सो ताकी रखवारो करत हैं सो काहेते जो जहां व्रजभक्तनकी दृष्टितो तिलक ऊपर परी है सो तहां तो प्रेम में आपुही विवस होय जात हैं जो रंचकहू सरीर की सुध नाही रहे सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतों तिलकं मधुरं कहे जो अब ओरहूं आगे कहत है जो मधुराधिपतेरखिलं मधुरं सो सम्बन्ध जो इन समान और तो स्वरूप नांहि सो प्रथमके श्लोकमें ऊपर कहि आए हैं सो ताहीके भावसों जाननो सो या प्रकारसों चार श्लोकको अर्थ निरूपण भयो ।। ४ ।। अब ओरहू पांचमों श्लोक कहत हैं ।।

श्लोक—करणं मधुरं तरणं मधुरं,
हरणं मधुरं रमणं मधुरं ।
वमितं मधुरं समितं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ।। ५ ।।

याको अर्थ—अब कहे—जो करणं मधुरं जो याको अर्थ सो यह है जो श्रीठाकुरजीके मकराकृत कुंडल सहित जो करन है सो तिनमैं सांख्ययोग मुक्ति हैं सो ताको अभिनिवेस हैं जो करणते मुक्ति प्रगट भई हैं सो कुंडल कों चिमतकार कैसो है जो कोटिसूर्य ऐसी सोभा है जो ज्ञांतिकी भावना करत हैं सो जाकी जोति कहत है एसें श्रीपूरणपुरुषोत्तमके सर्व अङ्गकों अनुभव व्रजभक्त करत हैं एसें श्रीपूर्णपुरुषोत्तमके सर्वश्री अङ्गको अनुभव व्रजभक्त करतहैं । और मकराकृत कुंडलकों तो सांख्योग कहें सो ताको तो भाव यह है जो ज्ञानीको मुक्ति देत हैं और व्रजभक्तनकों कुंडलकों आश्रय करत हैं । तिनको भक्ति होत हैं सो काहेते जो यह श्रुतिके वचन हैं । आनन्दमात्र करपद मुखोदरादिहै सो काहेतें जो एक अङ्गन प्रति सत अङ्ग हैं सो ते करणहूके प्रति अङ्ग सबहो हैं सो तातें जो भक्ति भाव सहित

मकराकृत कुंडल सहित कराकों आश्रय करतहैं सो तिनकों भक्ति सिद्धि होत हैं । और श्रीठाकुरजीके कुंडल सहित कर्णकों आश्रय करत हैं । सो तिनको भक्ति सिद्धि होत है और श्रीकुलसहित करणकों आश्रय करत हैं सो तिनको भक्ति सिद्ध होत हैं और श्रीठाकुरजीके कुंडल सहित जो करण भक्तिकों न सिद्धि करते तो मधुर पद काहेकों कहत हैं सो काहेते जो मुक्तिमें तो रसनाही हैं भक्तिमें रससहित होय सो ताको नाम मधुर है । सो मुक्तिमैं श्रीठाकुरजीकों स्वरूपानन्दकों रस नाही हैं । सों तासों रस संयुक्त भाव निकट हैं ज्ञांनीकी भावना करिकें उनकों मुक्ति देत हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप तो करणं मधुर कहे रसरूप और श्रीस्वांमिनीजी के हृदयमैं दोय भाव हैं एक तो संयोगात्मक एक विप्रयोगात्मक तिनके दोऊ रसनके भोक्ता श्रीठाकुरजी आपहै । जो एसे जांनिके करण द्वारा होयकें हूं हृदय में जायो चाहत हैं । सो कपोलनकी सोभा देखिके कर्णको पकरिके ठाडे होय रहे हैं । एसे दोऊ कुंडल सहित करण अत्यन्त शोभा देत हैं और श्रीठाकुरजी करणयुट हैं सो अत्यन्त परम सुन्दर हैं जहां मकराकृत कुंडल तो परम सोभायमांन हैं सो दोऊ करणमें विराजत हैं सो तिनकों प्रतिबिब हैं सों दोऊ कदीलनमें विराजत हैं । तिनकों प्रतिबिम्ब जब दोऊ कपोलनमें पड़त हैं सो ता करिकें बोहोतही सोभायमान हैं । अति परम सोभायमान हैं । तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप करण मधुरं कहैं जो अब औरहू आगें कहत हैं जो तरण मधुर कहे हैं जो याको अर्थ तो यह हैं जो सुरति सिंधुमें रत हैं । तरुणकी शोभातों श्रीठाकुरजी आप हैं और ब्रजसुन्दरी तरुण किसोर हैं सो जोवन मदसों गर्व होय रहि हैं सो निकुंज मन्दिरमें वस करिकें श्रीठाकुरजोकों पायो हैं सो केलि सिज्याके ऊपर विहार करत हैं जो तेसें मत्त हस्त करणीके संग विहार करत हैं सो परस्पर हास्यही मांनत हैं । कोटि-कोटितो चोंरासी वध कांमके है और श्रीपूर्णपुरुषोत्तमतों अपार असंख्यात सम्बन्ध करिकें श्रीस्वांमिनीजी सहित जेसें मीनजलमें रमणकरें सो एसें रसमें विहार करत हैं और कोईक समय व्रजभक्तनके मनमें जल क्रीडाकों मनोरथ होत हैं सो तब श्रीठाकुरजी आपतो ब्रजभक्तनके मनकी बातकों जाननबारे हैं सो नाच खेल तथा जल तिरनो सों जल क्रीडा कीयें सों या भांतिसों अनेक रीतिसों अनेक क्रीड़ा करत जल विखें सो व्रजभक्तनकों परम आनन्द उपज हैं । सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो तरुणं मधुरं कहें जो अबतो औरहू आगे कहत हैं जो रमण मधुरं जो याकों अर्थ तो यह हैं जो यह ललित त्रिभंगी स्वरूप हैं सो त्रिलोक जुव तिनके मनको हरत हैं जो एताद्रस त्रिलोककी वार्तातो रहो । ताद्रश सौंदर्यतम सौंदर्यरूपकों देखत मात्र श्रीस्वांमिनीजीकों विवेक लज्जा धैर्य सबहि बहिजात हैं । ओर कन्दर्पकों अत्यन्त पीड़ा होत हैं । विरह करिकें भस्म होत हैं अथवा श्रीस्वांमिनीजीके रसात्मक तो श्रीठाकुरजी हैं । और श्रीस्वांमिनीजीके रस करिकें पोषित पुष्ट होत हैं । और श्रीस्वांमिनीजीके हृदयकों दुःखसो ताको हर्ता तो आपुही हैं और वस्त्रहूं हरण कुमारिकाके करिकें निरावृत्त मायाकों दूरि करिकें ता पाछे रसकों दांन कीऐ तिनके अनेक जन्मके ताप मिटाऐ और व्रतचर्य हेमन्त रितुमैं गोपीजन श्रीठाकुरजीके लीये तप करत हैं सों अपने वस्त्र सब श्रीयमुनाजीके किनारे घरकों कदम्बके नीचें आप श्रीयमुनाजीमें विना वस्त्र अस्नान करत हैं सों ता समय श्रीठाकुरजीतो आप आयकें चोर

नाम वस्त्र सों आप हरण करे हैं ता पाछें व्रजभक्तननें बोहोत ही वीनती करी । सों तब नीठ नीठ करिकें चीर दिए हैं । और वरदांन दीये जो रासक्रीडामें तिहारों मनोरथ पूरण करेंगे सो अब सिद्धि कीए सों यह चोरहरण लीला है । सो परम रसरूप हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतों हरणं मधुरं कहें सो तो परमरस रूप हैं सों अब औरहूं आगें कहत हैं जो रमणं मधुरं जो ताकों अर्थ तो यह है जो अनेक निकुंजनमैं व्रजमें व्रजभक्तनके संग रमण करत हैं । 'कलिंदो भूतायास्तट मनुचरन्ती' पशु पंछी जो कन्या यह बृहद्वामन पुराणमैं श्रुतिनके दर्शनभयों ता पाछें जब व्रज विखें लीला सम्बन्ध भयौ तहां एक श्रीस्वांमिनीजीके समान सील व्यसनवानसों सब सखियनके जूथानिजूथ हैं तहां एक कालावछन्नमैं सबनसों विहार करत हैं और जब दोऊ स्वरूप सुरति के लियें लीन होय जात हैं सो तहां सखी वायु व्यजन तो अन्तरंगी करत हैं सों श्रीठाकुरजी और एताद्रस श्रीस्वांमिनीजी रमण तो उनमत होयकें करत हैं अपने प्राणवल्लभके वृन्दनमैं जूथनसों आवेष्ठित दिखावत है । जो जेसें मत्त गजराज अपनी करनीको संग लिये रमण करें । ताभि युत श्रम भयो हि तुम संग संग व्रष्टजः । स्वकुच कुंकुम रंजिताय गंधर्वा पाजिभिरनुभूत आविशद्वाश्रांतोगजोभिरिभराद्रि वभिन्न सेतु । एसे अमर्यादा विपरिति रमण व्रजभक्तनसों करत हैं । तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपनो रमणं मधुरं कहें सों ताकों तो अर्थ यह हैं जो श्रीबलदेवजो सहित और संगके बालक सहित मिलिकें व्रजभक्तन सहित अनेक भांतिके रमन रेतीमैं रमण लीला करत हैं सो तों मधुर हैं । और निकुंज मन्दिर में भांति भांतिके रमण व्रजभक्तन सहित श्रीठाकुरजी आपु करत हैं सो तों अत्यन्त मधुर हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप रमणं मधुरं कहें सों अब औरहूं आगे कहत हैं जो शमितं मधुरं जो याको अर्थ तो यह है जो कोईक समय श्रीठाकुरजी आप तो अपने घर में दूध दही मांखन अनेक जतन करिकें धरि राखत हैं सो तहां श्रीठाकुरजी तो आप पधारत हैं सो सबद आभूषणादिकके सुनिकें गोपी श्रीठाकुरजीके सन्मुख पकरिवेकों जात हैं सो तब श्रीठाकुरजी आपने श्रीमुखमें दूधको भरिके वा गोपिकाके मुख ऊपर कुल्ला करत हैं तब गोपिकाके मुखमैं तथा नेत्र में दूध भरि जात हैं सो तब गोपीरसमें मगन होयके ठाढी रह जात हैं श्रीठाकुरजी तो आप आरोगिकें भाजि भाजि जात है तथा निकुंज मन्दिरमैं श्रीस्वांमिनीजी सहित श्रीठाकुरजी विहार करत हैं सो तहां परस्पर चर्चित तांबूलको ओगाल लेत हैं और श्रीस्वांमिनीजी अपनों सर्व पदारथ श्रीठाकुरजीकों अर्पन कीये हैं । तातें नाना प्रकार की सांमग्री सिद्धि करिकें राखत है सो श्रीठाकुरजीकों लिवायकें ता पाछें जों कछू बचत है सो लेत हैं और कबहूं श्रीठाकुरजी श्रीस्वांमिनीजीकों लिवायकें तां पाछें आप लेत हैं ॥ लाडिली अर्चवाय आगें पाछें आप अघाय ॥ सो तातें दोऊ स्वरूपकों एक ही करि जाननों सो दोऊनके अरोगाऐ पाछें जो कछू वचत है । सो ताकों निमितं मधुरं कहिये सो सखीजनकों भोगार्थ हैं सों तातें पुष्टिमार्गमैं थी रीति सों भोग धरत हैं सो तहां दोऊ स्वरूप आरोगत हैं । सो महाप्रसाद लीऐं तें वह रसकों अनुभव होत हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप वमितं मधुरं कहे अब औरहूं आगे कहत हैं जो समितं मधुरं कहे सो ताकों अर्थ तो यह हैं जो श्रीठाकुरजीको समद्रष्ट करुणारस युक्त सबनके ऊपर हैं विषम द्दष्ट काहूके ऊपर नाही हैं सो कोऊ

मांन अपमांन कितनो करो परन्तु श्रीठाकुरजी आपु सबनके ऊपर परम कृपा करत ही आरोगे हैं सो काहें ते जो पूतना स्तन विषें विष लगाइकें आइ सो ताहूकों माता की गति दीनी इन्द्रों स्वारथ सब करिकें श्रीठाकुरजी आप वाकों दोष दूरि करिकें राखें। वाकों बुरो न कीए जातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप स्मितं मधुरं कहे। अथवा और व्रज विषें व्रजभक्तनके हृदयविषें जेसो भाव करिकें जिनकों भजन कीयो हैं। तिनहीकों ताही भांतिसों मनोरथ पूर्ण कियो हैं और श्रीस्वामिनीजी समान सिलवसन परम रसरूप हैं तिनको श्रीठाकुरजीहूते सरस रूप है। परस्पर एक रस ह्वायकें विहार करत हैं और श्रीठाकुरजी की भक्ति करत हैं तिनकों श्रीठाकुरजी आपु अपने समान करत हैं सो जेसें रासपंचाध्याईमें प्रथम श्रीठाकुरजी मिलिकें ता पाछें अन्तरध्यांन भए सों तब गोपीजनकों परमेस रहू ताप भयो हैं। सो काहेतें जो श्रीठाकुरजी आप विरह उपजाइकें अपने संमांन व्रजभक्तनको करिकें ता पाछें परमरसको दांन कीए हैं। तातें जो श्रीठाकुरजी आपुके भक्त हैं तिनकों श्रीठाकुरजी आपु अपने समान राखत हैं। तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप स्मितं मधुरं कहें जो अब ओरहू आगे कहत हैं जो मधुराधिपतेरखिलं मधुरं। जो याको अर्थ प्रथम श्लोक में कहि आए हैं सोई वाकों भाव प्रथम श्लोकमैं हैं सोई यामें जाननों सो प्रकार सों पांच श्लोकको निरूपण भयौ ॥ ५ ॥ अब आगे औरहू श्लोक कहत हैं।

श्लोक—गुंजा मधुरा माला मधुरा,
यमुना मधुरा वीची मधुरा।
सलिलं मधुरं कमलं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ॥ ६ ॥

याको अर्थ—अब कहत हैं जो व्रजभक्तनके स्वरूपात्मक पदास्थ हैं सो तातें श्रीठाकुरजीकों तौ अत्यन्त प्रिय हैं सो तातें अपनें श्रीकण्ठमें गुंजा राखत हैं सो गुंजामें अरुनता के नीचे स्यामता हैं सो तो तूर्य प्रियाको भाव हैं सो श्रीस्वामिनीजी आदि व्रजभक्तनके हृदयको अनुराग रसतों ताको इकठौरो करिकें राखे हैं और श्वेत गुंजा हैं सो श्रीचन्द्रावलीजी आदि मुख्य व्रजभक्तनको भाव है। सो तातें दोय भांतिकी गुंजा अरुण स्वेतकी माला करिकें श्रीठाकुरजी आप अपने हृदयमें धारत हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो गुंजाकी माला करिकें पहरे हैं तामें गुंजा तो दोय भांतिकी हैं जो एक तो लाल है एक स्वेत है सो ताको भाव लाल गुंजा है। सो श्रीस्वामिनीजीको भाव है परम अनुराग स्वरूप शुचन होत हैं। सो नाम श्रीयमुनाजी हैं सो गुंजामें स्यामता हैं सो श्रीयमुनाजीकों श्रीअङ्ग वर्णन हैं और स्वेत गुंजा हैं सो श्रीस्वामिनीजीके श्रीअङ्गको भाव हैं सो तातें गुंजा तो सिंगारमें आवस्यक चाहियें। तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतों गुंजा मधुरा कहें सो अब ओरहूं आगे कहत हैं जो माला मधुरा जो याको अर्थ तो यह हैं जो वैजन्तीमालामें तो व्रजनमें तो कोटानकोट व्रजभक्त हैं सो तिन सबनके भावकों अङ्गीकार नाना प्रकारके भावसों नाना प्रकारके पुष्प कोटानकोट व्रजभक्तनके जूथसों अनेक प्रकार करिकें बड़ी लंबाई मानों चरणकमलतें श्रीकण्ठ पर्यन्त जो जो व्रजभक्तनकों जा अङ्गमैं अङ्गीकार करे हैं सो जनावत हैं सो ताके मध्यमैं मोतिनको माला मानिकी की माला धुकधुकी चौकी 'श्रीवत्स लांछन कौस्तुभ कण्ठ श्रीयेसु स्वभक्ति'' सिरोमणी मध्यमैं श्रीस्वामिनीजी आदि चतुर्थ यूथ सबनको भाव जाननों। तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु गुंजा मधुरा कहें अथवा ओर माला जेहि वनमाला प्रभृति सब सगरे व्रजभक्तनको स्वरूप हैं तिनको श्रीकण्ठतें चरणारबिंद ताई अङ्गीकार करत हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप माला मधुरा कहें। सो अब ओरहू आगे कहत हैं जो यमुना मधुरा सो ताकों अर्थ तो यह हैं जो श्रीयमुनाजी अत्यन्त मधुर हैं सो तिनको लीला श्रीठाकुरजी ही तो हैं सो तों सब श्रीयमुनाजी केसी हैं जो सदा श्रीठाकुरजीके सङ्ग क्रीड़ा करत हैं। और अग्निकुमारिकानकों श्रीठाकुरजीके सम्बन्ध तुम ही करिकें सिद्ध भयो है सो तातें जो कोई तिहारो आश्रय करे सो तिनकोतो तुमही अलौकिक देहिक सिद्धकरणवारी हैं। और रासादिक लीला श्रीठाकुरजी व्रजभक्तनके सङ्ग करत हैं सों नवरसकों अङ्ग अङ्गमैं अस्वेदद्वारा प्रगट होय है और यो रसतों श्रीयमुनाजीमें है तातें श्रीयमुनाजीतों अत्यन्त मधुर हैं और श्रीयमुनाजीतों श्रीठाकुरजो व्रजभक्तनको लीलामें अत्यन्त अनकूल है। सो नाना प्रकारके सकेत सिद्ध करत हैं सो तातें श्रीठाकुरजीको और व्रजभक्तनकों परमप्रिय हैं सो तातें श्रीयमुनाजी एसे हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू यमुना मधुरा कहे। अथवा ओर श्रीयमुनाजी हैं सो तामें तो भांति भांति के भाव हैं सो काहेते जो श्रीयमुनाजी के तट विषें श्रीठाकुरजी भांति भांतिकी लीला करत हैं और लौकिकमें जाहार होय सो होत हैं सो तहां कलेश ही होत हैं और श्रीठाकुरजी कोटि कोटि व्रजभक्तनके साथ ही विहार लीला करत हैं। सो तहां रंचकहू कलेश होत नाहीं हैं और परस्पर आपुसमें केलि करत हैं सो श्रीयमुनाजीको प्रवाह है। और परस्पर आपुसमें स्नेह करत है। और श्रीयमुनाजीको जलपान कैसो है दुष्ट जीव करे सो ताको यम यातना तो कबहू न होय। और जो जीव श्रीआचार्यजी महाप्रभूनकी सरण आए हैं सो तिनके अनेक भांतिके अतराय हैं श्रीठाकुरजीसों तिनकों दूरिकरिकें अलौकिक सरीर श्रीठाकुरजीकी सेवा उपयोगी देह सिद्ध करत हैं और सर्वात्मक भाव हैं सोऊ श्रीयमुनाजी सिद्ध करत हैं और श्रीठाकुरजी व्रजभक्तन सहित रासादिक लीला करत हैं सो तब श्रम होत हैं तब जलक्रीडा करत हैं सो श्रमजलसों मिलकें श्रीयमुनाजी मिलिके रहे हैं। सो श्रीयमुनाजी मिलिकें रहे हैं सो जीव श्रीयमुनाजीको आश्रय करत हैं तिनकों श्रीयमुनाजी या जलसों सम्बन्ध करावत हैं। तातें श्रीयमुनाजी अत्यन्त मधुर हैं सो रस रूप ही हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप यमुना मधुरा कहे। अब ओरहू कहत हैं जो बीची मधुरा सो ताको अर्थ तो यह हैं जो श्रीयमुनाजीमें तरङ्ग ओर भमर परत हैं सो मानों श्रीयमुनाजीके हस्तकमल हैं जो जेसें व्रजमें कोटानकोट व्रजभक्त हैं तेसेंही श्रीयमुनाजीके तरङ्गरूपी भुजाहू कोटानुकोटि प्रगट करिकें व्रजभक्तनसों श्रीठाकुरजी सो सम्बन्ध करावत हैं तातें श्रीयमुनाजीकी तरङ्ग जो उठत हैं सो अनेक व्रजभक्तनके मनकों आकर्षण करिकें ही मन हरत हैं सों तामें तो यह जतावत हैं जो

तुम यहां आयकें जलपान करो तो रसको अनुभव होय । जो या भावसो पुष्टिमार्गीय जीवकों लीला सम्बन्ध करावत हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू बीची मधुरा कहे । अथवा श्रीयमुनाजी के जो तरङ्ग हैं लहरि सोई रसरूपी हैं सो काहेते जो श्रीयमुनाजीकी भुजारूप हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु वीचीमधुरा कहे । सो अब ओरहू आगे कहत हैं जो सलिल मधुर ताको अर्थतो यह है जो तुम्हारे जलमें नाना प्रकारके भमर परत हैं सों रसकरिके मानों पूरि रहे हैं सो जहां अगाध जल होत हैं सो जहां भमर परत हैं सो साक्षात् ब्रह्मद्रस्प श्रम जलकों रसधारे हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप सलिल मधुरं कहे अथवा और श्रीजमुनाजीनें जल हैं तिनकों सम्बन्ध जब गङ्गाजी भयो । जो तातें सब जगतमें तो श्रीगङ्गाजीको बड़ाई नहीं हैं सो पापादिक जो ब्रह्महत्यादिककों दूरि करत हैं और जो जीवकों श्रीयमुनाजीके जलको सम्बन्ध होत हैं सो ताको भगवदरसको अनुभव होत हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु सलिल मधुरं कहे । जो अब ता ओरहूं आगे कहतहैं जो कमल मधुरं सो ताको अर्थ तो यह है जो श्रीयमुनाजीमें नानाप्रकारके कमलफूलि रहे हैं सो केसे स्याम पीत हैं अरुन हैं स्वेत हैं इत्यादिक तिनमें भ्रमरणके यूथ आयकें रसपान करत हैं जो जेसें अनेक व्रजभक्तनके भाव सहित देखिकें श्रीठाकुरजीके रसकों पान करिकें सकल मनोरथ पूर्ण करत हैं । और श्रीयमुनाजी पुष्टिमार्गीय जो अङ्गीकृत व्रजभक्तहैं सों तिनकों यह जतावत हैं । जो जा प्रकार हम व्रजभक्तनकों और श्रीठाकुरजीकों राखत हैं सों तेंसेंई तुमहूं भावकरिके पूर्ण पुरुषोत्तमको अपने हृदयमें राखे जो जा भांतिसों श्रीयमुनाजीके सङ्ग सदांहि विहार करत हैं और कमल जो हैं सो तामें तो श्रीलक्ष्मीजीको वास हैं सो तामें यह सूचनकों करत हैं जो लक्ष्मीजो और नारायण श्रीयमुनाजीके तटपर आए हैं सो काहेते जो श्रीस्वामिनीजो और श्रीपूर्णपुरुषोत्तम श्रीयमुनाजीमें जो निकुंज मन्दिर हैं सों तहां विहार करतहैं सो कमला और लक्ष्मी हैं सो जिनके सङ्ग जो भ्रमर नारायण ए श्रीयमुनाजीमें आयके श्रीपूर्णपुरुषोत्तमकी श्रीयमुनाजी सहित स्तुति करत हैं तो देवता तो सब करोही करें और मल नाहीं हैं । मानों अन्तर सहिचरकों दान कोट श्रीयमुनाजीको हैं सो काहेते जो श्रीयमुनाजी जूथपति हैं सों तहां नानाप्रकारकी कमोदनी है सों जूथपति को सहचरीतो कोटानकोट है सो काहेते जो कमलरूप व्रजभक्त यूथपतिनकी गनना नाहीं है सो तहां सहचरी की गनना कौन करे और नाना प्रकारके पुष्पनके सुगन्ध देवता कुसुम वरषत हैं तिनको सौरभतों श्रीपूर्णपुरुषोत्तम और व्रजभक्तनके श्रीअङ्गके प्रस्वेद हैं तिनमें अरगजादिक कुमकुम सहितसों सब श्रीयमुनाजीनें हैं सों सगरो सौभएक होयकें श्रीयमुनाजीमें प्राप्त होय रहे हैं सो तिन करिकें भमरके समूह गुंजार करत हैं और नाना प्रकारकें व्रजभक्त गान करत हैं सो मानों श्रीयमुनाजीमें परम कुलाहल सब्द होयरहे हैं और श्रीयमुनाजीमें जो पदारथ हैं सो तो श्रीपूर्णपुरुषोत्तमका सम्बन्ध हैं सो एसो रसरूपतो श्रीयमुनाजी विनातो कछूवी सिद्ध न होय यमलरूप जो श्रीयमुनाजी हैं श्रीलक्ष्मीजोहू इनकों आश्रयकोयो हैं सो तातें श्रीआचार्यजो महाप्रभू आपतो कमल मधुर कहे और अथवा श्रीयमुनाजीमें भांति भांतिके कमलफूल रहे हैं सो परम रसरूपही हैं सो काहेतें जो कोईक समय व्रजभक्तन सहित श्रीठाकुरजी आपु कमललेके प्रहार लीलाकरत हैं सो ताहीतें धमारमें कह्यो है जो कमलन मार मचाईयो । सो यात श्रीयमुनाजीमें कमल हैं सो तो परमरसरूप हैं सो तातें श्रीआचार्यजो

॥ श्री हरिः ॥

श्री मद् भानु नन्दनी श्री यमुनाजी

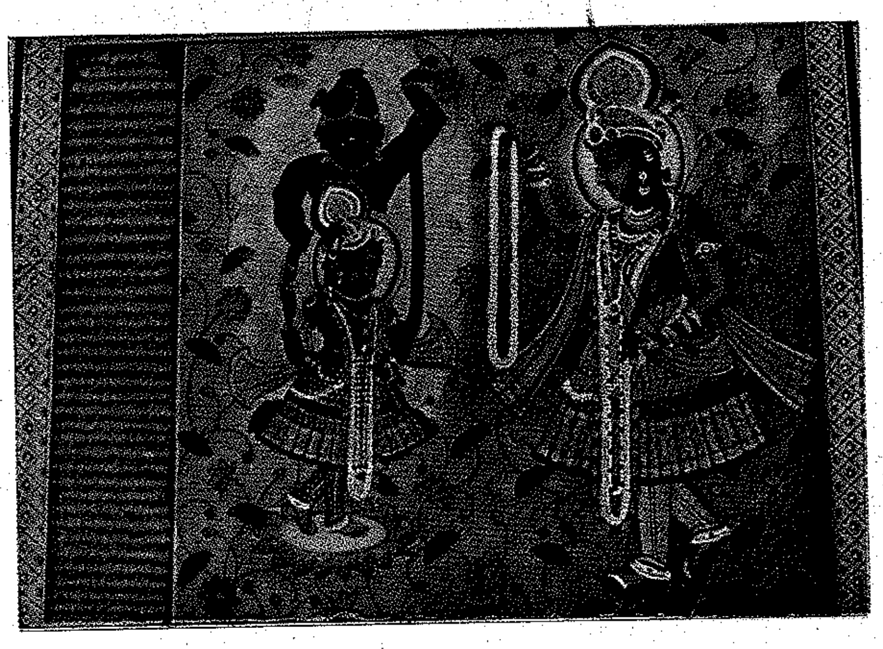

एक बार श्री वृषभानुनन्दनी स्वामिनीजी ने गाढमान किया, रसिक नन्दनन्दन के बहुत मनाने पर भी मान विमोचन न देख कर प्रभु अपनी निकुञ्ज में पधारे और निकुञ्ज द्वार पर सखाओं का कठोर पहरा लगा कर निकुञ्ज में स्त्री प्रवेश निषेध की आज्ञा प्रदान की। इन समाचारों को सुन कर स्वामिनीजी बहुत उदास हो गई तथा श्री भानुनन्दनी (श्री यमुनाजी) को निवेदन किया कि प्रभु की आप परम कृपा पात्र हैं सो किसी भी प्रकार से उन्हें यहाँ पधारने की कृपा करें। तब श्री यमुनाजी ने मुकट काछनी का शृंगार कर दक्षिण हस्त में माला एवं वाम हस्त में कमल छड़ियां लेकर निकुञ्ज द्वार पर पधारी। द्वार रक्षकों ने आप श्री को पुरुष समझ कर नहीं रोका। निकुञ्ज में प्रभु इस शृंगार से प्रसन्न होकर मुस्कराने लगे। तब से श्री यमुनाजी ने इसी शृंगार को अपनाया अतः इसी शृंगार के दर्शन होते हैं।

गौ. बा. द्वारकादासजी परीख से श्रुत

महाप्रभू आपतो कमलं मधुरं कहे सो अब औरहूं आगे कहत हैं जो मधुराधिपतेरखिलं मधुरं जो याकों संवाद तो प्रथमके श्लोकके भाव करिकें प्रति श्लोकमें जाननो सो या प्रकार छह श्लोकको अर्थ निरूपण भयो जो ।। ६ ।। अब औरहूं आगें सतमों श्लोक कहत हैं ।।

श्लोक– गोपी मधुरा लीला मधुरा,
युक्तं मधुरं मुक्तं मधुरं ।
इष्टं मधुरं शिष्टं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ।। ७ ।।

याको अर्थ—अब कहत हैं । जो गोपी मधुरा सो ताको अर्थ तो यह है जो जितनेक व्रजभक्त हैं सो तिन सवनकी मुकुटमनि गोपीजनहैं । श्रीठाकुरजीको गोपी प्राणप्यारी और श्रीठाकुरजीकों सर्व निवेदन कीए हैं और निकुंज मन्दिरमें तो अनेक व्रजभक्त श्रीस्वामिनीजीकों श्रीठाकुरजीको संकेत करत हैं तहां नानाप्रकारकी लीला विहार करत हैं सो तहां गोपीजन अनेक भाव करिकें श्रीठाकुरजीकों वस कीए । तब श्रीस्वामिनीजीनें कहा जो अहो प्राणप्रिय तुमतो अत्यन्त सुन्दर हों सो तातें सुरतांत रमण मेरो सिंगार सिथल भयो है सो अब मोको सब सखी देखेगी । सो तातें अबमैं कैसें करों सो तब श्रीठाकुरजी आपतो अपने श्रीहस्तकमलसों श्रीस्वामिनीजीको सिंगार करन लागे सो मुखारविंदकी सोभा देखिके शृंगार भूलि जात हैं सो तब श्रीस्वामिनीजी कहे जो वेगही करो जो मेरी सखी आवति होयगी सो तब श्रीठाकुरजी आप सिंगार कीए हैं सो ता पाछें उहां ललितादिक जो अन्तरंग सखी हैं सो सब आयकें श्रीस्वामिनीजीको सिंगार देखिकें परस्पर सें नहीमें करत हैं आपनी सखीसों जो यह सिंगार तो मेरे हाथको नाहीं है जा या भांतिसों इनकों संकेत स्मरण करिकें सखीजन प्रेमसक्ति होयकें आनन्द पावति हैं और यह सरूप तों श्रीठाकुरजीकों श्रीगोपीजनके अनुभव करिवेके योग्य हैं । सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपु गोपी मधुरा कहें और सगरी पृथवी पर भांति भांतिके भक्त हैं परन्तु व्रजभक्तनमें गोपी हैं सों तों श्रीठाकुरजीके परम प्रिय हैं सो काहेतें जो अपने प्राणपति जो श्रीठाकुरजी आपु तिनको प्रेम अपने हृदय सैं गोप्य राखत हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू गोपी मधुरा कहें जो अब औरहूं आगे कहत हैं जो लीला मधुरा सो ताको अर्थ तो यह है लीला जन्म प्रकरणतें लेके रासलीला कीए हैं सो तामें अनेक लीला तो व्रजमें कीए हैं और कितनीक लीला तो श्री मथुरा में कीए हैं सो कितनी गोपीजन को सम्बन्ध लीला हैं जो मधुर सिंगार रस तो ताको कहत हैं जो वेद शास्त्र श्रुतिनकों अगम्य मर्यादा रहित हैं अमर्यादा रनोजन्म गजराज को नाहीं सुरति सेज विरवे कोक कला भी चातुरी सम्पूर्ण जो जाको छटाते प्रगट भई हैं सो लीला देखिकें कोटि कोटि रति मोहित भई तातें सब लीला में सिंगार रस निकुंज मन्दिर की लीला तो मुख्य हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप लीला मधुरा कहे अथवा जो सर्व अवतार की लीलामें व्रजकी लीला मुख्य

हैं सो काहेतें जो प्रथम बाललीला में दूध दही की लीला तो परम रसरूप हैं रासादिक लीलाते सर्वोपर हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप लीला मधुरा कहे। जो अब ओरहूं आगे कहत हैं जो युक्त मधुरं सो ताको अर्थ यह है जो जहां जेसो कारण होय सो तहां तेसोई कारण होत हैं सो कारण तो शुद्ध पुष्टि श्रीपूर्णपुरुषोत्तम को प्रागट्य है जो तातें कारजहूं पुष्टि लीला कीए हैं जो व्रजभक्तन के सकल मनोरथ आप ही प्रमेय चल करिकें पूर्ण कीए सो तातें युक्त सव रीति ही सों कीए सों ताको तो भाव यह है जो व्रज में जितनीक लीला हैं सो तो सब व्रजभक्तन के निमित्त ही हैं मांखन की चोरी कीनी हैं सो तामें तो यह जताये। जो श्रीगोपीजन की सदा उनके घर की सांमग्री आरोगे हैं जो ता करिकें उनको मन अन्नमें लगावत हैं सो व्यसन अवस्था ताको सिद्धि कीए जो अष्ट प्रहर तो उनके मनमें यही रहें जो श्रीठाकुरजी आप हमारे घर की सांमग्री आरोगन नाही आए हैं सो याही प्रकार जितनी लीला करी सो सब गोपीजन के युक्त ही उनके निरोध सिद्धि कीए। सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप युक्त मधुरं कहे, अथवा और जब मांखन की चोरो व्रजभक्तन के घर करि जात हैं सो तहां मांखन तो छीके ऊपर धर्‍यो हैं सो तो अनेक भांतिकी युक्त करत हैं और ऊखल धरत हैं सो ताके ऊपर पोढ़ापोढ़ी धरत है सो ताके ऊपर चढ़िके छड़ीसों छेद करिकें छींका सो गिराय के आप मांखन खांन लागे और दांनादिक लीला विखें अनेक भांति की युक्त श्रीठाकुरजी आप करत हैं तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप युक्त मधुरं कहें जो अब तो ओरहूं आगे कहतहैं जो मुक्त मधुरं सो ताको अर्थ तो यहहै सोतो प्रसिद्ध ही है सो काहेतें जो रासपंचाध्याईके प्रसङ्गमें राजा परीक्षतनें श्रीशुकदेवजी सों प्रश्न कीयो है जो ईन गोपीजननें कांम भाव करिकें श्रीठाकुरजीकों भजन कीयो है इन ब्रह्म भाव नाही कीएसों तातें इनकों मुक्ति कैसें भई सों तव श्रीशुकदेवजीनें कह्यो जो इनके समान मुक्ति तो काहू की नाही हैं सो काहेतें जो शिशुपाल जनमहीते जहांताई जीयों सो तहां ताई श्रीठाकुरजी की निन्दा करत रह्यो सो ताहुं की मुक्ति भई। और गोपीजन तो अपनों सब लौकिक सुख छोड़िकें तन मन धन प्राण सर्वस्व श्रीठाकुरजी को समर्पो। तातें श्रीपूर्ण पुरुषोत्तम के सरूपानन्द कों अनुभवसौं एसी रसरूपो मुक्ति भई और श्रीभागवत में कहे हैं जो मुक्ति तों ताको कहियें जो फेरि दुख कलेश मुक्ति भए। सों ता पाछें न होई सदां एक रस सुखकौ अनुभव करें सों तेंसें व्रजभक्त श्रीवृन्दावन में श्रीठाकुरजी के साथ नित्य नांनाप्रकार की रासलीला को अनुभव होय सो करत हैं सुखकी पराकाष्टा जो कोटानकोट सधिनहू तें सिद्धि न होय सो तातें गोपीजनकौ रसरूप मुक्ति भई। तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप मुक्त मधुरं कहे अथवा जो श्रीकृष्णजो राक्षसनकों मारिकें तो मुक्ति दोए सो सामें सरूपानन्द को तो अनुभव नाहीं हैं और व्रजभक्तन को परमप्रेमरूपी मुक्ति दीए सो तामैं सरूपानन्दकों अनुभव होइ तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप मुक्त मधुरं कहें जों अबतों औरहूं आगे कहत हैं जो द्रष्टं मधुरं जो ताकों यह अर्थ हैं जो द्रष्ट नामक राक्षस हिन अवलोंकन सोऊ एक व्रजभक्त ही सो भली भांति सों जानत है सो काहेतें जो श्रीठाकुरजीकों अनेक भाव करिकें द्रष्ट कटाक्षसों अनङ्गरूपी महातीक्षण तानसों अङ्ग अङ्ग में सारे हैं तातें श्रीठाकुरजी को अङ्ग जब व्रजभक्तनसों मिलत हैं सों तव रंचक सीतल होत हैं और क्षण

एकके अन्तरायमें लो और दसा होय करिक विरहके भर करिकें आपुही राधा होय जात हैं। सो तब राधा होय सो तब ही मुख माधोर होत हैं सो तब माधो होय जात हैं सो तब छिनकमें राधा विरह करें सो तब छिनकमें राधा विरह करें सो तब विप्रयोगरसमें कबहूक यह दसा होत है जो श्रीस्वामिनीजो तो कृष्ण भावकों पाय आपकों कृष्ण जानिकें राधा राधा पुकारत हैं और श्रीठाकुरजी विरह विकलता होयके आपकों राधा जानत हैं कृष्ण कृष्ण हा कृष्ण कब मिलेंगे सो एसें पुकारत हैं सो यह दसा देखिकें सखोन की धीरज छूटत है जो इनकों कौन प्रकारसों समझाइयं जो एसें रसमगन दोऊ हैं। एक एक द्रष्ट मैं एसें भांत कोटि उत्पन्न होत हैं। सो तातें श्रीआचार्यजो महाप्रभू आप द्दष्टं मधुरं कहे। अथवा श्रीठाकुरजी को द्दष्टिसो जब व्रजभक्तनके ऊपर परत हैं सो व्रजभक्त सब विवस होयके प्रेममें परम कांमातुर होयकें विरह करत हैं। तब विनकों मनोरथ श्रीठाकुरजी आप सिद्ध करत हैं। सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप द्दष्टं मधुरं कहे जो अब औरहूं कहत हैं जो द्दष्टं मधुरं। ताको अर्थ तो यह है। जो यह सिंगार रसकी सांमग्री सर्व मधुर ही है। जो सबनते न्यारी हैं जामें श्रीवल्लभदेवजा को सम्बन्ध तो वा लोला में नांही है सो काहेतें जो निकुंज मन्दिर में पशु पंछी द्रुमवली चन्द्रमा और जितनी सांमग्री केलिकला में सों सबनतें न्यारी महारस रूपीहैं सो तहां सब सखी हैं सो सब उनही के करिवेके जोग हैं। सो तातें उनके आश्रय बिना और के अनुभव में न आवै सो यह कहिक यह जताए जो पुष्टिमार्गीय जो अङ्गीकृत जीव हैं सौ वे तो लीला सम्बन्वी सृष्टि के हैं। सो तिनही को यह रसकों अनुभव होय औ और को तो न होइ सो तातें यह सृष्टि तो सबनते न्यारो करिकें जाननी सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो सृष्टं मधुर कहे। और अथवा और पृथ्वी पर अनेक भांति के जीव हैं। वे जेसो कर्म करत हैं सो तेसो फल पावत हैं। और चोरासी कोस में व्रज में जे जीव रहत हैं सो तेतो अत्यन्त बड़भागी हैं और श्रीठाकुरजी के साथ लीला में जे जीव हैं सो तेतो परम रसरूप हैं सो ताईतं रास पंचाध्याई में कहे हैं जो चन्द्रमाहैं सो तो मनि चन्द्रमा हैं और काल है और पशु पंछी श्रीयमुनाजी में हंस मोर चकोर चात्रक शुक इत्यादिक जे बोलत हैं सों तो परमरसरूप ही हैं तातें लीला सामग्री में जो सृष्टि हैं सो अत्यन्त मधुर रससों भरी है। तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो सृष्टं मधुरं कहे। जो अबतो ओरहूं आगे कहत हैं जो मधुराधिपतेरखिलं मधुरं जो याकों भाव तो ऊपर के श्लाक मैं पहलें लिखि आए हैं सो तातें यहां तो नाही लिखे हैं। या प्रकार सात श्लोकको अर्थ निरूपण भयों।। ७ ।। अब ओरहूं आठमों श्लोक कहत हैं।

श्लोक—गोपा मधुरा गावो मधुरा,
यष्टिर मधुरा सृष्टिर मधुरा।
दलितं मधुरं कलितं मधुरं,
मधुराधिपतेरखिलं मधुरं ।।८।।

याको अर्थ - अब कहत हैं ज: गोपा मधुरा सोताको अर्थ तो यह हैं जो सिगार रसमें सब ठोर सखाकों वर्णन कीऐ हैं और गोप सखा को नाहीं कीए तातें यह कितनेक अन्तरङ्गी लीला सम्बन्धी सखाहू हैं सो तो या प्रकार सो जाननों सो जेसें श्रीठाकुरजी गोचारण लीलाकों पधारत हैं तब व्रजभक्त अपने ग्रहमें उनकी लीला को स्मरण करिकें जो सर्व लीलाकों अनुभव तो घरहीमें करत हैं जो या प्रकार गोपी दिवस के विखें अनुभव करत हैं । और रात्रको तो व्रजभक्तन के सङ्ग श्रीठाकुरजी आपतो निकुंज मन्दिर में पधारत हैं । तब अन्तरङ्गी सखा सब अपने घरमें निकुंज मन्दिरमैंकी सर्वलीलाकों अनुभव करत हैं । सो तातें या भांतिसों भाव करिकें सखाहू वह रसभोग करिवेकों योग्य हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो गोपा मधुरा कहे और श्रीठाकुरजी के सखाहों बालसोंऊ अत्यन्त प्रेम सो छके रहत हैं । सो काहेतें जो जब श्रीठाकुरजी और श्रीबलदेवजी सहित जब गाय चरावन कों वनसे जात हैं सो तब श्रीदामा आदि जे सखा हैं । ते ऊपर भाव सहित चलत हैं सो ता पाछें श्रीयशोदाजी छाक पठावति हैं सो तब सब सखान सहित श्रीठाकुरजी आप श्रीबलदेवजी सहित आरोगत हैं । और अनेक भांति के खेल खेलत हैं । सो तातें सखा परम प्रेम सख्य भाव हैं सो ताही रसमय गोप रहत हैं और नन्दादिक जे नवनन्द हैं और व्रज में जो गोप हैं तेऊ श्रीठाकुरजीकी बाल लीला सो ताके रसमें पगे हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप गोपा मधुरा कहे । जो अब औरहू आगे कहत हैं जो गावो मधुरा सो ताको अर्थ तो यह हैं जो श्रीस्वांमिनीजी अपनो गांन करिकें श्रीठाकुरजीको हृदय जब विरह करिकें तत्पर होत है सो तिनकों सीतल करत हैं सो तेसें आगन करिकें सुन्दरवन उपवन सकुचित होय मुरझात हैं सो तब उनके ऊपर अमृतको व्रस्ट करिकें उनकों प्रफुल्लित करत हैं सो तेसें गांनरस अमृतसों श्रीस्वांमिनीजीकों पोषण करत हैं और श्रीठाकुरजी के गायवेको प्रसङ्ग ऊपर कहि आऐ हैं । सोऊ भाव तो यहां हूं हैं सो यह जाननों सो तातें श्र आचार्यजी महाप्रभू आपतो गावो मधुरा कहे और श्रीठाकुरजी आप गांन करत हैं । सो तो अत्यन्त मधुर हैं । सो काहेते जो जा समय गाय लेकें व्रजमें वनतें पधारत हैं सो तब सध्या समय वेनुनाद गोरीराग में करत हैं । कोई सखा परवावज नाचत हैं और कोई ताल बजावत है । और कोई तो सङ्ख बजावत है और कोई कीर्तन करत हैं । सो परम प्रेम के रसमें छके हैं और गाय तो परम सोभायमान हैं । और कोईक समें राजभोग पीछं निकुंज मन्दिर हैं सो तो श्रीयमुनाजी के किनारे हैं सो तहां सीतल मन्द सुगन्ध पवन आवत हैं फेरि व्रजभक्त वेगुलेके गावत हैं सो परस्पर प्रसंसा करत हैं सो गांन करत परम प्रेमरूपी जो रस हैं ताको उपजावत हैं और कोईक समय रासादिक लीला विखें सब व्रजभक्तन सहित मिलिके तान बन्धान सहित गावत हैं और निर्त करत जात हैं । एसें परम श्रेष्ठकों श्रीठाकुरजी आप देखिकें तहां चकृत होत हैं । सो तातें श्रीठाकुरजी आप तो गान करत हैं । सो परस्पर परम रस रूप ही हैं । सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप गावो मधुरा कहे । जो यह तो और हूं आगे कहत हैं । जों "यस्टिरमधुरा" सो त को अर्थ तो यह है यष्टि तो कहियें लकुटी को नाम सोऊ अत्यन्त मधुर है सो काहेतें जो श्रीठाकुरजी आपतो अपने हस्तकमल में

राखत हैं और दानादिक लीलामें जिनको कारण हैं सो तातें राखत हैं तथा मांखन चोरी में छोका उचे मेलि लायो हैं । और मुख्य भावतो यह हैं जो श्रीठाकुरजी तों श्रीस्वांमिनीजी में अत्यन्त आसक्त हैं सो लकुटी लेकें यह अभिप्राइ जनावत हैं । जो में तिहारी रक्षा में अहर्निस रहत हैं भाव और गाय तो दूरि दूरि वन में निकसि जात हैं सो तब तो श्रीठाकुरजी आप लकुटीसों सबनकों घेरिकें इकठोरी करत हैं सो तातें यह भाव सूचन करत हैं । जो सर्व व्रजभक्तन कों घरमें ते आकर्षण करिकें वनमें एकठोर करिकें अपने स्वरूपानन्दकों अनुभव करावत हैं सो तातें यष्टि हूं लीला सम्बन्ध मुख्य व्रजभक्त हैं सो तातें अपने श्रीहस्तकमल में राखत हैं । तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो यष्टिर मधुरा कहें । अथवा ओर यष्टिनाम लाठी को हैं । कोईक समय श्रीठाकुरजी आपतो सांकरी खोर मैं श्रीवलदेवजी सहित श्रीठाकुरजी आपतों सब सखान सहित विराजत है । सो ता समय व्रजभक्त अपने अपने घरते भांति भांति के सिंगार करिकें कोई दूध लेत हैं । और कोऊ दही लेत हैं । और कोऊ माखन लेके सब व्रजभक्त ईकठी होय गई हैं । वेचवे मिस करिकें घरतें चलत है । सो जब वसंत मैं श्रीगोवर्द्धननाथजी की सांकरी घाटी है । सो तहां दांनकी ठौर हैं । और सब व्रजभक्त आवत हैं सो तब श्रीठाकुरजी लाठी लेके तहां सब व्रजभक्तनकों आप रोकत हैं । जो हमारो दांन देके घर जाऊ सो तब व्रजभक्त तो अनेक भांति के हास्य प्रेम कटाक्ष करिकें उतर देत हैं । जो तुम कबके दानी भए हों । श्रीनंदरायजी श्रीयसोदाजी तो हमारे आश्रय ते रहत हैं । और तुम हम पास दांन मांगत हों । सो या भांतिसों श्रीठाकुरजीसों और व्रजभक्तनसों परस्पर बातें होत हैं । सो का समय लकुटी श्रीठाकुरजीके हस्तकमलमें हैं सो तो परम रसरूप ही हैं । और गाय चरवेके समय श्रीहस्तमें रहत हैं । सो तातें लकुटिया तो परम रसरूप हैं सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप यष्टिमधुरा कहें । अब ओरहूं आगे कहत हैं । जो सृष्टिरमधुरा ताको अर्थ यह हैं सो सृष्टमैं मथुरा मंडल हैं । अथवा यह जो चोरासी कोस व्रजमें जो जीव हैं । सो सब भगवद सम्बन्धी है त मैं अधिकारांतर भेद हैं सो काहेते जो व्रजमें कंसादिकके अनुकूल दैत्य हैं । जो श्रीठाकुरजीसों प्रतिकूल वे करत हैं सो ताते उनको स्वरूपानंदको अनुभव न भयो जो श्रीठाकुरजी आप देखेहूं सही परंतु सरूपानन्दको अनुभव न भयो सो काहेते जो हृदय में दुष्ट भाव करिकें आवत हैं और श्रीगोपीजन सुद्ध पुष्टिमार्गको भाव करिकें आवत हें एक श्रीठाकुरजीमें सर्व भाव कीए हैं जो माता पिता पति हितकारी तो हैं सो सब एकई तातें अपने घर जो देह सम्बन्धी सबन त्याग कीए सो श्री ठाकुरजी आपके सनमुख भई सो काहेतें जो व्रजमैं अनेक सृष्ट हैं तिनकी जैसो अधिकार तिनको ताही भांतिको निरोध सो निरोधलक्षन ग्रन्थमें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप सब कहे जो श्रीनदरायजी श्रीजसोदाजी और व्रजभक्त तथा शुद्ध गोपीजनकों निरोध वालही जांनके भयो है । और गोपीजनको यह निरोध है जो यह बालक हैं । परंतु ये हमारे भावको एक पूर्ण करेंगे सो यह भाव करिकें यह निरोध भयो सो गुप्तरसकी रीतिसों उन व्रज भक्तनको रसको अनुभव करवायके निरोध कीए । सो या प्रकारसों सबनको न्यारी न्यारी सृष्टि जाननों तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप सृष्टिर मधुरा कहें । अथवा और पूतना जा समें आई हैं व्रजमें सोरहहजार बालकके प्राण सोसिकें सो ता पाछे नंद भवनमें

श्रीनदरायजी के पास आई सो तब श्रीठाकुरजी आप देखिकें आप नेत्र मूंद लिये । जो जाक ज्ञान होय जायगो तां पाछें श्रीठाकुरजी पूतनाको सोखे सो ताके संगतो सोरहहजार बालक पूतनानें मारे हैं । सोव्रजके बालक अजर अमर हें सो श्रीठाकुरजी के लीला सम्बन्धी हें सो ता पूतनाके प्राणके संग श्रीठाकुरजी के उदरमें आए सो तब पूतना को तो मोक्ष भयो सो काहेते जो साक्षी हैं आसुरी जीवको लीलाको सम्बन्ध नाहीं है । सो तातें पूतनाकी तो मोक्ष भई और बालक सोरहहजार के प्राण सो श्रीठाकुरजीमें भए सो चीरहरणलीला श्रीठाकुरजी कीए सों तब उदर में ते सोरह हजार बालक निकारे सो अन्तरंगी जो सखी हैं सो तिनको लीला सम्बन्ध करवाये सो ताते यह सृष्टि परम मधुर हैं । तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप सृष्टिर मधुरा कहें । अब ओरहूं आगे कहत हैं जो दलितं मधुरं प्रथम ताको अर्थ तो यह हैं । जो छिदलात्मक स्वरूप तो परम रस रूप ही है सो काहेते जो प्रथम दलतो श्रीपूर्णपुरुषोत्तम तिनकों जब रमनि करिवेकों तो ईच्छा भई है सो वाई समय दूसरो दल विप्रयोगात्मक प्रगट भयो हैं । सोऊ सरूप श्रीपूर्णपुरुषोत्तमके समान ही है । महारसरूप स्त्रीरूप सो काहेतो जो स्त्री पुरुष बिना सिंगाररस सोभा न देय तातें दोऊ संयोगात्मक दल एक श्रीठाकुरजी और विप्रयोगात्मक श्रीस्वांमिनोजी आदि वृन्दावन में रसरूप भूमिसां तहां अनेक सखी हैं । सो वह रस करिवेके निमित्त हैं सो सखी नाना प्रकारके निकुंज सिद्धि करत हैं । कहूं गुलाबदल के निकुंजमैं सेज्या पंखा तकिया आभूषण कहूं कमल दल इत्यादिक सबही जाननों कहूं नांना प्रकार के मिश्रित सब अंग के फूल तिनकों निकुंजसों तहां अनेक पशु पंछी बोलत हैं । लीला के अनुसार अमृत सबद परम सुहावनी लागत हैं । सो तहां मध्यमें तो केलि सिज्या ताकें आसपास तो फूलनकी तिबारी तहां अनेक प्रकारके भ्रमर गुंजार करत हैं । सोई स्त्री भावको पाये हैं । कहिवेमें वो भ्रमर कहे परंतु निकुंजमैं तो पशु पंछी सबई स्त्री रूप ही जाननों । एसों निकुंज ताके आसपास बड़े बड़े वृक्ष आंव कदब फेनस जांबू वट पीपल इत्यादिक जिनकों देखिकें सुरतरु लज्जाको पावतहैं सो काहेते जो कल्पवृक्षको भगवत्सबंध करवायवेकों अधिकार नाहीं हैं और यह श्रीवृन्दावनके वृक्ष भगवद स्वरूप ही हैं । सर्व कालमें फलफूल सहित वसंतरुतु होय रहे हैं । तहां निरादिक व्रक्ष हें सो तिनमें तो यह नियामक नाहीं है । जो निबके फूल लागे जो फल चाहियें सो सब तिनहीमें सिद्धि हैं । एसे रसरूप हें तिनके ऊपर तो अनेक भांतिकी लता वेली छाय रही है । सो तहां सब सखीन के निकुंज हैं । मध्य श्रीस्वांमिनीजी को निकुंज हैं तहां श्रीठाकुरजी केलिकी सिज्यामें श्रीस्वांमिनीजी अभिनिवेस करत हैं । सो ता समय कटिमेखलाके घुघरू तिनको अत्यन्त शोभायमान हैं । झनकार होत हैं । जो मानो केलि संग्रामो वीर दोऊ सुभट युद्ध करत हैं । सो तहां अनेक वाजत्र बाजत हैं । तहां अनेक कोकिलाके वंत्रादिक करिकें जो केलि चातुरीय सहित मत्त गजराज का नाई विहार करत हैं । सो तबतो कंञुकि के बंद टूटत हैं । और माला टूटत हैं सिंगार अस्तविस्त विपरीत रमण विखें कोटि कोटि कांमदेवके मदको मर्दन होत हैं । तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आपतो दलितं मधुरं कहे । अथवा छिदलात्मक स्वरूप हैं सो परमरसरूप ही हैं । सो काहेते जो जा समय श्रीपूर्णपुरुषोत्तमतो आपुही हैं । और कोई द्रष्टको प्रकासतो नाही भयो है सो ता समय

तुलसी की सुगंध श्रीपूरणपुरुषोत्तमको आई । सो सब श्रीठाकुरजी दर्पन लेके अपनो श्रीमुख देख्यो सो तब श्रीपूर्णपुरुषोत्तमको अनुभव करें । इतनों विचारत ही एक दल में ते दूसरो दल श्रीस्वांमिनोजीको प्रागट्य भयो सो स्वरूप श्रीप्रभूजी ही समानशील स्वभाव सरूप ही हैं । तिनमें ते फेरि श्रीचंद्रावलीजी आदि और व्रजभक्तनको प्रागट्य हैं सो जातें छहदल तों मुख्य हैं । श्रीठाकुरजी और श्रीस्वामिनोजी जेसो प्रथवी में प्रथम बीज बोइयें । तब प्रथम दोय पात निकसें सो ता पाछें औरहूं होय । तेसे द्विदल तो परम रसरूप मधुर हें सो तातें श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप दलितं मधुरं कहे । और कंसादिक जो दुष्ट राक्षस हैं सो तिनके दलन करिवे में श्रीठाकुरजी आप तो परम चतुर है । सो तब श्रीठाकुरजी रासको आरम्भ व्रजभक्तन के संग करिवे को कीयो । जो ता समय जाके हाथ जो पञ्चबाण है । एसो कांमदेव आयो सो साक्षात आप विराजत हैं । साक्षात् मन्मथसो कांमदेव मूर्छित भयो । सो ताते कांमदेवको दलन करणवारे हैं । सो तातें श्रीआचार्यजो महाप्रभू आपतो दलितं मधुरं कहे । जो अब तो औरहूं आगे कहत हैं । जो फल देतहैं । सो तो सवन ते अधिक हैं सो काहेते जो देवता फल देत हैं सो तो मिथ्या हैं । सो अंसकला के अवतार हैं । सो फल देके अपने अपने वैकुण्ठ में स्थिति हैं । और श्रीकृष्णजीजो फल देत हैं सो तिनको व्रजलीला कों अनुभव करायकें अपने व्रज में स्थिति करत हैं । और श्रीकृष्ण हैं सो तो जेसो जाको अधिकार होय तेसो ताको फल देत हैं । सो काहेते जो असुरन को मोक्ष दीये और पूजामार्गीय हैं । तिनको मर्यादा भक्तिको दान करत हैं । और जा व्रजभक्त हैं तिनको पुष्टिभक्ति को फल देत हैं । और श्रीआचार्यजी महाप्रभून के सरन जो जीव पुष्टिमार्ग में आए हैं । सो ताको तो पुष्टिमार्ग को फल श्रीठाकुरजो देत हैं । सो ताते श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप फलितं मधुरं कहे । और ताको अर्थ तो यह हैं जो फलतो सबनते उतिम हैं । जो यह स्वरूपानुभव जाको भयो होयगो सोई जानेगो । सो श्रीआचार्यजी महाप्रभूनकों तथा श्रीगुसाईजी को अनुभव जाको भयो होयगो सोई जानेंगो । सो श्री गुसांईजी श्रीआचार्यजी महाप्रभून सों विज्ञप्त करता हैं । सो यह रस के योग्य नाहि हतो परंतु तुम अपनों लीला संबंधी मोकों कीयो है निवेदन करवायके यह जो तिहारो सर्वस्व धन हतो सो मोकों फल नाहीं कीयो अब यह जो मधुराष्टक है सो हितारे मुखद्वारा मोको फलित भयो है सो तेसे ही मेरे निवेदनीय अंगीकृत भक्त हैं । जिनको द्रढ़ तिहारे चरणकमल में भाव है । तिनको फलित होऊ सो काहेते जो तुम प्रगट न होते तो यह निवेदन पुष्टिमार्ग को फल श्रंगाररस काहूको न फलित होतो एसो श्रीठाकुरजी आप और श्रीस्वांमिनीजी माधुर्य लीलाकेपरम सिरोमणि एक कालावछन मैं सर्व लीलाकरण मैं तो सामर्थ्य हैं सो तिनके हृदय को दोऊ भाव संयोगात्मक और विप्रयोगात्मक सो हमसों निसाधन कों अपने जांनिकें दांन कीए सो तातें हमकों एक तिहारे चरणकमल की जो रज हैं सो ताको बारंबार अहनिस नमस्कार करत हैं । सो या प्रकारसों श्रीगुसांईजी आप श्रीआचार्यजी महाप्रभून सों विज्ञप्ति करिकें अपने अंगीकृत जीवन को सिखाए । जो या प्रकारसों दृढ़ आश्रय श्रीआचार्यजी महाप्रभून के चरणकमल को होयगो तब तिनकों मधुराष्टक फलितं मधुरं कहे अब ओर कहे जो मधुराधिपते रखिलं मधुरं सो ताको अर्थ तो यह है जो जितनीक जो मधुर वस्तु हें सो ताके पति

तो श्रीठाकुरजी आप हैं। तेजो अखिलं सोभायमान संयुक्त हैं। अखिलनाम जीव की शोभा कों पार नाहीं है जो या भांतिसों आठ श्लोकको यह ग्रंथ यहा रसरूप हैं। ताको नाम तो मधुराष्टक सो परम अत्यंत मधुर है। सो और यामें याकोनाम मधुराष्टक हैं। सो ताको अभिप्राय कहत हैं। सो काहेते जो या रसमें माधुय रस जो हें सो पूर्ण पुरुषोत्तमको और व्रजभक्तनको भाव रसरूप हैं। सो तिनको वर्णन हैं। सो काहेतें जो श्रीआचार्यजी महाप्रभू आप श्रीठाकुरजी को रसरूप परम प्रिय संयुक्त देखिकें अत्यंत हृदय मेंते प्रेम उमग्यो है। सो विरहवस होय कछू सरूप वर्णन करिवेको मनकी स्थिरता नाहीं है। सो ताहीते जो श्री श्रीअंगऊपर श्रीगोवर्द्धननाथजो के दरसन करत ही। द्रष्टिगई सोई मधुर करिकें वर्णन कीये ताते मधुराष्टक या ग्रंथहूं के नाम ते ताते या ग्रंथ को जो वैष्णव हैं सो दैवी जीव श्रीआचार्यजी महाप्रभून को शरण आये जो भावसहित मनपूर्वक जो पाठकरै सो ताको माधुर्यरस जो हें सिंगाररस सो ताकी सिद्ध होय। सो काहेते जो या ग्रंथके पाठते श्रीपूणपुरुषोत्तम जो श्रीकृष्णजी हैं सो तिनके दर्शनते जो कितनेक प्रतिबंध हें सो तो सब दूरि होय। सो तब पाछें स्वरूपानंदको अनुभव होयतो ताते वैष्णवको यह मधुराष्टक ग्रंथको नित्यनेमसों आवस्यक पाट करनो जो आपसों न बनें वैष्णव के पास करवावनों और ताद्रसी वैष्णव होय सो तिनकों मिलनो या प्रकार सों या ग्रंथकों गोप्य राखनों और श्रीगुसांईजी आपतो या टीकामें बोहोत विस्तार करिकें लिखे हैं सोमें अपने बुद्धि अनुसार अपने मनके प्रबोध अर्थ भयो जो ताहीतें कछू भाव है। सो श्रीगुसांईजी आपके चरणकमल के आश्रित होय के कहे हैं। सो तातें या प्रकार या ग्रंथ को पाठ करना। और श्रीमधुराष्टक ग्रंथ तो गोप्य राखनों।

॥ इति श्री विट्ठलेश्वर विरचितं मधुराष्टक ग्रंथ ताकी टीका सम्पूर्ण ॥